श्रीवीतरागाय नमः।

स्वर्गीय विद्वद्वर्य पं० सदासुखजी कासलीवाल द्वारा विरचित—

अर्थप्रकाशिका

अर्थात्

मोक्षशास्त्रकी भाषा वचनिका टीका।

प्रकाशकः—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

मालिक, दिगम्बर जैन पुस्तकालय, कापडियाभवन, गांधीचौक—सूरत।

प्रथमावृत्ति] वीर संवत् २४६६ [प्रति १०००

"जैनविजय" प्रिन्टिंग प्रेस खपाटिया चकला—सूरतमें मूलचन्द किसनदास कापडियाने मुद्रित किया।

मूल्य—चार रुपये।

अर्थप्रकाशिका और पं० सदासुखजी।

श्री उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रकी हिन्दी टीकाओंमें 'अर्थप्रकाशिका' अपना खास स्थान रखती है। इसमें प्राचीन जैन ग्रन्थोंके अनुसार सूत्रोंका स्पष्ट अर्थ ही नहीं दिया गया, बल्कि उनका विशद व्याख्यान एवं स्पष्टीकरण भी किया गया है—सूत्रमें आई हुई प्रायः उन सभी बातोंका इसमें यथेष्ट विवेचन है जिनसे तत्त्वार्थके जिज्ञासुओंको तत्त्वार्थ विषयका बहुत कुछ परिज्ञान होजाता है। टीकाकी प्रामाणिकताके विषयमें पण्डित सदासुखदासजीके निम्न उद्गार खास तौरसे ध्यान देनेयोग्य हैं। जिनसे स्पष्ट है कि इस टीकामें जो कुछ विशेष कथन किया गया है वह सब राजवार्तिक, गोम्मटसार और त्रिलोकसार आदि ग्रन्थोंका आश्रय लेकर किया गया है—पण्डितजीने अपनी ओरसे उसमें एक अक्षर भी नहीं लिखा है। वे तो सूत्र—विरुद्ध लिखनेवालेको मिथ्यादृष्टि और सूत्रद्रोही तक बतलाते हैं और ऐसा करनेको बहुत ही ज्यादा अनुचित समझते रहे हैं, और इसलिये ऐसे सूत्रकी आज्ञानुसार वर्तनेवाले तथा पापभयसे भयभीत विद्वानोंके द्वारा अन्यथा अर्थके लिखे जानेकी सम्भावना प्रायः नहींके बराबर है। पण्डितजीके वे उद्गार इस प्रकार हैं—

"ऐसै अर्थ प्रकाशिका नाम देश भाषामय वचनिका श्री राजवार्तिक नाम ग्रन्थका अल्प लेश लेय अपना उपयोगकी विशुद्धताके अर्थि तथा संस्कृतके बोध रहित अल्पज्ञानिके तत्त्वार्थ सूत्रनिके अर्थ समझनेके अर्थि अपनी बुद्धिके अनुसार लिखी है। परन्तु राजवार्तिकका अर्थ कहूं कहूं गोम्मटसार, त्रिलोकसारका अर्थ लेय लिखा है। अपनी बुद्धिकी कल्पनातै इस ग्रन्थमें एक अक्षरहू नही लिखा है। जाकै पापका भय होयगा, अर जिनेन्द्रकी आज्ञाका धारनेवाला होयगा सो जिनेन्द्रके आगमकी आज्ञा विना एक अक्षर स्मरणगोचर नही करेगा लिखना तो वणै ही कैसें? अर जे सूत्र आज्ञा छांडि अपने मनकी युक्तितैं ही अपने अभिमान पुष्ट करनेकूं योग्य अयोग्य कल्पनाकरि लिखै हैं ते मिथ्यादृष्टि सूत्रद्रोही अनन्त संसार परिभ्रमण करेंगे।"

इस टीकाके अन्तमें दी हुई प्रशस्तिसे एक बातका और भी पता चलता है और वह यह कि, यह टीका अकेले पण्डित सदासुखदासजीकी ही कृति नही है, किन्तु दो विद्वानोंकी एक सम्मिलित कृति है। इस बातको सूचित करनेवाले प्रशस्तिके पद्य निम्नप्रकार हैं—

चौपाई ।

" पूरवमैं गंगातट धाम, अति सुन्दर आरा तिस नाम ।
तामैं जिन चैत्यालय लसै, अग्रवाल जैनी बहु बसैं ॥ १३ ॥
बहुज्ञाता तिनमैं जु रहाय, नाम तासु परमेष्ठि सहाय ।
जैन ग्रन्थमैं रुचि बहु करै, मिथ्या धरम न चितमैं धरै ॥ १४ ॥

दोहा ।

सो तत्त्वारथ सूत्रकी, रची वचनिका सार ।
नाम जु अर्थ प्रकाशिका, गिणती पाच हजार ॥ १५ ॥
सो भेजी जयपुर विषै, नाम सदासुख जास ।
सो पूरण ग्यारह सहस, करिभेजी तिन पास ॥ १६ ॥

सवैया ।

अगरवाल कुल श्रावक कीरतिचन्द जु आरे मांहि सुवास ।
परमेष्ठीसहाय तिनके सुत पिता निकट करि शास्त्राभ्यास ॥ १७ ॥
कियो ग्रन्थ निज परहित कारण लखि बहु रुचि जगमोहनदास ।
तत्त्वारथ अधिगम सु सदासुख रास चहुं दिश अर्थप्रकाश ॥ १८ ॥

इन पद्योंसे स्पष्ट है कि आरानिवासी पण्डित परमेष्ठीसहायजी अग्रवाल जैन थे। आपने अपने पिता कीरतचन्दजीके सहयोगसे ही जैन सिद्धांतका अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था और आप बडे धर्मात्मा सज्जन थे तथा उस समय आरामे अच्छे विद्वान् समझे जाते थे। उन्होंने साधर्मी भाई जगमोहनदासकी तत्त्वार्थ विषयके जाननेकी विशेष रुचिको देखकर स्वपरहितके लिये यह 'अर्थप्रकाशिका' टीका सबसे पहले पाच हजार श्लोकप्रमाण लिखी थी और फिर उसे संशोधनादिके लिये जयपुरके प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित सदासुखदासजीके पास भेजा था। पण्डित सदासुखजीने संशोधन सम्पादनादिके साथ टीकाको पल्लवित करते हुये उसे वर्तमान ११ हजार श्लोकपरिमाणका रूप दिया है और इसीसे यह टीका प्राय पण्डित सदासुखजीकी कृति समझी जाती है।

उक्त परिचयपरसे इतना और भी साफ ध्वनित होता है कि पण्डित सदासुखजीकी कृतियों (**भगवतीआराधना टीका आदि**) का उस समय आरा जैसे प्रसिद्ध नगरोंमे यथेष्ट प्रचार होचुका था और उनकी विद्वत्ता एवं टीका शक्तिका सिक्का तत्कालीन विद्वानोंके हृदयपर जम गया था। यही कारण है कि उक्त पण्डित परमेष्ठीसहायजीको तत्त्वार्थ सूत्रकी टीका लिखने और उसे जयपुर पण्डितजीके पास संशोधनादिके लिये भेजनेकी प्रेरणा मिली। इतना ही नहीं, वल्कि उसमें यथेष्ट परिवर्धन करनेकी अनुमति भी देनी पडी है। तभी पण्डित सदासुखदासजी उस टीकाको दुगनेसे भी अधिक विस्तृत करनेमं समर्थ होसके हैं।

इस टीकाके सम्पादनादि करनेमे पण्डित सदासुखजीका पूरे दो वर्षोंका समय लगा था। और वह विक्रम संवत् १९१४मं वैसाख शुक्ला दशमी रविवारके दिन पूर्ण हुई थी। जैसा कि प्रशस्तिके निम्न पद्यसे प्रकट है:—

संवत् उगणीसै अधिक, चौदह आदितवार।
सुदि दशमी वैशाखकी, पूरण किया विचार ॥ ३ ॥

यह टीका अपने विषयकी स्पष्ट विवेचक होनेके साथ साथ पढनेमं वडी ही रुचिकर प्रतीत होती है। इसीसे इसके पठन-पाठनका जैन समाजमे काफी प्रचार है।

इस टीकाके प्रधान लेखक पण्डित सदासुखजी तेरापन्थ आम्नायके प्रवल समर्थक थे। आप विक्रमकी १९ वी २० वी शताव्दीके वडे अच्छे विद्वान् होगये हैं। आपका जन्म खण्डेलवाल जातिमें हुआ था और आपका गोत्र 'कासलीवाल' था। आप डेडराजके वंशज थे और आपके पिताका नाम दुलीचन्द था, जैसा कि अर्थप्रकाशिका—प्रशस्तिकी निम्न पंक्तियोंसे प्रकट है:—

डेडराजके वंश मांहि, इक किंचित् ज्ञाता।
दुलीचन्दका पुत्र कासलीवाल विख्याता ॥ ४ ॥
नाम सदासुख कहैं, आत्मसुखका बहु इच्छुक।
सो जिनवानिप्रसाद विषयतैं भए निरिच्छक ॥ ५ ॥

आपका जन्म विक्रम संवत् १८५२ में अथवा उसके लगभग हुआ जान पड़ता है; क्योंकि आपकी रत्नकरण्ड श्रावकाचारकी टीका विक्रम सं० १९२० की चैत्र कृष्णा चतुर्दशीको पूर्ण हुई है और उस समय उसकी प्रशस्तिमे आपने अपनी आयु ६८ वर्षकी

प्रकट की है। आपकी जन्मभूमि जयपुर है। उस समय जयपुरमें राजा रामसिंहका राज्य था। कहा जाता है कि पण्डित सदासुखदासजी राज्यके खजाची थे और आपको जीवन–निर्वाहके लिये राज्यकी ओरसे ८) रु० माहवार मिला करते थे। इन्हींसे आपका और आपके कुटुम्बका पालन–पोषण होता था। इस विषयमें एक किम्बदन्ती इस तरहसे भी कही जाती है कि आपको जयपुर राज्यसे ८) रु० माहवार जिस समयसे मिलना शुरू हुआ था वह उन्हें बराबर उसी तरहसे मिलता रहा उसमे जरा भी वृद्धि नहीं हुई। एकवार महाराजाने स्वयं अपने कर्मचारियों आदिके वेतनादिका निरीक्षण किया, तब राजाको मालूम हुआ कि राज्यके खजाचीके सिवाय. चालीस वर्षके अर्सेमे सभी कर्मचारियोंके वेतनमें वृद्धि हुई है—वह दुगना और चौगुना तक होगया है। परन्तु खजाचीके वही आठ रुपया है। यह सब जानकर राजाको बहुत कुछ आश्चर्य और दु:ख हुआ। राजाने पण्डितजीको बुलाकर कहा—कि मुझसे भूल हुई है जो आजतक आपके वेतनमे किसी तरहकी वृद्धि नहीं होसकी। इतने थोडेसे खर्चमें आपके इतने वडे कुटुम्बका पालन–पोषण कैसे होता होगा? उत्तरमें पण्डितजीने कहा—कि आपकी कृपासे सब होजाता है। तब राजाने वडे आग्रहसे कहा कि अब आपको जो जरूरत हो सो मागले, मै उसे पूरा कर दूंगा और आजसे आपको वेतन २०) रु० माहवार मिला करेगा। इतना सब होने पर भी परम संतोषी पण्डित सदासुखदासजीने कहा कि यदि आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें, तो मै निवेदन करूं, इस समय मै रत्नकरण्ड श्रावकाचारकी टीका लिख रहा हूं, मुझे स्वयं अपनी इस अस्थायी पर्यायका कोई भरोसा नहीं है और मुझे किसी चीजकी कोई आकाक्षा नही है। अत आजसे मै आठ घण्टेके बजाय ६ घण्टे ही खजांचीका कार्य किया करूंगा और वेतन भी आप मुझे ८) रु०की बजाय ६) रु० मासिक ही दे दिया करें। तब राजाने कहा कि कलसे आप खजाचीका कार्य ६ घण्टे ही किया करें, परन्तु वेतन यदि आप अधिक नहीं लेना चाहते तो वह ८) रु०से किसी तरह भी कम नहीं किया जासकता।

यदि यह घटना सत्य हो, तो इससे पण्डितजीकी संतोष–वृत्तिका और धार्मिक साहित्यके निर्माणका कितना अधिक अनुराग प्रतीत होता है, इसे वतलानेकी जरूरत नहीं रहती। यदि भट्टारकीय प्रथाके खिलाफ तेरहपन्थ दि० जैन समाजमें स्थापित न होता और इस तरहसे खासकर जयपुर राज्यके विद्वान् दिगम्बर साहित्यको अनुवादादिसे अलंकृत कर उसका प्रचार न करते तो दि० जैन समाजमें धार्मिक ग्रंथोंके पठन-पाठनादिका और उनके ग्रन्थोंके टीका-टिप्पणादिके निर्माण रूप जो कार्य बराबर चालू रहा है वह शायद ही देखनेको मिलता।

पण्डितजीकी जीवन–घटनाओंका और कौटुम्बिक जीवनका यद्यपि कोई परिचय उपलब्ध नही है तो भी जो कुछ टीका ग्रंथोंमें दी गई संक्षिप्त प्रशस्ति आदिसे जाना जाता है उससे पं०जीकी चित्तवृत्ति, उनकी सदाचारता, आत्म–निर्भयता, अध्यात्मरसिकता, विद्वत्ता

और सच्ची धार्मिकता पद पदपर प्रगट होती है। आपका जिनवाणीके प्रति बडा भारी स्नेह था, और उसकी देश देशान्तरोंमें प्रचार करनेकी आवश्यकताको आप बहुत ही ज्यादा अनुभव किया करते थे। इसलिये आपका अधिक समय शास्त्र स्वाध्याय. सामायिक, तत्त्वचिंतवन, पठन-पाठन और ग्रंथोंके अनुवादादि कार्योंमें ही व्यतीत होता था। रत्नकरण्ड श्रावकाचारकी टीकाके अवलोकनसे आपके सैद्धान्तिक अनुभवका कितना ही पता चल जाता है और साथ ही आपकी विचार—पद्धतिका भी बहुत कुछ ज्ञान होजाता है। यद्यपि इस टीकामें कहीं कहींपर चरणानुयोगके विषयको उसके पात्रकी सीमासे कुछ बढाकर लिखा गया है, जो प्रायः पण्डितजीकी उदासीन चित्तवृत्तिका परिणाम जान पडता है। फिर भी स्वामी समन्तभद्रके रत्नकरण्ड श्रावकाचारका यह महाभाष्य पण्डितजीके विशाल अध्ययन, विद्वत्ता और कार्यतत्परताकी ओर संकेत करता है। यदि आज दिगम्बर समाजके विद्वानोंमें जैन साहित्यके उद्धार एवं प्रचारकी उन जैसी लगन होजाय तो निस्सन्देह कुछ वर्षोंमें ही बहुत कुछ ठोस साहित्यका निर्माण होकर संसारमें उसका प्रचार किया जा सकता है।

पण्डित सदासुखदासजीके एक प्रधान शिष्य थे। उनका नाम था पन्नालालजी संघी। आपका उक्त पण्डितजीसे विक्रम सं० १९०१ से १९०७ के मध्यवर्ती किसी समयमें साक्षात्कार हुआ था। पण्डितजीके सदुपदेश एवं प्रभावसे संघीजीकी चित्तवृत्ति पलट गई और जैनधर्मके ग्रन्थोंके अभ्यासकी ओर उनका चित्त विशेषतया उत्कण्ठित हो उठा। उन्होंने यह प्रतिज्ञा की, कि मैं आजसे रात्रिको १० बजे प्रतिदिन पण्डितजीके मकानपर पहुंचकर जैनधर्मके ग्रन्थोंका अभ्यास एवं परिशीलन किया करूंगा। जब संघीजी अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार रात्रिको १० बजे पण्डितजीके मकानपर पहुंचे तब पण्डितजीने कहा कि आप बडे घरके हैं—सुखिया हैं—अत. आपसे ऐसे कठिन प्रणका निर्वाह कैसे हो सकेगा? उत्तरमें संघीजीने उस समय अपने मुंहसे तो कुछ भी नहीं कहा किन्तु जबतक पण्डित सदासुखजी जीवित रहे तबतक आप बराबर नियमपूर्वक उसी समय उनके पास पहुंचते रहे। पण्डितजीके सहयोगसे आपने कितने ही सिद्धान्त ग्रन्थोंका अवलोकन किया और जैनधर्मके तत्त्वोंका मनन एवं परिशीलन किया।

पण्डित सदासुखदासजीने अन्त समयमे अपने शिष्य संघीजीसे कहा कि—“ अब मैं इस अस्थायी पर्यायको छोडकर विदा होता हूं। मैंने तथा मेरे पूर्ववर्ती पण्डित टोडरमलजी, मन्नालालजी और जयचन्दजी आदि विद्वानोंने असीम परिश्रम करके अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थोंकी सुलभ भाषा वचनिकाएं की हैं, और अनेक नवीन ग्रन्थ भी बनाए हैं, परन्तु अभीतक देश-देशान्तरोंमें उनका जैसा प्रचार होना चाहिये था वैसा नहीं हुआ है। और तुम इस कार्यके सर्वथा योग्य हो, तथा जैनधर्मके मर्मको भी अच्छी तरह समझ गये हो, अतएव गुरुदक्षिणामें मैं तुमसे केवल यही चाहता हूं कि जैसे बने तैसे इन ग्रन्थोंके प्रचारका प्रयत्न करो। वर्तमान समयमें इसके समान पुण्यका

और धर्मकी प्रभावनाका और कोई दूसरा कार्य नही है।" यह कहनेकी आवश्यक्ता नहीं, कि पण्डितजीके सुयोग्य शिष्य संघीजीने गुरु-दक्षिणा देनेमे जरा भी आनाकानी नहीं की। और आपने अपने जीवनमें राजवार्तिक, उत्तरपुराण आदि आठ ग्रन्थों पर भाषावचनिकाएं लिखी है और २७००० श्लोक प्रमाण "विद्वज्जनबोधक" नामके ग्रन्थका निर्माण भी किया है। इसके सिवाय सरस्वती पूजा आदि कुछ पुस्तकें पद्यमें लिखी है। अन्य साधर्मी भाइयोंकी सहायतासे आपने जयपुरमे एक "सरस्वतीभवन" की स्थापना की थी, जिससे बाहरसे ग्रन्थोंकी माग आने पर ग्रन्थोंकी प्रतिलिपि कराकर भेज देते थे। इस कार्यको आप पण्डितजीकी अमानत समझते थे, और उसका जीवन-पर्यंत तक निर्वाह करते रहे।*

यद्यपि पण्डित सदासुखदासजीके मरण समयका ठीक ठीक बोध नहीं होसका है। परन्तु रत्नकरण्ड श्रावकाचारकी प्रशस्तिसे इतनी बात जरूर निश्चित है कि रत्नकरण्ड श्रावकाचारकी वचनिका पण्डितजीकी अन्तिम कृति है। वह विक्रम संवत् १०२०में चैत्र कृष्णा चतुर्दशीके दिन पूर्ण हुई है। उस समय पण्डितजीकी उम्र ६८ वर्षकी होचुकी थी।× इसके बाद आप अधिकसे अधिक दो चार वर्ष ही जीवित रहे होंगे। रत्नकरण्ड श्रावकाचारकी आपकी यह टीका जैन शास्त्रोंका विशेष अनुभव प्राप्त कर लेनेके बाद लिखी गई है, इसी-कारण इसमें दिये हुए वर्णनसे पण्डितजी उनकी चित्तवृत्तिका और सासारिक देह भोगोंसे वास्तविक उदासीनताका बहुत कुछ आभास मिल जाता है। उसमें समाधि आदिका जो महत्वपूर्ण वर्णन दिया है उससे पण्डितजीकी समाधिमरण—विषयक जिज्ञासा एवं भावनाका भी कितना ही दिग्दर्शन होजाता है। और भगवती आराधनाकी टीकाके अन्तके निम्न दो पद्योंसे, जिनमें समाधिमरणकी आकाक्षा व्यक्त की गई है, मेरे उपर्युक्त निष्कर्षकी पुष्टि होती है—

मेरा हित होनेको और, दीखे नांहि जगतमें ठौर।
यातै भगवति शरण जु गही, मरण आराधन पाऊं सही ॥ १३ ॥
हे भगवति तेरे परसाद, मरण समै मति होहु विषाद।
पंच परम गुरुपद करि ढोक, संयम सहित लहूं परलोक ॥ १४ ॥

* प० पन्नालालजी सघीका परिचय 'विद्वज्जनबोधक' के मुद्रित प्रथम भागकी प्रस्तावनासे लिया गया है। देखो—पृष्ठ ६, ७।

× अडसठ वरस जु आयुके, बीते तुम आधार। शेष आयु तव शरणतैं, जाहु यही मम सार ॥ १७ ॥
—प्रशस्ति, रत्नकरंडश्रावकाचार टीका।

इन पद्योंसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि पण्डित सदासुखदासजी अपने समाधिमरणके लिये कितने उत्सुक थे। जरूर ही उनका मरण समाधिपूर्वक हुआ है और उसके प्रसादसे वे निस्सन्देह सद्गतिको प्राप्त हुए होंगे।

पण्डित सदासुखजीने जो साहित्यसेवा की है, और अपने अमूल्य समयको जिनवाणीके अध्ययन—अध्यापन और टीका कार्यमें बितानेका जो प्रयत्न किया है वह सब विद्वानोंके द्वारा अनुकरणीय है। संस्कृत—प्राकृतके जैन ग्रन्थोंका हिन्दी भाषामें अनुवादादि कर जो जैन समाजका उपकार वे कर गये हैं वह बडा ही प्रशंसनीय और आदरणीय है। इससे जैन संसारमें आपका नाम अमर होगया है। इस समय तक मुझे आपकी ७ कृतियोंका पता चला है। संभव है और भी किसी ग्रन्थकी वचनिका लिखी गई हो या कोई स्वतंत्र ग्रंथ बनाया गया हो। प्रस्तुत 'अर्थप्रकाशिका' टीका और उक्त रत्नकरण्ड श्रावकाचारकी टीकाके अतिरिक्त जिन पांच कृतियोंका पता और चला है वे इसप्रकार हैं—

१—भगवती आराधना टीका, संवत् १९०८ में भादों सुदी दोयजको पूर्ण हुई।

२—पण्डित बनारसीदास कृत नाटक समयसार टीका।

३—नित्यनियम पूजा संस्कृतकी टीका।

४—अकलंक स्तोत्रकी टीका।

५—तत्त्वार्थसूत्रकी लघु टीका।

पिछली चार टीकाओंके सामने न होनेके कारण उनके विषयमें रचना संवत् और प्रशस्ति आदिका कोई ठीक परिचय नहीं मिल सका। आशा है समाज पण्डितजीके उपकारको स्मरण करता हुआ उनके सेवाभावका आदर्श सामने रक्खेगा और जिनवाणीके प्रचारका जो सन्देश उन्होंने अपने शिष्य पण्डित पन्नालालजी संघीको दिया था उसे कार्यमें परिणत करनेका अपना भी कर्तव्य समझेगा, और तद्-नुसार जैन ग्रन्थोंका अनेक भाषाओंमें अनुवादादि कर प्रचार करनेका जरूर कोई संगठित प्रयत्न करेगा। ऐसा करके ही वह अपने उपकारीके ऋणसे उऋण हो सकेगा।

वीर सेवामन्दिर, सरसावा
ता० ५-५-१९४० } —परमानन्द जैन शास्त्री।

निवेदन।

सारे जैन संसारमें श्री उमास्वामी (उमास्वाति) कृत श्री तत्वार्थसूत्र जैन सिद्धांतका सर्वोत्तम संस्कृत शास्त्र है जिसपर संस्कृतमें, प्राकृतमें व हिन्दी भाषामे अनेक टीकायें लिखी जा चुकीं हैं, उनमें जयपुर निवासी श्री० स्व० विद्वद्वर्य पंडित सदासुखदासजी कृत—"अर्थप्रकाशिका" नामकी भाषावचनिका टीकाका जैन समाजमें बहुत आदर है और वह स्वाध्यायमें बडे चावसे पढी जाती है। वैसे तो पण्डित सदासुखदासजीका नाम श्री रत्नकरण्डश्रावकाचार टीका और श्री भगवतीआराधना टीकाके कारण जैन संसारमें प्रसिद्ध है ही, लेकिन आपकी 'अर्थप्रकाशिका'की टीकामे जैन सिद्धातके गहन तत्वोंका जो विस्तृत निरूपण है इससे आपकी प्रतिभाका पता सहज लग जाता है। इस 'अर्थप्रकाशिका' शास्त्रकी वारम्वार माग आनेसे हमने इसे प्रकट करनेका साहस किया है, आशा है जैन समाज इसे शीघ्र ही अपना-लेगी। इस सिद्धातशास्त्रके रचयिता श्री० पं० सदासुखदासजीका खोजपूर्ण जीवन—परिचय प्रकट करनेका हमने संकल्प किया और उसके लिये दि० जैन समाजके सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ, पुरातत्वप्रेमी व साहित्यसेवी पण्डित जुगलकिशोरजी मुख्त्यार (सरसावा) को लिखा तो आपने इस निवेदनको तुर्त ही स्वीकार कर लिया और अपने स्थापित "वीर सेवामंदिर" सरसावाके एक साहित्यसेवी विद्वान् पं० परमानंदजी शास्त्रीसे पण्डित सदासुखदासजीका अतीव खोजपूर्ण परिचय मय विषयसूचीके अपने तत्वावधानमें तैयार कराके भिजवा दिया जो प्रकट करते हुए हमें बडा हर्ष होरहा है। इस महान् परिश्रमके लिये हम व सारा जैन समाज पण्डित परमानन्दजी शास्त्रीका अतीव आभारी है। तथा आपकी इस सेवाके लिये आपको जितना भी धन्यवाद दिया जाय कम है।

पण्डित सदासुखदासजीका प्राचीन हस्तलिखित चित्र जो हमें प्राप्त होसका है वह भी इस शास्त्रमें प्रकट किया गया है, जो पाठकोंको विशेष रुचिकर होगा। आपका जन्म विक्रम सं० १८५२ और स्वर्गवास सं० १९२५ करीब मालूम होता है।

इस महान शास्त्रके प्रकाशनमें जो कुछ त्रुटियां रह गई हों उनके लिये विद्वद्गण हमें क्षमा करके उन त्रुटियोंको लिख भेजनेकी कृपा करेंगे, ऐसी हम आशा रखते हैं।

सूरत,
वीर सं० २४६६,
आषाढ सुदी ८
ता० १२-७-४०.

निवेदक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
—प्रकाशक।

मोक्षशास्त्रस्य सूत्रपाठः ।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोध्यायः ॥ ४ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

पृष्ठ

अथाष्टमोऽध्यायः ।

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

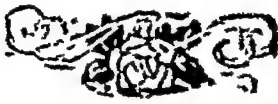
इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति ।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुंगवैः ॥ १ ॥
तत्त्वार्थसूत्रकर्तारं गृद्धपिच्छोपलक्षितं ।
वन्दे गणीन्द्रसंजातमुमास्वामिमुनीश्वरं ॥ २ ॥
जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्कइ तं च सद्दहणं ।
सद्दहमाणो जीवो पावइ अजरामरं ठाणं ॥ ३ ॥
तवयरणं वयधरणं संजमसरणं च जीवदयाकरणं ।
अंते समाहिमरणं चउगइदुक्खं णिवारेई ॥ ४ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ५ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ६ ॥

श्लोक ।

अक्षरमात्रपदस्वरहीनं, व्यंजनसंधिविवर्जितरेफं ।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं, को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥ ७ ॥

शुभमस्तु श्रीरस्तु कल्याणमस्तु ।



द्वितीय अध्याय ।

तृतीय अध्याय ।

चतुर्थ अध्याय।

पंचम अध्याय ।

षष्ठम अध्याय ।

सप्तम अध्याय ।

अष्टम अध्याय ।

दशम अध्याय ।





स्वर्गीय विद्वद्वर्य पं० सदासुखदासजी विरचित—

अर्थप्रकाशिका।

[मोक्षशास्त्रकी भाषावचनिका]

प्रथम अध्याय।

दोहा।

वंदौं श्रीवृषभादि जिन, धर्मतीर्थ करतार। नमैं जास पद इंद्र शत, शिवमारग रुचि धार॥ १॥
महावीर प्रभु चरम जिन, घाति घातिया चार। लहि केवलपद विभु कह्यो, शुद्ध धर्म विस्तार॥ २॥

अथ देवाधिदेव परमपूज्य धर्मतीर्थके प्रवर्त्तन करनेवाले, अनंतचतुष्टयादि अनंतगुणरूप अन्तरङ्ग-विभूतिकरि भूषित, अर इंद्रादिक देव परमभक्तिकरि निर्मापण कीया जो अनुपम विभूति सहित समवशरणादि बहिरङ्ग लक्ष्मी तिसकरि मंडित, बहुरि इंद्रादिक असंख्यात देवनिके समूहकरि वन्दनीक, बहुरि अनंतगुणनिके अतिशयनिकरि सहित, अर अष्टादशदोषरहित, जीवनिका परम उपकार करनेवाला, अर लोक अलोकका प्रकाश करनेवाला, अर त्रिकालवर्ती अनन्त द्रव्य, अनन्तगुण, अनन्त पर्यायनिका युगपत क्रमरहित एक कालमें उद्योत करनेवाला अर अनन्तमहिमायुक्त, अनन्तशक्ति सहित, अर संसारसमुद्रमैं

डूबते अनेक प्राणी तिनिकूं हस्तावलम्बन देनेवाला, अर परमात्मा परमब्रह्म परमेश्वर परमेष्ठी स्वयंभू शिव अरहन्तादि नामनिकरि विख्यात, अर अशरण प्राणीनिकूं अद्वितीय शरण, अर परमौदारिक देहमैं तिष्ठता, अर सप्तऋद्धिसमृद्ध गौतमादि गणधरमुनीनिकरि सेवनीक है चरणारविंद जाका, अर कंठ ओष्ठ तालवा जिव्हादिक अङ्गोपांगनिका कंपन स्पर्शनरहित सर्वांगतैं उपज्या, अक्षररहित, समस्त प्राणीनिके पुण्य-प्रभावकरि प्रेर्‌या, आर्य अनार्य समस्तदेशनिके प्राणीनिके ग्रहणमैं आवता, समस्त पापका घातक ऐसी दिव्यध्वनिकरि भव्यजीवनिका मोह अन्धकार दूरिकरता, अर चोसठि चमरनिकरि विराजमान, अष्ट-प्रातिहार्य विभूषित, सिंहासनतैं च्यार अंगुल अन्तरीक्ष विराजमान, भगवान सकलपूज्य परम भट्टारक श्रीवर्द्धमान देवाधिदेव मोक्षमार्गके प्रकाशकरनेकै अर्थि समस्तपदार्थनिका स्वरूप सातिशय दिव्यध्वनि-करि प्रगट किया। तिस अवसरमैं निकटवर्ती निर्ग्रंथ ऋषीश्वर समस्त मुनिगणकरि वंदनीक, सप्त ऋद्धिकरि समृद्ध, च्यार ज्ञानके धारक श्रीगौतम नामा गणधरदेव भगवानभाषित अर्थकूं धारणकरि द्वादशांगश्रुत-रूप रचना रची।

बहुरि श्रीवर्द्धमान स्वामीकूं मुक्तिगये पीछैं गौतमस्वामी १, सुधर्माचार्य २, जम्बूस्वामी ३, ए तीन केवली बासठिवर्ष पर्यंत पदार्थनिकी प्ररूपणा करी। बहुरि तिनके पीछे अनुक्रमकरि विष्णु १, नंदिमित्र २, अपराजित ३, गोवर्धन ४, भद्रबाहु ५, ए पांच श्रुतकेवली द्वादशांगके पारगामी भए। तिनका एकसो वर्षपर्यंतका अवसर भया तिस अवसरमैं भगवान केवलीतुल्य समस्तपदार्थनिका प्ररूपण भया। बहुरि विशाखाचार्य १, प्रौष्ठिलाचार्य २, क्षत्रिय ३, जयसेन ४, नागसेन ५, सिद्धार्थ ६, धृतिषेण ७, विजय ८, बुद्धिमान् ९, गंगदेव १०, धर्मसेन ११, ए ग्यारह अंग दशपूर्वके धारक एकादश परमनिर्ग्रंथ-मुनि अनुक्रमतैं एकसौ तीयासी वर्षमैं भए। ते यथावत् पदार्थनिकी सम्यक् प्ररूपणा करी। बहुरि नक्षत्र १, जयपाल २, पांडुनामा ३, ध्रुवसेन ४, कंसाचार्य ५, ए पञ्चमहामुनी एकादशांगविद्याके पारगामी अनुक्रमतैं दोयसै वीस वर्ष पर्यंत यथावत् प्ररूपणा करी। बहुरि सुभद्र १, यशोभद्र २, भद्रबाहु ३, महायश

४, लोहाचार्य ५, ए पञ्चमहामुनि प्रथम अंगका पारगामी एकसौ आठ वर्षमैं अनुक्रमतैं भए। ऐसे कालके निमित्ततैं बुद्धिवीर्यादिकनिकी मन्दता होतैं श्री कुन्दकुन्दादि अनेक मुनि परमनिर्ग्रंथ वीतरागी अंगके वस्तूनिके ज्ञानी होते भए। तथा उमास्वामी होते भए।

ऐसैं पापतैं भयभीत, ज्ञानविज्ञानसम्पन्न, परमसंयमगुणकरि मंडित, गुरुनिकी परिपाटीतैं श्रुतका अविच्छिन्न अर्थके धारक, इस कलिकालमैं श्रुतकेवली तुल्य श्रीउमास्वामीनामा परम वीतरागी मुनि भव्य जीवनके परोपकार करनेकौं भगवानका परमागमकी आज्ञातैं तत्त्वार्थसूत्र दशाध्यायरूप रचना करी। बहुरि कालके निमित्ततैं जीवनिकी बुद्धिकी मन्दता जानि मोक्षमार्गके प्रवर्त्तनके अर्थि श्रीपूज्यपादस्वामी तत्त्वार्थसूत्रकी सर्वार्थसिद्धि नामा टीका रची। अर श्रीसमन्तभद्रस्वामी चौरासी हजार गन्धहस्ती नामा बड़ी टीका रची तथा श्रीअकलंकदेव तत्त्वार्थवार्तिकालंकार ताकूं राजवार्तिक कहिए ऐसी सोलह हजार श्लोकनिमैं टीका (रचना) रची। बहुरि श्रीविद्यानंदिस्वामी श्लोकवार्तिकनाम वीसहजार श्लोकनिमैं टीका रची। सो अब इस कलिकालमैं ऐसे संस्कृतग्रंथ पढ़ने समझनेवाले अति अल्प रहि गए। तिन मन्दज्ञानी जीवनिकै मोक्षमार्गरूप शास्त्रका किंचित् अर्थ समझनेकूं यह देशभाषामय वचनिका लिखिए है—

दोहा।

पंच परमपदकौं नमौं, चैत्य चैत्यगृह सार। जैनधर्मवच वंदिकै, करौं मंगलाचार ॥ १ ॥
सूत्रवृत्ति वार्तिक महा—भाष्यग्रंथकर्तार। ध्याऊं श्रीगुरुके चरन, करहु सु मम उपगार ॥ २ ॥

चौपाई।

जयति सुगुरु शिवमगविस्तारे। कर्मकठिननग विविध विदारे ॥
विश्वतत्त्वके जाननहारे। वन्दौं तिस गुण होहु हमारे ॥ ३ ॥

मोक्षशास्त्र गम्भीर अपारा। ताको लहि फलितार्थ उदारा॥
अतिसंक्षेपरूप गहि नीका। अर्थप्रकाश लिखूं लघु टीका॥ ४॥

सवैया तेईसा।

प्रथमअवस्थामैं भविजन जे तत्त्वारथके हैं रुचिवान।
तिनके सुगममार्ग मिलवेकौं होहैं अर्थप्रकाश महान॥
मिले सुराह उछाह बढै तब पढैं बृहद् व्याख्या हित ठान।
दर्शनज्ञान करैं निज निर्मल धरैं चरन पावैं शिवथान॥ ५॥

सूत्रकर्त्ताका मङ्गलाचरण।

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृतां।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वंदे तद्गुणलब्धये॥ १॥

अर्थ—मोक्षमार्गके प्रवर्त्तावनहारा, अर कर्मरूप पर्वतनिकूं भेदनहारा, अर समस्त तत्त्वनिका जाननहारा जो है ताहि तिसके गुणनिकी प्राप्तिकै अर्थि वंदना करूं हूं। इहां तीन विशेषणनि सहित आप्तकी स्तुतिरूप मङ्गलाचरण कीया। तहां मोक्षमार्गका नेतृत्व विशेषणतैं तो आप्तका जगतके प्राणीनि-प्रति परमहितोपदेशकपणाकरि अद्वितीय उपकार प्रतिपादनरूप वर्णन कीया। अर कर्मभूभृद्भेत्तृत्वविशेषण-करि आप्तकै सर्वोत्कृष्ट सामर्थ्यपणा वा निर्दोषपणा तथा वीतरागपणा प्रगट कीया। जातैं इंद्रादिक समस्त देव जाकूं जीति नहीं सक्या, अर जगतके समस्तजीवनिकूं जीति स्वरूपतैं भ्रष्ट करि जडरूप करि नष्ट कीया ऐसा मोहनीयकर्म तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय इनि च्यार कर्मनिका नाश करि अपना

जयनशील जिन नाम प्रगट कीया। बहुरि विश्वतत्त्वज्ञातृत्व विशेषणकरि समस्त गुणपर्यायनिसहित पदार्थनिका क्रमरहित युगपत् जाननेतैं सर्वज्ञ वीतरागपणा प्रगट कीया। ऐसे सर्वज्ञ वीतराग परमहितोपदेशक तीन विशेषणविशिष्टही आप्त है। सोही शास्त्रकी उत्पत्ति तथा शास्त्रका यथार्थज्ञान तथा आपसमान सर्वज्ञवीतराग करनेका निर्बाध कारण है, तातैं आप्तकूं नमस्कार करना युक्त ही है।

अब इहां कछु अन्य विशेष लिखिए हैं। इस श्लोकमें आप्तकूं नमस्कार करनेतैं तथा मोक्ष अर मोक्षका मार्गके समर्थनत प्रथम तो नास्तिकवादी वा शून्यवादीनिका परिहार है, जातैं सर्वज्ञ अर जीवादिक समस्त पदार्थ नास्तिकवादी तथा शून्यवादी नाहीं मानै हैं, बहुरि मोक्षतत्त्व कहनेतैं जे चार्वाकमतवाले परलोक तथा जीव तथा मोक्षका अभाव मानै हैं तिनका परिहार भया। कर्मभूभृतां भेत्तारं इस विशेषणतैं जे शिवमतवाले ईश्वरको सदा मुक्तही कहै हैं, कर्मका नाशकरि मोक्ष होना नाहीं मानें है तिनका परिहार भया। बहुरि मीमांसकादिक ब्रह्मवादी सर्वथा अद्वैतवादका एकांतकरि सर्वजगतकूं एक ब्रह्मरूपी ही विस्तरया मानैं हैं, और समस्त जीव अजीवादि पदार्थनिका अभाव ही मानैं हैं, तिनका भी कर्मभूभृतां भेत्तारं विशेषणकरि परिहार कीया। जातैं ज्ञानावरणादि समस्त कर्म हैं ते पुद्गल अजीवरूपही हैं। बहुरि विश्वतत्त्वज्ञातृत्वविशेषणकरि सर्वज्ञका अभाव माननेवाला चार्वाकमत या मीमांसकमत है तिसका परिहार कीया।

बहुरि तद्गुणलब्धये इस वचनतैं नैयायिक, वैशेशिषक मतवाले मुक्तजीवतैं हूं परमात्माकी जुदी जाति मानैं हैं, जीवके परमात्मपदकी प्राप्ति नाहीं मानैं हैं तिनका परिहार कीया। वा मीमांसकमतहीका भेदरूप भट्टमतवाले आत्माके मोक्ष होना नाहीं मानैं हैं, तिनका परिहार कीया। या प्रकार अन्यमतनितैं भिन्न विशेषण सहित अपने इष्ट आप्तकौं नमस्कार करना युक्त ही है। इस शास्त्रविषै मोक्षमार्गका उपदेश है। जो घातियाकर्मका नाशकरि सर्वज्ञ वीतराग परम हितोपदेशक होय सो ही आप्त है। ताहीका प्रवर्त्तोया मोक्षमार्ग प्रमाणसिद्ध है, जातैं सर्वज्ञ नाहीं होय तो सूक्ष्म, अन्तरित, दूरवर्ती पदार्थनिकों कौन

जानें। तहां सूक्ष्मपदार्थ तो परमाणूकूं आदि लेय हैं। अर अन्तरित जे अतीतकालमें होय गये, अर अनागत आगामी कालमें होंहिगें, अर दूरवर्त्ती जे मेरुगिरि नरक स्वर्गविमानादि पदार्थ हैं, सो इनि पदार्थनिकूं सर्वज्ञविना यथार्थ कोऊही जाणि नाहीं सकै, तदि कैसें यथार्थ उपदेश करै। अर वीतराग नाहीं होय तौ रागद्वेषादिककै वशि हुवा यथावत् नाहीं कहि सकै। अर परम हितोपदेशक नाहीं होय तो स्वपरतत्त्वकों जणाय आत्मकल्याणमें कौन प्रवर्त्तावै। साक्षात् उपकार तौ उपदेशतें ही होय है। सिद्धभगवान सर्वज्ञ वीतराग तौ हैं परन्तु तिनतें उपदेश सम्भवै नाहीं, यातें परम हितोपदेशक नाहीं, तातें आप्तपणा अर्हंतजिनही कै बनै है, सोही सत्यार्थवादी है। जातें सर्वज्ञ आप्तविना छद्मस्थ अन्यवादी एकांती अपनी इच्छातें अनेक प्रकार मिथ्या कल्पना करि वस्तूका अन्यथा स्वरूप कहै हैं। तिनका मत प्रत्यक्षादि प्रमाण करि बाधित है। केई तो जीवतत्वका अभाव ही कहै हैं। केई जीवकों ज्ञानादिक गुणतैं भिन्न निर्गुण मानै हैं। केई जीवकूं कर्मकी उपाधि रहित सर्वथा शुद्ध ही मानै हैं। इत्यादि एकांत अभिप्रायतैं वस्तु अनन्तधर्मनि सहित ताकूं नाहीं जानै हैं। अर जो जीवका सर्वथा अभाव ही होय तौ मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हूं, मैं ज्ञाता हूं, मैं या करि या करूंगा, ऐसा विकल्प अचेतन देहकै नाहीं होय। जे बुद्धिपूर्वक क्रिया देखिए है ते समस्त ज्ञानस्वरूप आत्माकी है। इंद्रियनिका विषय आत्माविना कौन ग्रहण करै? भिन्न भिन्न कौन जानैं?

तातैं आत्माका सद्भाव प्रकट है, सो बालगोपालादिक समस्तके अनुभवमें आवै है। अर कोई जीवका अस्तित्व मानै हैं परंतु ज्ञान अर आत्माका अस्तित्व सर्वथा भिन्न मानैं हैं सो आत्माविना ज्ञानका अस्तित्व कैसैं सधैगा? अर ज्ञान विना आत्माका स्वभाव कैसैं सधैगा? तातैं जीवकै अर ज्ञानकै गुणगुणीभावकरि तो भिन्नपणा है, जैसे अग्निकै अर उष्णताकै है। अर वस्तुत्वकरि अभेद है, प्रदेशभेद है नाहीं। अर जो गुण अर गुणी सर्वथा प्रदेशनिकरिभी भिन्न होय तो दोऊनिका अभाव होयजाय। बहुरि कोई जीवकूं कर्म-उपाधिरहितही कहैं तौ प्रत्यक्ष केई तो दरिद्री देखिए हैं, केई लक्ष्मीवान्, केई रोगी, केई निरोगी, केई

राजा, केई रंक, केई दुःखी, केई सुखी, केई कुरूप, केई सुरूप, केई पण्डित, केई मूर्ख, केई नीचकुली, केई उच्च कुली, ऐसें नाना रचना प्रत्यक्ष देखिये हैं, ते कैसें बनैं ? पूर्वोपार्जित कर्मकरिही जीवनिके जानीजाय हैं। बहुरि जीवकू सर्वथा शुद्धही कहैं तौ दीक्षा, शिक्षा, व्रत, तप, ध्यानादिक समस्त निष्फल होय जाय। तातैं आप्त जो सर्वज्ञ वीतराग तिनिका कह्या आत्माका स्वरूप ही सत्यार्थ है।

बहुरि एकांती मोक्षका स्वरूप भी अन्यथा कल्पै, तहां केई तो ज्ञान, सुख, दुःखका अभावकूं मोक्ष कल्पै है। केई प्रदीपनिर्वाण कहैं हैं। जैसे दीपक बुझि जाय तदि दिशामैं नहीं जाय न विदिशामैं जाय अभाव होय, तैसैं आत्माका अभावकूं मोक्ष मानैं हैं, सो आप्तका उपदेश विना यथार्थ नाहीं जानै हैं। बहुरि मोक्षके उपाय प्रति भी अन्यथा कल्पना करे हैं। केई चारित्र विना ज्ञान मात्रतैं ही मोक्ष मानै हैं। केई श्रद्धान मात्रतैं ही मोक्ष मानै हैं। केई चारित्र मात्रतैं ही मोक्ष मानैं, केई ज्ञानचारितैं, केई दर्शनज्ञानहीतैं, केई दर्शन, ज्ञान, चारित्र इन तीन्याका अभावतैं ही मोक्ष मानैं हैं। एकांतवादी वस्तुका यथावत् स्वरूपकूं जानैं नाहीं। सो इनका यथावत् स्वरूप सर्वज्ञका प्रकाश्या आगमतैं जानना उचित है।

सो इस प्रथम श्लोकमैं आप्तका लक्षण कह्या तिसकी निर्बाध सिद्धिके अर्थि श्रीविद्यानन्दिस्वामीनैं ८००० श्लोकनिमैं आप्तमीमांसा रची, अर ३००० श्लोकनिमैं आप्तपरीक्षा रची सो तिनमैं आप्तका स्वरूपकों निर्णय करि परीक्षा प्रधानी ज्ञानीजननिका हृदयमैं आप्तका निर्णय कराय महान् उद्योत कीया है। अब मिथ्यावादीनि करि कह्या जो ज्ञानमात्रतैं ही मोक्ष होना तथा क्रियाकांडतैं ही मोक्ष होना इत्यादि एकांत पक्षका निराकरणके अर्थि भगवान् अरहन्त करि कह्या जो मोक्षका उपाय ताहि प्रगट करनेकूं सूत्र कहैं हैं—

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥ १ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ए तीन्यूं मिले हुए मोक्षमार्ग हैं। मोक्षकी प्राप्तिका उपाय है। इस सूत्र विषें सम्यक् शब्द प्रशंसावाची है सो प्रत्येककै लगावना। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान

सम्यक्चारित्र ए तीन मिले हुए मोक्षमार्ग कह्या सो इहां मार्गशब्दके एकवचन कहनेतैं तीननिका तीन माग नाहीं है, तीननिका मिल्या हुवा मोक्षमार्ग एक है ऐसा अर्थ जनावनेकूं एकवचन कह्या है। जो पदार्थनिका याथात्मस्वरूपका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। अर जिस जिस प्रकारकरि जीवादिक पदार्थ अवस्थित हैं तिस तिस प्रकारकरि नयप्रमाणपूर्वक जाणैं अर संशय विपर्यय अनध्यवसाय इत्यादि दोषरहित जाणैं सो सम्यग्ज्ञान है। पंचप्रकार संसारका कारण जे मिथ्यात्व कषायादिक तिनका अभाव करनेविषैं उद्यमी जो सम्यग्ज्ञानी ताकै कर्मकै ग्रहण होनेकूं कारण जे क्रिया तिनका त्याग सो सम्यक्चारित्र है। जातैं संसारीनिका समस्त आचरण कर्मबन्धकूं कारण है। अर जिस आचरणतैं नवीन कर्मका आस्रव रुकि जाय सो ही सम्यक्चारित्र है। अज्ञानपूर्वक आचरणका निषेधकै अर्थि चारित्रकै सम्यक् विशेषण कह्या है।

कोऊ कहै ज्ञानका ग्रहण पहली कीया चाहिए, सम्यग्दर्शन जो पदार्थनिका श्रद्धान सो ज्ञानपूवक ही होय है। बहुरि ज्ञानके अक्षर थोरे दर्शनके अक्षर बहुत तातैं हूं अल्प अक्षरवालेकूं पूर्वै कह्या चाहिये। उत्तर—ए दोष नाहीं है। जैसैं मेघपटलकूं दूरि होतैं ही सूर्यका प्रताप अर प्रकाश दोऊ युगपत प्रगट होय हैं, तैसैं दर्शन मोहका उपशमतैं वा क्षयोपशमतैं वा क्षयतैं आत्माका सम्यग्दर्शन स्वभाव प्रगट होय तिसही कालविषैं आत्माकै कुमति, कुश्रुति–ज्ञानका अभावरूप मतिज्ञान, श्रुतज्ञान प्रगट होय है। तातैं सम्यग्दर्शनकै अर सम्यग्ज्ञानके कालभेद नाहीं है, युगपत होय हैं। बहुरि ज्ञानकूं अल्पाक्षरकरि प्रधान कह्या तोहू अल्पाक्षरतैं पूज्यपणा प्रधान है अर दर्शन पूज्य है, जातैं सम्यग्दर्शन होतै सन्तै कुज्ञानके सम्यग्ज्ञानपणा प्रगट होय है, तातैं सम्यग्दर्शनके पूज्यपणातैं सम्यग्दर्शनकूं प्रथम कह्या है, अर ज्ञानकूं मध्यमैं कह्या सो सम्यग्ज्ञान पूर्वक ही सम्यक्चारित्र होय है। अर अज्ञानीका चारित्र बन्धका कारण है तातैं चारित्र पीछैं कह्या है। अब आदिमैं कह्या जो सम्यग्दर्शन ताका लक्षण निर्देशके अर्थि सूत्र कहैं हैं—

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं ॥ २ ॥

अर्थ—तत्त्वार्थनिका जो श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। तत्त्व शब्द सर्वादिकनिमैं भाव सामान्यवाची

है, तातैं जो पदार्थ जैसैं अवस्थित है तैसैं ताका होना सो तत्त्व है। अर जाकूं "अर्थते" कहिए निश्चय करिए सो अर्थ है। तत्त्वरूप जो निश्चय सो तत्त्वार्थ है। भावार्थ—जो अर्थ जिस स्वभावकरि अवस्थित है ताका तिस स्वभावकरिकैं ग्रहण होना निश्चय होना सो तत्त्वार्थ है। तत्त्वार्थनिका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। सो सम्यक्त्व दोय प्रकार है—एक सराग सम्यक्त्व, एक वीतराग सम्यक्त्व। तहां प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य है लक्षण जाका ऐसा सराग सम्यक्त्व है। तहां रागादिकनकी उत्कटताका अभाव सो प्रशम है। इहां उत्कटताका 'अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी' अर्थ है। संसार देह भोगनतैं भयभीतता सो संवेग है। सर्व प्राणीनिविषैं मैत्रीभाव सो अनुकम्पा है। जीवादिक पदार्थ यथायोग्य अपने स्वभावकरि जैसैं आगमविषैं अस्तिरूप हैं तैसैं अंगीकार करना सो आस्तिक्य है। अर केवल निजात्मस्वरूपकी विशुद्धता सो वीतराग सम्यक्त्व है। आगैं कहै हैं जो जीवादिक पदार्थनिका सम्यक् श्रद्धानतैं सम्यग्दर्शन कैसैं उपजै है इस हेतुतैं सूत्र कहैं हैं—

तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥ ३ ॥

अर्थ—जो सम्यग्दर्शन स्वभावतैं ही उपजै अर अन्यके उपदेशकी अपेक्षा नाहीं करै सो तो निसर्गज सम्यक्त्व है। अर जो परके उपदेशतैं भया जो अर्थज्ञान, तातैं उपजै सो अधिगमज है। ऐसैं सम्यक्त्व दोय प्रकार है। इहां कोऊ कहै निसर्गज सम्यग्दर्शनविषैं पदार्थनिका ज्ञान है कि नाहीं? जो ज्ञान है तदि तो अधिगमज ही भया कछु भेद नाहीं रह्या। अर जो पदार्थनिका ज्ञान नाहीं है तो पदार्थनिकूं जाने विना कैसैं श्रद्धान होय? तिसकूं उत्तर कहैं हैं—सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिविषै अन्तरंग हेतु जो दर्शन मोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशम सो तो दोऊ ही सम्यक्त्वमैं समान है। ताकूं होतैं जो बाह्य परके उपदेशका निमित्त विना होय ताकूं निसर्गज कहिए।

बहुरि परोपदेशपूर्वक होय सो अधिगमज है। जैसैं पूर्वकृतकर्मका उदयके निमित्ततैं सिंहमैं क्रूरता, शार्दूलमैं शूरवीरता, स्यालमैं कायरता, सर्पमैं दुष्टता स्वभावहीतैं है, किसीका उपदेशतैं नाहीं, तातैं

नैसर्गिकी कहिए है, तैसैं दर्शन मोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशमतैं ही स्वपर तत्त्वका श्रद्धान होय सो निसर्गज सम्यग्दर्शन है अथवा जैसैं देवकुरु, उत्तरकुरु, भोगभूमिविषैं बाह्य पुरुषका उद्यमादि प्रयत्न विना ही सुवर्ण उत्पन्न होय है, तैसैं बाह्य उपदेशादिक विना ही जीवादिकनिका श्रद्धान होय सो निसर्गज है। अर जैसैं सुवर्ण पाषाण है सो सुवर्ण निकाशनेका विधि उपायका जाननेवाला पुरुषका प्रयोगतैं सुवर्णरूप होय सो तैसैं अधिगमज है। इहां सूत्रमैं तत् शब्द कह्या है सो पूर्व सूत्रविषैं कह्या जो सम्यग्दर्शन ताका ग्रहण करनेके अर्थि है। अब तत्त्व कहा है? इस हेतुतैं सूत्र कहै हैं—

जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वं ॥ ४ ॥

अर्थ—जीव अजीव आस्रव बन्ध संवर निर्जरा मोक्ष ए सप्त तत्त्व हैं। कोउ कहै तत्त्व एक ही कहना युक्त है एकहीके अनेक भेद हैं सप्त कहना युक्त नाहीं, ताकूं उत्तर कहैं हैं—यद्यपि तत्त्व सामान्य अनन्तपर्याय रूप एक ही है। तथापि जीव अजीव ऐसे दोय हैं इनतैं बाह्य कोऊ नाहीं तातैं दोय ही हैं। अथवा शब्द अर्थ ज्ञान ऐसे तीन भेदकै बाह्य कोऊ नाहीं ऐसैं संख्यात असंख्यात अनन्त है॥ परन्तु शिष्यका अभिप्रायके वशतैं तत्त्वकी निरूपणा है तातैं अतिसंक्षेप ही कहैं तो बड़े बुद्धिमानहीकै समझिमैं आवै अर अतिविस्ताररूप कहैं तो बहुत कालमैं भी ग्रहण नहीं होय तातैं मध्यम क्रमकरि सात ही कहै। जातैं इस मोक्षशास्त्रविषैं मोक्षका प्रकरण है तातैं मोक्ष तो अवश्य कह्या चाहिए। अर सो मोक्ष कोनकै होय? जीवकै होय, तातैं जीव ग्रहण कीया। अर जीवके मोक्ष होय सो पूर्वैं जो जीव कहूं बन्धतैं बन्धनै प्राप्त भया होय ताहीकै छूटना मुक्त होना सम्भवै सो जीव अर अजीव दोऊनिके परस्पर मिलनेतैं होय है तातैं अजीव ग्रहण किया। संसारका प्रधानकारण आस्रव, बन्ध हैं तातैं आस्रव, बन्ध ग्रहण कीए। अर मोक्षका प्रधानकारण संवर निर्जरा है तातैं संवर निर्जराकूं ग्रहण कीए ऐसैं सामान्यमैं गर्भित ये तोऊ प्रधान जाणि तत्त्व सप्त कहे।

चेतनालक्षण जीव है। अर चेतनागुण जिनमें नाहीं ऐसे पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल ए पांच

अजीव तत्त्व हैं। शुभ अशुभ कर्मनिके आगमनका द्वाररूप आस्रव है। आत्मा अर कर्म इन दोऊनिके प्रदेशनिका परस्पर प्रवेश करना सो बन्ध है। आस्रवद्वारनिका रुकना निरोध होना सो संवर है। एकदेश कर्मका क्षय होना सो निर्जरा है। समस्त कर्मनिका वियोग होना सो मोक्ष है। इनका विशेष वर्णन आगें करसी। अब ए कहे जे सम्यग्दर्शनादिक तथा जीवाजीवादिक तिनका संव्यवहारविशेषमैं जो व्यभिचार तिसके दूरि करनेकूं सूत्र कहे हैं—

नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥ ५ ॥

अर्थ—जीवादि पदार्थनिका तथा सम्यग्दर्शनादिकनिका नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव इन चारनिकरि न्यास कहिये निक्षेप है। इहां नामशब्दकी दोय तरह निरुक्ति करिये हैं। "नीयते अर्थो अनेन इति नाम" नीयते कहिए सन्मुख करिये है अर्थ जाकरि सो नाम है। अथवा अर्थकूं प्राप्त होइए जाकरि सो नाम है। अथवा नयति कहिये अर्थकूं सन्मुख करै सो नाम है। जिसकूं सुणतैंही उसका अर्थ सन्मुख हो जाय सो नाम है। गुण जाति द्रव्य क्रिया रहित वस्तुमैं अपना पुरुषार्थकरि अन्यकी अपेक्षारहित वस्तुका अपनी इच्छातैं ही संज्ञा करना सो नाम निक्षेप है। कोऊ कारणकी अपेक्षातैं होई सो नामनिक्षेप नाहीं कहावै है। जिस वस्तुमैं नाम, रूप, गुण, जाति, द्रव्य, क्रिया तो नहीं होय अर लोकमैं प्रवृत्तिकै अर्थि अपनी इच्छातैं संज्ञा करना सो नामनिक्षेप है।

जैसैं किसी पुरुषका नाम इंद्रराज है। तहां इंद्रकी गुण, जाति, क्रिया एकहू नाहीं पावै अर माता पिता इंद्रराज नाम धारि दीया तहां नाम निक्षेप कहिये। अथवा किसीकूं चतुर्भुज वा धनपाल तथा देवदत्त, जिनदत्त, हाथीसिंह इत्यादिक नाम गुण, जाति, द्रव्य, क्रिया विनाही लोक कहै हैं सो नामनिक्षेप है। अर धवलगुणके धारककूं धवल कहिए तहां गुणद्वारै नाम है। मनुष्य, देव, गौ, अश्व, हस्ती इत्यादि जातिद्वारै नाम हैं। कुण्डल पहरे होय ताकू कुण्डली कहिए, दण्ड लिये होय ताकूं दण्डी कहिये, धनाढ्यकूं धनी कहिये ए द्रव्यद्वारैं नाम हैं। अर पूजन करतेकूं पूजक कहिये, नृत्य करतेकूं नर्त्तक कहिए

ऐसैं क्रियाद्वारै नाम हैं, इनकूं नामनिक्षेप नाहीं कहिए। बहुरि काष्ठ, पाषाण, माटी चित्रकर्मादिविषैं तथा सतरंजके रोणानिमैं हस्ती घोटकादिक तदाकार, वा अतदाकारमैं सो यो है ऐसे स्थापन करना सो स्थापना है। जैसैं पाषाणादिकनिका तदाकार प्रतिबिंब वा अक्षतपुष्पादिक अतदाकारनिविषैं यह जिनेंद्र है चन्द्रप्रभ है तथा इंद्र है ऐसा स्थापन करना, तथा यो जीव है वा सम्यग्दर्शन है वा ज्ञान है ऐसैं स्थापन करना सो स्थापना निक्षेप है।

इहां कोऊ कहै की नाम अर स्थापना तो एकही भया जैसैं नामकै अनुकूल गुणरहितका नाम करना सो नामनिक्षेप है। तैसैं ही काष्ठपाषाणादिकनिका तदाकार अतदाकारमैं यो इंद्र है ऐसा नाम करना सोही स्थापना है। नाम नाहीं किया तिस विषै स्थापनाभी नाहीं होय है, तातैं नाम अर स्थापना एकही है भिन्न नाहीं। तिसकूं कहै हैं—नाममैं अर स्थापनामैं अत्यन्त भेद है। किसीका नाम इंद्र कह्या वा जिन कह्या तिसमें इंद्रपणाका वा जिनपणाका आदर नाहीं अर अनुग्रहकी वांछा नाहीं। अर धातुपाषाणादिक-निमैं स्थापना किया तिसकूं साक्षात् इंद्र ही मानै हैं तथा जिन ही मानै हैं। जिनेन्द्रका प्रतिबिंबकी स्थापनातै अपना उपकार होना वांछै हैं। स्थापनानिक्षेपमैं तो साक्षात् वेही हैं ऐसा मानैं, कछु भेद नाहीं मानैं, स्तवन करैं पूजा करैं ध्यान करैं अर नामतैं अन्य प्रयोजन नाहीं, केवल व्यवहारकै अर्थि नाम धर्या है। ऋषभ ऐसा नाम किसीका होय तहां कछु पूजादिक नाहीं। अर स्थापना होय ताकूं साक्षात् पापका क्षय करनेवाला ऋषभजिनेन्द्र मानि पूजा, स्तवन, ध्यान करैं ऐसा भेद है।

बहुरि जिसकी स्थापना करनी होय तिसका आकारादिरूप स्थापना सो तदाकार स्थापना है। याकूं सद्भावस्थापना कहिये हैं। अर आकारादिरहित स्थापना सो अतदाकार स्थापना है। याकूं असद्भाव स्थापना कहिये हैं। कोऊ कहै इस पंचमकालमैं अरहन्तपरमेष्ठीका अतदाकार स्थापन करना कि नाहीं करना। ताका उत्तर—इस कालमैं अन्यमतका देवनिकी अनेक प्रकार अनेक विपरीत रूप स्थापना होय-गई जिनकै शस्त्रादिक ग्रहण अर वक्रता अर तीव्ररागनै लीयां ऐसी विपरीत, परिणामनिकूं विकार करने-

वाली स्थापना है अर अब कोई अतदाकार स्थापनाकूं आगममैं कही जाणि चण्डिकादिक देवी, तथा लिंगादिरूप शिव भैरवादिक, तथा पत्थर मांटी इत्यादिकनिमैं स्थापना करि कहै हमारैं एही अरहन्त हैं ऐसे जानि अरहन्त मानि पूजन ध्यान करने लागी जाय तौ धर्मव्यभिचार होइ जाय, मार्ग भ्रष्ट होइ जाय तातैं ज्ञानी जन इस कालमैं तदाकारस्थापनाहीका अधिकार किया है।

बहुरि कोऊ कहै जो अरहंत प्रतिमा किस अर्थ पूजिए हैं तथा अरहंत भगवान् तो मोक्ष गए तहां सिद्धस्थानमैं हैं धातुपाषाणका प्रतिबिंबमैं आवै नाहीं वा पूजा चाहैं नाहीं, वा किसीका उपकार अपकार करैं नाहीं, पूजन स्तवन अभिषेक करैं तामैं राग करै नाहीं फिर किस वास्ते पूजिये हैं? ताका उत्तर— आरम्भी गृहस्थ है ताका मन शुद्धात्मस्वरूपकी अवलम्बनमैं तो प्रवर्त्तै नाहीं अर निरालम्ब चित्त ठहरै नाहीं तब आपकै परमात्मभावका अवलम्बनके अर्थि वीतरागतासूं परिणाम जोड़नेके अर्थि प्रतिमाकूं साक्षात् अरहंतस्वरूप ही संकल्प करि ध्यान, स्तवन, पूजन करै है। तिस अरहंतके स्वरूपमैं अपने परिणाम जुड़नेतैं उस अवसरमैं सांसारिक समस्त संकल्प रुकि, परमात्माका अनुभवन होय है। तिस परमात्म-स्वरूपमैं एकाग्रता होनेकरि सुखमैं ज्ञानमैं सम्पदामैं विघ्न करनेवाला अन्तरायकर्ममैं अनुभाग जो रस सो सूकि जाय है, वा वीतरागभावके प्रसादतैं असातावेदनीयकूं आदि लेय समस्त अशुभप्रकृति जे पूर्वै बन्धी हुई सत्तामैं तिष्ठै थीं तिनका रस नष्ट होजाय है। अर जे पूर्वलो बांधी पुण्यप्रकृति तिनमैं रस वधि (ढ़ि) जाय है। अर मन्दकषायके प्रभावतैं शुभ आयुकर्म विना समस्त कर्मप्रकृतिनकी स्थिति घटि जाय है।

सो सिद्धांतमैं भगवानका हुकम प्रसिद्ध है जो मन्दकषायके प्रभावतैं पूर्वै बांधे हुए शुभकर्मनिमैं रस वधि (ढि) जाय है। अर अशुभकर्मनिमैं रस सूकि जाय घटि जाय है, अर स्थिति तीन आयु विना समस्त कर्म प्रकृतिनिका घटि जाय है। अर तीव्र कषायके प्रभावतैं कर्मकी समस्त पाप प्रकृतिनमैं रस वढि जाय अर पुण्य प्रकृतिनमैं रस घटि जाय है अर तीन आयु विना समस्त कर्मनिकी स्थिति वधि जाय है। तातैं भगवान् अरहन्तका गुणनिमैं अनुराग लीनता सो ही अरहन्त भक्ति, तिसके प्रभावतैं

दुःखका कारण पापप्रकृतिनिमैं रस रुकि जाय तदि समस्त दुःख विनशि जाय हैं, अर सुखके कारण पुण्यप्रकृतिनमें रस बढ़ि जाय तदि स्वर्गादिकनिके सुख तथा राजसम्पदा भोगादिक आपहीतैं प्रगट होइ हैं। यद्यपि भगवान् अरहंत धातुपाषाणके प्रतिबिंबमैं आवैं नाहीं अर किसीका उपकार अपकार भी भगवान् वीतराग करैं नाहीं तथापि उनका नाम तथा प्रतिबिंब अपने शुभ परिणाम वीतरागरूप ध्यान होनेकूं बाह्यनिमित्त है। जातैं रागरूप स्त्रीपुरुषनिके अचेतन चित्रामादिक देखनेतैं जैसें राग प्रकट होय है तैसैं वीतराग प्रतिबिंब देखनेतैं वीतरागता प्रकट होय है।

तथा इस संसारमैं रागद्वेष जीवनिकै होय है सो समस्त ही केवल अचेतन जे सुवर्ण, रूपा, मणि, माणिक्य, महल, वन, बाग, नगर, ग्राम, पाषाण, कर्दम, श्मशान, वा मनुष्य तिर्यंचनिके देह तथा वचन, राग, रुदन, दुर्गंध, सुगन्ध, रस, विरस इत्यादिक समस्त अचेतन पुद्गल द्रव्यनिके चितवन, श्रवण, अवलोकन, अनुभवतैं ही होय है। ए समस्त अचेतन आत्माकैं रागद्वेष उपजानेकूं सहकारी कारण है तैसें जिनेन्द्रकी परम शांत मुद्रा ज्ञानीनिकैं वीतराग होनेकूं सहकारी कारण है, प्रेरक नाहीं। अर वीतरागतातैं अन्य चाहना भव्यनिकै है नाहीं।

बहुरि जो जिनेंद्रकै अग्रस्थानविषैं जल चंदनादिक जे अष्टद्रव्य उतारणकरि चढाइए हैं सो कछु भगवान भक्षण करैं वा वासना लेवैं ऐसा अभिप्राय नाहीं है। याका ऐसा भाव है—जैसें बडे मंडलेश्वर-राजाका समागम होय तदि उनके उपरि सुवर्ण, रत्न, मोती, वारफेर करि क्षेप दीजिये वा आरती उतारिए है, पुष्प अक्षतादिक उतारण करि क्षेपिए सो समस्त आपनी भक्ति है। राजाकैं कछु लेनेका प्रयोजन नाहीं है। तैसैं भव्यजीव भक्तिकरि भरया हुआ त्रैलोक्यनाथ परम मंगलरूप परमेश्वर परमात्मस्वरूप भगवान् अरहंतके प्रतिबिंबकूं देवतांप्रमाण उत्पन्न भया है आनन्द जाकैं ऐसा निकट भव्यजीव भक्तितैं अर्घ उतारण करि अग्रभूमीमैं क्षेपै है और कछु वांछा नाहीं है॥ सो भक्तिका मार्ग अनादिकालतैं चल्या आवै है नवीन नाहीं भया है। अर जे समस्त आरम्भ परिग्रहादिकनिकै त्यागी होय

नीज आत्मिक परमात्मके रसमैं लीन हैं तिनकै दर्शनपूजनादिकमैं प्रधानता नाहीं है ते परमात्मरूपतैं आराध्यआराधकरूप भेदबुद्धि छांडि परमात्मस्वरूप आत्मानुभवमैं लीन भए तिष्ठे हैं ऐसैं स्थापना-निक्षेपमै प्रकरण पाय कथन किया ॥

अब द्रव्यनिक्षेपका स्वरूप कहिए हैं। जो अनागत परिणामप्रति सन्मुखपणा सो द्रव्यनिक्षेप है जैसे इंद्र बनावनैके अर्थि ल्याया जो पाषाण ताकैं इंद्रकी प्रतिमाकी पर्यायप्रति सन्मुखपणा है तातैं तिस पाषाणकू इंद्र कहिए हैं। तथा देवपर्यायकै सन्मुख जीवकूं देवद्रव्य जीव कहिए हैं। तथा सम्यग्दर्शनादि परिणति सन्मुख भया ताकूं द्रव्यसम्यग्दर्शन कहिए।

सो द्रव्यनिक्षेप दोय प्रकार है। एक–आगमद्रव्यनिक्षेप, एक–नोआगमद्रव्यनिक्षेप। तहां कोऊ पुरुष जिसका निक्षेप करना होय तिस वस्तुके कथनका आगम जो शास्त्र ताका जाननेवाला होय परन्तु जिस अवसरमें उस शास्त्रका चिंतनादिमैं उपयोगरहित होय तिसकूं आगमद्रव्यनिक्षेप कहिए। जैसैं कोऊ पुरुष सम्यग्दर्शनके कथनका तथा सामायिकके कथनका वा जीवद्रव्यके कथनका शास्त्रकूं जानता होय अर जिस कालमैं उस कथनका शास्त्रके चिंतवनादि व्यापारकरि रहित हुवा अन्यव्यवहारमैं युक्त होरह्या होय तिस कालमैं उस पुरुषकूं आगमद्रव्यसम्यग्दर्शन कहिए वा आगमद्रव्यसामायिक वा आगम-द्रव्यजीव कहिए ऐसैं आगमद्रव्यनिक्षेप कह्या।

अब नोआगमद्रव्यनिक्षेप तीन प्रकार है–ज्ञायकशरीर १, भावी २, तद्व्यतिरिक्त ३। तिनमैं ज्ञायकशरीरहू तीन भेद रूप है–भूत १, भावी २, वर्त्तमान ३। तहां ज्ञाताका शरीर पूर्वपर्यायमैं था तिसकूं छांडि आया सो भूतज्ञायकशरीर है। अर जिस शरीरतैं सम्यग्दर्शनादिकका आगमकूं जानै है सो वर्त्तमान ज्ञायकशरीर है। बहुरि जिस शरीरकूं आगैं धारण करैगा सो भावीज्ञायकशरीर है। तहां भूतज्ञायक शरीरका भी तीन भेद है। च्युत १, च्यावित २, त्यक्त ३। जो शरीर अपनी आयुका अन्त होतैं अपने परिपाकतैं छूट्या सो च्युत है। अर जो कदलीका घात ज्यों विषभक्षण करि वा मारण ताडन

त्रासनादिक वेदनाकरि तथा रुधिरका शरीरतैं निकशनैंकरि तथा भयकरि तथा शस्त्रादिकनिका घातकरि तथा संक्लेश होनेकरि तथा उच्छ्वासके रुकनेकरि तथा आहारका निरोधकरि जाका आयुकर्मके निषेक एकठे छूटनेतैं जो मरण भया सो च्यावित है। अर जो संन्यास धारणकरि दर्शन ज्ञान चारित्र तप आराधनाकूं आराधि त्यागव्रतसंयमसहित शरीरकूं त्याग्या सो त्यक्त है। ऐसैं ज्ञायकशरीरका स्वरूप कह्या।

अब नोआगमद्रव्यका दूजा भेद जो भावी सो ऐसा है-जो सम्यग्दर्शनादिकका आगमका जाननेवाला शरीर आगैं होइगा सो भावीनोआगमद्रव्य निक्षेप है। अब तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यनिक्षेपके दोय भेद हैं-एक कर्म, दूजा नोकर्म। तिनमैं दर्शनमोहका उपशम क्षय क्षयोपशमरूप जो दर्शनमोहके द्रव्यरूप कर्मवर्गणा सो नोआगमद्रव्यसम्यग्दर्शनका कर्मनाम भेद है। तथा सामायिक उपरि लगावैं तो चारित्रमोहका मन्द अनुभागरूप द्रव्यकर्म सो सामायिकका कर्म नाम भेद है। तथा जीवमैं लगावैं तो ज्ञानावरणके मन्द अनुभागरूप परमाणू तिनकूं तद्व्यतिरिक्तका भेद जो कर्म ताकूं नोआगमद्रव्यकर्म कह्या। बहुरि जो सम्यग्दर्शनादि होनेके बाह्य उपदेशादिक तथा समता होनेके कारण बाह्य द्रव्य ते तद्व्यतिरिक्तका नोकर्मनाम भेद है। ऐसैं द्रव्यनिक्षेप कह्या।

बहुरि भावनिक्षेपके दोय भेद हैं-एक आगमभावनिक्षेप, दूजा नोआगमभावनिक्षेप। तहां जिस वस्तुका निक्षेपकरिए तिसके कथनका शास्त्रकूं जाननेवाला पुरुषका उपयोग जिस काल उसमैं लगि रह्या होय तिस पुरुषकूं आगमभावनिक्षेप कहिए। बहुरि जिस वस्तुका निक्षेप करिए तिस पर्यायरूप तिस कालमैं वर्त्तमान होय सो नोआगमभावनिक्षेप है। ऐसैं चार निक्षेप कहे। इहां प्रयोजन ऐसा जो लोकव्यवहारमें केई नामहीकूं भाव समझि जांय तथा नामस्थापनाकूं भावादिक जानैं ताके व्यभिचार दूरिकरि यथार्थ समझावनेके अर्थि यह निक्षेपविधि है। तहां द्रव्यार्थिकनयतैं तो नाम, स्थापना, द्रव्य ए तीन निक्षेप हैं। अर पर्यायार्थिकनयकरि भावनिक्षेप है। अब नामादिककरि विस्तारे जे जीवादिक तिनका स्वरूप काहेतैं होय यातैं सूत्र कहै हैं-

प्रमाणनयरधिगमः ॥ ६ ॥

अर्थ—प्रमाणकरि अर नयकरिके जीवादिक पदार्थनिका ज्ञान होय है। जीवादिकके यथार्थस्वरूपका ज्ञान प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणकरि तथा द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयकरि होय है। तहां प्रमाण दोय हैं-एक स्वार्थप्रमाण, एक परार्थप्रमाण। तहां स्वार्थप्रमाण तो ज्ञान स्वरूप है। अर परार्थप्रमाण वचनरूप है। तिनमैं च्यार ज्ञान तो स्वार्थप्रमाण हैं। अर श्रुतप्रमाण है सो ज्ञानरूप भी है, वचनरूप भी है तातैं स्वार्थ परार्थ दोऊ रूप हैं।

बहुरि श्रुतप्रमाणके विकल्प हैं भेद हैं ते नय हैं। जे नय हैं ते प्रमाणकी सापेक्षा रूप हैं। इहां नित्य अनित्यादिक अनेक धर्मनिसहित वस्तु प्रमाणके विषयके भावकू प्राप्त होइ हैं। बहुरि काहु एक धर्मकी मुख्यता लेय अविरोध साध्य पदार्थनिकूं जाकरि जानिये सो नय है। पदार्थका एक धर्म है सो नयका विषय है सो ही कह्या है "सकलदेश प्रमाणाधीन है" "विकलदेश नयाधीन" है। नय है सो श्रुतप्रमाणका विकल्प है अंश है। मति, अवधि, अर मनःपर्यय ज्ञानका विकल्प नय नाहीं है। जातैं वचनके निमित्ततैं उपज्या जो श्रुतज्ञान ताके ही ये विशेष संभवै हैं।

बहुरि जो अधिगम है सो ज्ञानात्मक तथा शब्दात्मक भेदकरि दोय प्रकार है। तहां एकवस्तुविषैं अविरोधकरि विधिनिषेधतैं सप्तभङ्ग होय हैं। स्यादस्ति १, स्यान्नास्ति २, स्यादस्तिनास्ति ३, स्यादवक्तव्य ४, स्यादस्त्यवक्तव्य ५, स्यान्नास्त्यवक्तव्य ६, स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्य ७, ऐसैं सप्त हैं। तहां वस्तु है सो स्वचतुष्टयकरि अस्तिस्वरूप भी है। जैसैं घट है सो अपने अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकरि अस्तिस्वरूप ही है। तहां गुणपर्यायनिका समुदायरूप सो तो द्रव्य है। बहुरि द्रव्यकी संकोचविस्ताररूप अवगाहना है सो क्षेत्र है। अर उत्पत्तितैं लगाय नाशपर्यंत ताका काल है। अर जो गुणपर्यायनिकी अवस्था सो भाव है। ऐसैं अपने स्वरूपचतुष्टयकरि अस्तिस्वरूप है। यह प्रथम भग है।

बहुरि जो वस्तु है सो परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभावकरि नास्तिरूप ही है। जैसैं घट है सो

पटादिक परद्रव्यनिका चतुष्टयकरि नास्तिरूप ही है। जातैं अपने स्वरूपका ग्रहण परस्वरूपका त्याग सो ही वस्तुकै वस्तुपणा है। जो आपविषै परतैं भिन्न परिणमन नाहीं होइ तो घटपटादि सारा एकरूप हो जाय तातैं परका नास्तिपणा है सो ही अस्तित्व साधै है। ऐसैं दूजा भग है।

बहुरि जो वस्तु है सो अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि अस्तिरूप है, पर द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि नास्तिरूप है। तातैं वस्तु कथञ्चित् अस्तिनास्ति दोऊ रूप है। ऐसैं तीसरा भग है। बहुरि वस्तुविषैं स्वचतुष्टयकरि अस्तिपणा अर परचतुष्टयकरि नास्तिपणा ऐसैं अस्ति नास्ति दोऊ धर्म एक कालमैं हैं, क्रमकरि नाहीं हैं, अर दोऊ धर्म एककालमैं कह्या जाय नाहीं। वचनद्वारै पहले अस्ति कहै वा पहले नास्ति कहै क्रमसौं कह्या जाय है। अर वस्तुमैं अस्ति नास्ति दोऊ धर्म युगपत् हैं तातैं वस्तु है सो कथंचित् अवक्तव्य है। अनेकधर्म युगपत् कहनेवाला ऐसा पदवाक्यका अभाव है। ऐसैं चौथा भंग है।

बहुरि वस्तु है सो स्वचतुष्टयकी अपेक्षा अस्तिरूप है अर युगपत् स्वचतुष्टय परचतुष्टयकी अपेक्षा दोऊ धर्म एककाल कह्या जाय नाहीं यातैं अवक्तव्य है। तातैं स्वचतुष्टय अर युगपत् स्वपरचतुष्टयकी अपेक्षाकरि अस्ति अवक्तव्य है। ऐसा पांचमा भंग है॥ बहुरि वस्तु है सो परचतुष्टयकी अपेक्षा नास्तिरूप है। अर युगपत् स्वपरचतुष्टयकी अपेक्षा अस्ति नास्ति दोऊ धर्म एककालमैं कहे जाय नाहीं यातैं अवक्तव्य है। तातैं परचतुष्टय अर युगपत् स्वपरचतुष्टयकी अपेक्षा नास्तिअवक्तव्य है। ऐसै छठा–भंग है॥ बहुरि वस्तु है सो क्रमकरि स्वपरचतुष्टयकी अपेक्षा अस्तिनास्ति है। अर युगपत् स्वपरचतुष्टयकी अपेक्षा करि अवक्तव्य है। तातैं क्रमकरि अर युगपत् स्वपरचतुष्टयकी अपेक्षा "अस्ति नास्ति अवक्तव्य" है ऐसैं सप्तम भंग है।

ऐसैं विधि निषेधके वशतैं सप्त भंग हैं। इनतैं अन्य नाहीं होइ हैं। इनमैं प्रत्येक भंग तीन, अर द्विसंयोगी भंग तीन, अर त्रिसंयोगी भंग एक है। तहां आदिका तीन भंग तो वक्तव्यका भेद है। अर चौथा अवक्तव्यका एक भङ्ग है। अर अन्तका तीन हैं ते अवक्तव्यका संयोगी भङ्ग है। ऐसैं ए सात प्रकार

वस्तुका धर्म है। इन सप्त भंगनितैं वस्तुका यथार्थ ज्ञान अर वस्तुका अर्थक्रियारूप प्रवृत्तिका निश्चय होय है।

बहुरि इहां 'स्यात्' पद है सो अनेकान्तका उद्योतक कथंचित् अर्थमैं निपात है। एक वस्तुमैं अनेक धर्म कहनेतैं सर्वथा एकांतके अभिप्रायतैं दोष दीखैं तहां 'स्यात् पद सहित कहनेतैं विरोधादि दूषण दीखनेका परिहार होय है। स्यात् नाम कथंचित् का है। कोई प्रकारकी विवक्षाको जनावै है। तातैं अनेकांतके प्रकाशनेकूं स्यात् शब्दका प्रयोग अवश्य चाहिए। जातैं सर्वथा एकांतका निराकरण कथंचित् पदतैं होइ है सो समस्त नय तथा प्रमाणके वाक्यके आदिमैं कहना। इहां भाव ऐसा जो वस्तुका स्वरूप अनेकांतात्मक है तातैं वस्तुके जनानेवालेनिकूं स्यात् शब्द जानिवे योग्य है।

बहुरि इहां कोऊ पूछे अनेकांत ही है ऐसा कहनेमें भी सर्वथा एकांत आवै है तब अनेकांत कैसें रह्या। तहां उत्तर कहै हैं। अनेकांतहू अनेकांतरूप है। कथञ्चित् एकांत कथञ्चित् अनेकांत है। प्रमाणवचनकरि अनेकांत है, नयवचनकरि एकांत है। जातैं एकांत हू दोय प्रकार है-एक सम्यक्एकांत, एक मिथ्याएकांत। तहां हेतुविशेषका सामर्थ्यकी अपेक्षातैं प्रमाणकरि प्ररूपण किया अर्थका एकदेशकूं कहना सो सम्यक् एकांत है। अर एकधर्मका ही निश्चयकरि अन्य समस्त धर्मका निराकरणरूप वचन सो मिथ्याएकांत है। जातैं नयकी अपेक्षात वस्तुकै धर्मका नियम करना सो सम्यक् एकांत है। यद्यपि वस्तुमैं नित्य अनित्यादिक अनेक विरुद्ध धर्म हैं तथापि द्रव्यार्थिक नयतैं तो नित्य ही है अनित्य नाहीं। पर्यायकी अपेक्षा अनित्य ही है नित्य नाहीं है। ऐसैं नयतैं एक धर्मकूं कहना सम्यक् एकांत है। अर नयकी अपेक्षा विना कहना सो मिथ्या एकांत है।

बहुरि अनेकांतहू दोय प्रकार है-एक सम्यक् अनेकांत, एक मिथ्या अनेकांत। तहां एक वस्तुमैं अपना अपना प्रतिपक्षी सहित अनेक धर्मका युक्ति आगमतैं विरोध रहित निरूपण करै सो सम्यक् अनेकान्त है। अर तत् अतत् स्वभावकरि शून्य कल्पना किया सो मिथ्या अनेकान्त है। बहुरि कोऊ कहै अनेकान्त है सो नित्य अनित्यादि दोऊ पक्षकूं कहै है तातैं संशयका कारण है तातैं प्रमाण नाहीं ताकूं

कहै हैं—संशय तौ जहां दोऊ वस्तुनिका निर्णय नहीं होय तहां होय। जैसै कोऊ अन्धकारका अवसरमैं दूरितैं देख्या जो यो स्थाणु है कि पुरुष है ? ऐसैं जो ज्ञान दोऊनिकूं नहीं छांडै सो संशय ज्ञान है। जहां दोऊ पक्षका निश्चय नहीं होय तहां संशय होय है। अनेकांतविषै दोऊ पक्षके विषय निश्चित हैं तातैं संशयका कारण नांहीं।

बहुरि जो दोऊ धर्मनिकै विरोध होइ तदि संशय होय है। जहां नयनतैं दोऊ धर्म कह्या तहां संशय कैसैं होय ? जैसैं एक पुरुषविषै पिता, पुत्र, भ्राता, भागिनेय, मातुल, स्वामी, सेवकादि अनेक धर्म पुत्रपितादिककी अपेक्षातैं विरोधकूं नाहीं प्राप्त होय हैं। पुत्रकी अपेक्षा पिता ही है, पिताकी अपेक्षा पुत्र ही है, भाईकी अपेक्षा भाई है, भाणजाकी अपेक्षा मामा, मामाकी अपेक्षा भाणजा इत्यादिक अनेक धर्म एक ही पुरुषविषै विरोधकूं प्राप्त नाहीं होय है तातैं संशय कैसैं होय। ऐसैं अनेकांतस्वरूप जो जीवादिकतत्त्वार्थनिका ज्ञान सो प्रमाणनयतैं ही होय है। तातैं प्रमाणनयनिका ही अभ्यास करना। जातैं इस कालमैं भी परीक्षामुख, प्रमेयकमलमार्त्तंड, प्रमेयचन्द्रिका, प्रमाणपरीक्षा, प्रमाणनिर्णय, प्रमाणमीमांसा, न्यायकुमुदचंद्रोदय, अष्टसहस्री, आप्तपरीक्षा, श्लोकवार्तिक, राजवार्तिक आदि अनेकग्रन्थ प्रमाणनय समझनेकूं ही हैं। ऐसैं प्रमाणनयकरि जाणे जे जीवादिक, तिनका जाननेका अन्य उपाय दिखावनेकूं सूत्र कहै हैं—

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः ॥ ७ ॥

अर्थ—निर्देश १ स्वामित्व २ साधन ३ अधिकरण ४ स्थिति ५ विधान ६ इनि छह अनुयोगनि करि भी सम्यग्दर्शनादि तथा जीवादि पदार्थनिका अधिगम होय है॥ निर्देश तो स्वरूपका कहना, स्वामित्व कहिए अधिपतिपणा, साधन कहिए उत्पत्तिका कारण, अधिकरण कहिये अधिष्ठान आधार, कालकी मर्यादा सो स्थिति, विधान कहिये प्रकार, ऐसैं ए निर्देशादिक कहे, ते जीवादिक तथा सम्यग्दर्शनादिक जाननेका उपाय हैं। इनिका संक्षेपतैं उदाहरण सम्यग्दर्शन ऊपरि कहै हैं—

तत्त्वार्थका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है यो तो निर्देश है। बहुरि सम्यग्दर्शनका स्वामी जीव है तहां सामान्यकरिकै च्यारों ही गतिके सैनी पंचेन्द्रियजीवकै होइ है। बहुरि सम्यग्दर्शनका साधन कहिए कारण अन्तरङ्ग बहिरङ्ग दोय प्रकार है। अन्तरङ्ग तो दर्शनमोहका उपशम क्षयोपशम क्षय कारण है अर जिनधर्मका श्रवण तथा जातिस्मरण तथा जिनबिंबदर्शन इत्यादिक बहिरङ्ग साधन हैं। इनिका विशेष सर्वार्थसिद्धिटीकातैं जानना।

बहुरि अधिकरण हूं अन्तरंग बाह्य दोय प्रकार है। तहां सम्यग्दर्शनका अन्तरंग आधार तो आत्मा ही है अर बाह्य आधार त्रसनाडीमात्र ही क्षेत्र है। बहुरि सम्यग्दर्शनकी स्थितिमैं उपशम सम्यक्त्वकी स्थिति तो उत्कृष्ट वा जघन्य अन्तर्मुहूर्तमात्र है अर क्षायिकसम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति संसारीजीवकै तेतीससागर अन्तर्मुहूर्तसहित आठवर्ष घाटि दोय कोडिपूर्व अधिक है अर जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त है। अर मुक्तजीवकै सादि अनन्तकाल है। बहुरि क्षयोपशमसम्यक्त्वकी जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त है। अर मुक्तजीवकै सादि अनन्तकाल है। बहुरि क्षयोपशमसम्यक्त्वकी जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टस्थिति छ्यासठि सागर प्रमाण है। ऐसैं स्थिति कही।

बहुरि सम्यग्दर्शन सामान्य एकप्रकार है अर निसर्गज अधिगमज भेदतैं दोय प्रकार है। उपशम क्षयोपशम क्षायिक भेदतैं तीन प्रकार है। ऐसैं इहां संक्षेपतैं कह्या सो यह कथन चौदह गुणस्थान चौदह मार्गणास्थानविषै सविस्तर सर्वार्थसिद्धि आदि विशेषशास्त्रनिमैं कह्या है तहांतैं जानना। तथा ऐसैं ही निर्देशादिक ज्ञानचारित्रविषै तथा जीवादिपदार्थनिविषै आगमके अनुसार लगावना।

इहां निर्देशादिक कहे ते श्रुतप्रमाणके विशेष हैं सो शब्दात्मक तथा ज्ञानात्मक दोऊ ही प्रकार जानना। बहुरि इहां कोऊ अन्यवादी कहैं वस्तुका स्वरूप तो अवक्तव्य है वचनगोचर नाहीं तातैं निर्देश काहेको करिए ताकूं कहिए है—जो तू अवक्तव्य कहै है सो ऐसैं तेरे कहनेतैं ही वक्तव्यपणा आवै है। जैसैं कोऊ कहै मेरै मौनव्रत है ऐसैं कहनेवालेकै मौनव्रत काहेका? तातैं अवक्तव्यका एकांत कहना अयुक्त है।

तथा केई स्वामित्व नाहीं मानै ताकूं कहिए है—जो सम्बन्ध मानिए तो स्वामीपणा क्यों नहीं मानिए। नाहीं मानिये तो सर्व व्यवहारका लोप होजाय। बहुरि साधनकूं नहीं मानैं तो ताकै कछु इष्टतत्त्वका साधन नाहीं सम्भवै।

बहुरि आधाराधेयभाव द्रव्यगुणादिकके प्रसिद्ध ही हैं। बहुरि स्थिति है सो भी प्रमाणसिद्ध है। जो वस्तुकूं सदा क्षणभंगुरही कहै तो पूर्वापर जोडरूप सर्व व्यवहारका लोप होयगा। ऐसैंही विधान जो प्रकार सो प्रमाणसिद्ध है। जो सर्वथा एकप्रकार ही वस्तु मानिये तो प्रत्यक्ष अनेक प्रकार दीखै हैं ताका लोप कैसैं करिए। अर जो प्रत्यक्षकूं हू असत्य मानिए तो शून्यताका प्रसङ्ग आवै, तातैं निर्देशादिकरि जीवादिपदार्थनिका अधिगम करना युक्त है॥ इनि निर्देशादिकनितैं ही जीवादिकनिका अधिगम होय है कि अन्य भी अधिगमका उपाय है ऐसैं पूछे सूत्र कहे हैं—

सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालांतरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥ ८ ॥

अर्थ—सत् १, संख्या २, क्षेत्र ३, स्पर्शन ४, काल ५, अंतर ६, भाव ७, अल्पबहुत्व ८ इनि आठ अनुयोगनकरिके भी जीवादिक पदार्थनिका अधिगम होय है। तहां सत् शब्दका अस्तित्व अर्थ है। संख्या भेदनिकी गिणतिकूं कहिए है। क्षेत्र वर्तमानकालके निवासकूं कहिए है। स्पर्शन कहिए तीन कालमैं विचरनेका क्षेत्र है। बहुरि काल कहिये जिस वस्तुकी अपेक्षा जेता काल—परिणाम है सो कहना। बहुरि अन्तर विरहकालकूं कहिए। जो एक परिणामतैं दूसरे परिणामकूं जाय फेर तिस ही परिणामकूं आवै ताकै बीच जेता काल रहै सो विरहकाल है ताकूं अन्तर कहना। भाव उपशम क्षयोपशमादिक हैं। बहुरि अल्पबहुत्व परस्पर दोषकी अपेक्षाकरि थोरा घनापणाका कहना है। ऐसैं इन आठ अनुयोगनिकरि सम्यग्दर्शनादिक तथा जीवादिक पदार्थनिका अधिगम जानना। सो इनका कथन चौदह मार्गणास्थाननिमैं जैसैं सर्वार्थसिद्धि आदि शास्त्रनविषै विशेष कथन है सो तहातैं जानना तथा आगमतैं अविरोधरूप सर्व वस्तुपै लगावना।

इहां केई अन्यवादी वस्तुका सर्वथा अभाव ही मानै हैं। कहै हैं—यो समस्त जगत् अविद्याकरि भासै है जगत् कछु वस्तु नाहीं है यह सर्व शून्य है अवस्तु है ऐसैं कहै ताकूं कहै हैं—यह शून्यताकूं कहनेवाला जो पुरुष वा आगम सो सत् है कि असत् है? जो सत् है तो शून्य नाहीं ठहर्‍या। जैसे आपकूं सत् मान्या तैसैं परकूं भी सत् कहो अर जो तुम शून्यताका कहनेवाला पुरुष वा आगमकूंहू असत् कहो तो तुमारा असत् वचन काहूके अंगीकार करनेयोग्य नाहीं। ऐसैं शून्यवादी तथा नास्तिकवादीनिके पक्षका निराकरण सत् कहनेतैं किया।

बहुरि केई वस्तुकूं सर्वथा अभेदरूप ही कहै हैं। तिनका निषेध भेदनिकी गणनातैं जानना। बहुरि केई वस्तुके प्रदेश नाहीं मानै हैं तिनका निषेध क्षेत्र कहनेतैं जानना। बहुरि केई वस्तुकूं सर्वथा क्रियारहित मानै हैं तिनका निषेध स्पर्शन कहनेतैं जानना। बहुरि केई वस्तुका कदाचित् सर्वथा प्रलय होना मानै हैं तथा क्षणिकही मानैं हैं तिनका निषेध कालनियम कहनेतैं होय है। तथा केई वस्तुकूं क्षणिक ही मानै हैं तिनका निषेध अन्तरका नियम कहनेतैं होय है। बहुरि केई वस्तुकूं एक ही मानै हैं तथा अनेक ही मानैहैं तिनका निषेध अल्पबहुत्व कहनेतैं होय है॥

इहां ऐसा जानना जो वस्तु है सो अनन्तधर्मात्मक है ताके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा विधिनिषेधतैं प्रमाण नय निक्षेप अनुयोगनिकी विधिकरि साधतैं संतैं यथार्थज्ञान होनेतैं अधिगमसम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होय है। ऐसैं आदिमैं कह्या जो सम्यग्दर्शन, ताका लक्षण उत्पत्ति स्वामी विषय न्याय अर अधिगम जो जानना तिनका उपाय कह्या। अर सम्यग्दर्शनका ही सम्बन्धकरि जीवादिकतत्त्वनिका नामादिकनिका वर्णन किया। अब सम्यग्ज्ञान विचारनेके योग्य है तातैं सम्यग्ज्ञानके भेदनिकूं कहैं हैं—

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानं ॥ ९ ॥

अर्थ—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल ए पांच ज्ञान हैं। इनिका विशेष कथन तो आगे होयगा तथापि कछु इनिका संक्षेप स्वरूप इहां भी लिखिए हैं। तहां जो पञ्च इंद्रिय अर मनकरि जो

पदार्थकूं जानै सो मतिज्ञान है। बहुरि मतिज्ञान करि निश्चय किया जो पदार्थ तिसकूं अवलंबन करि तिसही पदार्थके सम्बन्धकूं लिए जो अन्य कोई पदार्थ तिसकूं जानै सो श्रुतज्ञान है। अथवा इंद्रिय अर मनकरि निश्चयकिया जो यह घट है ऐसैं तो मतिज्ञान भया। बहुरि तिस घटकी जातिके अनेक अनेक देशमैं उपजे, अनेककालमैं उपजे अनेक रूप वर्ण धोला, काला, लाल, पीला अर छोटा, वडा अनेक अवगाहनारूप वा सोनाका, रूपाका, लोहाका, काष्ठका, पाषाणका, चित्रामका, पीतलका, तामाका, इत्यादि अनेक प्रकारके पूर्वैं नहीं देख्या, नहीं श्रवणकिया, नहीं चिंतवनमैं आया ऐसा अपूर्व अनेक प्रकारके घटनिकूं देखते ही जानि जाय जो यह घट है।

ऐसैं एक घट नामा अर्थकूं देखि उसके सदृश विसदृश अनेक घटनिकूं जानै सो श्रुतज्ञान है। अथवा जीव अजीव पदार्थनिकूं इंद्रियनिकरि अर मनकरि ग्रहण किया बहुरि तिनहीकूं सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव, अल्पबहुत्वादि प्रकार करि जाननेमैं समर्थ होय सो श्रुतज्ञान है। अथवा घट ऐसैं दोय अक्षर श्रवणकरिकै कर्ण इन्द्रियद्वारै मतिज्ञानकरि शब्दरूप मात्र ग्रहण करै सो मतिज्ञान है। बहुरि इस घट शब्दके श्रवणतैं वाच्यवाचक सम्बन्धका संकेत करावनेका सामर्थ्यकरि जल भरनेकूं समर्थ ऐसा घटकूं ग्रहण करना सो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है।

बहुरि कोऊ पुरुषका शरीरकै पवनका स्पर्श भया तदि स्पर्शन इंद्रियद्वारै पवनका शीत स्पर्श जान्या सो मतिज्ञान है। फिरि इस पवनका स्पर्शतैं ही ऐसा विचार भया जो यो पवन वायुके रोगीकै रोगवृद्धिका कारण है तथा इस पवनतैं वर्षाका अभाव होयगा वा वर्षा आवेगी अथवा इस जातिके वृक्ष फलेंगे फूलेंगे वा वृक्षनिके फल, फूल नहीं उपजेंगे वा इस पवनतैं लोकनिकै रोगनिकी वृद्धि होयगी वा रोग घटि जायगा। इत्यादिक पवनका स्पर्शतैं ही अनेक व्यक्तिनिका ज्ञान होना सो अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। ऐसैं श्रुतज्ञानावरणका भेद जो इंद्रियानिंद्रियावरणनामा कर्म ताके क्षयोपशमतैं दोयप्रकार श्रुतज्ञान है।

इहां ऐसा जानना जो कर्णइंद्रियविना अन्य इंद्रियनिकै द्वारै अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है सो एकेंद्रियादिक समस्त जीवनिकै प्रवर्त्तै है सो तो प्रमाणके कथनमें ग्राह्य नहीं ताका अधिकार नाहीं। अर जो श्रोत्र इंद्रियद्वारै शब्दश्रवणरूप मतिज्ञानके पीछैं अक्षरके अर्थ जाननेरूप मनके द्वारै शास्त्रका ज्ञान होय सो श्रुतज्ञान, प्रमाणमैं प्रधान है। याकरि नामसहित तत्त्वार्थनिका स्वरूप नीकै जान्या जाय है। बहुरि क्षेत्र काल भावकी मर्यादा लिए रूपी पदार्थकूं प्रत्यक्ष जानै सो अवधिज्ञान है।

बहुरि मनुष्यक्षेत्रप्रमाण पैंतालीसलाख योजन घनप्रतरक्षेत्र विषै तिष्ठते जीवनिके मनकेविषै सरल वा वक्ररूप चिंतवन किये जे रूपी अर्थ, तिनकूं अवधिज्ञानके जाननेतैं हू अनन्तभाग सूक्ष्मतानै लिए जानै सो मनःपर्ययज्ञान है। बहुरि सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भावनिकूं प्रत्यक्ष जाण सो केवलज्ञान है। अब कहैहैं जो " प्रमाणनयैरधिगमः " इसमैं प्रमाणनयनिकरि अधिगम होना कह्या, तिनमैं कितनेक मतवाले इंद्रिय अर पदार्थका जोडरूप संनिकर्षकूं प्रमाण कहै हैं, केई ज्ञानकूं प्रमाण कहैहैं इस हेतुतैं अधिकारमैं आए जे मत्यादिक ज्ञान तिनहींकै प्रमाणपणाकी प्रकटताके अर्थि सूत्र कहै हैं—

तत्प्रमाणे ॥ १० ॥

अर्थ—तत् कहिए जो मत्यादिक ज्ञान कहे तेही प्रमाण हैं अन्य नाहीं हैं। इहां ऐसा-जे केई अन्यवादी संनिकर्षादिकूं प्रमाण कल्पै हैं ते प्रमाण नाहीं हैं। जातैं जो इंद्रिय अर पदार्थनिका स्पर्शनकूं संनिकर्ष कहिए हैं तिनमैं मन इंद्रिय अर नेत्र इंद्रिय इनितैं सन्निकर्ष नाहीं होय है अर जो संनिकर्ष प्रमाण मानिये तो सूक्ष्म पदार्थ अर दूरवर्ती पदार्थ अर अन्तरित जे पूर्वै होगए पदार्थ तिनकूं संनिकर्ष प्रमाण ग्रहण करनेकूं समर्थ नाहीं। जातैं संनिकर्ष तो इंद्रिय पदार्थ भिडै स्पर्शै तदि होय, तदि सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थ प्रमाणका विषय नाहीं ठहरैं तातैं पूर्वै कहे जे मत्यादिक पंचज्ञान तेई प्रमाण हैं। ते प्रमाण प्रत्यक्ष परोक्षकरि दोय प्रकार हैं। अर सामान्यविशेषात्मक वस्तु हैं ते प्रमेय हैं।

बहुरि इन प्रमाणनिके दोय भेदविषै अन्य समस्त भेद गर्भित हैं। बहुरि इस प्रमाणका फल ऐसा

है। अज्ञानका अभाव होना अर हेयविषै त्यागभाव उपादेयविषै प्रवृत्तिभाव तथा रागद्वेषके अभावतैं माध्यस्थभाव होना ते समस्त प्रमाणका फल है॥ बहुरि केई कहैं इंद्रियजनितज्ञानमैं कोऊ प्रकार बाधा हू आवैहै विपरीत भी जाणे है ताकूं प्रमाण कैसैं कहिए? ताका उत्तर—जो सम्यग्ज्ञान है सो प्रमाण है अर मिथ्याज्ञान अप्रमाण है। इहांभी ऐसा जानना—मतिज्ञान अर श्रुतज्ञान अपने विषयनिमैं हू एकदेश प्रमाण हैं। जैसै ऊगता चन्द्रमा पृथ्वीसों लग्या निकटही दीखै तहां चन्द्रमापणाकी अपेक्षा प्रमाण है अर पृथ्वीसों लग्या दीखै सो अप्रमाण है। ऐसैं प्रमाण अप्रमाण दोऊरूप है। अर अवधि, मनःपर्यय दोय ज्ञान हैं ते अपना विषय जेता है तितनामैं प्रमाण हैं। सिवायमैं अप्रमाण हैं। ए च्यारि ज्ञानकर्मके क्षयोपशमतैं हैं। जहां बाधा आवै तहां अप्रमाण हैं, जहां बाधा नाहीं तहां प्रमाण हैं। अर केवलज्ञान निर्बाध ही है, इसके प्रतिपक्षी कर्म नाहीं हैं।

बहुरि कोऊ कहै मतिश्रुतके प्रमाण अप्रमाणका व्यवहार कैसैं प्रवर्तैगा। तहां कहिए है—जाका ज्ञान जिस प्रकरणविषैं निर्बाध होय तहां वाकूं प्रमाण ही कहिए, अन्यवस्तुमैं अप्रमाण भी होइ तो वाकी मुख्यता नहीं करै ऐसैं मुख्य गौणकी अपेक्षा व्यवहार वर्तै है। अर परमार्थतैं समस्त बाधारहित केवलज्ञानी सर्वज्ञ ही जानै है, सर्वथा निर्बाध तो केवलज्ञान है। बहुरि अन्य वादीनिकरि कल्प्या संनिकर्ष तथा इंद्रियते प्रमाण नाहीं हैं। बहुरि सामान्यहीकूं तथा विशेषकूं तथा दोऊनिकूं परस्पर अपेक्षारहित प्रमाणका विषय थापै हैं सो निश्चयतैं सामान्य तौ विशेषविना अर विशेष सामान्यविना कहूं है नाहीं। सो परवादीनिकर कल्पे प्रमाणादिकनिका निराकरण जैनके न्यायग्रन्थमें है। इहां ऐसा-जो प्रमाणका स्वरूप संख्या विषय फल इनका अन्यथावादका निराकरण अर स्याद्वादमतकरि प्रमाणका स्थापन इत्यादि विशेषकथन श्लोकवार्तिक वा परीक्षामुख आदि न्यायग्रन्थनिमैं है तहांतैं जानना॥

इहां सूत्रमें प्रमाणशब्दके द्विवचन कहनेकरि प्रमाण दोयही हैं ऐसैं दोयहीका नियम किया। परंतु दोय कैसैं है? केई तो अनुमान अर उपमानकूं, केई अनुमान अर आगमकूं, केई अनुमान अर प्रत्यक्षकूं,

केई उपमान अर प्रत्यक्षकूं, केई उपमान अर आगमकूं, केई आगम अर प्रत्यक्षकूं, केई प्रत्यक्ष परोक्षकूं प्रमाण कहैं हैं। तातैं मत्यादिकनिकैं विपर्ययका प्रसंग आवै है तिनका कहना बाधासहित है सो प्रमेयकमलमार्त्तंड तथा प्रमेयचन्द्रिकामैं वर्णन किया है। उनके कहे भेद इन दोयहीमैं गर्भित हैं। तातैं निश्चयके अर्थि सूत्र कहै हैं—

आद्ये परोक्षं ॥ ११ ॥

अर्थ—पञ्चज्ञाननिमें आदिके दोय मतिज्ञान अर श्रुतज्ञान ए परोक्षप्रमाण हैं॥ इहां आद्यशब्दकूं द्विवचनकरिकैं कह्या तातैं मति श्रुत दोऊ ग्रहण करनें मति श्रुत दोऊ ज्ञान हैं सो परोक्षप्रमाण हैं। पर कहिए इन्द्रिय अर मन तथा परका उपदेश तथा प्रकाशादिक, परनिमित्तकी सहायताकरि होय तातैं परोक्ष कहिए है। तथा परद्रव्यनिकरि यामैं अन्तर पड़े है अर परकी अपेक्षातैं होय है अर अविशद कहिए अस्पष्ट है यातैं परोक्षप्रमाण है। इनके प्रत्यक्षपणा नाहीं है।

बहुरि स्मृति प्रत्यभिज्ञान तर्क अनुमान ये चारों मतिज्ञानके भेद हैं। तातैं मतिज्ञान अर श्रुतज्ञान ये परोक्षप्रमाण हैं। बहुरि इन विना जो चक्षु आदिक इंद्रियनितैं बहु आदिक विषयनकूं जानिये हैं ते अवग्रहादिरूप मतिज्ञानकूं सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष भी कहिए है। जातैं व्यवहारीलोक इंद्रियज्ञानकूं ही प्रत्यक्ष जानैं हैं। तथापि परमार्थतैं विचारिए तो पराधीनपणातैं परोक्ष ही हैं। अब मति श्रुत विना अन्य तीन ज्ञाननिकै प्रत्यक्षपणा जणावै हैं—

प्रत्यक्षमन्यत् ॥ १२ ॥

अर्थ—अन्यत् कहिए मतिश्रुततैं अन्य–अवधि, मनःपर्यय, केवल ए तीन ज्ञान प्रत्यक्षप्रमाण हैं॥ "अक्ष्णोति" कहिये जाणै सो "अक्ष" कहिए। अक्ष नाम आत्माका है। आत्मा प्रति जाका नियम होय आत्माहीका आश्रयकरि उपजै है अन्यका सहाय नाहीं चाहै। इंद्रिय प्रकाश उपदेशादिककी सहाय विना ही विशेषनिसहित वस्तूका जाननेवाला स्पष्ट ज्ञान सो प्रत्यक्ष प्रमाण है। तहां अवधि अर मनः-

पर्ययज्ञान तो विकलप्रत्यक्ष हैं अर केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥ अब परोक्ष प्रमाणका विशेष जाननेके अर्थि सूत्र कहैं हैं:—

मतिः स्मृतिः संज्ञा चिंताऽभिनिबोध इत्यनर्थांतरं ॥ १३ ॥

अर्थ—मति, स्मृति, संज्ञा, चिंता, अभिनिबोध ए पांच शब्द अनर्थांतर हैं इनिका अन्य अर्थ नाहीं हैं, मतिज्ञानहीके नाम हैं ॥ आदिविषैं कह्या जो मतिज्ञान ताहीके ए पर्याय शब्द कहिए नामांतर हैं। जातैं ए सर्व ही मतिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमकरि उपज्या जो उपयोग ताके विषय हैं। तहां "मननं" कहिए मानना। इंद्रिय अर मनतैं अवग्रहादिरूप साक्षात् जानना सो मति कहिए। बहुरि जो पूर्वैं अनुभवमैं आया था ताकूं सो यह है ऐसा कालांतरमैं यादि आवना सो स्मृति कहिए। जैसैं काहू पुरुषकूं देख्या था सो वर्त्तमानमैं यादि आया जो वह ऐसा है सो स्मृति है।

बहुरि संज्ञा नाम संज्ञाका है ताकूं प्रत्यभिज्ञान भी कहिए। वर्त्तमानकालमैं कोऊ वस्तूकूं देखि पूर्वैं देख्या ताका स्मरण होय पूर्वका अर वर्त्तमानका जोड़रूप ज्ञान सो प्रत्यभिज्ञान है। सो च्यार प्रकार है। एकत्व प्रत्यभिज्ञान १, सादृश्य प्रत्यभिज्ञान २, तद्विलक्षणप्रत्यभिज्ञान ३, तत्प्रतियोगिप्रत्यभिज्ञान ४, तिनिका उदाहरण ऐसा—जैसैं काहू पुरुषकूं देखिकरि जानी यह पहिलें देख्या था सो ही पुरुष है यो एकत्व प्रत्यभिज्ञान है।

बहुरि काहूनैं वनविषैं गवयनामा तिर्यंचकूं देखिकरि जानी, जो यह बलध पहिलें देख्या था तिस सदृश यो गवय है यो सादृश्य प्रत्यभिज्ञान है। बहुरि भैसाकूं देखिकरि जानी, जो पूर्वैं बलध देख्या था तातैं विलक्षण यो भैसो है यो तद्विलक्षणप्रत्यभिज्ञान है। बहुरि काहू वस्तुकूं निकट देखिकरि अन्य काहुकूं ऐसा जान्या, यो यातैं दूरि है ऐसा जानना सो तत्प्रतियोगिप्रत्यभिज्ञान है। इत्यादि प्रत्यभिज्ञानके अनेक भेद परीक्षामुखादि न्यायग्रन्थनिविषै कहे हैं। ते सर्व ही प्रमाण हैं ॥

बहुरि "चिंतनं" चिंता कहिए जहां यह चिन्ह है तहां चिन्ही भी होयगा इत्यादि चिंतवन करना

ताकूं चिंता कहिए याकूं तर्क भी कहिए। व्याप्तिज्ञानकूं तर्क कहिए है। जहां अन्वय व्यतिरेककरि नियम होय सो व्याप्तिज्ञान है। यह याकूं होतैं संतैं होइ यो तो अन्वय, अर नहीं होतैं संतैं नहीं होय ऐसा व्यतिरेक ऐसैं दोऊनितैं व्याप्तिज्ञान होय है। जैसैं अग्निकै होतैं संतैं ही धूम होय अर अग्निका अभाव होतैं धूम नाहीं होय इत्यादि निश्चय करनेका नाम तर्क है सो प्रमाण है॥ अभिनिबोधनं कहिए सन्मुख लिंगादिक देखि लिंगी आदिका निश्चय करै सो अभिनिबोध कहिए इसहीकूं अनुमान कहिये हैं। इहां ऐसा जो साधनतैं साध्य पदार्थका ज्ञान होना याकौं अनुमान भी कहिए। साधन कहिए हेतु तातैं साध्य कहिए साधनेयोग्य वस्तु ताका विज्ञान सो अनुमान प्रमाण है॥

तहां साध्यके तीन विशेषण हैं—शक्य १, अभिप्रेत २, अप्रसिद्ध ३, तहां जो प्रत्यक्षादि प्रमाणकरि अबाधितपणाकरि साधिवेकूं शक्य होय सो ही साध्य होय है। जामैं साधनेकी योग्यता नाहीं सो साध्य नाहीं। जैसैं आकाशका फूल साधनेकूं शक्य नाहीं। बहुरि जो वादीके अभिप्रायमैं होय सोही अभिप्रेत साध्य है। अभिप्रेतविना जगतमैं अनेक वस्तु हैं ते साध्य नाहीं। बहुरि जो पहलैंही सिद्ध होय ताकूं कहा साधैगा? सिद्धका साधन निष्फल है जिसमैं कुछ सन्देहादिक होय सो अप्रसिद्ध है सोही साधनेयोग्य है। ऐसैं साध्यकै सन्मुख जो पूर्वोक्त साधनकरि नियमरूप ज्ञान होय तातैं याकूं अभिनिबोध कहिए, ऐसैं स्मृति आदिक च्यार कहे ते सर्व मतिज्ञान हैं सो परोक्षप्रमाण हैं। बहुरि आगमनामा परोक्षप्रमाण है सो श्रुतज्ञानरूप है। बहुरि इहां अन्यवादी अर्थापत्त्यादिक प्रमाण न्यारा मानैं हैं ते सर्व इस मतिज्ञानमैं अन्तर्भूत होय हैं ऐसा जानना॥ आगैं इस मतिज्ञानका स्वरूपका लाभविषै निमित्त कहा है ऐसा प्रश्न होतैं सूत्र कहैं हैं—

तदिंद्रियानिंद्रियनिमित्तं ॥ १४ ॥

अर्थ—तत् कहिए सो मतिज्ञान इंद्रिय अर अनिंद्रिय है निमित्त कहिए कारण जाको ऐसा है॥ इंद्रिय पांच अनिंद्रिय मन इनिके निमित्ततैं मतिज्ञान होय है। अन्तरङ्ग मतिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयो-

पशम होतैं बाह्य इंद्रियमनके निमित्ततैं मतिज्ञान होय है। जातैं आत्माके मतिज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशमतैं अपने जोग्य पदार्थकूं जाननेकी शक्ति तो प्रकट भई परन्तु बाह्य उपकरणविना जाननेकूं स्वयं समर्थ नाहीं तातैं पदार्थनिके जाननेकूं कारण जे चिन्ह होंय तिनकूं इंद्रिय कहिए। अथवा जो गूढ़ अर्थकूं जनावनेका चिन्ह होय ताकूं लिंग कहिए।

इहां आत्मानामा वस्तु गूढ़ है अदृश्य है ताके अस्तित्व जनावनेका चिन्ह ए इंद्रिय हैं। इंद्रियनिकी प्रवृत्तितैं आत्मा जान्या जाय है। तातैं इन इंद्रियनिकूं लिंग कहिए। अथवा इंद्रनाम संसारी आत्माका है ताका लिंग कहिये जनावनेका चिन्ह सो इंद्रिय है। अथवा इंद्र नाम नामकर्मका है। नामकर्मकरि रची ते इंद्रिय हैं। बहुरि अनिंद्रियनाम मनका है याकूं अन्तःकरणभी कहिए यह अभ्यन्तर इंद्रिय है। यहां कोऊ पूछै–इंद्रिय नाहीं सो अनिंद्रिय होय है। मन अनिंद्रिय कैसैं? ताका समाधान–इंद्रियका अभाव सो अनिन्द्रिय नहीं है इषत् अर्थमैं "नञ्" जानना।

जैसैं काहू कन्याकूं अनुदरा नाम कह्या तो तहां जाकैं उदर नाहीं सो अनुदरा ऐसा अर्थ नहीं लेना। जाकैं ईषत् कहिए किंचित् कृश क्षीण उदर होय ताकू अनुदरा कहिए। तैसे किंचित् इंद्रियकूं अनिंद्रिय कहिए। जातैं अन्य इंद्रियनिकै तो स्थानका अर विषयका नियम है अर मनका कोऊ प्रकट स्थान नाहीं दीसै तथा विषयका नियम नाहीं तातैं अनिंद्रिय कहावै है। अर गुणदोषका विचार स्मरण विषै याकैं इंद्रियनिकी अपेक्षाहू नाहीं है। अर नेत्रादिकनिकी ज्यों मनका आकार बाह्य देखनेमें नाहीं आवै है तातैं अन्तःकरण है। अब तिसही मतिज्ञानके भेद कहनेकूं सूत्र कहैहैं—

अवग्रहेहावायधारणाः ॥ १५ ॥

अर्थ—अवग्रह १, ईहा २, आवाय ३, धारणा ए च्यार मतिज्ञानके भेद हैं॥ तहां रूपादिक विषय अर इंद्रियनिका सम्बन्ध होतैही जो आदिमैं सामान्य सत्तामात्रका ग्रहण होना है सो दर्शन है अर दर्शन होनेकै अनन्तरही जो पदार्थका ग्रहण होना सो अवग्रह है। बहुरि अवग्रहकरि ग्रहणकिया अर्थमैं

जो विशेष जाननेकी इच्छा होय सो ईहाज्ञान है। बहुरि विशेषका निर्णयतैं यथात्म्यरूप निश्चय होना सो अवाय है। बहुरि निर्णय कीयाकूं विस्मरण नहीं होना, कालांतरमैं यथावत् याद रहना सो धारणाज्ञान है। ऐसैं च्यार भेद कहे। इनिका विशेष ऐसा—जो इंद्रिय अर इंद्रियकै ग्रहणजोग्य विषय इनिकै संयोग होतैही जो वस्तुकी सत्ता मात्रका ग्रहण सो दर्शन है।

जैसैं दृष्टि पड़ता ही वस्तुका प्रकाश मात्र निर्विकल्प ग्रहणमैं आया सो चक्षुदर्शन है। ऐसैं ही कर्णादिक च्यार इन्द्रियनिकै द्वारै सामान्य विकल्प रहित ग्रहण होय सो अचक्षुदर्शन है। अर ताकै लगता ही जो देख्या हुआ पदार्थका वर्ण सस्थानादिक विशेष ग्रहणमैं आवै सो अवग्रह नामा मतिज्ञान है। जैसैं नेत्र इन्द्रियका ग्रहणमैं आया जो ये श्वेत है। बहुरि श्वेतरूप जाण्या पदार्थमैं विशेष जाणवाकी इच्छा जो ये श्वेत है सो बगलांकी पंक्ति होसी ऐसैं जो अवग्रहमैं आया जो श्वेत पदार्थ ताहीमैं विशेष जो बगलांकी पंक्ति जाननेकी इच्छा अथवा ध्वजा देखी थी तिसमैं ध्वजा जाननेकी इच्छा सो ईहा नामा मतिज्ञानका भेद है। ऐसैं ही शब्दादिकनिमैं अन्य इंद्रियद्वारै हू ईहा होय है।

बहुरि ईहाकरि जान्याथा तिसका विशेष अवाय आदिका निर्णय होनेतैं जैसा पदार्थ होय तामैं तैसा ही नियमरूप निश्चय होना सो अवायज्ञान है। जैसैं बगुलांकी पंक्तिविषै बगुलांकी पंक्तिहीकी जाननेरूप इच्छा थी परन्तु ध्वजाका निषेध नाहीं किया था ऐसा तो ईहाज्ञान था। अब ऊँचा नीचा आवना पांखका हलावना इत्यादि क्रिया चिन्हकरि ऐसा निश्चय भया जो या बगलांकी ही पंक्ति है अन्य ध्वजादिक कछू ही नाहीं ऐसा निश्चयरूप ज्ञानकूं अवाय कहिए हैं। अवायकरि निश्चय किया जो वस्तु ताका ऐसा दृढ़ज्ञान होय जो कालांतरमैं भूलैं नहीं सो धारणाज्ञान है। अब ए कहे जे अवग्रहादिक मतिज्ञानके भेद ते कौनके होंय इस हेतुतैं सूत्र कहै हैं—

बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणां ॥ १६ ॥

अर्थ—बहु बहुविध क्षिप्र अनिःसृत अनुक्त ध्रुव ए छह अर छहही याके प्रतिपक्षी कहिए अल्प

अल्पविध अक्षिप्र निःसृत उक्त अध्रुव ए छह ऐसैं बारह भए इनिका ज्ञान अवग्रहादिकतैं होय है। बहु शब्द इहां संख्यावाची तथा विपुल कहिए समूहका वाचक है। जैसैं बहुत गायिनमैं खांडी, मुण्डी, धौली, काली, काबरी अनेक हैं। इनिका समूहकूं ग्रहणकरै सो बहु अवग्रहादिक है। १। बहुरि जैसैं सेनामैं हस्ती घोडा ऊंट बलध भैंसा इत्यादिक अनेक जातिका ग्रहण करनेवाला हू बहुविध अवग्रहादिक है। २। शीघ्रतातैं पडता जो जलका प्रवाहादिक ताका ग्रहण सो क्षिप्रग्रहण है। ४। बहुरि वचनतैं कह्या विना अभिप्रायतैं जानना सो अनुक्तग्रहण है ॥ ५ ॥

बहुरि बहुत काल जैसाका तैसा निश्चल ग्रहण होय वा पर्वतादिक ध्रुवपदार्थका ग्रहण होय सो ध्रुव ग्रहण है ॥ ६ ॥ बहुरि अल्पका ग्रहण वा एकका ग्रहण होना सो अल्प ग्रहण है ॥ ७ ॥ बहुरि एक प्रकारका घोड़ा, ऊँट, बलध मनुष्यादिकनिमैं एक जातिहीका ज्ञानमैं ग्रहण होना सो एकविध ग्रहण है ॥ ८ ॥ बहुरि मन्द गमन करता अश्वादिकका ग्रहण सो अक्षिप्र ग्रहण है ॥ ९ ॥ बहुरि बाह्य निकलि प्रकट हुवाका ग्रहण सो निःसृत ग्रहण है ॥ १० ॥ बहुरि यो घट है ऐसैं कह्या हुवाका ग्रहण सो उक्त ग्रहण है ॥ ११ ॥ बहुरि क्षणमात्र स्थिति रहता जो बीजली इत्यादिकका ग्रहण सो अध्रुवग्रहण है ॥१२॥ ऐसैं अवग्रह बारह प्रकार कह्या तैसैं ही बारह बारह प्रकार ईहा अवाय धारणा होय हैं। ते सब मिलि एक इन्द्रियद्वारै अडतालीस भेद भए। तब पांच इन्द्रिय छठा मन इनि छहूनिसूं गुणैं दोयसैं अठ्यासी भेद होय हैं। अब ए दोयसे अठ्यासी भेद कौनके हैं इस वास्ते सूत्र कहैं हैं—

अर्थस्य ॥ १७ ॥

अर्थ—ए बहु आदिक बारह भेद कहे ते इंद्रियनिके विषयमैं आवता जो अर्थ ताके भेद हैं। ए कहे जे अवग्रहादिक ज्ञान ते इंद्रिय अनिंद्रियकै होय हैं कि किछु विशेष है इस हेतुतैं सूत्र कहे हैं—

व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥

अर्थ—व्यंजन जो अप्रकट शब्दादिक ताका अवग्रह ही होय है ईहादिक नहीं होय हैं। इहां ऐसा

जो अर्थावग्रह व्यंजनावग्रह इनि दोऊनिमैं व्यक्तपणा अर अव्यक्तपणा विशेष है सो ही कहिए। जैसैं नवा मांटीका सरावाविषैं जलका कण क्षेपिए तहां दोय तीन आदि कणानिकरि सींच्या जेते आला नहीं होय तेतैं अव्यक्त है तिनकूं व्यंजन कहिए। बहुरि सोही सरावा फेरि फेरि सींच्याहुवा मन्द मन्द आला होय तब व्यक्त होय तैसैंही श्रोत्रादिक इंद्रियनका अवग्रहविषै ग्रहण योग्य जे शब्दादिरूप परिणम्या पुद्गलस्कंध ते दोय तीन आदि समयनिसैं ग्रह्या हुवा जेतै व्यक्त ग्रहण नहीं होय तेतै तो व्यंजनावग्रह होय है। बहुरि फेर फेर तिनका ग्रहण होय तब व्यक्त होय तबही अर्थावग्रह होय है। ऐसैं व्यक्तग्रहणतैं पहले तो व्यंजनावग्रह कहिए। बहुरि व्यक्त ग्रहणकूं अर्थावग्रह कहिए। इहां व्यंजनावग्रहका सर्व इंद्रियनिकै प्रसंग आया यातै जिन इंद्रियनकै व्यंजनावग्रह नांहीं सम्भवै तिनका निषेधकै अर्थि सूत्र कहे हैं—

न चक्षुरनिंद्रियाभ्यां ॥ १९ ॥

अर्थ—नेत्र इंद्रिय अर मन इंद्रिय दोऊनिकर व्यंजनावग्रह नहीं होय है। जातैं नेत्रइंद्रिय अर मन ए दोऊ पदार्थनितैं भिडकरि नाहीं जानै हैं अपने विषयकूं दूरिहीतै जानैं हैं, यातै ए दोऊ इंद्रिय अप्राप्यकारी हैं। जैसैं नेत्र आपके मध्य तिष्ठता अंजनकूं नाहीं जानै है, दूरि तिष्ठता पदार्थकूं ही जानै है। अर मन है सोहू दूरि तिष्ठता पदार्थकूं विचारमैं लेहै। ऐसैं नेत्र अर मन ए दोऊ अप्राप्यकारी हैं।

यहां कोऊ कहै जैसैं नेत्रइंद्रिय दूरितैं जानै है तैसैं कर्णइंद्रिय हू शब्दकू दूरिहीतै सुणै है। तातैं कर्णइंद्रियहूकूं अप्राप्यकारी कह्यो। ताकूं कहिए है—ऐसैं नाहीं है, नेत्र अर मनविना अवर शेष च्यार इंद्रियनिविषै जब अपना विषय आनि भिडै है तब ताकूं जानै हैं। जैसैं जिस ठिकानेतैं शब्द उपजै हैं तहांतैं लगाय केतेक क्षेत्रपर्यंतके पुद्गल शब्दरूप हो जाय हैं। तहां कर्णइंद्रियके समीपवर्त्ती भी पुद्गलस्कंध ...ब्दरूप होय कर्णइंद्रियतैं भिडै हैं तब सुनिए हैं। ऐसैं कर्णइंद्रिय प्राप्यकारी है। ऐसैं ही गन्धादिक ...। गन्धद्रव्य जहां तिष्ठै तहांतैं लगाय केतेक क्षेत्रपर्यंतके पुद्गलस्कंध गन्धरूप होय परिणमैं हैं। तहां ...इन्द्रियके समीपवर्ती पुद्गलस्कन्ध गन्धरूप होय, नासिका इंद्रियतैं भिडैं हैं तब सूंघिए है।

तातैं नेत्र अर मन इन दोऊनिविना अवशेष च्यार इन्द्रियनिके व्यंजनावग्रह होय है। तहां व्यंजनावग्रहके बहु आदि विषयनिकी अपेक्षा अड़तालीस भेद होय हैं। जातैं नेत्र अर मन विना च्यार इन्द्रियद्वारै एक अवग्रह ही होय। अप्रकटका ईहादिक होय नाहीं, तातैं बह्वादिक बारहगुणे अडतालीस होय हैं। अर पूर्वै कहै अर्थावग्रहके दोयसै अठ्यासी भेद तिन सहित मतिज्ञानके तीनसै छत्तीस ३३६ भेद जानने। बहुरि इहां इन्द्रियनिके प्राप्यकारी अप्राप्यकारीपणाकी चरचा वा श्रोत्रादिक द्रव्येन्द्रियनिका आकार इन्द्रियनिके विषयनिका क्षेत्रका परिमाण राजवार्तिकजीमैं विशेष वर्णन है तहांतैं जानना।

बहुरि श्रोत्र इन्द्रियका जौकी नालीसमान आकार है। बहुरि घ्राणइन्द्रियका अतिमुक्तक चन्द्रक तथा तिलके पुष्पसमान आकार है। रसना इन्द्रियका खुरपा समान आकार है। स्पर्शन इन्द्रिय सर्व अङ्ग-व्यापी है तातैं याका अनेक आकार है। चक्षुइन्द्रियका मसूरके समान आकार है। इत्यादिक अनेक भेद-रूप कथन है सो तहांतैं जानना। ऐसैं मतिज्ञानका स्वरूप कह्या, अब श्रुतज्ञान कहनेजोग्य है सो कहै हैं।

श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदं ॥ २० ॥

अर्थ—श्रुतज्ञान है सो मतिपूर्वक है। अर दोय भेद अनेक भेद तथा बारह भेदरूप है। पहिलें मतिज्ञान होय तब पाछैं श्रुतज्ञान होय है यह नियम है। बहुरि श्रुतज्ञान अंगबाह्य अर अंगप्रविष्ट दोय भेदरूप है। इहां ऐसा जानना—अक्षरात्मक श्रुतज्ञानमैं मूल अक्षर तो चोसठि हैं तिनमैं तेतीस तो व्यंजन अर सत्ताइस स्वर अर च्यार योगवाह ऐसैं चोसठि मूल अक्षर हैं। तिनका संयोगजनित द्विसंयोगी त्रिसंयोगी चतुःसंयोगी इत्यादि चोसठिसंयोगीपर्यंत भंगकरि समस्त भंगनिकों जोडिए तब एकघाटी एकट्ठी प्रमाण समस्त अपुनरुक्तअक्षर श्रुतज्ञानके भए। १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५। इतने अक्षर भिन्नभिन्न एकसैं एक मिलैं नाहीं ऐसैं जानना।

ए समस्त श्रुतके अक्षर कहे तिनकौं परमागमविषै प्रसिद्ध जो मध्यमपद ताके अक्षरनिका प्रमाण सोलासै चोतीस कोडी तीयासी लाख सात हजार आठसैं अठ्यासी १६३४८३०७८८८ इनिका भाग दीए

जो एकसो बारह कोडी तीयासी लाख अठावन हजार पंच पाए ११२८३५८००५। ए तो अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञानके पदनिका प्रमाण आया तिनके तो द्वादशांगरूप श्रुत है। अर अवशेष अक्षर आठ कोडी एक लाख आठ (अठारह) हजार एकसौ पिचहत्तरि ८०१८(१८)१७५ अक्षर रहे ते अंगबाह्य कहाए। इन अक्षरनिके चौदह प्रकीर्णक दश वैकालिक उत्तराध्ययनादिक कहावै हैं।

बहुरि अंगप्रविष्ट बारह प्रकार है। तिनमैं साधुका समस्त आचरणका है निरूपण जामैं ऐसा आचारांग है ताके अठारह हजार पद हैं। बहुरि दूसरा सूत्रकृत नामा अंग है। तिसविषै ज्ञानका विनयादिक तथा धर्मक्रियामैं स्वमतपरमतकी क्रियाका विशेष निरूपण है ताके छत्तीस हजार पद हैं। बहुरि तीसरा स्थान नामा अंग है। जिसमें जीव पुद्गलादि द्रव्यनिका एक आदि स्थाननिका निरूपण है। जैसैं जीवद्रव्य चेतनासामान्यकरि एक प्रकार है। सिद्ध संसारीनिकी अपेक्षा दोय प्रकार है। ऐसैंही संसारी जीव थावर विकलेंद्रिय सकलेंद्रियकरि तीन प्रकार हैं। सिद्धजीवद्रू-क्षेत्र, काल, अवगाहनादि भेदकरि अनेक प्रकार हैं। ऐसैं स्थाननिका वर्णन है। ताके बियालीस हजार पद हैं।

बहुरि चोथा समवाय नामा अंग है। तिस विषै द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा समानताका वर्णन है। जैसैं द्रव्यकरि धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय समान हैं। क्षेत्रकरि मनुष्यक्षेत्र अर प्रथम नरकका प्रथम इंद्रकबिल अर प्रथमस्वर्गका प्रथम इंद्रक विमान समान हैं। काल करि उत्सर्पिणी अवसर्पिणी समान हैं। भावकरि केवलज्ञान केवलज्ञानदर्शन समान हैं। याके एक लक्ष चौसठ हजार पद हैं। बहुरि पांचमा व्याख्याप्रज्ञप्ति नामा अंग है। तिसमें जीवके अस्तिनास्ति इत्यादिक साठीहजार प्रश्न गणधरदेव तीर्थंकर भगवानके निकटि कीए तिनका वर्णन है याके दोय लक्ष अठाईस हजार पद हैं। बहुरि छट्टा ज्ञातृधर्मकथा नामा अंग है तिस विषै तीर्थंकरनिके धर्मकी कथा तथा जीवादिक पदार्थनिका स्वभावका वर्णन तथा

१ कोट्यष्टकमेकं च लक्षमष्टौ सहस्राणि शतं चैक पञ्चसप्तत्यधिक ॥ ८०१०८१७५ ॥ ऐसा तत्त्वार्थ सुखबोधिनीमैं है। तो सदासुखजीने आठ हजारके जगहँ अठारह हजारका प्रमाण कहांसे लिखा? अथवा लेखकोंका प्रमाद है?॥

गणधरके प्रश्ननिके उत्तरका वर्णन है। इस अंगकूं धर्मकथाहू कहै हैं। याके पांचलक्ष छप्पन हजार पद हैं।

बहुरि सातवां उपासकाध्ययन नामा अंग है तिस विषै ग्यारह प्रतिमा आदि श्रावकव्रत शील आचार क्रिया मंत्रोपदेशादिकका वर्णन है। याके ग्यारह लक्ष सतरह हजार पद हैं। बहुरि आठमा अंतकृद्दशांग नामा अंग है। तिसविषै एक एक तीर्थंकरनिकै बारै दश दश महामुनि तीव्र उपसर्ग सहि कर्मनिका नाश करि संसारका अंत करते भए तिनका वर्णन है याके तेवीस लक्ष अठाईस हजार पद हैं।

बहुरि नवमा अनुत्तरोपपादकदशांगनामा अंग है तिस विषै एक एक तीर्थंकरनिके बारै दश दश महामुनि घोर उपसर्ग सहिकरि विजयादिक पंच अनुत्तरविमानमें उत्पन्न भए तिनका वर्णन है। याके बाणवै लक्ष चवालीस हजार पद हैं। बहुरि दशमा प्रश्नव्याकरण नामा अंग है। तिस विषै अतीत अनागत कालसंबंधी लाभ अलाभ सुख दुःख जीवित मरणादि शुभाशुभका केई प्रश्न करैं ताका उत्तर यथार्थ कहनेका उपाय वर्णन है। तथा आक्षेपिणी विक्षेपिणी संवेदिनी निर्वेदिनी जे चार प्रकारकी कथा तिनिका यामें वर्णन है। याके तिराणवें लक्ष सोलह हजार पद हैं।

बहुरि ग्यारमा विपाकसूत्र नामा अंग है तिस विषै कर्मनिका बन्ध उदय सत्ता अर तीव्र मन्द अनुभाग द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा करि इनिका वर्णन है, याके एक कोटी चौराशी लक्ष पद हैं। बहुरि बारमा दृष्टिप्रवाद नामा अंग है ताके एकसो आठ कोड़ी अडसठी लाख छपन्न हजार पांच पद हैं। ताके पञ्च भेद हैं। प्रथम भेद पञ्चप्रकार परिकर्म है, दूसरा सूत्र नाम भेद, तीजा प्रथमानुयोग, चौथा चतुर्दश पूर्वगत है। पांचमा भेद पंचप्रकार चूलिका है। तिनमैं पहला भेद जो परिकर्म ताके पांच भेद हैं तिसका पहिला भेद जो चन्द्रप्रज्ञप्ति तामैं चन्द्रमाका गमनादि तथा परिवार आयु अर कालकी हानि वृद्धि देवी विभवादिक ग्रहणादिका वर्णन है। याके छत्तीस लक्ष पचास हजार पद हैं।

बहुरि दूसरी सूर्यप्रज्ञप्ति है। तिसविषै सूर्यकी ऋद्धि विभव देवी परिवारादिकका वर्णन है। याके

पांच लक्ष तीन हजार पद हैं। परिकर्मका तीजा भेद जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति है। यामैं जम्बूद्वीप सम्बन्धी मेरुगिरी क्षेत्र कुलाचल ह्रद नदी इत्यादिकनिका वर्णन है। याके तीन लक्ष पचीस हजार पद हैं।

बहुरि परिकर्मका चौथा भेद द्वीपसागर प्रज्ञप्ति है। तिसविषै समस्त द्वीपसागरनिका स्वरूप अर तहां तिष्ठतै भवनवासी व्यंतरज्योतिष्कनिकै आवासका वर्णन तथा तहां तिष्ठतै जिनमन्दिरका वर्णन है। याके बावन लक्ष छत्तीस हजार पद हैं। बहुरि परिकर्मका पांचमा भेद व्याख्याप्रज्ञप्ति है। तिस विषै जीव अजीव पदार्थनिके प्रमाणका वर्णन है। याके चोरासी लक्ष छत्तीस हजार पद हैं।

बहुरि बारमा अंगका दूजा भेद सूत्र नाम है। तिसविषै मिथ्यादर्शन सम्बन्धी तीनसै त्रेसठ कुवाद हैं। तिनका पूर्वपक्ष लेयकरि तिनका जीवादि पदार्थनिके ऊपरी लगावनेका वर्णन है। तहां जीव अबन्धक ही है, अकर्त्ता ही है, निर्गुण ही है, अभोक्ता ही है, स्वप्रकाशक ही है, परप्रकाशक ही है, अस्तिरूप ही है, नास्तिरूप ही है, इत्यादि एकांतके पक्षपातको दूरिकरि यथार्थ स्वरूपका वर्णन है। याके अठ्यासी लक्ष पद हैं। बहुरि बारमा अंगका तीजा भेद प्रथमानुयोग है। तिस विषै चतुर्विंशति तीर्थंकर, द्वादश चक्रवर्ती, नव नारायण, नव प्रतिनारायण, नव बलिभद्र इन तिसठी उत्तम पुरुषनिका वर्णन है। याके पांच हजार पद हैं। बहुरि बारमा अंगका चौथा भेद पूर्वगत है ताके चोदह भेद हैं। तहां प्रथम उत्पादनामा पूर्व है। तिस विषै जीव पुद्गल कालादिकनिका जिस कालमैं जिस क्षेत्रमैं जैसैं पर्यायनिकरि उत्पाद व्यय ध्रौव्यादि धर्मनिकी अपेक्षाकरि स्वभाव वर्णन कीया है। याके एक कोटी पद हैं।

बहुरि दूजा अग्रायणीय पूर्व है। तिस विषै सप्ततत्त्व नवपदार्थ षट्द्रव्य अर सुनय दुर्नयनिका वर्णन है। याके छिनवै लक्षपद हैं। बहुरि तीजा वीर्यानुवादपूर्व है। तिस विषै आत्मवीर्य परवीर्य उभयवीर्य क्षेत्रवीर्य कालवीर्य भाववीर्य तपोवीर्य अर इंद्रादिककी ऋद्धि तथा नरेन्द्र चक्रधर बलदेवादिकनिका वीर्य लाभ सम्पत्ति आदिकनिका वर्णन किया है याके सत्तरि लक्षपद हैं। बहुरि चौथा अस्तिनास्तिप्रवाद नामा पूर्व है। तिस विषै जीवादिक वस्तुनिकै स्वपर द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षाकरि अस्तिनास्ति

आदि अनेक धर्मनिविषै विधिनिषेधकरि सप्तभंगकरि कथंचित् शब्दकरि विरोध मेटनेरूप मुख्य गौणकरि वर्णन है। याके साठि लक्ष पद हैं।

बहुरि पांचमा ज्ञान प्रवाद नामा पूर्व है। तिसमैं मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल इनि पंचज्ञाननिका अर कुमति कुश्रुत विभंगनिका स्वरूप संख्या विषय फलादिकका वर्णन है। याके एक घाटि कोटि पद हैं। बहुरि छठा सत्यप्रवाद पूर्व है। तिस विषै वचनगुप्तिका अर वचनके संस्कारके कारण अर द्वादश प्रकार भाषा अर वक्ताके भेद अर बहुत प्रकार असत्यके भेद अर दश प्रकार सत्यके प्ररूपणका वर्णन है। याके एक कोटि अर छ पद हैं।

बहुरि सातमां आत्मप्रवादपूर्व है तिस विषै आत्मा जो जीवपदार्थ ताके कर्त्ता भोक्ता आदि अनेक धर्मनिका निश्चय व्यवहार अपेक्षा वर्णन है। तहां व्यवहारनयकरि च्यार प्राण वा दश प्राण अर निश्चयनयकरि चैतन्यप्राणकूं धारै है। तीन काल विषै प्राणधारण किया करै है करैगा ताकूं जीव कहिए। व्यवहारकरि शुभाशुभ कर्मको अर निश्चयकरि निजपरिणतिको करै है तातैं कर्त्ता कहिये। व्यवहारकरि सत्य असत्य वचन बोलनेतैं वक्ता है, निश्चयकरि वक्ता नहीं है।

बहुरि दोऊ नयनिकरि बाह्य अभ्यंतर प्राण याकै पाईए, तातैं प्राणी कहिये। व्यवहारकरि शुभाशुभकर्मकूं अर निश्चयकरि निजस्वरूपकूं भोगवै है तातैं भोक्ता कहिये। व्यवहारकरि कर्मनोकर्मरूप पुद्गलनिकूं पूरण गलन करै है, तातैं पुद्गल है। निश्चयनयकरि पुद्गल नहीं है। दोऊ नयनिकरि त्रिकालवर्ती सर्व ज्ञेयकूं "वेत्ति" कहिए जानै है, तातैं वेदक कहिए। बहुरि व्यवहारकरि अपने देहकूं वा केवलसमुद्घातकरि सर्वलोककूं अर निश्चयनयकरि ज्ञानतैं सर्वलोककूं "वेष्टि" कहिए व्यापै है, तातैं विष्णु कहिये। बहुरि यद्यपि व्यवहारकरि कर्मके वशतैं संसारविषै परिणमै है, तथापि निश्चयकरि स्वयं आपके दर्शनज्ञानस्वरूपहीकरि भवति कहिये परिणमै तातैं स्वयंभू कहिए।

बहुरि व्यवहारकरि औदारिकादि शरीर याकैं हैं तातैं शरीरी कहिए निश्चय करि शरीरी नाहीं है।

व्यवहारकरि मनुष्यादिपर्यायरूप परिणमै तातैं मानव कहिए। निश्चयकरि मनु कहिए ज्ञान तिसविषै भवति कहिए सत्तारूप है तातैं मानव कहिए। इत्यादि आत्माके स्वभावका कथन है, तातैं आत्मप्रवादपूर्व है। याके छत्तीस कोटी पद हैं। बहुरि कर्मप्रवादनामा आठमा पूर्व है। तिसविषै ज्ञानावरणादि कर्मनिकी मूलप्रकृति उत्तरप्रकृति उत्तरोत्तरप्रकृति भेद लिए बंध सत्ता उदय उदीरणा उत्कर्षण अपकर्षण संक्रमण उपशम निधत्ति निःकांचितादि अवस्थानिका वर्णन है। तथा चित्तादिकनिकी अवस्था ईर्यापथादिक्रिया तपस्या अधाकर्मादिकका वर्णन है। याके एक कोटी अस्सी लक्ष पद हैं।

बहुरि प्रत्याख्यान नाम नवमा पूर्व है। तिस विषै नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भावनैं आश्रयकरिकै पुरुषकूं संहनन बलादिकके अनुसारकरि प्रमाणीक कालपर्यंत वा अप्रमाणीक कालकरि त्याग करना तथा सावद्य वस्तुका त्याग अर उपवासविधि अर इनिका भावना अर पंच समिति तीन गुप्तिका वर्णन है। याके चोरासी लक्ष पद हैं। बहुरि दशमा विद्यानुवादपूर्व है। तिस विषै अंगुष्ठप्रसेनादि सातसै अल्पविद्या अर रोहिणीकूं आदि लेय पांचसै महाविद्या इनिका स्वरूप सामर्थ्य साधनभूत मन्त्र यंत्रादिक अर सिद्ध भई विद्यानिका फलका वर्णन तथा अष्टांगनिमित्तज्ञानका वर्णन है। याके एक कोटी दश लक्ष पद हैं।

बहुरि कल्याणवाद नामा ग्यारमा पूर्व है तिस विषै तीर्थंकर चक्रधर बलदेव वासुदेवादिकनिके गर्भावतारणादि कल्याणकनिके महोत्सव तथा तिनके कारण तीर्थंकरत्वादि पुण्यविशेषका हेतु षोडशकारणभावनादि तपश्चरणादिकका तथा चंद्रसूर्यादि ग्रह नक्षत्रादिकनिके गमन ग्रहण शकुनादिकका फल वर्णन है। याके छवीस कोटी पद हैं। बहुरि प्राणवादनामा बारमा पूर्व है तिस विषै अष्ट प्रकार वैद्यकचिकित्सा तथा भूतादिक व्याधि दूर करनेका कारण मंत्र तंत्रादिक वा विष दूरिकरनहारा गारुडविद्यादिक तथा स्वरोदयादिक बहुरि दश प्राणनिके उपकारक अनुपकारक द्रव्यनिका गत्यादिकनिके अनुसार वर्णन है। याके तेरह कोटी पद हैं।

बहुरि क्रियाविशाल नामा तेरमा पूर्व है। तिस विषै संगीतशास्त्र छन्द अलङ्कारादिक अर पुरुषकी बहत्तरी कला अर शिल्पकला आदि चातुर्यता अर स्त्रीनिका चोसठी गुणनिका तथा गर्भाधानादिक चोरासी क्रिया तथा सम्यग्दर्शनादि एकसो आठ क्रिया वा देवबन्दनादिक पचीस क्रिया अर निमित्त नैमित्तिक क्रिया इत्यादिकनिका वर्णन है याके नव कोटी पद हैं। बहुरि चौदमा त्रिलोकबिंदुसार नामा पूर्व है। तिस विषै तीन लोकका स्वरूप षड्विंशति परिकर्म अर आठ व्यवहार च्यारि बीजगणितादिक अर मोक्षका स्वरूप मोक्षका कारणभूत क्रिया अर मोक्षका सुख इनिका वर्णन है। याके साढा बारा कोटी पद हैं। बहुरि बारमा अङ्गका पांचमा भेद चूलिका है। ताके पांच भेद हैं। जलगता १, स्थलगता २, मायागता ३, रूपगता ४, आकाशगता ५, ऐसें पांच भेद हैं। तहां जलगताचूलिकामैं जलका स्तम्भन करना, जलविषै गमन करना, अग्निका स्तम्भन करना, अग्निमैं प्रवेश करना, अग्निका भक्षण करना, इत्यादिकके कारणरूप मन्त्र तन्त्रादिकका प्ररूपण है। याके दोय कोटी नव लक्ष निवासी हजार दोयसै पद हैं।

बहुरि दूजी स्थलगताचूलिका विषै मेरुपर्वत भूमि इत्यादिकनिमैं प्रवेश करना, शीघ्र गमन करना इत्यादिक क्रियाके कारणभूत मंत्रतंत्रादिकका प्ररूपण है। याके दोय कोटी नव लक्ष निवासी हजार दोयस पद हैं। बहुरि तीजी मायागताचूलिका है यामैं मायामयी इन्द्रजालादि विक्रियाके कारण मंत्र तंत्र आचरणादिकका प्ररूपण है याकेहू दोय कोटी नव लक्ष निवासी हजार दोयसे पद हैं।

बहुरि चोथी रूपगता चूलिका हैं। यामैं सिंह, हस्ति, घोड़ा, बैल, हरिण इत्यादि रूपके पलटनेका कारण मंत्र तंत्र तपश्चरणादिकका प्ररूपण है। तथा चित्राम काष्ठलेपादिकका वर्णन है। तथा धातु रस रसायनका निरूपण है। याकेहू दोय कोटी नव लक्ष निवासी हजार दोयसै पद हैं। बहुरि पंचमी आकाशगता चूलिका है। यामैं आकाशमैं गमनादिकक कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादिकका वर्णन है, याकेहू दोय कोटी नव लक्ष निवासी हजार दोयसै पद हैं। ऐसें दृष्टिवाद नामा बारमा अंगका भेद कह्या।

अथ अंगबाह्यश्रुतके जे आठ कोडी एक लक्ष आठ हजार एकसो पिचहत्तरि अक्षर रहे तिनके चौदह

प्रकीर्णक हैं। तिनमें नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि षट्प्रकार सामायिकका वर्णन सो सामायिक नाम प्रथम प्रकीर्णक है। बहुरि जामैं तीर्थंकरनिके पञ्चकल्याण चौतीस अतिशय अष्टप्रातिहार्य परमौदारिक दिव्यदेह समवसरण धर्मोपदेशादिक तीर्थंकरनिके माहात्म्यका प्रकट करनेवाला स्तवनका वर्णन सो दूजा संस्तव नामा प्रकीर्णक है।

बहुरि जामैं एक तीर्थंकरका आश्रयकै अर्थि प्रतिमा चैत्यालयादिकका स्तवनका वर्णन सो तीजा वन्दना नामा प्रकीर्णक है॥ बहुरि जामैं एक दिनसम्बन्धि दोषका निराकरणकै अर्थी दैवसिक प्रतिक्रमण तैसैं ही रात्रिक पाक्षिक चातुर्मासिक सांवत्सरिक ऐर्यापथिक अर उत्तमार्थ कहिए सन्यासमरणका अवसर सम्पूर्ण पर्यायमैं उपज्या दोष तिनका निराकरणकै अर्थि जे प्रतिक्रमण तिनका जामैं वर्णन है ऐसा प्रतिक्रमण नाम चोथा प्रकीर्णक है॥ बहुरि जामैं दर्शन ज्ञान चारित्र तप उपचार ऐसैं पंच प्रकारका विनयका वर्णन सो विनय नामा पंचम प्रकीर्णक है॥

बहुरि जामैं जिनपूजनादिककी क्रियाके करनेके विधानका वर्णन अथवा अरहन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय, सर्वसाधु, जिनधर्म, जिनप्रतिमा, जिनवचन, जिनमन्दिर ऐ जे नव देवता तिनकी वन्दनाकै अर्थि तीन प्रदक्षिणा तीन अवनति च्यार शिरांशि बारा आवर्त्त इत्यादि अर नित्य नैमित्तिक क्रियाका प्ररूपण है सो कृतिकर्म नामा छठा प्रकीर्णक है॥ बहुरि साधुनिका आचारकै गोचर आहारकी शुद्धिका वर्णन है सो दशवैकालिक नामा सप्तम प्रकीर्णक है॥

बहुरि जामैं च्यार प्रकारका उपसर्ग अर द्वाविंशति परिषह सहनेका विधान अर इनका फलका वर्णन सो उत्तराध्ययन नामा अष्टमप्रकीर्णक है। बहुरि जामैं साधुनिके योग्य आचरणका विधान अर अयोग्य सेवन होतैं प्रायश्चित्तका वर्णन सो कल्पव्यवहार नामा नवमा प्रकीर्णक है। बहुरि जामैं द्रव्यकूं क्षेत्रकूं भावकूं आश्रयकरि साधुकै यह योग्य यह अयोग्य ऐसैं द्रव्यक्षेत्र काल भावकै अनुकूल जामैं वर्णन सो कल्पाकल्प नामा दशमप्रकीर्णक है। बहुरि जामैं उत्कृष्ट संहननादि सहित जिनकल्पी साधुनिकै द्रव्य

क्षेत्र काल भावकै योग्य त्रिकालयोगादिकनिका आचरणका वर्णन अर स्थविरकल्पी साधुनिका दीक्षा शिक्षा गणपोषण आत्म संस्कार सल्लेखना उत्तमार्थस्थानगत उत्कृष्टाराधनाका वर्णन सो महाकल्पसंज्ञक प्रकीर्णक ग्यारमा है।

बहुरि च्यार प्रकारके देवनिमैं उपजनेका कारण दान पूजा तपश्चरण अकामनिर्जरा सम्यक्त्व संयमादिकका वर्णन अर देवनिका उपपादस्थानका विभवका वर्णन सो बारमा पुंडरीक नामा प्रकीर्णक है। बहुरि जामैं इंद्र प्रतींद्रादिकनिमैं उत्पत्तिका कारण तपश्चरणादिकका वर्णन सो महापुण्डरीक नामा तेरमा प्रकीर्णक है। बहुरि जामैं प्रमादजनित दोष दूरिकरनेके अर्थि दश प्रकार प्रायश्चित्तादिकका वर्णन सो निषिधिका नाम चौदमा प्रकीर्णक है।

ऐसैं अंग अर अंगबाह्य श्रुतज्ञानका स्वरूप गोमट्टसार ग्रन्थके अनुसार कह्या। यो श्रुतज्ञान है सो प्रमाण है। तहां वचनरूप शब्दात्मक द्रव्यश्रुत है सो भावश्रुतज्ञानका कारण है। श्रुतज्ञान है सो परोक्ष प्रमाण है सो द्रव्य गुण पर्यायके विशेष सहित पदार्थनिकूं केवलज्ञानकी ज्यों सत्यार्थ प्रकाशै है। जैसा केवलज्ञानकरि प्रत्यक्ष जानै हैं तैसा ही श्रुतज्ञानकरि परोक्ष जानै हैं। अब तीन प्रकार कह्या जो प्रत्यक्ष प्रमाण तिसमैं अवधिज्ञानका भेदनिमैं जो भवप्रत्यय अवधिज्ञान ताके स्वामी कहै हैं—

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणां ॥ २१ ॥

अर्थ—देव अर नारकीनिके भवप्रत्यय अवधिज्ञान होय है। यातैं अवधिज्ञानावरण अर वीर्यान्तरायके क्षयोपशमतैं अवधिज्ञान होय है। सो क्षयोपशम व्रत नियम तपश्चरणतैं होय। अर देवनारकीनिक व्रत नियम तपश्चरणादिक है नहीं तातैं देव नारकीनिकै अपना देवनारकका भव पावना ही क्षयोपशमनैं कारण है। तपश्चरण व्रत कारण नाहीं, जातैं भवप्रत्यय अवधिज्ञानकूं भव ही प्रत्यय कहिये कारण है।

तातैं भवप्रत्यय नाम अवधि देवनारकीनिकै होय है। सो देशावधि है। अर देवनारकीनिकै अवधितैं जानना समस्तनिकै समान नाहीं है। जैसा जैसा क्षयोपशम तैसा तैसा अवधितैं द्रव्यक्षेत्र काल भावका

नियमकरि जानना होय है। अर सम्यग्दृष्टीनिकै ही अवधिज्ञान होय है। मिथ्यादृष्टीनिकै विभंग कहावै है। अब क्षयोपशम निमित्त अवधिज्ञान कौनकै है यातैं सूत्र कहैं हैं—

क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणां ॥ २२ ॥

अर्थ—अवधिज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम है निमित्त जाकूं ऐसा अवधिज्ञान षट्प्रकार है सो शेष जे मनुष्य तिर्यंच तिनकै होय है। सो अवधिज्ञान समस्त मनुष्य तिर्यंचनिकै नहीं होय है। सैनी पंचेन्द्रियकै ही होय है। अर सम्यग्दर्शनादिक निमित्तकू होतैं सन्तैं कोऊकै अवधिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम होतैं होय हैं। तातैं गुणप्रत्यय कहिए है। सो गुणप्रत्यय अवधि छह भेदरूप है। १ अनुगामी, २ अननुगामी, ३ वर्द्धमान, ४ हीयमान, ५ अवस्थित, ६ अनवस्थित। तहां जो अवधिज्ञान अपना स्वामी जीवकै साथि ही गमन करै ताकूं अनुगामी कहिए। ताके तीन भेद हैं। १ क्षेत्रानुगामी, २ भवानुगामी, ३ उभयानुगामी। तहां जिस जीवकै जिस क्षेत्रविषैं अवधिज्ञान उपजा तिस जीवकूं अन्य क्षेत्रमें गमन करतैं साथि ही गमन करै सो क्षेत्रानुगामी है। बहुरि जो परभवकूं गमन करते जीवक परलोक पर्यंत अवधि जाय सो भवानुगामी है। बहुरि जो अवधि अन्य क्षेत्रविषै भी साथि जाय अर अन्य भवविषै भी साथि जाय सो उभयानुगामी है। बहुरि जो अवधिज्ञान अपना स्वामी जीवकै साथि गमन नहीं करै सो अननुगामी अवधि है। ताकै तीन भेद हैं–१ क्षेत्राननुगामी, २ भवाननुगामी, ३ उभयाननुगामी। तहां जो अन्य क्षेत्रविषैगमन करता जीवकै साथि न जाय सो क्षेत्राननुगामी है।

बहुरि जो अन्य भवविषै गमन करता जीवकै साथि नहीं जाय सो भवाननुगामी है। बहुरि जो अन्यक्षेत्रविषै गमन करता जीवकै साथि नहीं जाय वा परभवविषै भी साथि नहीं जाय सो उभयाननुगामी है। बहुरि जो सम्यग्दर्शनादि गुणरूप विशुद्धपरिणामनिकी वृद्धि होनेतैं जिस प्रमाणको लीए उपज्या तातैं बढता ही चल्याजाय सो वर्धमान अवधिज्ञान है। बहुरि जो सम्यग्दर्शनादि गुणकी हानि अर संक्लेशपरिणामनिकी वृद्धिके योगतैं जो ज्ञान घटता ही जाय सो हीयमान अवधिज्ञान है।

बहुरि जो अवधिज्ञान जेते परिणा लीए उपजै तेताही रहै घटै बधै नहीं सो अवस्थित अवधिज्ञान है। बहुरि जो अवधिज्ञान जेते परिणामको लिए उपजै तातैं घटै भी वधै भी। जैसैं पवनका वेगकरि प्रेरया जल वारवार हानि वृद्धिरूप होय तैसैं अनवस्थित अवधिज्ञान है। ऐसैं गुणप्रत्ययदेशावधिज्ञान है ते छह भेद-रूप है। अथवा प्रतिपाती अप्रतिपाती भेदसहित आठ भेदरूप भी हैं। बहुरि आगमविषै देशावधि परमावधि सर्वावधि ऐसा भेद कह्या है। तिनमैं देशावधि छह भेदरूप वा आठ भेदरूप जानना। अर परमावधि सर्वावधि केवलज्ञान उपजै तहां ताईं अनुगामी ही हैं। अर परमावधि सर्वावधिका धारक अन्य भव नाहीं धारैं तातैं भवांतरका अभावकी अपेक्षा अननुगामी भी कहिए अर ए दोऊ अप्रतिपाती ही हैं। केवलज्ञान उपजै तहां ताईं छूटै नाही। बहुरि परमावधि है सो वर्धमानस्वरूप ही है, हीयमान नाहीं।

बहुरि परमावधि सर्वावधि हैं सो चरमशरीरी तद्भवमोक्षगामी संयमी मुनीहीकै होय हैं। अन्य तीर्थंकरादिक गृहस्थ मनुष्य तिर्यंच देव नारकीनिकै नाहीं होय। इनिकैं देशावधिहीकी योग्यता है। बहुरि परमावधि सर्वावधि दोऊ गुणप्रत्यय ही हैं। उत्कृष्ट संयमादि गुणानितैंही उपजै हैं। अर देशावधिज्ञान गुणप्रत्यय भवप्रत्यय दोऊ प्रकार होय है। बहुरि जो भवप्रत्यय अवधिज्ञान है सो नारकीनकै देवनिकै चरमभवधारक तीर्थंकरनिकै होय है। सो सर्व आत्माके प्रदेशनिमैं तिष्ठता जो अवधिज्ञानावरण अर वीर्यांतराय कर्म तिनिके क्षयोपशमतैं समस्त अंगतैं उपजै है। अर गुणप्रत्यय अवधिज्ञान है सो पर्याप्त-मनुष्यनिकै तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचानिकैं उपजै है सो नाभीकै ऊपरि शंख पद्म वज्र स्वस्तिक मत्स्य कलशादिक शुभचिह्नकरि सहित आत्माके प्रदेशनिमैं तिष्ठता जो अवधिज्ञानावरण तथा वीर्यांतराय कर्मके क्षयोपशमतैं उत्पन्न होय है।

बहुरि अवधि नाम मर्यादाका है। सो ये अवधिज्ञान द्रव्य क्षेत्र काल भावकी मर्यादा लीए होय है सो इस द्रव्य क्षेत्र काल भावका प्रमाण गोमट्टसारतैं वा राजवार्तिकतैं जानना। ऐसैं अवधिज्ञानका वर्णन किया। यहां इतना विशेष जानना। देशावधि, परमावधिका तो क्षयोपशम अपेक्षा बहुत भेद हैं। सर्वावधिका

अब मनःपर्ययज्ञानका भेदादि कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥ २३ ॥

अर्थ—ऋजुमतिमनःपर्यय अर विपुलमतिमनःपर्यय ऐसैं मनःपर्ययके दोय भेद हैं। मन वचन कायका सरलपणाकरि मनमैं तिष्ठता रूपीपदार्थ तथा परके मनमैं तिष्ठता पदार्थकूं जाणै सो ऋजुमतिमनःपर्यय है। बहुरि सरल तथा वक्ररूप परके मनमें तिष्ठता रूपीपदार्थकूं जानैं सो विपुलमतिमनःपर्यय है। देव, मनुष्य तथा तिर्यंच इनि सबनिके मनविषै प्राप्तभया रूपी पुद्गलद्रव्य तथा संसारी जीव द्रव्य तिन समस्तनिकूं मनःपर्ययज्ञान प्रत्यक्ष जानै है। तहां ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान तीन प्रकार है–१ सरलमनकरि किया अर्थकूं जानै, २ सरलमनकरि किया अर्थकूं जानै, ३ सरलकायकरि किया अर्थकूं जानै। ऐसैं तीन प्रकार हैं।

जैसैं कोऊ पुरुष मनकरि कोऊ पदार्थको चितवन किया तथा धर्मादि संयुक्त वचन तथा लौकिक वचनकूं भिन्न भिन्न अक्षरनिकरि उच्चारण किया तथा दोऊ लोकके कार्य प्रकट करनेके अर्थि अपने अंग उपांगनिका पटकना खैंचना पसारणा इत्यादिक कायकी चेष्टाकरी अर फेरि लगते ही समयविषै वा बहुत काल व्यतीत भए तिसके विस्मरण होनेतैं तिस ही अर्थके चिंतवन करनेकूं वा तिस ही वचनके कहनेकूं वा कायकी चेष्टा करनेकूं समर्थ नहीं होय। तिस पदार्थकूं वचनकूं कायकी चेष्टाकूं ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी पूछे वा नहीं पूछै समस्तकूं जानै जो तुमने ऐसी विधिकरि ऐसा पदार्थकूं चिंतवन किया है वा कह्या है वा कायकरि किया है, ऐसा जानना है। वा आपका तथा परका चिंतवन जीवित मरण सुख दुःख लाभ अलाभादिकनिकूं जाणै है।

चिंतवनादिकरि जिस अर्थकूं मन वचन कायकी चेष्टादिकनिमैं जिस अर्थकूं प्रकट किया तिसहीकूं ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान जाणै अर अप्रगटकूं नहीं जानै। कालकरि तो जीवोंका तथा आपका दो तीन भव तो जघन्यकरि जानै अर उत्कृष्ट सात आठ भव जानै। गमन आगमनकरिकै अर क्षेत्रतैं जघन्यकरि

बहुरि जो अवधिज्ञान जेते प ए उपजै तेताही रहै घटै बधै नहीं सो अवस्थित अवधिज्ञान है। बहुरि जो अवधिज्ञान जेते [illegible]

तीन कोश ऊपरि अर नवकोशके अभ्यन्तर ही जानै। अर उत्कृष्टकरि तीन योजनके ऊपरि अर नव योजनके मांहि जानै।

बहुरि विपुलमतिमनःपर्यय ज्ञान सरल अर वक्र मन वचन कायके विषयतैं छह प्रकार है तथा आपका अर पर जीवनिका चिंतवन जीवित मरण सुख दुःख लाभ अलाभादिक अव्यक्त मनकरि तथा व्यक्त मनकरि चिंतवन किया वा नहीं चिंतवन करैगा तिन सबनिकूं विपुलमतिज्ञानी जानै है। कालकरि जघन्य तो सात आठ भव जानै। उत्कृष्ट असंख्यात भव गति आगति करि प्ररूपण करै। क्षेत्रथकी जघन्य तो तीन योजन ऊपरि नव योजन माहि जानै, उत्कृष्टकरि मानुषोत्तरपर्वतके माहि जानैं, बारले पदार्थकूं नहीं जानै। अर गोमट्टसारके कथनमैं पैंतालीस लाख योजन घनरूप जानैं है ऐसैं वर्णन किया है जो पैंतालीस लक्ष चौडा लम्बा ऊंचा क्षेत्रमैं वर्त्तते अर्थकूं जानै है॥ ऐसैं दोय प्रकार मनःपर्ययज्ञानका वर्णन किया तिनमैं परस्पर भेद दिखावनेकूं सूत्र कहै हैं—

विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥ २४ ॥

अर्थ—विशुद्धि अर अप्रतिपात इनि दोयविशेषनिकरि इनि दोऊनिमैं विशेष कहिए अधिकता है। मनःपर्ययज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमतैं जो आत्माकी उज्जवलता सो विशुद्धता है। अर संयमपरणामकी घटवारी हानिपना सो प्रतिपात है। अर जो प्रतिपात नहीं होय सो अप्रतिपात है। तहां ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानतैं विपुलमतिमनःपर्ययकी विशुद्धता अधिक है अर ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान तो प्रतिपाती भी है छूटि भी जाय है। अर विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान अप्रतिपाती ही है। विपुलमतिमनःपर्यय होय ताके चारित्र वर्द्धमान ही होय है। प्रतिपात नहीं होय है, केवलज्ञान ही उपजावै है। अर सर्वावधिज्ञानकरि जो कार्मण द्रव्यका अनन्तमा भाग रूपी द्रव्यकूं जानै है ताका अनन्तमा भाग ऋजुमति मनःपर्यय जानै है। अर ताका अनन्तमा भागकूं विपुलमति जानै है। ऐसैं ऋजुमति विपुलमति मनःपर्ययज्ञानमैं विशेष जानना॥

अब अवधिज्ञान अर मन पर्ययज्ञान इनमैं काहेतैं विशेष है इस हेतुतैं सूत्र कहै हैं—

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्ययो: ॥ २५ ॥

अर्थ—अवधिज्ञान अर मनःपर्ययज्ञान इनि दोऊनिमैं विशुद्धि क्षेत्र स्वामी अर विषय इनि च्यार भेदनितै भेद है। जातैं अवधिज्ञान जो रूपीद्रव्यकूं जानै है ताकै अनंतभाग भी सूक्ष्म रूपी द्रव्यकूं मनःपर्ययज्ञान जानै है। तातैं अवधिज्ञानतैं मनःपर्ययज्ञान विशुद्ध है निर्मल है। बहुरि अवधिज्ञानके उत्पत्तिका क्षेत्र त्रसनालीपर्यंत है। अर विषयका क्षेत्र सर्व लोक है। अर मनःपर्ययज्ञान मनुष्य लोकही मैं उपजै है। अर पैंतालीस लाख योजन घनरूप ही याका विषयका क्षेत्र है।

बहुरि अवधिज्ञान च्यारो गतिके सैनी पंचेन्द्रियजीवनिकै होय है। अर मनःपर्ययज्ञान गर्भज मनुष्य कर्मभूमिके पर्याप्तनिकैं ही उपजै है। अर भावलिंगी संयमीनिकैं ही उपजै अर संयमीनिमैं हू वर्द्धमान चारित्रहीमैं उपजै हीयमानमै नहीं उपजै। अर वर्द्धमान चारित्रके धारकनिमैं हू सप्तप्रकारकी ऋद्धिमैंतै एक दोय तीन इत्यादिक ऋद्धि उपजि आई होय तिनकैं ही मनःपर्ययज्ञान होय। ऋद्धिधारी विना नहीं होय। अर ऋद्धिधारीनिमैं हू केईकनिकैं ही उपजै है। समस्त ऋद्धिधारीनिकैं नहीं उपजै। बहुरि विषयकी अपेक्षा भेद है ताका सूत्र आगैं कहसी।

ऐसैं अवधि मनःपर्ययज्ञानमैं विशुद्धतादिकनितैं भेद दिखाया। अब केवलज्ञानका लक्षण कहनेका अवसरकूं उलंघनकरिकैं ज्ञाननिका विषयका नियमकूं कहै हैं जातैं केवलज्ञानका स्वरूप मोक्षतत्त्वका वर्णनरूप दशम अध्यायमैं वर्णन करसी। अब मतिश्रुतज्ञानका विषयका नियमके अर्थि सूत्र कहैं हैं—

मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥ २६ ॥

अर्थ—मतिज्ञान अर श्रुतज्ञान इनि दोऊनिका विषयका नियम द्रव्यनिके असर्वपर्यायनिविषै है। समस्तपर्यायनिकूं नहीं जानैं है। इहां सूत्रमैं विषय शब्द नहीं है सो "विशुद्धिक्षेत्र" इत्यादिसूत्रतैं अनुवृत्ति आई है सो जाननी। इहां "द्रव्येषु"ऐसा बहुवचनतैं जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल

ए समस्त द्रव्य ग्रहण करने, तिनके असर्वपर्याय कहिए केईक पर्याय लेने सर्वपर्यायनिसहित इनका विषय नाहीं है। जातैं एकएक द्रव्यके अनंत अनंत त्रिकाल संबंधी पर्याय हैं। इहां कोऊ कहै, धर्मास्तिकायादिक अमूर्तिक द्रव्य हैं सो मतिज्ञानका विषय कैसैं होय यातैं सर्वद्रव्यनिविषै मतिज्ञान प्रवर्त्तै है ऐसे कहना अयुक्त है। ताकूं कहिए है ए दोष नाहीं है। जातैं अनिंद्रिय कहिए मन नामा अंतरंग करण है। द्रव्यमन है तिसका अवलंबनका धारक नोइंद्रियावरणकर्मके क्षयोपशमरूप लब्धिपूर्वक उपयोग है। सो अवग्रहादि-रूप पहले उपजै है पाछै तत्पूर्वक श्रुतज्ञान सर्वद्रव्यनिविषै आपके योग्य पर्यायनिविषै प्रवर्त्तै है ऐसा जानना। अब याकै अनंतर अवधिज्ञानका विषयनिबंध कहा है यातैं सूत्र कहैं हैं—

रूपिष्ववधेः ॥ २७ ॥

अर्थ—अवधिज्ञानका विषयका नियम रूपीपदार्थनिविषै है। इहां सूत्रविषै विषयनिबन्ध शब्दकी अनुवृत्ति पहिले सूत्रतैं लेनी। तथा "सर्वपर्यायेषु" इस पदकी हू पूर्वसूत्रतैं अनुवृत्ति लेणी। बहुरि रूपी कहनेतैं पुद्गलद्रव्य ग्रहण करना पुद्गलकी ही कितनेक पर्यायनिकूं जानै है अर पुद्गलद्रव्यका सम्बंधसहित जीवद्रव्यहूकूं जानै है। मुक्तजीवकूं तथा अन्य अमूर्तिक पदार्थनिकूं नहीं जानै है। अर अपने क्षयोपशमकै योग्य सूक्ष्म स्थूल रूप परणए तथा दूर क्षेत्र वा निकट क्षेत्रमैं वर्त्तते तथा अतीत अनागत वर्त्तमान कितनेक पर्यायसहित पुद्गलद्रव्यको साक्षात् प्रत्यक्ष जानै है। अब मनःपर्ययज्ञानका विषयका नियम कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य ॥ २८ ॥

अर्थ—जो रूपी द्रव्य सर्वावधिज्ञानका विषयपणाकरि कह्या तिसका अनन्तभाग करिए तिसका एक भागविषै मनःपर्ययज्ञान प्रवर्तै है। याका सामर्थ्य अतिसूक्ष्म द्रव्य जाननेका है। इहां कोई कहै—सर्वावधिका विषय तो परमाणु पर्यंतका है। अर ताका अनन्तवां भागकूं मनःपर्ययज्ञान जानै है। सो परमाणूमैं अनन्तवां भाग कैसैं संभवै। ताका समाधान—एक परमाणुमैं स्पर्श रस गन्ध वर्णके अनन्ता-

नन्त अविभाग परिच्छेद हैं, तिनके घटने बधनेकी अपेक्षा अनन्तका भाग संभवै है। अब केवलज्ञानका विषयानवन्ध कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥ २९ ॥

अर्थ—केवलज्ञानके विषयका नियम सर्व द्रव्यपर्यायनिविषै है। एक एक द्रव्यनिके त्रिकाल सम्बंधी अनन्तानन्त पर्याय हैं। सो सर्व द्रव्य अर सर्व द्रव्यनिकूं त्रिकालवर्ती अनन्तानन्त पर्यायनिकूं अक्रमतैं एकै काल प्रत्यक्ष केवलज्ञान जानैं है। ज्ञानकी स्वच्छताविषैं विना इच्छा सहज ही सर्व ज्ञय प्रत्यक्ष होय हैं, लोक अलोककूं जानै है। अर केवलज्ञानमैं शक्ति ऐसी है जो अनन्तानन्त लोक अलोक और होइ तो उनहूकूं जाननेकूं समर्थ है। ज्ञाननिका विषय तो कह्या, अब एक आत्माविषै अपने निमित्ततैं उपजे ज्ञान युगपत् केतेक होंय यातें सूत्र कहै हैं—

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥ ३० ॥

अर्थ—एक आत्माविषै युगपत् एक वा दोय, तीन, च्यार ऐसैं विकलपरूप होय हैं। जहां एक होय तहां केवलज्ञान होय। अर दोइ होय तहां मतिज्ञान श्रुतज्ञान होय। तीन होय तहां मति श्रुति अवधि होय। अथवा मति श्रुति मनःपर्यय होय। च्यार होय तो मति श्रुत अवधि मनःपर्यय होय। च्यारि सिवाय नहीं होय। जातैं केवलज्ञान क्षायिक है, असहाय है, समस्त ज्ञानावरणके क्षयतैं होय है। इहां क्षयोपशम ज्ञान कहांतैं होय?

इहां प्रश्न—जो क्षायोपशमिक ज्ञान तो क्रमवर्त्ती है, एक कालमैं एक ही ज्ञान प्रवर्त्तै है, सो इहां चार युगपत् कैसे कहे? ताका समाधान–जो ज्ञानावरणका क्षयोपशम होतैं च्यार ज्ञानकी जाननशक्तिरूप लब्धि तो एक कालमैं होय है। अर उपयोग इनिमैं एक काल एक ज्ञानस्वरूप ही होय है तथापि इहां उपयोगके पलटनेकी शीघ्रतातैं कालका भेद नहीं जान्याजाय है, अर सूक्ष्म कालभेद है ही। अब ये कहे जे मत्यादिक ते ज्ञाननामकरिही हैं कि अन्यथा भी हैं इस हेतुतैं सूत्र कहै हैं—

मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥ ३१ ॥

अर्थ—मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान ए तीन ज्ञान हैं। विपर्यय नाम मिथ्याका है। इहां सम्यग्ज्ञानका अधिकार है। सूत्रमें 'च' शब्द समुच्चयार्थ है। तातैं मति श्रुत अवधि ए तीन ज्ञान विपर्यय भी हैं अर सम्यक् भी हैं। इहां कोऊ पूछै इनके विपर्ययपणा काहेतैं होय ताकूं कहिए है—मिथ्यादर्शनका उदयकरि सहित एक आत्माविषै समवाय सम्बन्धरूप एकता होतैं विपर्यय होय है। कुमति कुश्रुत कुअवधि तथा याकूं विभंग भी कहिए। जैसैं कटुक तूंबा गिरी सहित होय तामैं दुग्ध क्षेपिए तो कटुक होजाय तैसैं मिथ्यादर्शनका उदय सहित आत्माविषै भी ज्ञान होय सो मिथ्याज्ञान होय है। इहां विपर्यय कहनेतैं मिथ्याज्ञान कह्या है। सो संशय अनध्यवसाय भी लेना। तहां मति श्रुत ज्ञान ही संशय विपर्यय अनध्यवसाय होतैं कुमति कुश्रुत ज्ञान होय हैं। अर अवधिज्ञानमें संशय नहीं होय है। कदाचित् अनध्यवसाय होय वा विपर्यय होय है तातैं कुअवधि कहिए वा विभंग कहिए।

अब कोऊ कहै हैं—मिथ्यादृष्टिकैहू रूपादिक विषयका ग्रहणमैं व्यभिचारका अभाव है तातैं विपर्ययपणाका अभाव है, जैसैं सम्यग्दृष्टि मतिज्ञानकरिकै रूपरसादिकनिकूं ग्रहण करै है तैसैं मिथ्यादृष्टी हू मतिअज्ञान जो कुमतिज्ञान ताकरिकै रूपादिकनिकूं ग्रहण करै है, बहुरि जैसैं घटादिकनिमैं रूपादिकनिकूं श्रुतज्ञानकरि निश्चय करै है परकूं उपदेश करै है तैसैं ही कुश्रुत ज्ञानकरि निश्चय करै परकूं उपदेश करै है तथा जैसैं अवधिज्ञानकरि रूपी पदार्थनिकूं निश्चय करै है तैसैं विभङ्गज्ञानकरिकै हू निश्चय करै है तातैं विपर्ययपणा नाहीं, ऐसी शङ्का होतैं सूत्र कहै हैं—

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—मिथ्यादृष्टिके विपर्ययज्ञान होय है सो सत्का तथा असत्का विशेषकूं नहीं जाननेतैं अपनी इच्छातैं जैसैं तैसैं वस्तुकूं ग्रहण करनेतैं उन्मत्तकी नाईं होय है। जैसैं मदिरादिकतैं उन्मत्त भया पुरुष अपनी इच्छातैं जैसैं तैसैं वस्तुकूं ग्रहण करै है तैसैं तैसैं मिथ्यादृष्टी भी सत् असत्को विशेष जान्याविना

अपनी इच्छातैं ग्रहण करै है। सत् कहिए विद्यमान असत् कहिए अविद्यमान अथवा सत् कहिए भली असत् कहिए बुरी ऐसैं सत् असत्का विशेषकूं नहीं जानै। सत्का असत् कहै तथा असत्कूं सत् कहै अथवा कहूं सत्कूं सत भी कहै कहूं असत्कूं असत् भी कहै। ऐसैं अपनी इच्छातैं जैसैं तसैं ग्रहणकरि कहै तहां विपर्ययज्ञान कहिए। जैसैं मतवाला कोऊ कालमैं माताकूं भार्या कहै, कोऊ कालमैं भार्याकूं माता कहै कोऊ कालमैं भार्याकूं भार्या भी कहै माताकूं माता भी कहै ऐसैं अपनी इच्छातैं मानै है अर निर्णय नाहीं है। तहां जो जैसाकूं जैसा भी कहै तो ताकै सम्यग्ज्ञान नाहीं।

जातैं वाकै निश्चयरूप निरधार करि जानना नहीं है। जातैं मिथ्यादृष्टी घटपटादिक पदार्थनिकूं नेत्रादिककरि घटपटादिक ही जानै है तो हू मिथ्यादृष्टीका घटकूं घटरूप जानना मिथ्या है अर सम्यग्दृष्टीका घटकूं घटरूप जानना सम्यक् है सो ही दिखावै हैं—

यद्यपि नेत्रादिक इन्द्रियनितैं पदार्थका रूपादिक ग्रहण करना समान है, तोहू मिथ्यादृष्टीकै कारणविपर्यय स्वरूपविपर्यय भेदाभेदविपर्यय ए तीन विपर्यय तो हैं ही। प्रथम कारणविपर्ययकूं कहै हैं। घटादिकनिका रूप तो जैसैं है तैसैं ही जानै हैं परन्तु इनिका कारणमैं मिथ्यादृष्टि विपरीत कल्पना करै है। ब्रह्माद्वैतवादी तो रूपादिकनिका कारण एक अमूर्तिक नित्य ब्रह्म ही है। ब्रह्मतैं भए ही मानैं हैं। अर सांख्यमती रूपादिनिका कारण एक अमूर्त्तिक नित्य प्रकृतिहीकूं कहैं हैं जो रूपादिक एक प्रकृतिहीतैं उपजैं हैं।

बहुरि नैयायिक वैशेषिकमती पृथ्वी आदिकै परमाणुनिमैं जाति भेद मानै हैं तिनमैं पृथ्वीविषै तो स्पर्श रस गन्ध वर्ण च्यार गुण मानैं हैं। जलविषै स्पर्श रस वर्ण तीन गुण ही मानैं हैं, गन्ध नहीं मानै हैं। बहुरि अग्निविषै स्पर्श वर्ण दोय गुण ही मानैं हैं, रस गन्ध नहीं मानै हैं। अर पवनविषै एक स्पर्श गुण ही मानैं हैं, रस गन्ध वर्ण नहीं मानैं हैं। तातैं पृथ्वी जल अग्नि पवन ए च्यार अपनी अपनी जातिके न्यारे न्यारे स्कन्धरूप कार्यकूं उत्पन्न करै हैं अर बौद्ध हैं ते पृथ्वी आदि च्यार भूत कहैं हैं। अर इनिके स्पर्श रस रूप गन्ध च्यार भौतिक कर्म हैं। इनि आठनिका समुदायरूप परमाणु होय है।

बहुरि चार्वाकमतवाले पृथ्वीके परमाणूनिकै तौ काठिन्यादि गुण अर जलके परमाणूनिकै द्रवत्वादि गुण अर अग्निके परमाणूनिकै उष्णत्वादि गुण अर पवनके परमाणूनिकै ईरणत्वादि गुण मानै हैं ते भिन्न भिन्न परमाणु पृथ्वी आदिक भिन्न स्कंधरूप उपजावै है। ऐसैं तो घटपटादि पदार्थनिकै कारणनिविषै विपर्ययपणा मानैं हैं। बहुरि स्वरूपविपर्ययकूं कहैं हैं। केई इनि समस्त पदार्थनिके स्वरूपविषै भी भेद मानैं हैं। केतेक तो रूप रसादिककूं निरंश निर्विकल्प मानैं हैं। इनमैं अंशभेद नाहीं मानैं हैं। तथा केतेक कहैं हैं जो रूपादिक बाह्यवस्तु हैं ही नहीं रूपादिकनिके आकार परणया ज्ञान ही है। तिस ज्ञानका आलम्बनरूप बाह्यवस्तु नाहीं। कोऊ सर्वथा नित्य ही मानैं हैं कोऊ अनित्य ही मानैं हैं, ऐसैं मिथ्यादर्शनके उदयतैं वस्तुका स्वरूपमैं विपर्यय मानैं हैं।

बहुरि भेदाभेद विपर्यय मानैं हैं ते केई तो कारणतैं कार्यको सर्वथा अभिन्न ही मानैं हैं तथा द्रव्यतैं गुणकूं भिन्न ही मानैं हैं तथा कारण कार्यकूं सर्वथा अभिन्न ही मानैं हैं। तथा समस्त द्रव्यनिकूं ब्रह्मतैं अभिन्न मानैं हैं। इत्यादि भेद अभेदका सर्वथैकांतका पक्षपाती भेदाभेदविपर्यय मानै हैं। ऐसैं मिथ्यादृष्टीके जाननेविषै विपरीतता पाइए है। तैसैं ही संशय अनध्यवसाय हू होय हैं। जहां शरीरादिक तथा रागादिक परद्रव्यमैं अर ज्ञानदर्शनादिरूप आत्मस्वभावमैं स्वपरका निर्णय नहीं, जो मैं ज्ञानादिक रूप हूं ऐसा संशयज्ञान है।

बहुरि केईनिकै धर्म अधर्ममैं संशय है। केईनिकै सर्वज्ञके अस्तित्वनास्तित्वविषै संशय है। केईनिकै परलोकके अस्तित्वनास्तित्वमैं संशय है। बहुरि केईनिकै सर्वही तत्त्वविषै अनध्यवसाय है। कहा करैं काहेतैं निर्णय करैं। हेतुवादरूप तर्कशास्त्र हैं ते तो कहूं ठहरैं नाहीं अर आगम हैं ते भिन्न भिन्न वस्तुके रूपकूं कहै हैं कोऊ कछू कहै कोऊ कछू कहै परस्पर बात मिलैं नाहीं। अर कोऊ समस्तका ज्ञाता सर्वज्ञ वा कोई मुनि प्रत्यक्ष दीखै नाहीं जो ताके वचन प्रमाण करिए अर धर्मका स्वरूप यथार्थ सूक्ष्म है सो कैसै निर्णय होय।

तातैं जो बडा जिस मार्ग चले आये तैसैं चलना प्रवर्त्तना ठीक है। निर्णय होता नाहीं ऐसैं अभिप्रायकूं अनध्यवसाय कहिए है। ऐसैं संशय विपर्यय अनध्यवसाय होय हैं। तहां अवधिज्ञानविषै विपर्यय देशावधि ही होय है। परमावधि सर्वावधि मनःपर्यय हैं ते केवलज्ञानकी ज्यौं सम्यक्स्वरूपही हैं विपर्ययरूप नाहीं होयहैं। ए ज्ञान सम्यक्दर्शनविना होय नाहीं। ऐसैं प्रमाण अप्रमाणका भेद दिखावनेकै अर्थि विपर्ययज्ञानका स्वरूप कह्या॥ अब प्रमाणके अनन्तर कहे जे नय तिनका निर्देश करनेकूं सूत्र कहैं हैं–

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः ॥ ३३ ॥

अर्थ—नैगम संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ एवंभूत ऐसैं ये सात नय हैं। इनि नयनिका सामान्य स्वरूप अर विशेष स्वरूप कहनेयोग्य है। इनिका सामान्य स्वरूप–ऐसा जो वस्तु अनेक धर्मरूप है तहां काहू एक धर्मकी मुख्यता लेय अविरोधरूप जाकरि साध्य पदार्थकूं जानिए सो नय है। सो ही ग्रन्थनिमैं कह्या है। गाथा–"णाणाधम्मजुदं पि य एयं धम्मं पि उच्चदे अत्थं। तस्सेव विवक्खादो णत्थि विवक्खा हि सेसाणं॥ १॥"

अर्थ—नानाधर्मनिकरि युक्तहू अर्थकूं नयके वशतैं एक रूपकरि कहिए हैं। जातैं तिस एक धर्मके कहनेकी इच्छा है अन्य शेष धर्मनिके कहनेकी इच्छा नाहीं है। बहुरि कहे जे सप्त नय तिनका विशेष ऐसा है सो कहैं हैं—

जे द्रव्य हैं ते तीन कालके पर्यायनितैं अन्वयरूप हैं जोड़रूप हैं। द्रव्य हैं ते भूतपर्यायनितैं वर्त्तमान पर्यायनितैं अर भविष्यत्पर्यायनितैं भिन्न नहीं हैं। तातैं जो अतीतपर्यायनिमैं वर्त्तमानवत् संकल्प करै अर आगामी पर्यायमैं भी वर्त्तमानवत् संकल्प करै अर वर्त्तमान पर्यायनिमैं जो पर्याय निष्पन्न कहिए पूर्ण भया तथा अनिष्पन्न कहिए परिपूर्ण नहीं भया ताकूं निष्पन्नरूप संकल्प करै ऐसैं ज्ञानकूं तथा वचनकूं नैगमनय कहिए हैं। बहुरि जो समस्तवस्तूनिकूं तथा समस्त पर्यायनिकूं संग्रहरूपकरि एकस्वरूप कहै सो संग्रहनय है।

बहुरि जो अनेकप्रकार भेदकरि व्यवहार करै भेदै सो व्यवहारनय है। बहुरि जो सरल सूधा वर्त्तमान पर्यायमात्रकों ग्रहण करै सो ऋजुसूत्र है। सो सूक्ष्म स्थूल भेदकरि दोय प्रकार है। बहुरि लिंग संख्या साधन काल उपग्रह कारक इत्यादिकमैं जो व्यभिचार ताको दूरकरनेविषै तत्पर सो शब्द नय है। बहुरि एकशब्दके अनेक अर्थ हैं तिनमैं सों कोऊ एक प्रसिद्ध अर्थकों ग्रहणकरि तिसहीको कह्या करै सो समभिरूढ़नय है। बहुरि वस्तुका जिस धर्मकी मुख्यताकरि नाम होय सो तिसही क्रियारूप जिस काल परिणमै ताको तिसही नामकरि कहै सो एवंभूतनय है। ऐसैं ए सात नय हैं। इनिका उदाहरण कहिए है। तहां नैगमनयके तीन भेद हैं। अतीकालमैं जो वस्तु भई ताकूं वर्त्तमानकीज्यों कहै तथा भविष्यत् कालसम्बन्धीकों निपज्या वर्त्तमानज्यों कहै।

बहुरि जो वस्तु करनेका आरम्भ कीया अर कछु निपज्या कछु नहीं निपज्या ताकों निपज्या ही कहना सो वर्त्तमान नैगमनय है। जैसैं कोऊ भात पचाइवेकी सामग्री भेली (इकट्ठी) करै था तिसकूं काहूनैं पूछी तू कहा करै है? तब वानैं कह्या मैं भात पचाऊ हूं। तहां भातपर्याय तो प्रकट नहीं भई अर भात पचाइवाके अर्थि इंधन मेलै है वा जल भरै है तो हू नैगमनयतैं भविष्यत्पर्यायमैं वर्त्तमानका संकल्प करै सो नैगमनय है। बहुरि नैगमनयके अन्य प्रकार भी तीन भेद हैं। १ द्रव्यनैगम, २ पर्यायनैगम, ३ द्रव्यपर्यायनैगम। सो इनका स्वरूप अन्य ग्रन्थनितैं जानना।

बहुरि सामान्यरूप जो ग्रहण तिसकूं संग्रहनय कहिए। जैसैं सर्वद्रव्य हैं सो सत्तालक्षणसंयुक्त हैं तथा जीववस्तु चित्सामान्यकरि एक है तथा अजीवसामान्यकरि जीवद्रव्यविना पञ्चद्रव्य अजीव हैं। तथा पुद्गलसामान्यकरि समस्त पुद्गल एकद्रव्य हैं इत्यादि जानने। बहुरि संग्रहनयकरि ग्रहण किये जे वस्तु तिनका विधिपूर्वक व्यवहरण कहिए भेदरूप करना सो व्यवहारनय है। जैसैं—सत् कह्या सो सत् तो द्रव्य भी हैं गुण भी हैं कोनकूं ग्रहण करिए तातैं सतका व्यवहारनयकरि भेद करैं तदि व्यवहार प्रवर्त्तै। सामान्य सत्मात्र कहनेतैं ही व्यवहार नहीं प्रवर्त्तै तथा द्रव्य ऐसैं कहते हू व्यवहार नहीं प्रवर्त्तै है।

तातैं व्यवहारका आश्रय करिए तदि द्रव्य दोय प्रकार हैं। जीवद्रव्य तथा अजीवद्रव्य ऐसैं जीवद्रव्यमैं भी व्यवहारनयकरि देव नारकादि भेद होय हैं। तथा जीवका संसारी मुक्त ऐसे दोय भेद होय हैं तथा अजीवके पुद्गलादि पांच भेद होय हैं तथा पुद्गल हैं ते अणु स्कंध ऐसै दोय प्रकार हैं तथा स्कंध अनेकप्रकार हैं इत्यादि अनेकप्रकार भेद करता चल्या जाय जहां फेरि भेद नहीं होय तहां ताई व्यवहारनय है। बहुरि दो अतीत अनागत कालसम्बन्धी पर्यायनिकूं छांडि वर्त्तमानका जो एक समय, तिस समयवर्त्ती पर्यायकूं ग्रहण करनेवाला ऋजुसूत्रनय है। जातैं वर्त्तमानपर्यायका जघन्यस्थिति समयमात्र ही है।

वस्तु है सो समय समय परिणमै है सो एक समयवर्त्ती पर्यायकूं अर्थपर्याय कहिए सोई अर्थपर्याय ऋजुसूत्रनयका विषय है तिस मात्र ही वस्तुकों कहै हैं॥ बहुरि घडी मुहूर्त्तादिक कालकों भी व्यवहारमैं वर्त्तमान कहिए है। सो तिस वर्त्तमान कालस्थायी पर्यायकूं भी साधे। तथा स्थूल ऋजुसूत्रसंज्ञा है। जैसैं—मनुष्यादि पर्याय हैं सो अपने आयुपरिणाम रहै हैं, ऐसैं स्थूल अपेक्षा वर्त्तमान पर्यायका ग्रहणकिया सो स्थूल ऋजुसूत्रनय है॥

आगैं शब्दनयकूं कहिए है—लिंग संख्या साधन इत्यादिकका व्यभिचारकूं दूरि करनेंविषै तत्पर सो शब्दनय है। तहां जो स्त्रीलिंगविषैं पुरुपलिंग कहना जैसैं तारका शब्द तो स्त्रीलिंग है ताकूं ही 'स्वाति' ऐसा पुरुपलिंग कहना अर पुरुपलिंगविषैं स्त्रीलिंग कहना जैसैं अवगम ऐसा पुरुपलिंग है ताकूं 'विद्या' ऐसा स्त्रीलिंग कहना।

बहुरि स्त्रीलिंगविषैं नपुंसकलिंग कहना जैसैं वीणा ऐसा स्त्रीलिंग है ताकूं 'आतोद्य' ऐसा नपुंसकलिंग कहना। बहुरि नपुंसकलिंगविषैं पुरुपलिंग कहना जैसैं द्रव्य ऐसा नपुंसकलिंगकूं 'परशु' ऐसा पुरुपलिंग कहना। बहुरि एक ही वस्तुकूं तीनूं लिंग कहना ऐसैं तो लिंगव्यभिचार है या एकवचनकूं द्विवचन बहुवचन कहना, बहुवचनकूं एकवचन कहना, ऐसैं संख्याव्यभिचार है, बहुरि मध्यपुरुषकी क्रिया कहनेयोग्यमैं प्रथमपुरुष या उत्तमपुरुषकी क्रिया कहना सो पुरुषव्यभिचार है।

बहुरि कालव्यभिचार जैसैं "विश्वदृश्वाऽस्य पुत्रो जनिता" याका अर्थ ऐसा—जो विश्व कहिये समस्तलोक ताकं जो देखता भया सो याकै पुत्र होसी। इहां सो विश्वकूं देखताभया यो तो अतीतकालवाचक शब्द है। अर होसी सो आगामीकालवाची तथा होणहार था सो हो गया इहांभी होणहार तो आगामीकालकूं कहै हैं अर होगया यो अतीत कालकूं कहै हैं। ऐसैं कालव्यभिचार भया। बहुरि आत्मनेपदीकूं परस्मैपद भया ऐसैं ही उपसर्ग व्यभिचारकूं व्यवहारनय अन्याय मानै है तथापि शब्दनयका एहि विषय हैं। जो जैसा शब्द कहै तैसा ही अर्थमैं भेदरूप मानै है। इस शब्द नयतैं समस्तविरोध मिटै है।

आगैं समभिरूढनयका लक्षण कहै हैं—तहां जैसैं गोशब्द है सो गमनादि अनेक अर्थविषै प्रवर्त्तै है तो हू मुख्यताकरि गो नाम बलध पशुका ग्रहण किया। ताकों चालतां बैठतां सोवतां भी समस्तलोक गौ ही कहै है। सो समभिरूढनय है। आगैं एवंभूतनयकूं कहै हैं—जिस कालमैं जो क्रिया करता होय तिस कालहीमैं ताकूं तिस नामकरि कहै सो एवंभूतनय है।

जैसैं—देवनिके पतिकूं परमैश्वर्यपणानैं जिस कालमैं प्राप्त होय तिस कालहीमैं इंद्र कहैं। पूजन अभिषेकादि करतेकूं इन्द्र नहीं कहै तथा जिस कालमैं शक्तिरूपक्रियाकूं करै तिस कालमैं शक्र कहैं अन्य कालमैं नाहीं कहैं। ऐसैं सप्तनय जानने। पूर्वपूर्वनयकैं आगैं आगैं अनुकूल विषय है। वा इनका उत्तरोत्तर अल्पविषय है। बहुरि संक्षेपतैं द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक ऐसैं दोय नय हैं। तहां द्रव्य है मुख्य प्रयोजन जाका सो द्रव्यार्थिक कहिए है। अर पर्याय है प्रयोजन जाका सो पर्यायार्थिक है। तहां नैगम संग्रह व्यवहार इनिकूं तो द्रव्यार्थिकनय कह्या है। अर ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ एवंभूत ए पर्यायार्थिक नय हैं।

बहुरि कोऊ पूछै—जो निश्चय व्यवहार दोय नय प्रसिद्ध सुनिये हैं तिनका स्वरूप कैसे है? तहां कहिए है—जो पदार्थके निजस्वरूपकों मुख्य करै सो निश्चय कहिए है। तिस निश्चयनयके द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दोय भेद हैं जातैं वस्तुका स्वरूप द्रव्यपर्यायरूप ही हैं। ए दोऊ नय तत्वका स्वरूप हैं सत्यार्थ हैं।

अर व्यवहारनय है सो उपनय है। जहां अन्य पदार्थके भावको अन्यविषै आरोपण करै तथा परनिमित्ततैं भए जे नैमित्तिक भाव ताकूंही वस्तुका निजभाव कहै। तथा आधार आधेयभाव आदि प्रयोजनके वशतैं आरोपण कीजिए सो इत्यादिक व्यवहारनय है। तथा एकदेशमैं सर्वदेशका उपचार करै। तथा कारणविषै कार्यका उपचार करै इत्यादिक सर्वही व्यवहार कहावै है।

बहुरि व्यवहारनयके तीन भेदभी कह्या है। सद्भूतव्यवहार, असद्भूतव्यवहार, उपचरितव्यवहार। तिनमैं जीवका रागादि भावकर्मका कर्त्ता कहिए सो सद्भूतव्यवहारनय है। जातैं जीवके सत्तामैं ए रागादिक पर्याय हैं। बहुरि जीवकौं ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म वा देहादिक नोकर्म तिनका कर्त्ता कहिए सो असद्भूतव्यवहारनय है। बहुरि जीवकौं घटपटादि पुद्गलका कर्त्ता कहिए सो उपचरितव्यवहारनय है। जातैं जहां मुख्यवस्तु तो नहीं होय अर प्रयोजन तथा निमित्तके वसतैं अन्यद्रव्य अन्यगुण अन्यपर्यायनिविषै आरोपण करना सो उपचार है। जैसैं-किसीका बालककै क्रूरपणा शूरपणा देखिकरि कह्या जो यो बालक सिंह है सो बालक सिंहवत् तीक्ष्णनख कपिलनयनादिरूप तो है नहीं परन्तु क्रूरपणा शूरपणा देखि सिंह कह्या सो उपचार है। याहीकूं व्यवहारभी कहिए अर असत्यार्थ भी कहिए, गौण भी कहिए है। तोहू व्यवहारनय सर्वथा असत्य नहीं है जो व्यवहारकूं सर्वथा असत्य ही कहैं तौ एकेंद्रियादिक जीवनिकूं व्यवहार नयकरि जीव कह्या है सो व्यवहार सर्वथा असत्य ही होई तदि जीवहिंसादिकका कहना असत्य होय जाय, जातैं निश्चयनयकरि तो जीव नित्य है अविनाशी है। याकी हिंसा नहीं होय तो समस्तव्यवहारका लोप हो जाय तातैं व्यवहारनय सर्वथा असत्यार्थ नहीं है।

बहुरि कह्या जो निश्चयनय सो भी शुद्धनिश्चय अशुद्धनिश्चय ऐसैं दोय भेद हैं। तहां जीवकूं मतिज्ञानादिकका कर्त्ता कहिए सो अशुद्धनिश्चयनय है। तथा शुद्धज्ञानदर्शन जो केवलज्ञान केवलदर्शन तिनका कर्त्ता आत्माकूं कहिये सो शुद्ध निश्चयनय है, तातैं निश्चयव्यवहार दोऊ नयनिका यथार्थपन जानि अंगीकार करना योग्य है। सो इस गाथाविषै कह्या है—

जइ जिणमये पवज्जह तो मा ववहारणिच्छयं मुयह ।
एक्केण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण पुण तच्चं ॥ १ ॥

अर्थ—भो ज्ञानीजन हो ! जो जिनमतमैं प्रवर्त्तोहो तो व्यवहारनिश्चयकों मति छांडो। जो निश्चयनयका पक्षपाती होइ व्यवहारनयकूं छांडोगे तो रत्नत्रयस्वरूप धर्मतीर्थकी प्रवृत्तिका अभाव होयगा अर जो व्यवहारनयका पक्षपाती होय निश्चयनयकूं छांडोगे तो तत्त्वके शुद्धस्वरूपका अभाव होयगा, तातैं पहले तो निश्चयव्यवहार दोऊनिकूं जानना पाछैं यथायोग्य अंगीकार करना पक्षपाती नहीं होना। निश्चयका निश्चयरूप व्यवहारका व्यवहाररूप श्रद्धान करना युक्त है। एकहीका श्रद्धान एकांतमिथ्यात्व है। जिनशासनके वेत्ता हठग्राही नहीं होइ हैं। जातैं जिनमतका कथन अनेक प्रकार है, अविरोधरूप है।

बहुरि नयनिके बहुत भेद हैं। तथा नयनिकी शाखा उपशाखा बहुत विस्ताररूप हैं। ए नयनिके भेद काहैतैं होय हैं जातैं द्रव्य अनन्तशक्तिकूं लिए हैं तातैं एकएकशक्तिप्रति भेदरूप भए बहुत भेद होय हैं। तहां नय मुख्य गौणपणाकरि परस्पर सापेक्षारूप भए संते अधिगमका कारण हैं। वस्तु है सो अनेक धर्मस्वरूप है। एकस्वभाव अनेकस्वभाव भेदस्वभाव अभेदस्वभाव चेतनस्वभाव अचेतनस्वभाव मूर्त्तस्वभाव अमूर्त्तस्वभाव शुद्धस्वभाव अशुद्धस्वभाव अन्तरंगत्व बहिरंगत्व हेतुत्व अहेतुत्व अपेक्षत्व अनपेक्षत्व इत्यादि सविरुद्ध अविरुद्धरूप अनेक धर्म हैं। ऐसैं अनेकधर्मरूप वस्तु हैं सो तिनके अधिगमका उपाय प्रमाणनय है। प्रमाणनयके जानेविना जे पुरुष वस्तुके स्वरूपको साधनेका अधिकारी बनैं हैं ते अज्ञान हैं। तिनकै अधिगम नाहीं होय है। अन्य मतका सिद्धान्त एकान्त पक्षकरि दूषित है अर जिनमतके सिद्धांत सर्वत्र स्याद्वादकरि व्यापक हैं।

जातैं वस्तुकै अनेक धर्मस्वरूपपना है। जहां कोऊ एक धर्मके कहनेकी इच्छाकरि एक धर्मकी तो विवक्षा करै अन्य धर्मके कहनेकी विवक्षा नाहीं करै तहां ऐसा तो नाहीं—जो अन्य धर्मका अभाव तो नहीं करै है। इहां तो प्रयोजनकै आश्रय एक धर्मकी मुख्यताकरि कहैं हैं जो अवशेष अन्य धर्मनिकी

विवक्षा नहीं करै तो ताका लोप नाहीं करिसकै है। तथा सापेक्ष कहिए अपेक्षा सहित होय सो सुनय है। अर प्रतिपक्षी धर्मका सर्वथा अभाव मानै है सो दुर्नय है नयाभास है। ऐसैं इस अध्यायमैं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी एकताकूं मोक्षमार्ग कह्या। बहुरि सम्यग्दर्शनका लक्षण कह्या। बहुरि सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति दोयप्रकार कहि, सम्यग्दर्शनके विषयभूत सप्ततत्त्व कहे। बहुरि तत्त्वनिके स्थापनकों व्यवहारका व्यभिचार मेटनेकूं नाम स्थापनादि च्यार निक्षेप कहे।

बहुरि प्रमाणनयनिकरि सम्यग्दर्शनादिकनिका तथा तिनके विषय जीवादिकतत्त्वनिका ज्ञान होय है। बहुरि निर्देश स्वामित्वादिक छह अनुयोगनिकरि तथा सत्संख्यादिक अष्ट अनुयोगनिकरि तत्त्वार्थनिका अधिगम कह्या। बहुरि मत्यादि पञ्च ज्ञानके भेद कहि फिरि मतिज्ञानके अवग्रहादि भेद कहि तीनसै छत्तीस भेद कहि श्रुतज्ञानका स्वरूप भेद कह्या। बहुरि अवधिज्ञानका स्वरूप दोय सूत्रनिमैं कह्या। बहुरि मनःपर्ययज्ञानका भेदस्वरूप कहि अवधि मनःपर्ययका विशेष कह्या। आगैं पांचू ज्ञानका विषय तीन सूत्रमैं कहि अर एक जीवकै एक काल च्यार तांई ज्ञान होय ऐसा कहि। बहुरि मति श्रुत अवधि विपर्यय भी होय है ऐसा कहि ताका कारण कह्या। बहुरि नैगमादि सप्त नयकी संज्ञा कही जैसे —

ज्ञानदर्शनयोस्तत्त्वं नयानां चैव लक्षणं।
ज्ञानस्य च प्रमाणत्वमध्यायेऽस्मिन्निरूपितं ॥ १ ॥

अर्थ—ऐसैं इस प्रथम अध्यायमैं ज्ञानका अर दर्शनका तो स्वरूप वर्णन किया अर नयनिका लक्षण कह्या अर ज्ञानके प्रमाणपणा कह्या॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ऐसैं तत्त्वार्थका है अधिगम जामैं ऐसा दशाध्यायरूप जो मोक्षशास्त्र तिसमैं प्रथम अध्याय समाप्त भया ॥ १ ॥

दोहा।

है जामैं तत्त्वार्थका, अधिगम सब सुखदाय। मोक्षशास्त्र मङ्गलमयी, नमो प्रथम अध्याय ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

दोहा ।

राजैं सहजस्वभावतैं, तजि परभाव विभाव ।
नमो आप्तके परमपद, प्रकटै शुद्ध स्वभाव ॥ १ ॥

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥

अर्थ—औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदयिक, पारिणामिक ए जीवके पांच भाव हैं। ते जीवके निजतत्त्व हैं ॥ जैसैं मलिनजलके विषै कतकादिद्रव्यका मिलापतैं कर्दम मल तो नीचैं बैठिजाय है जल उज्वल होय जाय है तैसैं कारणके वशातैं प्रतिपक्षी कर्मकी शक्तिका उदय नहीं होना, आत्माकी विशुद्धता होना सो उपशमभाव है ॥ १ ॥

बहुरि जैसैं कतकद्रव्यके सम्बन्धतैं जाका कर्दम तो नीचे बैठिगया अर जल ऊपरि निर्मल होइ गया तिस जलकूं अन्य पवित्र उज्वल भाजनमैं धारण किया कर्दम निकासि दूरि डारि दिया तिस जलमैं अत्यन्त उज्वलता रहै है तैसैं प्रतिपक्षी कर्मका अत्यन्त अभाव होता संता आत्माके भावनिमैं अत्यन्त विशुद्धता होना सो क्षायिकभाव हैं ॥ २ ॥

बहुरि जैसैं प्रक्षालनिके बसतैं मथेभये कोदूनिमैं मदशक्तिका कुछ क्षीणपणा कुछ अक्षीणपणा प्रकट होय है तैसैं क्षयोपशमरूप कारणके वशातैं प्रतिपक्षी कर्मके सर्वघातिस्पर्द्धकनिका उदय नहीं होना सो उदयाभावी क्षय अर उपरितन निषेकनिका सत्तामैं उपशम रहना अर देशघातिस्पर्द्धकनिका उदय होना सो क्षायोपशमिकभाव है याहीकूं मिश्रभाव कहिए है ॥ ३ ॥

बहुरि द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप निमित्तके वशातैं विपच्यमान कर्मका फल प्रकट होना अपना रस देना सो उदय है। उदयतैं भाव होय सो औदयिकभाव हैं ॥ ४ ॥

बहुरि जहां कर्मकी अपेक्षा नहीं द्रव्यका आत्मस्वरूप ही आत्मपरिणाम ही जाकूं निमित्त होय सो पारिणामिकभाव है ॥ ५ ॥ ऐसें ए जीवके पांच भाव कहे। अब इन पंचभावनिके भेद कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमं ॥ २ ॥

अर्थ—औपशमिकभाव दोय प्रकार है। क्षायिकभाव नव प्रकार है। मिश्रभाव अठारह प्रकार है। औदयिकभाव इकवीस प्रकार है। पारिणामिकभाव तीन प्रकार है ऐसें पंचभावनिके त्रेपन भेद हैं। अब उपशमभावनिके दोय भेदनिकूं कहै हैं—

सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥

अर्थ—उपशमसम्यक्त्व अर उपशमचारित्र ऐसे उपशमभाव दोय प्रकार है। तहां अनंतानुबन्धी क्रोधमानमायालोभ ए चारित्रमोहकी च्यारि अर मिथ्यात्व सम्यक्मिथ्यात्व अर सम्यक्त्व ए तीन प्रकृति दर्शनमोहनीकी ऐसें सप्तप्रकृतिनिका उपशम होनेतें उपशमसम्यक्त्व होय है। अर समस्त चारित्रमोहनीयकर्मके उपशमतें उपशमचारित्र होय है। कोऊ पूछै अनादिमिथ्यादृष्टीभव्यकै कर्मके उदयकरि कलुषता होनेसूंतें सप्तप्रकृतिनिका उपशम होना कैसें होय। ताका उत्तर कहै हैं—जो काललब्ध्यादिकनिकी अपेक्षातें सप्तप्रकृतिनिका उपशम होय है सो कौनकै होय, सो कहै हैं—नरकादि च्यारोंगतिनिविषैं अनादि वा सादि मिथ्यादृष्टी संज्ञी पर्याप्त गर्भज मन्दकषायका धारक ज्ञानोपयोगी जाग्रत अवस्थामैं करणलब्धिविषै उत्कृष्ट जो अनिवृत्तिकरण ताका अन्तसमयविषै प्रथमोपशमसम्यक्त्वग्रहण होय है।

इहां ऐसा जानना जो मिथ्यादृष्टिगुणस्थानतें छूटि उपशमसम्यक्त्व होय ताका नाम प्रथमोपशमसम्यक्त्व है। अर उपशमश्रेणी चढतें जो क्षयोपशमसम्यक्त्वतें जो उपशमसम्यक्त्व होय ताका नाम द्वितीयोपशमसम्यक्त्व है। प्रथमोपशमसम्यक्त्व होनेके पहिले मिथ्यादृष्टिगुणस्थानविषै पंच लब्धि होय हैं—क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि, करणलब्धि हैं, ये पंच लब्धि हैं तिनमैं

च्यार तो लब्धि भव्यकै वा अभव्यनिकै दोऊनिकै होजाय है परन्तु करणलब्धि भव्यहीकै वा सम्यक्त्व होनेका नियमतैं ही होय है। सातिशयमिथ्यादृष्टिके जब करणलब्धि होय है तदि सम्यक्त्वके उपजनेका नियम है। अर सातिशय अप्रमत्तगुणस्थानवाला करणानिकै सम्मुख होय तदि चारित्रमोहनीका उपशमावनेका वा क्षपावनेका नियम है। तहां जिस कालमैं ज्ञानावरणादिक अप्रशस्तप्रकृतिनिका समूहका अनुभाग जो रस देनेकी शक्ति समयसमयप्रति अनंतगुणा घटता अनुक्रमकरि उदय होय, जो प्रथमसमयमैं रस दिया, तिसमैं दूजै समय अनंतगुणा घटता, तातैं तीसरे समय अनंतगुणा घाटि, ऐसैं समयसमयप्रति अनन्तगुण घाटिरूप उदय होय तिस कालमैं क्षयोपशमलब्धि होय है ॥ १ ॥

बहुरि जो क्षयोपशमलब्धिके प्रभावतैं जीवके सातावेदनीयादि शुभबंध करनेकूं कारण धर्मानुरागरूप शुभपरिणामनिकी प्राप्ति, सो विशुद्धिलब्धि है ॥ २ ॥ बहुरि जो षड्द्रव्य नवपदार्थनिके उपदेश करनेवाले आचार्यादिकनिके संगमका लाभ होना तथा तिनके उपदेशकी प्राप्ति होना तथा तिनका उपदेश्या पदार्थके धारनेकी प्राप्ति सो तीसरी देशनालब्धि है। अर जहां नरकादिकविषे उपदेश देनेवाला नाहीं तहां पूर्वभवविषै धारया हुवा तत्त्वार्थके संस्कारका बलतैं सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति जानना ॥३॥ बहुरि पूर्वोक्त तीनलब्धिसंयुक्त जीव सो समयसमय विशुद्धताकरि वर्द्धमान होतेसन्तै आयुकर्मविना अन्य सप्त कर्मनिका अन्तःकोटाकोटीसागरमात्रस्थिति अवशेष राखै अर घातियानिका लता दारुरूप अर अघातियानिका निंब कांजीररूप द्विस्थानगत अनुभाग इहां अवशेष रहै तदि प्रायोग्यलब्धि है। अर घातियानिका अस्थिशैलरूप अघातियानिका विषहालाहलरूप अनुभाग नहीं होय तदि प्रायोग्यलब्धि है।

बहुरि संक्लेशी संज्ञी पञ्चेंद्रिय पर्याप्तकै सम्भवता ऐसा उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अर उत्कृष्टस्थिति अनुभाग प्रदेशका सत्व, अर विशुद्धक्षपकश्रेणीकै मांहि सम्भवता ऐसा जघन्य स्थितिबन्ध अर जघन्यस्थिति अनुभाग प्रदेशका सत्त्व, इनिकों होतै जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वकूं नहीं ग्रहण करै है। जातैं जघन्य स्थितिबन्धादिक करनेवाला जीव तो पहला सम्यग्दृष्टि है। प्रथमोपशमसम्यक्त्वकै सन्मुख भया मिथ्या-

दृष्टि जीव सो विशुद्धिताकी वृद्धिकरि बधता प्रायोग्यलब्धिका प्रथमसमयतैं लगाय पूर्वस्थितिकै संख्यातवैं भागमात्र अन्तःकोटाकोटीसागरप्रमाण आयुविना सातकर्मनिकी स्थितिबन्ध करैहै। बहुरि चोंतीस बन्धापसरण करै है। तिनका विशेष कथन लब्धिसार ग्रन्थतैं जानना ॥ ४ ॥

बहुरि पञ्चमी करणलब्धि तिसका काल अन्तर्मुहूर्त्त है। तिसमैं अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण ऐसैं तीन करणपरिणामकषायनिकी मन्दताते चढते परिणाम हैं, सो इनिका सविस्तर कथन है। अर तिनका गुणश्रेणीनिर्ज्जरा, गुणसंक्रमण, स्थितिखण्डन, अनुभागखण्डन, इत्यादिक आवश्यकनिका होना इत्यादिक कथनी लिखे ग्रन्थ बहुत हो जाय, तातैं सविस्तर जाननेका इच्छुक श्रीलब्धिसारजीतैं जानहू ॥५॥

अब इहां प्रयोजन ऐसा, जो इस अनिवृत्तिकरणका अन्तसमयविषै मिथ्यात्व अर अनंतानुबंधीका उपशम होय तदि उपशमसम्यक्त्व प्रकट होय है। ऐसैं चारित्रमोहके उपसमावनेतैं उपशमचारित्र होय है। यो उपशमसम्यक्त्व चारूं ही गतिमैं उपजै है अर पर्याप्तअवस्थामैं ही उपजै है। तिनमैं नारकीनिकै पर्याप्त अवस्थामैं हू अन्तर्मुहूर्तपाछैं उपजै है तिनमैं तीन पृथ्वी पर्यंतके नारकीनिकै तो तीन कारणनिकरि ही उपजै है। केइकनिकै जातिस्मरण करिकैं केइकनिकै धर्म श्रवणकरिकैं केइकनिकै वेदनाका अनुभव करिकै सम्यग्दर्शन उपजै है।

बहुरि तिर्यंच पंचेन्द्रियपर्याप्तके उपजै तो जन्म लीएतैं पृथक्त्वदिवस उपरांति उपजै पहली नहीं उपजै। सो समस्तही द्वीपसमुद्रनिविषै जातिस्मरण धर्मश्रवण तथा जिनबिम्बदर्शन इन तीन कारणनिकरि सम्यक्त्व उपजै है। अर मनुष्यनिमैं हू पर्याप्त अवस्थाहीमै उपजै अर अष्टवर्षप्रमाण अवस्थाकै उपरिही उपजै पहली नहीं उपजै। तिनकै जातिस्मरण तथा धर्मश्रवण तथा जिनबिम्बदर्शन इन तीन कारणनिकरि सम्यक्त्व उपजै।

बहुरि देवपर्याप्तनिकै अन्तर्मुहूर्तके ऊपरि उपजै तिनमैं भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी अर सहस्रारपर्यंत द्वादश स्वर्गके कल्पवासीनिकै जातिस्मरण धर्मश्रवण तथा जिनमहिमादर्शन अर अन्य देवनिकी

ऋद्धिके देखनेतैं प्रथमसम्यक्त्व उपजै है। अर तेरमा स्वर्गलोकनैं आदिकरि उपरिमैं ग्रैवेयकनिपर्यंत देवनिकै एक देवऋद्धिदर्शनविना तीन कारणनिकरि सम्यक्त्व उपजै है। अर नव अनुदिश अर पञ्च अनुत्तरवासी देव हैं ते पूर्वजन्मतैं ही सम्यक्त्व लिए उपजै हैं। वहां मिथ्यादृष्टीनिका उत्पाद ही नहीं है। बहुरि अष्टाविंशतिप्रकार मोहनीयका उपशम होनेतैं उपशमचारित्र होयहै। सो उपशमचारित्र ग्यारमैं गुणस्थानमैं ही होय है। अब नवप्रकारके क्षायिकभाव कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥ ४ ॥

अर्थ—केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग, क्षायिकवीर्य, बहुरि चकारके कहनेतैं ज्ञायिकसम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र ए नव क्षायिकभाव हैं। तिनमैं ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण कर्मके अत्यन्त क्षय होनेतैं ज्ञानदर्शन क्षायिक होय हैं अर दानांतराय नाम कर्मके अत्यन्तक्षयतैं अनन्तप्राणीनिकै उपकार करनेवाला दिव्यध्वनिकूं आदि लेय क्षायिकअभयदान होय है। बहुरि लाभांतरायका अत्यन्तक्षयतैं कवलाहारक्रियाकरिरहित भगवान् केवलीकै शरीरमैं बलाधानका कारण अर अन्य मनुष्यनितैं असाधारण परमशुभ सूक्ष्म नोकर्मपुद्गल समयसमयप्रति सम्बन्धकूं प्राप्त होय है। तिन पुद्गलनितैं औदारिक शरीरका किंचित् ऊन कोटीपूर्ववर्षनिकी स्थिति रहैहै सोही क्षायिक लाभ है।

बहुरि भोगांतरायके अत्यन्त अभावतैं अतिशयवान् पञ्चवर्णके सुगन्धपुष्पनिकी वर्षा तथा चरणारविन्दके नीचैं दोयसै पचीस कमलनिकी रचना तथा सुगन्धधूप मन्द सुगन्धपवन इत्यादिक अनेकविशेषनिको लिए क्षायिक भोग हैं। बहुरि उपभोगांतरायकर्मके अत्यन्तक्षयतैं सिंहासन छत्रत्रय वीजना अशोकवृक्ष प्रभामण्डल अतिगम्भीर देवदुन्दुभी इत्यादि विभूति प्रकट होय, ते क्षायिकउपभोग हैं। बहुरि वीर्यांतरायकर्मके अत्यन्तक्षयतैं अनन्तवीर्य प्रकट होय हैं। बहुरि मिथ्यात्व सम्यङ्मिथ्यात्व सम्यक्त्व अर अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ इनि सातप्रकृतिनिका अत्यन्तअभावतैं क्षायिकसम्यक्त्व प्रगट होयहै।

बहुरि समस्त चारित्रमोहके अभावतैं क्षायिक चारित्र प्रकट होय है। ऐसैं अरहन्त नाम परमात्माके क्षायिक दानादि कहे ते शरीरनामकर्म वा तीर्थंकरप्रकृतिकी सापेक्षातैं जानना। इहां कोऊ कहै जो सिद्ध-भगवानकै भी अभयदानादिकका प्रसङ्ग आवै है ताका समाधान—जो दानादि लब्धिका प्रतिपक्षी जो अन्तरायकर्म ताके अभावतैं शक्ति तो प्रकट है ही, परन्तु शरीरविना तिनकी प्रवृत्ति होय नहीं, तातैं ऐसा जानना जो परम उत्कृष्ट अनन्तवीर्य अव्याबाध स्वरूपकरि ही तिनकी तहां प्रवृत्ति है। जैसैं केवल-ज्ञानरूपकरि तीनलोक तीनकालके अनन्त द्रव्यगुणपर्यायनिके युगपत् ग्रहण करनेका सामर्थ्यकरि ही अनन्तवीर्यकी प्रवृत्ति होय है, तैसैं यह भी जानना। अब अष्टादश प्रकारके क्षयोपशमभाव कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाः

सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥ ५ ॥

अर्थ—मति श्रुत अवधि मनःपर्यय ऐसैं च्यार प्रकार ज्ञान, अर कुमति कुश्रुत विभङ्ग ऐसैं तीन प्रकार अज्ञान, अर नेत्रइंद्रियद्वारै पदार्थनिका सत्तामात्रका ग्रहण सो चक्षुदर्शन, अर अन्य च्यार इंद्रिय-द्वारै पदार्थनिका सामान्यसत्तामात्रका ग्रहण सो अचक्षुदर्शन है, अर अवधिद्वारै सामान्यग्रहण सो अव-धिदर्शन ऐसैं तीन दर्शन। बहुरि अन्तरायकर्मके क्षयोपशमतैं दान लाभ भोग उपभोग वीर्य ऐसैं पञ्च लब्धि अर वेदकसम्यक्त्व अर सरागचारित्र अर संयमासंयम याकूं देशव्रत भी कहिए ऐसैं ए अठारहभाव अपने प्रतिपक्षी कर्मके क्षयोपशमतैं होय हैं। तातैं ये अष्टादश प्रकार क्षायोपशमिक भाव हैं। अब इकवीस प्रकार औदयिकभाव कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

गतिकषायलिंगमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ॥ ६ ॥

अर्थ—गति च्यारभेदरूप, कषाय च्यार प्रकार, लिंग जो वेद सो तीन प्रकार, मिथ्यादर्शन एक,

अज्ञान एक, असंयम एक, असिद्धत्व एक, लेश्या छह ऐसैं एकविंशतिभेदरूप औदयिकभाव हैं। गति च्यार हैं ते नरक तिर्यंच मनुष्य देवगतिनाम नामकर्मके उदयतैं होय हैं। बहुरि चारित्रमोहका भेद जो कषायवेदनीय ताका उदयतैं आत्माके क्रोधादिरूप कलुषपणाका उपजना सो क्रोध मान माया लोभ ऐसैं च्यार प्रकार कषाय हैं। जातैं आत्मानै "कषति" कहिए घातै विनाशै तातैं इनिकूं कषाय कहिए। इनिके अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन ऐसैं च्यार भेद हैं।

बहुरि वेद नामा जो मोहनीयका भेद ताके उदयतैं लिंग होय हैं। सो लिंग दोय प्रकार—एक द्रव्य लिंग, दूजा भावलिंग तिनमैं द्रव्यलिंग जो योनि मेहनादिक, ते तो नामकर्मका उदयकरि होय हैं तिनका तो इहां भावनिके कथनमैं अधिकार ही नहीं है। इहां आत्मपरिणामका कथन है। तातैं भावलिंग जो स्त्री पुरुष नपुंसकनिकै परस्पर रमणेकी अभिलाषारूप भाववेद है सो चारित्रमोहका भेद जो नोकषाय ताका भेद जे स्त्री पुरुष नपुंसक नामा वेदकर्म ताके उदयतैं स्त्रीलिंग पुरुषलिंग नपुंसकलिंग ऐसैं तीन लिंग औदयिकभाव हैं। बहुरि दर्शनमोहके उदयतैं तत्त्वार्थनिका अश्रद्धानरूप परिणाम सो मिथ्यादर्शन नाम औदयिकभाव है। बहुरि ज्ञानावरण कर्मके उदयतैं जो नहीं जानपना सो अज्ञान नाम औदयिकभाव है। बहुरि चारित्रमोहके उदयतैं प्राणीनिका घात अर इन्द्रियनिका विषय इनिमैं विरक्तता नहीं सो असंयत-भाव औदयिक है। अनादि कर्मसम्बन्धके सन्तानकरि पराधीन जो आत्मा ताकै सामान्य कर्मका उदय होतैं असिद्धत्वभाव औदयिक है।

बहुरि कषायनिका उदयकरि रंजित जो योगनिकी प्रवृत्ति सो लेश्या है। ते कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल, ऐसैं षट्प्रकार है। इहां आत्माके परिणामनिकै अशुद्धताकी प्रकर्षताकी अपेक्षाकरि कृष्णादिक शब्दनिका उपचार किया है।

इहां प्रश्न—जो उपशांत कषाय क्षीण कषाय संयोगीजिनके शुक्ललेश्या आगममैं कही है अर इन गुणस्थाननिमैं कषायकरि अनुरंजित योग नहीं है, तातैं औदयिक कैसैं कहो हो? वा लेश्या ही कैसैं

कहो हो ? ताका समाधान—जो कषायनिका अभाव होतै भी जो लेश्या कही सो पूर्वभाव प्रज्ञापननयकी अपेक्षाकरि कही जो ऐही जोग पूर्वैं कषायांकरि अनुरंजित था, तदि लेश्या कही थी, अब इनि गुणस्थाननिमैं कषायनिका तो अभाव भया परंतु जोग वैही पाइए हैं जो जिन उपरि पूर्वैं कषायनिका रंग था, तातैं उपचारतैं औदयिक लेश्या कही जैसैं कुसुंमकरि रंग्या वस्त्र धोय डारै तो हू कुसुम्भल कहिए। तैसैं कषायनिका रंग दूरि भए हू लेश्याकहिए है अर अयोगीभगवानके योग नहीं तातैं लेश्यारहित कह्या है।

इहां कोऊ प्रश्न करै अन्यप्रकृतिनिके उदयतैं जो भाव होय हैं ते औदयिकभावनिमैं क्यों नहीं कहे ? जैसैं अज्ञान औदयिक है तैसैं अदर्शनभी औदयिक है तथा निद्रानिद्रादिक औदयिक हैं, वेदनीका उदयतैं सुख दुःख हू औदयिक हैं, हास्यादिक षट् नोकषाय भी औदयिक हैं। आयुका उदयतैं भवधारण हू औदयिक है, गोत्रकर्मोंके उदयतैं उच्च नीच गोत्र औदयिक हैं, नामकर्मके उदयतैं जात्यादिक हू औदयिक हैं, इनिका सूत्रमैं ग्रहण नहीं किया, तातैं औदयिकका न्यूनलक्षण कह्या। ताका समाधान—जो इन भावनमैं ही गर्भित जानना। शरीरादिक जे पुद्गलविपाकी तिनका तो इहां जीवके भाव कहनेमैं अधिकार ही नहीं अर जाति आदिक जीवविपाकागतिमैं गर्भित जाननी।

बहुरि दर्शनावरणका उदय भी मिथ्यादर्शनमैं गर्भित किया है। जातैं दर्शनसामान्यका आवरणतैं अतत्त्वश्रद्धानका नाम भी मिथ्यादर्शन है। अन्यथा देखनेका नाम भी मिथ्यादर्शन है। बहुरि हास्यादिक हैं ते वेदके सहचारी हैं। तातैं वेदमैं गर्भित भये। बहुरि वेदनीय आयु गोत्रका उदय भी अघाति है, सो गतिमैं गर्भित जानने। अब जो पारिणामिक भाव तीनप्रकार कह्या तिनका भेदस्वरूप कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥

अर्थ—जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व, ए तीन अन्य द्रव्यतैं असाधारण जीवके पारिणाणिकभाव हैं। जातैं ए तीनभाव कर्मके क्षय उदय क्षयोपशमादिककी अपेक्षारहित हैं यातैं पारिणामिक हैं ॥ इहां कोउ कहैं—आयुकर्मका उदयतैं जीवै तीनै जीव कहिए है, अनादि पारिणामिक नाहीं है। ताकूं कहैं हैं—

जो ऐसैं नहीं है, जातैं आयुकर्म तो पुद्गलद्रव्य है। जो पुद्गलद्रव्य सम्बन्धतैं ही जो जीवत्व होय तो धर्मादिकनिकै हू जीवत्वभाव हो जाय। तथा आयुविना सिद्धनिकै अजीवपणाका प्रसङ्ग आवै। तातैं जीवत्व नाम चैतन्यपणाका है सो जीवत्व पारिणामिक भाव है। बहुरि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप परिणामकरि होनेयोग्य होय सो भव्य है अर रत्नत्रयरूप होनेकी योग्यता जाकै नहीं सो अभव्य है। कोऊ या कहै जो अनन्तकालमैं भी नहीं सिद्ध होसी सो अभव्यतुल्य भया तातैं अभव्य ही है। अर जो भव्य है सो समस्त सिद्ध होसी तदि आगले कालमैं जगत् भव्यनिकरि शून्य होसी सो नहीं है।

जैसैं–सुवर्णकी खानिमैं जो कनकपाषाण अनन्त कालमैं भी सुवर्ण नहीं होय तो ताके अन्धक पाषाणपणा तो नहीं होगया, कनकपाषाण ही रहैगा। बाह्यकारण मिल जाय तो सुवर्ण निराला होजाय अर मैल कीट न्यारा होजाय। अर अन्धक पाषाणमैं भी सुवर्ण है परन्तु कोऊ ऐसी बाह्यसामग्री ही नहीं जो सुवर्णकूं न्यारा करै। ऐसैं भव्यकै अनन्तकालपर्यंत मोक्ष होनेके योग्य सामग्री नहीं मिलै, तो अभव्य नहीं होजायगा। ऐसैं ए तीन भाव जीवकै पारिणामिक कहे।

इहां प्रश्न–जो अस्तित्व नित्यत्व प्रदेशत्व इत्यादिकभावभी पारिणामिक हैं तिनका भी इस सूत्रमें ग्रहण किया चाहिए। ताका उत्तर–जो, इनिका ग्रहण नहीं चाहिए अथवा च शब्दकरि ग्रहण किया भी है। फेरि पूछै जो किया है तो तीनकी संख्या विरोधी जाय है। तहां कहिए–जो ए असाधारण जीवके भाव पारिणामिक तीन ही हैं। बहुरि अस्तित्व आदि हैं ते जीवके भी हैं अजीवके भी हैं तातैं साधारण हैं, यातैं च शब्दकरि न्यारे ग्रहण कीजिए। इहां पांच भाव कहे तहां औपशमिकभाव हैं सो भी क्षायिकभावकी ज्यों शुद्ध हैं। तथापि क्षायिकभाव हैं सो प्रतिपक्षी कर्मके अत्यन्त क्षयतैं परम शुद्ध स्वरूप अक्षयानन्त आत्मस्वभाव प्रगट है।

बहुरि क्षयोपशम भावविषै प्रतिपक्षी कर्मका सर्वघातिस्पर्द्धकनिका तो उदयाभाव क्षय कहिए उदयरूप रस दिए विना क्षय होना सो तो क्षय है अर आवली उपरि उदय होनेयोग्य जे उपरितन निषेक

तिनका सत्तामैं अवस्थितिपणा सौ उपशम अर देशघातिस्पर्द्धकनिका उदय सो क्षयोपशम होतैं जो भाव सो क्षायोपशमिकभाव हैं। बहुरि गति कषाय आदिक आत्माके औदयिकभाव हैं ते कर्मनिके उदयके वशतैं हैं ए नैमित्तिकभाव हैं, आत्माका स्वभाव नहीं है विभावरूप हैं। बहुरि पारिणामिकभाव हैं ते आत्मद्रव्यका स्वतःस्वभाव परिणाम हैं यामैं अन्यका कारण नाहीं।

इहां पञ्चभावस्वरूप जीवतत्त्वका निर्देश किया सो कर्मबन्ध उदय अनुदय निर्जरा आदिकी सापेक्षातैं आत्माकी अनेक अवस्थारूप परणति है। ऐसैं सात सूत्रनिकरि जीवके पंचभावनिका कथन किया। बहुरि इहां जीवके पांच भाव कहनेतैं वेदांतमती आनन्द मात्र ब्रह्मका रूप मानैं है। तथा सांख्य-मती पुरुषका स्वरूप चैतन्य मात्र मानैं हैं, आत्माको एकांतकरि शुद्ध मानैं हैं—ऐसैं अनेक प्रकार मानैं हैं, तिनका इस भावनके कथनकरि निराकरण भया। जातैं सर्वथा शुद्ध ही होय तो संसार बन्ध मोक्षका उपाय आदिकका कथन सर्व मिथ्या ठहरै।

बहुरि स्याद्वादी जे पंचभावरूप जो आत्माकूं कहै हैं तातैं नयके आश्रयतैं समस्त कहना कथंचित् प्रकारकरि सिद्ध होय है। तातैं जीवका स्वरूप पंचभावरूप ही प्रमाणसिद्ध है। बहुरि इहां कोऊ तर्क करै जो जीवके पंचभावका कथन नाहीं बनै है जातैं आत्मा तो अमूर्तीक है, ताकूं कहिए है, जो आत्मा एकांतकरि अमूर्तीक ही नहीं है। कथंचित् अमूर्तीक है कथंचित् मूर्तीक है, कर्मबन्धनरूप पर्यायकी अपेक्षा-करि देखिए तो अनादिकालतैं कर्मपुद्गलनिसौं एक होय रह्या है, कोई कालमैं कर्मतैं भिन्न हुवा नहीं तातैं संसारी आत्मा मूर्तीक है अर आत्माका शुद्ध स्वरूपकी अपेक्षा देखिए तो यद्यपि क्षीरनीरज्यों कर्मपुद्गल अर आत्मा एक होरह्या है तो हू अपना चैतन्यस्वभावकरि भिन्न ही है, पुद्गलमय कदाचित् नहीं होय, तातैं अमूर्तीक है।

इहां कोऊ फेरि पूछै जो संसार अवस्थामैं आत्मा कर्मपुद्गलनितैं एक ही रह्या है तो आत्माका अस्तित्व कैसैं जान्या जाय। ताकूं उत्तर कहै हैं। बन्धपर्यायकी अपेक्षातैं आत्माके पुद्गलतैं एकपणा होतै

हू लक्षणके भेदतैं आत्मा अर कर्मपुद्गल भिन्न २ जाने जाय हैं। फेरि पूछैं हैं-जो आत्मा पुद्गलनितैं एक होरह्या है जातैं भिन्न जाननेमैं आवै ऐसा लक्षण ही कहो। ऐसा प्रश्न होतैं सूत्र कहै हैं—

उपयोगो लक्षणं ॥ ८ ॥

अर्थ—उपयोग है सो जीवका लक्षण है। सो उपयोग कहा है सो कहै हैं। जातैं चैतन्य है सो आत्माका स्वभाव है अर तिस चैतन्य स्वभावकूं ही जो कहै ऐसा आत्माका परिणाम कहिए परिणमन परिणति ताकूं उपयोग कहिए है। जैसैं कटक कुण्डल मुद्रादिक विकार हैं सो सुवर्णस्वभावकूं कहनेवाला सुवर्णहीका परिणमन है, तैसैं इंद्रिय अनिद्रियादिकनिके द्वारै जो परणति है सो सब उपयोग ही है। तथा घटपटादिकनिके आकार वा सुखदुःखादिरूप परिणमन सो समस्त उपयोग ही है। जो उपयोग है सो जीवका निर्वाध लक्षण है, दूषण रहित है। जातैं अव्याप्त अतिव्याप्त असम्भवी इन तीन दूषणनि सहित जो लक्षण होय, सो सदोष लक्षण होय है। तिनमैं जो लक्षण लक्ष्यका एक देशमैं व्यापै समस्त-लक्ष्यमैं नहीं व्यापै सो तो अव्याप्तदोष है। जैसैं गौका लक्षण सावलेयपणा कह्या सो सावलेयपणा कोईक गौमैं वर्तै है समस्त गौमात्रकूं भिन्न दिखावनेवाला यह लक्षण नहीं, तातैं लक्षण अव्याप्तदोष सहित भया। इहां सावलेयपणा कहा है सो कहै हैं, कोऊ बलधके पीठ उपरि जीभसी लम्बी होय है, ताकूं सावलेय कहिए है, ताकूं नांचा भी कहैं हैं।

बहुरि जो लक्षण लक्ष्यमैं भी व्यापै अर अलक्ष्यमैं भी व्यापै सो अतिव्याप्तदूषण है, जैसैं गौका लक्षण सींगसहितपणा कहना, सो शृँगसहित तो भैंसा मींढा अनेक होय हैं। बहुरि जो लक्षण लक्ष्यमैं सम्भवै ही नहीं सो असम्भवी दोप है। जैसैं मनुष्यका लक्षण विषाणी कहिए, शृङ्गवाला कहना सो मनुष्यकैं शृङ्ग सम्भव ही नहीं, सो असम्भव दोप है।

जातैं यो उपयोग लक्षण है सो समस्त जीवनिमैं पाइए है कोऊ जीवमात्र उपयोगरहित नाहीं, तातैं लक्षणकै अव्याप्तदोष होय नाहीं है। बहुरि उपयोग है सो जीवविना अन्य द्रव्यनिमैं नहीं पाइए है

तातैं अतिव्याप्त दोषसहित नाहीं। बहुरि उपयोगलक्षण समस्तजीवनिमैं सम्भवै है। प्रत्यक्षादिप्रमाणकरि बाध्या नहीं जाय है तातैं असम्भवदोष सहित नहीं है। बहुरि और हू दृष्टांत जानना—जैसैं आत्माका लक्षण अमूर्तत्व कहना सो अमूर्तिकपणा तो आकाशादि अन्य द्रव्यमैं हू पाइए है, यातैं लक्ष्य अलक्ष्य दोऊनिमैं व्यापनेतैं अतिव्याप्त दोष सहित लक्षण भया।

बहुरि आत्माका लक्षण रागादिमत्त्व कहिए तो रागादिमानपणा समस्त आत्मामैं नहीं। सिद्ध भगवान् रागादि रहित हैं। यातैं लक्ष्यका एक देशमैं व्यापनेतैं लक्षण अव्याप्त दोष सहित भया। बहुरि लक्ष्यतैं विरोधी लक्षण सो असम्भवी है। जैसैं आत्माका जडत्व लक्षण कहना सो सम्भवै नहीं। तातैं अतिव्याप्त अव्याप्त असम्भव इन तीन दोषरहित आत्माका उपयोग लक्षण ही सत्य है। अब उपयोगका भेद कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ९ ॥

अर्थ—सो उपयोग दोय प्रकार है—एक ज्ञानरूप, एक दर्शनरूप। तिनमैं मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल ए पांच ज्ञान अर कुमति कुश्रुत विभंग ए तीन अज्ञान—अथवा मतिअज्ञान श्रुतअज्ञान विभंग अज्ञान इनिके नाम ऐसैं हू हैं ऐसैं अष्ट प्रकार ज्ञानोपयोग कह्या। अर चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन, ए च्यार दर्शनोपयोगके भेद कहे हैं। इहां कोऊ पूछै, जो दर्शनज्ञानविषै भेद कहां है? ताका उत्तर—साकार अनाकारके भेदतैं भेद है। जहां पदार्थका सामान्य सत्तामात्र ग्रहण होय सो दर्शन है जातैं पदार्थकै अर इंद्रियनिकै सम्बन्धके अनन्तर ही वस्तुका आकारादि विशेष ग्रहणमैं नहीं आव तातैं दर्शन निराकार है अर जो आकारादि विशेषकूं जानै सो साकार ज्ञान है। अर छद्मस्थकै तो दर्शनपूर्वक ही ज्ञान होय है अर केवली भगवानकै दर्शन ज्ञान युगपत् होय हैं।

बहुरि दर्शन ज्ञान इन दोऊ उपयोगनिमैं ज्ञान प्रधान है। तातैं सूत्रमैं पहिलै ज्ञान कह्या है। इहां कोऊ प्रश्न करै जो अवधिज्ञान जैसैं अवधिदर्शनपूर्वक होय है, तैसैं मनःपर्ययज्ञानहू मनःपर्ययदर्शनपूर्वक

मनःपर्ययदर्शनावरणकर्म है नाहीं, आगममैं
होना चाहिये ताका उत्तर—आगममैं ऐसैं कह्या है जो तातैं आवरणका अभावतैं ताका क्षयोपशमका हू अभाव है,
दर्शनावरणकर्मचतुष्टयको ही उपदेश्या है। बहुरि इहां ऐसा उपदेश जानना। जो मनःपर्ययज्ञान
तातैं मनःपर्ययदर्शनोपयोगका हू अभाव जानना। प्रवर्तै है तो कैसैं प्रवर्तै है, सो कहै हैं—
है सो अपना विषयविषै अवधिज्ञानज्यों सन्मुखकरि नहीं अर्थनिकूं चितवन करै है परन्तु देखै नहीं
अपना मन है सो परके मनकी प्रणालिकाकरि अतीत अनागत जाणै है अर देखै नाहीं है। अर वर्त्तमानपदार्थ हू
है। तैसैं मनःपर्ययज्ञानीहू भूत भविष्यत् पर्यायनिकूं प्रवृत्तिका अभाव है तातैं मनःपर्यय-
मनका विषयमैं विशेषाकार करिकैं ही प्राप्त होय हैं। सामान्यपूर्वक सो जीवकै शरीरतैं भेदकूं साधै है।
दर्शनोपयोग नहीं है। ऐसैं दोय सूत्रकरि कह्या जो उपयोगका लक्षण साधै है अथवा जसैं सोनेरूपेका

जैसैं उष्ण जलमैं द्रवपणा अर उष्णपणा जल अग्निका भेदकूं साधै है। तैसैं
एक पिण्ड होय तहां पीतता श्वेतता तथा गुरुपणा हलकापणा है सो सुवर्णरूपाके भेदकों साधै है। तैसैं
इहां हू जीवपुद्गलकै लक्षण भेदकरि भेद जानना॥ अब समस्त जीवनिमैं साधारण जो उपयोग ताकरि
सहित जे जीव हैं ते दोय प्रकार हैं—

संसारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥

अर्थ—जीव हैं ते संसारी बहुरि मुक्त ऐस दोय प्रकार हैं। "संसरणं संसारः" ऐसी संसारशब्दकी
निरुक्ति है। संसरणं कहिए परिभ्रमणरूप होय सो संसार है। याहीकूं परिवर्तन कहिए हैं। सो परिवर्त्तन
पञ्चप्रकार है। तहां कर्मनोकर्मरूप पुद्गलनिका ग्रहणत्यजनरूप परिभ्रमण सो द्रव्यपरिवर्त्तन है। बहुरि क्षेत्र
कहिए आकाशके सर्वप्रदेश तिनिविषै उत्पत्तिमरणरूप परिभ्रमणरूप सो क्षेत्रपरिवर्त्तन है। बहुरि उत्स-
र्पिणी अवसर्पिणी कालके समयनिविषै उपजने विनशनेरूप परिभ्रमण सो कालपरिवर्त्तन है। बहुरि त्यौं
ही भव कहिए नारकादि सर्व भवनिका आयुके भेदनविषै उत्पत्तिमरण परिभ्रमणरूप सो भवपरिवर्त्तन है।
बहुरि भाव कहिए अपने कषाय योगनिके स्थानरूप जे भेद जघन्य मध्यम उत्कृष्ट कर्मनिकी

...रूप परिभ्रमण सो भावपरिवर्त्तन है। मिथ्यात्वकरि सहित जीव भाव... ...वष भ्रमता सर्व प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेश बन्धके जे स्थान हैं ते सर्व ही पाए। ए पञ्चपरिवर्त्तन हैं। इनिका कथन विस्तार सहित अन्य शास्त्रनिविषै कह्या ही है। विस्तारतैं जाननेका इच्छुक तिन ग्रन्थनितैं जान हू अर संक्षेपतैं नवम अध्यायमें लिखैंगे तहांतैं जानना। ऐसैं पंचप्रकार संसारतैं जीव रहित भए ते मुक्तजीव कहिए। मुक्तजीव हैं ते संसारपूर्वक होय हैं, तातैं संसारीनिका प्रथम ग्रहण जानना॥ अब संसारी जीवनिके भेद कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

समनस्काऽमनस्काः ॥ ११ ॥

अर्थ—संसारी जीव हैं ते मनसहित वा मनरहित दोय प्रकार हैं। जे जीव मनसहित हैं ते संज्ञी हैं मन रहित होंय ते असंज्ञी हैं। जो हितमैं प्रवर्त्तनेकी अहितमैं प्रवृत्तिके निषेधकी शिक्षा ग्रहण करै सो संज्ञी है। बहुरि जो हस्त पाद चामठी लाठी इत्यादिक उठावनेरूप क्रियाकूं होतै ही ऐसैं ग्रहण करै जो ये हमारे देवैगा मारैगा इत्यादि क्रियातैं आपके सुख दुःखादिककूं जानै वा जाकूं उपदेश लागे बुलाया आजाय, वेरयां चल्या जाय सो संज्ञी है। अर जाके शिक्षा क्रिया उपदेश आलापका ग्रहण नहीं होय सो असंज्ञी है। जो मन है सो द्रव्य, भावके भेदकरि दोय प्रकार है। तहां जो हृदयस्थानविषै अष्टपांखड़ीका फूल्या कमलकै आकार सूक्ष्म पुद्गलका प्रचयरूप तिष्ठै है सो तो द्रव्यमन है।

बहुरि द्रव्यमनके पुद्गलनिकै अभ्यन्तर मन अनिद्रियावरणकर्मका क्षयोपशमसहित अंगुलके असंख्यातवैं भाग जे आत्माके प्रदेश ते भावमन है। बहुरि समनस्क शब्दकै पूज्यपणातैं सूत्रमैं पहिले ग्रहण किया है। जातैं मनसहित जीवकै गुणदोषनिका विचारसहितपणा है, मनरहितकै नाहीं, तातैं समनस्ककूं सूत्रमैं प्रथम ग्रहण किया॥ आगैं संसारीजीवका अन्य हू भेद कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥ १२ ॥

अर्थ—संसारी जीव हैं ते त्रस अर स्थावर ऐसैं दोय प्रकार है। जीवविपाकी त्रस नामकर्मके उदयतैं

त्रस होय है। जीवविपाकी स्थावरनामकर्मके उदयतैं स्थावर होय हैं। कोऊ कहैं जो हलन चलन करैं सो त्रस हैं अर अतिशयकरि तिष्ठैं ते स्थावर हैं। ऐसैं निरुक्ति करिए है। ताकूं उत्तर कहै हैं—जो हलन चलन अपेक्षाही त्रस होय तो गर्भमैं तिष्ठते अंडेनिमैं तिष्ठते वा मूर्छित सुप्त भयभीत ए हलनचलन रहित हैं, इनकै त्रस पणाके अभावका प्रसंग आवैगा। तथा पवन अग्नि जल इनिकै एकदेशतैं अन्यदेशांतरमैं प्राप्ति होना देखिए हैं तिनकैं त्रसपणाका प्रसंग आवैगा। तातैं त्रसस्थावरपणा चलने तिष्ठनेकी अपेक्षा नाहीं हैं, त्रस अर स्थावर नामा नामकर्मकी अपेक्षातैं है। इस सूत्रमैंहू त्रसशब्दकै पूज्यपणातैं प्रथम ग्रहण किया है॥

अब स्थावरनिका बहुत भेद नहीं हैं यातैं आनुपूर्वीकूं उल्लंघनकरि स्थावरके भेद कहनेकूं सूत्र कहै हैं। जातैं लौकिकमैंहूं सूचीकडाहन्याय प्रसिद्ध है। जो कडाह भी घडना होय अर सूई भी घडना होय तो पहले सूई घड दे कडाह पाछैं घडै। अल्प भेद स्थावरनिकूं कहै हैं—

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥ १३ ॥

अर्थ—पृथ्वी अप् तेज वायु वनस्पति ये स्थावर नामकर्मके उदयके वसतैं पञ्च स्थावर हैं। ए पञ्च स्थावर तिनकै इंद्रियप्राण कायबलप्राण आयुप्राण उछ्वासप्राण ऐसैं ए च्यार प्राण होय हैं। इहां ऐसा विशेष जानना। यद्यपि आत्मा केवलज्ञानस्वभाव है तथापि ज्ञानावरणकर्मके वेढनेतैं ज्ञानका अपकर्ष न होनेतैं सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तजीवकै अक्षरकै अनन्तवैं भाग ज्ञान रहिजाय है। उस ज्ञानकै आवरण नहीं है। जो उस पर्यायज्ञानकै हू आवरण होय तो आत्मा जडरूप होजाय तदि आत्माका अभाव होजाय। सो द्रव्यका अभाव होय नाहीं, तातैं पर्यायज्ञान निरावरण है। याका आवरण होय तो फिर पर्यायका पलटनाही नहीं होय, तदि समस्त जीव निगोदतैं नाहीं निकसि सकैं॥ अब त्रस कौन हैं यातैं सूत्र कहैं हैं—

द्वींद्रियादयस्त्रसाः ॥ १४ ॥

अर्थ—द्वींद्रियकूं आदि लेय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय ऐसैं त्रस जीव हैं। तहां द्वींद्रियकै छह

प्राण हैं। तिनमैं स्पर्शनरसन दोय इन्द्रिय अर कायबल वचनबल आयु श्वासोश्वास ऐसैं छह प्राण हैं। तींन्द्रियक घ्राणइन्द्रियकरि अधिक सात प्राण हैं। बहुरि चौइन्द्रियकै चक्षुइन्द्रियकरि अधिक आठ प्राण हैं। बहुरि पंचेंद्रिय तिर्यंचनिविषै असंज्ञीकै कर्णइन्द्रियकरि अधिक नवप्राण हैं। बहुरि सैनी पंचेन्द्रियकै मनकरि अधिक दश प्राण हैं॥ अब इन्द्रियनिकी गणनाका निश्चयकै अर्थि सूत्र कहै हैं।

पंचेन्द्रियाणि ॥ १५ ॥

अर्थ—इंद्रियनिकी संख्या पांच ही जाननी। केई अन्यमती हीनाधिक संख्या कहैं सो अयुक्त है। बहुरि ए इंद्रिय हैं ते अपने अपने विषयके ज्ञान उपजावनेविषै कोऊ किसीकै आधीन नाहीं जुदे जुदे एक एक इंद्रिय परकी अपेक्षारहित हैं अहमिंद्रनिकी ज्यौं आप आपके समस्त ही स्वाधीन हैं, ईश्वरताकौं धरैं हैं। बहुरि अपने अपने विषयकूं अंगीकार करैं हैं। अब इंद्रियनिका भेद कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

द्विविधानि ॥ १६ ॥

अर्थ—जे इंद्रिय कहे ते द्रव्येंद्रिय भावेंद्रियकरि दोय प्रकार हैं। अब द्रव्येंद्रियका स्वरूपका ज्ञानकै अर्थि सूत्र कहै हैं—

निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येंद्रियं ॥ १७ ॥

अर्थ—निर्वृत्ति अर उपकरण ऐसैं द्रव्येंद्रिय दोय प्रकार हैं। कर्मकरि जो रची वा उत्पन्न करी सो निर्वृत्ति कहिए। सो निर्वृत्ति हू दोय प्रकार है। एक अभ्यंतरनिर्वृत्ति, एक बाह्यनिर्वृत्ति। तिनमैं उत्सेधांगुलकै असंख्यातवैं भागप्रमाण जे विशुद्ध आत्माके प्रदेश तिन प्रदेशनिका जो नेत्रादिक इंद्रियनिका आकार वा प्रमाण वा स्थानरूप जो रचना सो अभ्यंतरनिर्वृत्ति है। बहुरि तिन आत्मप्रदेशनिकै ऊपरि इंद्रियनामकैं धारनेवाला प्रतिनियतस्थान लिए नामकर्मके उदयकरि इंद्रियव्यवस्थाकूं प्राप्त भया जो पुद्गल समूह सो बाह्यनिर्वृत्ति है।

भावार्थ—जैसैं नेत्रइंद्रिय नेत्रइंद्रियावरणकर्म अर वीर्यांतरायकर्मका क्षयोपशमसहित आत्माकै प्रदेश मसूरकै आकार रचनारूप होय तिष्ठै है सो अभ्यंतरनिर्वृत्ति है अर तिस अभ्यंतर इंद्रियाकार परिणतिरूप आत्मप्रदेशनिविषैं नामकर्मका उदयकरि नेत्रइंद्रियाकार पुद्गलसमूह तिष्ठैं सो बाह्यनिर्वृत्ति है, ऐसैं ही कर्णइंद्रियावरण अर वीर्यांतरायका क्षयोपशमसहित आत्माकै प्रदेश जवकी नालीके आकार होय तिष्ठैं सो आत्मप्रदेशनिकी रचना अभ्यंतरनिर्वृत्ति है अर ताकै ऊपरि नामकर्मके उदयतैं कर्णइंद्रियका जवकी नालीकैं आकार होय पुद्गलसमूह तिष्ठैं सो बाह्यनिर्वृत्ति है।

बहुरि जो निर्वृत्तिका उपकार करनेवाला पुद्गलसमूह सो उपकरण है। ताके भी बाह्य अभ्यंतरकरि दोय भेद हैं। जैसैं-नेत्रनिमैं शुक्ल कृष्णमंडल तौ अभ्यंतर उपकरण हैं अर बाफणी डोला ए बाह्य उपकरण हैं। ऐसैं ही समस्त इंद्रियनिकैं द्रव्येंद्रियपणा जानना॥ अब भावइंद्रियनिका स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

लब्ध्युपयोगौ भावेंद्रियं ॥ १८ ॥

अर्थ—लब्धि अर उपयोग ऐसैं भावेंद्रिय भी दोय प्रकार है। जाकूं होतैं आत्मा द्रव्येंद्रियकी रचनाप्रति प्रवर्त्तनकरै ऐसा ज्ञानावरणकर्मका क्षयोपशमविशेष ताकूं लब्धि कहिए। बहुरि कर्मका क्षयोपशमरूप लब्धिकै निमित्ततैं आत्माका विषयप्रति परिणमन होना सो उपयोग है। जैसैं किसी जीवकै सुननेकी शक्ति है, परन्तु उपयोग जो चैतन्यका परिणमन सो अन्य हो जाय, अन्यविषयनिमैं लगि रह्या तो सुनै नाहीं। बहुरि कोऊ जान्या चाहै अर क्षयोपशमशक्ति नाहीं तो जानि नाहीं सकै, तातैं लब्धि अर उपयोग दोऊ मिले विषयका ज्ञानकी सिद्धि होय है। आवरणकर्मका क्षयोपशमतैं जो आत्माकै विशुद्धता सो शक्ति है। तिस क्षयोपशमशक्तिहीकूं लब्धि कहिए हैं। अर आत्मा ज्ञेयपदार्थकै सन्मुख होय तासूं जुडै सो उपयोग है। ऐसैं भावेंद्रियका स्वरूप कह्या। अब कही जे इंद्रिय तिनकी संज्ञा अर आनुपूर्वीक जनावनेकूं सूत्र कहैं हैं—

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥ १९ ॥

अर्थ—स्पर्शन रसन घ्राण चक्षुः श्रोत्र ए पांच इन्द्रियनिके नाम हैं। वीर्यांतराय मतिज्ञानावरणका क्षयोपशम अर अंगोपांगनामा नामकर्मका उदयका लाभ वा आलम्बनतैं आत्मा जाकरि विषयकौं स्पर्शै ताकूं स्पर्शन कहिए। ऐसैं ही जाकरि अपने विषयकौं आत्मा आस्वादै ताकूं रसन कहिए। जाकरि गन्ध ग्रहण करै ताकूं घ्राण कहिए। जाकरि अवलोकन करै ताकूं चक्षु कहिए। जाकरि श्रवण करै ताकूं श्रोत्र कहिए। ऐसैं ए पांच इंद्रिय हैं। इहां समस्तशरीरमैं व्यापीपणातैं स्पर्शनका आदिमैं ग्रहण किया। अथवा समस्त संसारीनिकैं स्पर्शनइंद्रिय पाइए है तातैं स्पर्शनका आदिमैं ग्रहण किया। तिन पाछैं रसन घ्राण चक्षु श्रोत्र इनका ग्रहण क्रमतैं किया सो ए इंद्रिय जीवनिकैं क्रमतैं ही होय हैं।

जातैं बेंद्रियजीवकैं स्पर्शन रसन ही होय अन्य दोय नहीं होय। त्रींद्रियकै स्पर्शन रसन घ्राण एही तीन होंय अन्य येरफेर नहीं होय। चौंद्रियकैं स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु इन च्यारहीका ग्रहण होय अन्य नहीं होय। श्रोत्रइंद्रिय पंचेन्द्रियहीकै होय अन्यकै नहीं होय। इनि इन्द्रियनिमैं श्रोत्रइन्द्रियकैं बहु उपकारीपणो है। जातैं श्रोत्रइन्द्रियका बलतैं उपदेश श्रवण करिकैही हितकी प्राप्ति अहितका त्यागकै अर्थि आदर करिए हैं। बहुरि आत्मा पहली श्रोत्रइंद्रियद्वारै उपदेश श्रवण करिकैही वक्तापणाप्रति व्यापार करै है। अब इन इंद्रियनिका विषय दिखावनेकूं सूत्र कहै हैं:—

स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥ २० ॥

अर्थ—स्पर्शन इन्द्रियका विषय स्पर्श है। रसनाइन्द्रियका विषय रस है। घ्राणइन्द्रियका विषय गंध है। चक्षुइन्द्रियका विषय वर्ण है। श्रोत्रइन्द्रियका विषय शब्द हैं। ऐसैं पांच इन्द्रियनिके पंच विषय हैं। अपने अपने विषयकूं ही ग्रहण करै हैं अन्य इन्द्रियका विषयकूं अन्य इन्द्रिय ग्रहण करै हैं। तहां जाकूं स्पर्शिए अथवा जो स्पर्शन सो स्पर्श है। बहुरि जाकौं आस्वादीए अथवा जो स्वादमात्र सो रस है। बहुरि जाकौ सूंघिए अथवा सूंघना सो गंध है।

बहुरि जाकूं देखिए सो वर्ण है। सुणीए अथवा शब्दरूप होय सो शब्द है। ए इन्द्रियनिके विषय

जाननें। अब इहां कोऊ कहै-जो मन है ताका अवस्थान नाहीं तातैं यो इन्द्रिय नाहीं है। ऐसैं मनकै इन्द्रियपणाका निषेध किया। परंतु यो मन उपयोगकों उपकारक है वा नहीं है? तादि कहैं जो, मन तो उपकारी ही है। जातैं मनविना इन्द्रियनिका विषयनिमैं अपना प्रयोजनरूप प्रवृत्तिका अभाव है। फिरि कोऊ कहै जो मनकै इन्द्रियनिका सहकारीपणामात्र ही प्रयोजन है कि अन्य भी है ऐसैं पूछतैसंतै सूत्र कहै हैं—

श्रुतमनिंद्रियस्य ॥ २१ ॥

अर्थ—अनिंद्रिय जो मन ताका विषय श्रुत कहिए श्रुतज्ञानगोचर पदार्थ है सो विषय हैं। श्रुतज्ञानका विषय जौ पदार्थ सो श्रुत हैं, सो श्रुत मनका विषय है। प्राप्त हुवा है श्रुतज्ञानावरणका क्षयोपशम जाकैं ऐसा आत्माकै श्रवणकीए अर्थका विचारनेमैं मनका अवलम्बनकरि प्रवृत्ति होय है जातैं कर्णइन्द्रियकरि श्रवणमात्र किया सो तो मतिज्ञान है। तिस पूर्वक पदार्थका विचार सो श्रुतज्ञान है॥ अब आदिकै विषै ग्रहण किया जो स्पर्शन इन्द्रिय ताका स्वामीपणाका निश्चयकै अर्थि सूत्र कहैं हैं—

वनस्पत्यंतानामेकं ॥ २२ ॥

अर्थ—पृथ्वीकायकूं आदि लेय वनस्पतिपर्यंतनिकै एक स्पर्शन इन्द्रिय ही है। अब अन्य इंद्रियनिका स्वामीपणा दिखावनेकूं सूत्र कहै हैं—

कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥ २३ ॥

अर्थ—कृम्यादिकनिकैं एक एक इंद्रिय बधती जानना। लट संख जोंक इत्यादिकनिकै स्पर्शन रसन ये दोय इन्द्रिय हैं। बहुरि चीटी मत्कुण (उठकण), विछू, जूं, लीख, कानखजूरा, गोभी इत्यादिकनिकै स्पर्शन रसन, घ्राण ए तीन इन्द्रिय हैं। बहुरि भ्रमर मक्षिका टीडी डांस मच्छर पतंग इत्यादिकनिकैं स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु ए च्यार इंद्रिय हैं। बहुरि मनुष्य मत्स्य गौ सर्प हंस इत्यादिकनिकैं पांचू ही इन्द्रिय हैं। संसारी जीव इन्द्रियद्वारै तो वर्णन किया॥ अब मनद्वारै वर्णन करनेकूं सूत्र कहैं हैं—

संज्ञिनः समनस्काः ॥ २४ ॥

अर्थ—जे मन सहित जीव हैं ते संज्ञी हैं जाकैं ऐसा विचार होय जो यो हित है, यो अहित है, इस हितकी प्राप्तिमैं अर अहितका निषेधमैं यो गुण है अर यो दोष है। वा शिक्षा क्रिया आलापका ग्रहण करनेरूप संज्ञा जाकै होय सो संज्ञी है। ऐसैं मनसहित संज्ञी जीव जानना। अब शेष संसारी जीव हैं ते सर्व असज्ञी जानने, तहां चौइन्द्रिय ताईं तौ समस्त असंज्ञी ही हैं मनरहित ही हैं अर पंच्चेद्रियनिमैं देव नारकी मनुष्य तो संज्ञी ही हैं इनमैं असंज्ञी नहीं होय हैं। अर पंचेन्द्रिय तिर्यंचनिमैं जे मनसहित हैं ते संज्ञी हैं। अर जे मनरहित हैं ते असंज्ञी हैं। यद्यपि संज्ञीनिमैं हू गर्भ अवस्थामैं अण्डामैं शयन करताके मूर्छितकै शिक्षा क्रिया आलापादि ग्राहीपणा नाहीं है तथापि मनका सद्भावतैं संज्ञी ही होय हैं॥ अब कहैं हैं, जाका पूर्व शरीरका तो अभाव होगया अर नवीन शरीरका ग्रहणकै अर्थि सन्मुख जो मनरहित आत्मा ताकैं कर्मका आस्रव काहेतैं होय? ऐसैं पूछैं सूत्र कहै हैं—

विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥ २५ ॥

अथ—विग्रह जो नवीन देह ताकै अर्थि जो गमन ताकै विषै कार्मणयोग है। विग्रह नाम देहका है ताक अर्थि जो परभवकूं गमन करै ताकूं विग्रहगति कहिए। अथवा "विरुद्धो ग्रहः विग्रहः" विग्रह नाम रोकनेका हू है। याहीतैं कर्म पुद्गलका ग्रहण होतैं हू नोकर्म पुद्गलनिकै ग्रहणका निरोध है।

भावार्थ—जीव मरणकरि नवीन शरीरका ग्रहण करनेकूं गमन करै है तदि एक अथवा दोय तथा तीन समय काल लागै है। तिस कालमैं कर्म पुद्गलनिका समयप्रबद्ध गृहणहोय है। अर नोकर्म पुद्गल नहीं ग्रहण होय हैं। बहुरि कार्मण शरीरकूं कर्म कहिए। तिस कार्मण शरीरद्वारै आत्माके प्रदेशनिका सकंप होना सो कार्मणयोग है। सो समस्त कर्म ग्रहण करनेका वीज है॥ अब कहै हैं जो जीव पुद्गल गमन करै सो आकाशके प्रदेशनिकी पंक्तिका क्रमरूप गमन करै है कि और तरह करै है यातैं सूत्र कहै हैं—

अनुश्रेणि गतिः॥ २६॥

अर्थ—जीवनिका तथा पुद्गलनिका गमन आकाशके प्रदेशनिकी श्रेणीरूप ही होय है। विदिशारूप गमन नहीं होय है। जीवनिके मरण होतैं जो नवीन शरीरके अर्थि गमन होय है सो आकाशके प्रदेशनिकी श्रेणी पंक्तिरूप ऊर्ध्व अधः वा तिर्यक् गमन होय है। आकाशके प्रदेशनिकी सूधीपंक्ति विषै ही गमन होय है। विदिशानिमैं गमन नाहीं है। अर पुद्गलका शुद्ध परमाणु अतिशीघ्र गमनकरि एक समयमैं चौदहराजू गमन करै सो सूधा ही गमन करै है।

इहां कोऊ पूछै—जो जीवका तो अधिकार है, इहां पुद्गलनिका ग्रहण कैसैं किया? ताका उत्तर—जो इहां गमनका ग्रहण है सो गमन जीवकै भी है, पुद्गलकै भी होय है, तातैं दोऊनिका ग्रहण किया है। इहां ऐसा विशेष जानना। जो मरण होतैं नवीन शरीरके अर्थि गमन करै, तिस कालमैं आकाशके प्रदेशनिकी सूधी पंक्तिरूप ही गमन करनेका नियम है अन्य अवसरमैं नहीं। अर पुद्गलनिकै हू जो लोकका अंत पर्यंत गमन करनेका अवसर विषै ही अनुश्रेणी गतिका नियम है, अन्य अवसरमैं श्रेणीरूप गमन करनेका नियम नहीं है॥ अब मुक्त जीवनिकी गति विशेष कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥

अर्थ—मुक्त जीवनिकी गति वक्रतारहित होय है। मुक्तजीव श्रेणीबद्ध गतिकरि एक समयमैं सूधा सातराजू ऊँचा गमनकरि सिद्धक्षेत्रमैं जाय तिष्ठै है। इहां कोऊ कहै, सूत्रमैं मुक्तजीवका नाम विना कह्या मुक्तजीवका ग्रहण कैसैं किया? ताका उत्तर—अगिले सूत्रमैं संसारीका ग्रहण है यातैं इस सूत्रमैं विना कह्या मुक्तका ग्रहण करना। ससारी जीवका परलोकके अर्थि गमन मुक्त जीववत् सरलगति है कि मोडाकरि गमन है यातैं सूत्र कहै हैं—

विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ॥ २८ ॥

अर्थ—संसारी जीवकी गति च्यार समय पहली मोडासहित है। एक दोय वा तीन मोडारूप है। विग्रह कहिए मोडा लेय सो एक वा दोय वा तीन मोडातांई लेवै। संसारी जीवनिके सरलगति तो एक समयरूप

है। जानैं सरलक्षेत्रमैं उपजनेका कर्मबन्ध किया होय ताका तो एक समयमैं ही उत्पत्तियोग्य स्थानमैं उपजना होय है। जानै एक वक्रता जामैं आवै ऐसा क्षेत्रमैं उपजनेका कारण कर्मबन्ध किया होय ताका दूजे समयमैं उत्पन्न होना होय है, अर जो दोय वक्रताकरि उत्पत्ति स्थानमैं उपजै ताकै तीजे समयमैं उत्पन्न होना होय है, बहुरि जाका तीन वक्रताकरि उत्पत्ति स्थानमैं उपजना होय ताका चौथे समयमैं उत्पन्न होना होय है। जो गति इषु कहिए बाण ताकी ज्यों सरल होय सो एक समयरूप इषुगति है। बहुरि जामैं एक वक्रता होय सो पाणिमुक्ता नामा गति दोय समयमैं होय है।

बहुरि जामैं लांगल जो हल ताकी ज्यों दोय वक्रता होय सो लांगलिका नाम गति तीन समयमैं होय है। अर जाकी गोमूत्रिका ज्यों तीन वक्रतारूप गति होय सो गोमूत्रिका नाम गति च्यार समयरूप होय है। सूत्रमैं "च" शब्द कह्या ताकरी संसारी जीवकी विग्रह जो वक्रगति भी है अर बाणकी ज्यों इषुगति भी है॥ बहुरि वक्रता जो मोडा ताकरि रहित गतिका कितना काल है ऐसैं पूछै सूत्र कहै हैं—

एकसमयाऽविग्रहा ॥ २९ ॥

अर्थ—नाहीं हैं मोडा जामैं ऐसी अविग्रहगति है सो एक समयका कालमात्र है। याहीकूं ऋजुगति कहिए है। बहुरि जो पुद्गल परमाणू हू सूधा गमन करै तो अधोलोकतैं ऊर्ध्वलोक पर्यंत एक समयमैं शीघ्र गमनकरि चौदह राजू पहुंचै हैं॥ अब विग्रहगतिमैं आहारक अनाहारकका नियमकै अर्थि सूत्र कहैं हैं—

एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः ॥ ३० ॥

अर्थ—विग्रहगतिविषै एक समय वा दोय तथा तीन समय अनाहारक है। नोकर्मवर्गणाका आहार नाहीं हैं। तहां औदारिक वैक्रियिक आहारक ए तीन शरीर तथा छह पर्याप्तिकै योग्य पुद्गलवर्गणाका ग्रहण सो आहार है। अर शरीरके योग्य पुद्गलवर्गणाका नहीं ग्रहण करना सो अनाहारक है। बहुरि कर्मवर्गणाका ग्रहण तो जेतै कार्मणशरीर रहै तैतै हुवा ही करै है। जो एक मोडा लेय उपजै सो एक समय अनाहारक है। बहुरि दोय मोडाकरि उपजै सो दोय समय अनाहारक है। अर जो तीन मोडा लेय उपजै सो तीन

समय अनाहारक है। ऐसें गमनविशेषका निरूपण छह सूत्रनिकरि किया ॥ अब जो नवीन शरीर ग्रहण करै तिस शरीरकी रचनाका प्रकारके अर्थि सूत्र कहै हैं—

सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ॥ ३१ ॥

अर्थ—जो नवीन शरीर धारै है ताका जन्म तीन प्रकार है। एक सम्मूर्छन जन्म, एक गर्भज जन्म, एक उत्पाद जन्म। तहां जो आपके योग्य द्रव्य क्षेत्र काल भावके विशेषतैं तीन लोकमें ऊर्ध्व अधः तिर्यक् सर्वतरफतैं पुद्गलनिका ग्रहणकरि देहके अवयवनिकी रचना होना-देहका बनना सो सम्मूर्च्छन जन्म है।

बहुरि जो स्त्रीके उदरविषैं माताका रुधिर पिताका वीर्यका गरण कहिए मिश्रित होना मिलना सो गर्भ है। अथवा माताकरि ग्रहण किया हुवा आहारका गरण कहिए अंगीकार करना सो गर्भ है। बहुरि जाविषैं प्राप्त होयकरि उपजै ऐसा देव नारकीनिके उपजनेका स्थान सो उपपाद है। ऐसें संसारी जीवनिके जन्मका तीन प्रकार कह्या ॥ अब तीन प्रकार जन्मके उपजनेके योनि तिनका विकल्प कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥ ३२ ॥

अर्थ—सचित्त शीत संवृत बहुरि इतर कहिए इनतैं उलटा जे अचित्त उष्ण विवृत बहुरि तीनूहीका मिश्र ऐसें योनिके नव भेद हैं। तहां जो जीवनिके उपजनेका योनिरूप पुद्गलसमूह चेतना सहित होय सो सचित्तयोनि है। अर जीवनिके उपजनेके अचेतन पुद्गल होय सो अचित्तयोनि है। बहुरि जीवकी पर्याय उपजनेका सचित्त अचित्त दोऊरूप स्थान होय सो मिश्रयोनि है। बहुरि योनिके शीत स्पर्शरूप पुद्गल होय सो शीतयोनि है। बहुरि उष्ण पुद्गल उपजनेका होय सो उष्णयोनि है। बहुरि शीत उष्ण दोऊ मिले पुद्गलरूप योनि होय सो मिश्रयोनि है। बहुरि योनिके पुद्गल प्रगट नहीं दीपै ढके होय सो संवृत्त योनि है। अर जिस योनिस्थानके पुद्गल उघडे हुए होय सो विवृत योनि है। बहुरि कुछ ढके कुछ उघडे होय सो मिश्रयोनि है।

इहां कोऊ पूछै योनि अर जन्मविषै भेद कहा है सो कहै हैं। आधार आधेयका भेदतैं भेद है।

इहां योनि तो आधार है अर जन्म आधेय है। जातैं सचित्त आदि योनिके आधार आत्मा सन्मूर्छनादि जन्मकरि शरीर आहार इन्द्रियादिककै योग्य पुद्गल ग्रहण करै है। तहां देव नारकीनिकै तो अचित्तयोनि ही है। बहुरि गर्भजन्मविषै सचित्त अचित्त दोऊरूप मिश्रयोनि है। बहुरि सन्मूर्च्छन जन्मविषै सचित्त अचित्त अर मिश्र ए तीन प्रकार योनि होय है। बहुरि देव अर नारकीनिकै शीत अर उष्ण ए दोय योनि हैं। बहुरि गर्भजन्मके भेदविषै अर सन्मूर्छन जन्मके भेदविषै शीत उष्ण मिश्र ए तीनों योनि हैं। इहां और विशेष कहै हैं। जो तेजस्कायिक जीवनिविषै उष्ण ही योनि हैं। बहुरि देव नारकी, एकेन्द्रिय, संवृत योनि ही है। विकलेन्द्रिय विवृतयोनि ही हैं। अर गर्भजनिकै संवृत विवृत दोऊरूप मिश्रयोनि हैं। बहुरि सन्मूर्छन पंचेन्द्रिय हैं ते विकलेन्द्रियवत् विवृतयोनिमैं उपजै हैं। इहां ऐसा जानना। जो जीवनिके उपजनेका आधारभूत पुद्गल स्कंधका नाम योनि है। ताके सामान्यपनैं नव भेद हैं। विस्तारकरि तिनका चोरासी लक्ष भेद हैं। सो इन नवभेदनिहीके विशेष हैं ते प्रत्यक्ष ज्ञानीनिके ज्ञानरूप दिव्यचक्षुकरि दीखे हैं। अर अन्य छद्मस्थके आगमकरि जाननेमैं आवैं हैं। अब इनी नवयोनिके भेदनिमैं तीन प्रकारका जन्मनिविषैं प्राणीनिका उपजनेका नियम दिखावनेकूं सूत्र कहैं हैं—

जरायुजांडजपोतानां गर्भः ॥ ३३ ॥

अर्थ—जरायुज अंडज पोत ए तीन प्रकारके प्राणीनिकै जन्म गर्भ ही हैं। जो जालकीज्यौं प्राणीका आच्छादन जिसमैं मांस रुधिर व्याप्त होरह्या सो जरायु है। जरायुमैं उपजैं ते जरायुज हैं। बहुरि माताका रुधिर पिताका वीर्यही गोलसा होजाय ऊपरी कठिन नखकी त्वक्समान सो अंड है। अर अंडामैं उपजैं सो अंडज हैं। जाकै ऊपरी कुछहू आवरण नहीं, आवरणविनाही जाका परिपूर्ण अवयव होय, योनितैं निकसतैं ही चलनहलनादि सामर्थ्यसहित होय सो पोत है।

बहुरि सूत्रमैं जरायुजका आदिमैं ग्रहण किया सो जरायुज प्रधान हैं। जातैं अंडजनितैं अर पोतनितैं असाधारण भाषा अर अध्ययनादिक जरायुजनिमैं देखिए है। अर चक्रधर वासुदेवादिक महाप्र-

भाववानहू जरायुजनिमैं ही उपजै हैं। अर मोक्ष भी जरायुजनिहीकैं होय है। मनुष्य वृषभादिक जरायुज हैं। हंस कपोतादिक अंडज हैं। सिंहव्याघ्रादिक पोत हैं। इन तीनोंनिकै जन्म गर्भतैं ही हैं॥ अब उपपाद जन्म कोन कोनकै है यातैं सूत्र कहैं हैं—

देवनारकाणामुपपादः ॥ ३४ ॥

अर्थ—देवनिकै अर नारकीनिकै उपपाद जन्म है। च्यार प्रकारके देवनिका अर नारकीनिका उपपाद जन्म कह्या सो देवनिके तो प्रसूतिस्थानमैं शुद्ध सुगंध कोमल सँपुटके आकार शय्या है। तिसमैं उत्पन्न होय अंतर्मुहूर्त्तमैं परिपूर्ण यौवनवान हुवा जैसैं कोऊ शय्यामें सूता जागृत होय आनंदसहित बैठा होय है तैसैं देवनिका उपपाद जन्म होय है। अर नारकीनिके उत्पन्न होनेके बिलनकी छातिनिविषैं मधुछत्ताकी ज्यों अधोमुख उष्ट्रमुखादिककै आकार छोटेमुखनिकै उत्पत्तिस्थान हैं तिनमैं नारकी उपजि अधोमस्तक ऊंचे पगतैं महाऊष्मादिक वेदनातैं निकसि विलाप करता भूमिविषै पडै है। ऐसैं देवनारकीनिके उत्पत्तिके स्थान उपपाद हैं, तहां ही देवनारकीनिका जन्म है॥ अब अन्य जीवनिकै कौन जन्म है यातैं सूत्र कहैं हैं—

शेषाणां सन्मूर्च्छनं ॥ ३५ ॥

अर्थ—गर्भजन्मवाले मनुष्य तिर्यंच अर अन्य उपपाद जन्मवाले देवनारकी इनतैं जे शेष एकेंद्रियादि चौ इंद्रिय तांई तथा केई पंचेंद्रिय तिर्यंच इनिकै सन्मूर्छन जन्म है॥ अब तीन प्रकार जन्मके धारक जे प्राणी तिनकै शुभ अशुभ कर्मके फल भोगनेके आधार कौन शरीर हैं? ऐसैं प्रश्न होतैं सूत्र कहै हैं—

औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि ॥ ३६ ॥

अर्थ—औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण, ए पंच प्रकार शरीर कर्मके फल भोगनेके आधार हैं। जो उदार कहिए स्थूल होय सो औदारिक है। बहुरि एक अनेक सूक्ष्म स्थूल हलका भारी इत्यादिक विकारकै योग्य होय सो वैक्रियिकशरीर है। बहुरि जो सूक्ष्मपदार्थका निर्णयकै अर्थि वा ऋद्धि-

विशेषका सद्भाव जाननेके अर्थि वा संयमके परिपालनके अर्थि प्रमत्तगुणस्थानधारी रचै सो आहारकशरीर है।

बहुरि देहमैं तेजका निमित्त सो तैजसशरीर है। बहुरि ज्ञानावरणादिक अष्टकर्मनिका समूहरूप कार्मणशरीर है। ऐसैं शरीरके भेद पांच कहे॥ अब कोऊ कहै जैसैं औदारिकका ग्रहण इंद्रियनिकरि होय हैं तैसैं वैक्रियिकादिकनिका ग्रहण काहेतैं नहीं होय यातैं सूत्र कहै हैं—

परं परं सूक्ष्मं ॥ ३७ ॥

अर्थ—औदारिकतैं अगिले अगिले शरीर सूक्ष्म हैं। औदारिक शरीरतैं वैक्रियिक सूक्ष्म है। यातैं आहारक सूक्ष्म है। यातैं तैजस सूक्ष्म है। यातैं कार्मण सूक्ष्म है। ऐसैं उत्तरोत्तर सूक्ष्म है॥ इहां कोऊ कहैं जो परैं परैं सूक्ष्म शरीर कह्या तौ परैं परैं प्रदेशनितैं हीन होनेका प्रसंग आया। इस दोषकै दूरि करनेकूं सूत्र कहैं हैं—

प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥ ३८ ॥

अर्थ—इहां प्रदेश शब्दका अर्थ परमाणु है। ए कहे जे शरीर ते तैजसतैं पहिले कहे ते असंख्यात असंख्यात गुणाकाररूप परमाणुका पिंड है। औदारिकशरीरके जेते परमाणू हैं तिनतै असंख्यातगुणे वैक्रियिकशरीरविषै परमाणु हैं। वैक्रियिकके परमाणुतैं असंख्यातगुणे आहारकविषै हैं।

इहां कोऊ आशंका करै जो परैं परैं शरीरनिमैं असंख्यातगुणे परमाणु हैं तो परैं परैं महान स्थूलपणाका प्रसंग आया, परैं परैं सूक्ष्मपणा कहां रह्या, ताकूं कहै हैं। जो स्थूलपणा नाहीं आवै है। रुईका समूह और लोहका पिंडकी ज्यों बंधनका विशेष है। यातैं बहुत परमाणुपिंडहू सूक्ष्म परिणाम हैं॥ अब पूछै हैं जो तैजस पहली तो ऐसा प्रमाण कह्या तो तैजस कार्मणका प्रदेश समान हैं, कि कुछ विशेष यातैं सूत्र कहै हैं—

अनंतगुणे परे ॥ ३९ ॥

अर्थ—आहारकशरीरके परमाणुतैं तैजसविषैं अनंतगुणे परमाणु हैं। तैजसतैं कार्मणविषै अनंतगुणे

परमाणु हैं। इहां कोऊ कहै—तैजसकार्मणदेहसहित आत्माका वज्र कठोरतातैं वांछितगमन जो अपने जाने योग्य क्षेत्रप्रति गमन सो नहीं होना होयगा, अन्यकी ज्यों रुकता होयगा ताका निराकरण करनेकूं सूत्र कहै हैं—

अप्रतिघाते ॥ ४० ॥

अर्थ—तैजस कार्मण ए दोऊ शरीर अन्य मूर्तिमान पुद्गलादिकनिकरी नहीं रुकै हैं। जैसे अग्निके परमाणुनिका सूक्ष्म परिणमनतैं लोहका पिंडमैं प्रवेश होजाय है। तैसैं तैजस कार्मण दोऊ शरीर वज्रमय पटलादिकनिमैंहू नहीं रुकै हैं। इहां कोऊ कहै कि—जो वैक्रियिक आहारकहू सूक्ष्म परिणमनतैं काहू करि नहीं रुकै हैं इनकूं अप्रतिघात कह्यो। ताकूं कहै हैं—ऐसैं नहीं हैं।

इहां सर्वलोकमैं नहीं रुकनेकी अपेक्षा अप्रतिघात कह्या है अर वैक्रियिक, आहारक सर्वलोक क्षेत्रमें अप्रतिघात नाहीं जातैं आहारक शरीरका गमन तो अढाई द्वीपपर्यंत ही है। अर मनुष्यनिकै ऋद्धितैं प्राप्तभया वैक्रियिक मनुष्यलोकपर्यंत ही गमन करि सकै है। अर देवनिका वैक्रियिक शरीर है सो त्रसनालीपर्यंत ही गमन करिसकै है, अधिक क्षेत्रमें गमन नाहीं है। तातैं सर्व लोकमैं अप्रतिघात तो तैजस कार्मण ही हैं॥ इनि शरीरनिका ओर हू विशेष कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

अनादिसंबंधे च ॥ ४१ ॥

अर्थ—आत्माकै तैजस कार्मणका सम्बन्ध अनादितैं है। औदारिक वैक्रियिक आहारक जैसैं कदाचित् सम्बन्धरूप होय है। कबहू कोऊ शरीर होय कबहू कोई होय तैसैं नाहीं हैं, तैजस कार्मण ए दोऊ शरीर तो सर्व अवस्थामैं संसारका क्षयपर्यंत सदा ही रहै हैं। इस सूत्रमैं "च" शब्द है सो विकल्प अर्थमैं है। तातैं कथंचित् सादिसम्बन्ध है। तहां कार्यकारणरूप बन्ध सन्तानकी अपेक्षा तो अनादिसम्बन्धरूप हैं। अर पुरातन अनन्त परमाणु समय समय निर्जरैं हैं अर नवीन नवीन अनन्त परमाणु संचयरूप होय हैं। जैसैं विशेषकी अपेक्षा सादि सम्बन्ध है बीजवृक्षकी ज्यौं जानना।

जिनके मतमैं शरीरका सम्बन्ध सादि ही है वा अनादि ही है ऐसा पक्षपाततैं तिनकै अनेक दोष आवै हैं। जो आत्माकै शरीरका संबंध सादिही मानै तौ शरीरका संबंध पहली आत्मा अत्यंत शुद्ध ठहस्या तब नवीन शरीरका संबंधका निमित्त कोऊ नहीं रह्या तब विनानिमित्त कैसैं होय। अर शुद्ध जीवकैहू निमित्तविना ही शरीरका संबंध होय तो मुक्तजीवनिके हू शरीरका संबंध होनेका प्रसंग आवै तब मुक्तात्माका अभावका प्रसंग भया।

बहुरि एकांतकरि जीवकै शरीरका सम्बन्ध अनादि ही है ऐसी कल्पना करैं तो ऐसैंहू जाकै अनादिपणा है ताका अन्त नहीं होय है। आकाशकी ज्यों कार्यकारणका अभावतैं मोक्ष होनेका अभावका प्रसंग आवैगा। तातैं शरीरका सम्बन्ध कथंचित् सादि है कथंचित् अनादि है॥ अथ इहां पूछै हैं जो तैजस कार्मण दोऊ शरीर कोऊ कोऊ जीवकै ही होय है कि सर्वकै होय हैं इस नियमकै अर्थि सूत्र कहैं हैं—

सर्वस्य ॥ ४२ ॥

अर्थ—इहां सर्व शब्द निर्विशेषवाची है, यातैं तैजस शरीर अर कार्मण शरीर ए दोऊ समस्त संसारी जीवनिके होय हैं। जो ए दोऊ शरीर नहीं होय तदि संसारीपणा ही नहीं होय॥ अब औदारिकादिक शरीरनिका संसारीजीवनिकै संबंधका प्रसंग आया। तातैं जितने शरीर एककालविषै सम्भवैं तिनके दिखावनेकूं सूत्र कहै हैं—

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥ ४३ ॥

अर्थ—तिस तैजस कार्मण दोऊ शरीरनकूं आदि देयकरि एक जीवकै एक कालविषै दोय शरीर भी होंय तीन भी होंय च्यारितांई होंय। ऐसैं भाज्यरूप करना। एक कालविषै पंच शरीर नहीं होय। तहां जीवके विग्रहगतिमैं तो तैजस कार्मण ए दोय शरीर ही होय हैं। अर मनुष्य तिर्यंचनिकै विग्रहगतिविना अन्य अवसरमैं औदारिक तैजस कार्मण ए तीन शरीर जानना। अर देव नारकीनिकै वैक्रियिक तैजस कार्मण ऐसै तीन शरीर जानना। अर कोऊ प्रमत्तगुणस्थानधारी मनुषकै औदारिक आहारक

तैजस कार्मण ए चार शरीर जानना अथवा कोई मनुष्यकै औदारिक वैक्रियिक तैजस कार्मण ऐसैं भी चार शरीर होय हैं। वैक्रियिक अर आहारककैं युगपत् संभवनेका असंभव है, यातैं युगपत् पंच शरीर नहीं होय हैं॥ फेरिहू तीन शरीरनिका विशेष जनावनेकूं सूत्र कहै हैं—

निरुपभोगमंत्यं ॥ ४४ ॥

अर्थ—अन्तका कार्मण शरीर है सो उपभोग रहित है। इहां इंद्रिय द्वारकरि शब्दादिकका ग्रहण सो उपभोग है। उपभोगका अभाव सो निरुपभोग है। सो कार्मण शरीर निरुपभोग है। विग्रहगतिमैं इंद्रियकी उपलब्धि होतैं हू द्रव्येंद्रियकी रचनाको अभाव है यातैं शब्दादिक विषयका अनुभवका अभावतैं कार्मण शरीर निरुपभोग है। इहां कोऊ तर्क करै जो तैजस भी निरुपभोग है ताकूं भी कह्या चाहिए? ताका समाधान–तैजस शरीर योगका निमित्त भी नहीं है यातैं तैजस शरीर निरुपभोग है ही यातैं याकूं सूत्रमैं नहीं कह्या यो तो विना कह्या ही निरुपभोग है। तैजस कार्मण शरीरके अंगोपांग भी नाहीं हैं यातैं वचनका बोलना सुनना इत्यादिक नाहीं। तातैं ए दोऊ ही शरीर निरुपभोग हैं, अन्य शरीर उपभोग सहित हैं॥ ये जे पंच शरीर कहे तिनका जन्मका नियम कैसैं हैं यातैं सूत्र कहै हैं—

गर्भसन्मूर्च्छनजमाद्यं ॥ ४५ ॥

अर्थ—सूत्रके क्रमतैं जो आदिविषै कह्या औदारिक शरीर सो गर्भतैं उपजै तथा सन्मूर्च्छन जन्मतैं उपजै है। जो गर्भतैं उपजै वा सन्मूर्च्छनतैं उपजै सो सब औदारिक शरीर जानना॥ अब औदारिककै अनन्तर जो वैक्रियिक शरीर ताके जन्मका नियम कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

औपपादिक वैक्रियिकं ॥ ४६ ॥

अर्थ—वैक्रियिकशरीर है सो उपपादजन्मविषै उपजै है। देवनारकीनिकै वैक्रियिक शरीर है सो उपपाद जन्मविषै ही उपजै है॥ अब इहां ऐसी आशंका उपजै है जो औपपादिक जन्मविना वैक्रियिक शरीर नहीं उपजता होयगा यातैं सूत्र कहै हैं—

लब्धिप्रत्ययं च ॥ ४७ ॥

अर्थ—वैक्रियिकशरीरकै उपजनेकूं ऋद्धिहू कारण है। तपका विशेषतैं ऋद्धिकी प्राप्ति सो लब्धि जाकूं प्रत्यय कहिए कारण होय सो लब्धिप्रत्यय है सो तपके प्रभावतैं उपपादिकनिविना मनुष्यनिकैहू होय है। अर तिर्यंचनिहूंकै विक्रिया होय है॥ अब पूछै हैं जो लब्धिप्रत्यय वैक्रियिकशरीर ही है कि और भी है? यातैं सूत्र कहै हैं—

तैजसमपि ॥ ४८ ॥

अर्थ—तैजसशरीरहू लब्धितैं उपजै है। इहां अपि शब्दकरि लब्धिप्रत्ययका संबंध करना सो तैजस भी लब्धिप्रत्यय होय है ऐसा जानना। इहां विशेष जो तैजसके दोय भेद हैं। एक निःसरणस्वरूप, दूसरा अनिस्सरण स्वरूप। तहां निःसरणतैजस शुभाशुभभेदकरि दोय प्रकार है॥ तिनमैं जो तपश्चरणके धारक मुनिके कोऊ क्षेत्रमैं रोग मारी दुर्भिक्षादिककरि लोकनिकूं दुःखी देखि जो करुणा अत्यंत उपजि आवै तदि दक्षिणस्कंधमैंतैं तैजसपिंड निकलिकरी द्वादश योजनप्रमाण क्षेत्रके जीवनिका दुःख मेटी आत्मामैं प्रवेश करै सो शुभतैजस है अर कोऊ क्षेत्रके लोकनि ऊपरि अत्यंत क्रोधित होय तदि ऋद्धिके प्रभावतैं वामस्कंधतैं सिंदूरसमान रक्तवर्ण अग्निरूप आत्माका प्रदेश निकलै सो आदिमैं तो सूच्यंगुलकै असंख्यातवै भाग प्रमाण अर अंतपर्यंत क्रमतैं बधता काहलकै आकार निकसि द्वादश योजनप्रमाण समस्त जीवपुद्गलनिकूं भस्मकरि उलटा शरीरमैं प्रवेशकरि मुनिकूं दग्धकरै है सो मुनि तो नरककूं प्राप्त होय हैं। ऐसा तो निःसरण स्वरूप तैजस शरीर है। अर अनिःसरणस्वरूप समस्त संसारी जीवनिकै देहकी दीप्तिका कारण है सो लब्धिप्रत्यय नहीं है॥ अथ वैक्रियिकके अनन्तर कह्या जो आहारक शरीर ताका स्वरूपका निर्द्धारकै अर्थि सूत्र कहै है—

शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥ ४९ ॥

अर्थ—यो आहारक शरीर है सो शुभ है, विशुद्ध है, व्याघातरहित है सो प्रमत्तसंयत मुनिहीकै

होय है। चन्द्रकांतमणि समान श्वेतवर्ण एक हस्त प्रमाण उच्च समचतुरस्रसंस्थान अतिसुन्दर अंगोपांगकूं धरै, शुभरूप सप्तधातु उपधातुरहित परम निर्मल आहारक शरीर है। आहारक शरीर अन्य पर्वत वज्रादिककरि रुकै नहीं। अन्य किसीको आप रोकै नाहीं तातैं अव्याघात है। आहारक शरीर प्रमत्तसंयमी मुनिकै उत्तमांग जो मस्तक तातैं उत्पन्न होय है। सो कदाचित् लब्धिविशेषका सद्भाव जाननेकै अर्थि कदाचित् सूक्ष्म पदार्थका निर्णयकै अर्थि तथा तीर्थगमन संयमकी रक्षाकै अर्थि केवली भगवान्‌कै निकट जाय सूक्ष्म पदार्थका निर्णयकरि अन्तर्मुहूर्त्तमैं उलटा बाहुडी (लोटकर) संयमीका देहमैं आत्मप्रदेश प्रवेश करै है। इहां ऐसा नहीं जानना जो आहारक शरीर रचनेकूं प्रमत्त होय हैं प्रमत्तसंयमी मुनिहीकै होय हैं। इहां इतना विशेष और जानना। जो देवनिकै वैक्रियिक शरीर अनेक होय हैं। जो स्वर्गलोकमैं तो देव विद्यमान रहैं, अर विक्रियाकरि अन्य शरीर होय अन्य क्षेत्रमैं जाय हैं। तथा प्रमत्तसंयतकै आहारक शरीर दूरि क्षेत्र विदेहादिकनिमैं जाय है। तथा तैजस शरीर द्वादश योजन जाय है। सो इनि शरीरनिमैं आत्मा तो जिसका देहमैंतैं निकस्या सो ही आत्मा है। जैसैं कोई सामर्थ्यका धारक देव अपना एक हजार रूप कीए परन्तु उन हजार देहनिमैं अपने ही आत्माके प्रदेश हैं। बीचमैं सूच्यंगुलकै असंख्यातवै भाग प्रमाण देवकै अर वैक्रियिक शरीरकै तांतूकीज्यों जोड वन्धि रह्या है।

जातैं आत्माका खण्ड तो होय नहीं, आत्माके असंख्यात प्रदेश हैं ते एक तरफ वा अनेक तरफ कार्मण शरीर सहित निकसै हैं। जहां मूल शरीर है तहां तांई सूक्ष्म प्रदेशनिका वन्या रहै है। वैक्रियिक शरीर मूल है ताका काल तो जघन्य दश हजार वर्ष है। उत्कृष्ट तेतीस सागर है। अपर्याप्त अवस्थाका अन्तर्मुहूर्तकालकरि ऊन है। अर उत्तर वैक्रियिक देहका काल जघन्य तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त ही है। अर जो तीर्थंकरके जन्ममैं वा नन्दीश्वरादिकनिके जिनायतननिकी पूजाकूं जाय है तहां वारम्वार विक्रिया कस्या करै हैं।

ऐसैं चौदह सूत्रनिकरि पंच शरीरनिका निरूपण किया। इनि पंच शरीरनिकै परस्पर संज्ञा स्वलक्षण

स्वकारण स्वामित्व सामर्थ्य प्रमाण क्षेत्र स्पर्शन काल अन्तर संख्या प्रदेश भाव अल्पबहुत्व इत्यादिकनितैं विशेष है सो आगमतैं जानना ॥ अब लिंगका नियमकै अर्थि सूत्र कहै हैं—

नारकसन्मूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥ ५० ॥

अर्थ—नारकी जीव तथा सन्मूर्च्छन जीव ए नपुंसकलिंगी ही होय हैं। अब जहां अत्यन्त नपुंसकलिंगका अभाव तिनका प्रतिपादनकै अर्थि सूत्र कहै हैं—

न देवाः ॥ ५१ ॥

अर्थ—देव हैं ते नपुंसकलिंग नहीं हैं। देवगतिविषै पुरुषवेद तथा स्त्रीवेद दोय वेद ही पाइये हैं। इनमैं नपुंसक नहीं होय हैं। बहुरि इहां प्रसंग पाय एता विशेष और जानना। जो भोगभूमिमैं उपजै तथा म्लेच्छ खण्डके स्त्री-पुरुष दोय ही वेदनैं धारण करै हैं इनिमैं नपुंसक नहीं उपजै हैं। अब अन्यजीवनिकै लिंगनिका नियमकै अर्थि सूत्र कहै हैं—

शेषास्त्रिवेदाः ॥ ५२ ॥

अर्थ—नारकी देव तथा सन्मूर्च्छन इन विना अवशेष रहे जे गर्भज तिर्यञ्च और मनुष्य ए तीनूं वेद सहित हैं। लिंग स्त्रीलिंग पुरुषलिंग नपुंसकलिंग ए तीन पाइए हैं। सो लिंग सामान्य दोय प्रकार है। एक द्रव्यलिंग एक भावलिंग। तहां द्रव्यलिंग तो नामकर्मका उदयतैं भया ऐसा योनि स्तन तथा मेहन वा डाढी मूंछ आदिक शरीरके आकार विशेष हैं, अर भाववेद हैं सो चारित्रमोहनीयका भेद जो नोकषाय नामा जो वेदकर्म ताके उदयतैं विकाररूप आत्माका परिणाम है।

इहां स्त्रीवेद तो अंगारेकी अग्निज्यों कामकरि झकझकाट करै है। अर पुरुषवेद तृणनिकी अग्निज्यों अतिमन्द कामकरि व्याप्त है। अर नपुंसकवेद ईंटनिके पजावेकी अग्निज्यौं सास्वता प्रज्वलित कामकी तीव्रता सहित है॥ अब ए चतुर्गति सम्बन्धी प्राणीनिक अपना अपना पूर्व आयु बन्धन किया ताकूं परिपूर्ण भोगकरि नवीन शरीरकूं धारण करै हैं कि और तरैहू है यातैं सूत्र कहै हैं—

औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः || ५३ ||

अर्थ—औपपादिक कहिए देव नारकी बहुरि चरमोत्तमदेह कहिए चरमशरीरी अर उत्तम देहका धारी ऐसे तद्भवमोक्षगामी अर असंख्यात वर्षनिका आयुका धारक भोगभूमिमैं उपजे जीव ए सर्व अनपवर्त्यायु कहिए परिपूर्ण आयुकरि मरण करै हैं। इनका आयु विष शस्त्रादिकके निमित्ततैं नहीं छिदै है। इनका ए नेम है अन्यका नियम नाहीं है। सोही कहिए हैं। इनकै सिवाय कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यंचनिकी आयुकी स्थिति घटै भी है। याका उदाहरण—

जसे कोऊ जीव मनुष्य आयुकी स्थिति सौवर्षप्रमाण पूर्वजन्ममैं बांधी मनुष्य उपज्या। तहां जो पूर्वै आयुकर्मकी पुद्गलवर्गणाके जितने परमाणु बंधन कीए थे ते समस्त सौ वर्षके जितने समय होय हैं तितने समयनिमैं गुणहानिके विभागतैं निषेक रचना भई सो मनुष्यपर्यायमैं एक एक निषेक उदय आय निर्जरै हैं। सो क्रमतैं जो एक एक समयमैं आयुका निषेक निर्जरै तदि सौ वर्षमैं पूर्ण होय। परन्तु वावन वर्षपर्यंत तो समय समय एक एक निर्जरया अर पाछै कोऊ अन्य संक्लिष्ट कर्मके उदयतैं तथा बाह्य विषभक्षणतैं तथा तीव्रवेदना शस्त्रघात रक्तक्षय अतिभय अन्नजलका अवरोध श्वासोच्छ्वासका निरोध इत्यादिक कारणतैं अडतालीस वर्षके निषेक एकठे अंतर्मुहूर्त्तमैं निर्जरिजाय उदीरणा होय विनसी जांय। ऐसैं कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यंचनिका भुज्यमान आयुका उदीरणा होय है। तदि आयुकी स्थिति घटी शीघ्र मरण होय है। जैसैं आम्रफल वा पणसफल पालविषै शीघ्र पकैं, तथा आला वस्त्र घामके निमित्ततैं शीघ्र सूक तैसैं जानना।

बहुरि च्यार प्रकारके देव अर नारकी अर उत्तम मध्यम जघन्य तीनूं भोगभूमिके मनुष्य वा तिर्यंच वा कुभोगभूमिया इनिकी तथा तद्भवमोक्षगामी तीर्थंकर चक्रवर्त्यादिकनिकी भुज्यमान आयुकी स्थिति पूर्वोक्त कारणनिकरि छिदै नाहीं। कोऊ पूछै जो पूर्वोक्त कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यंचनिका आयु घटना होय है तैसैं इहां आयुका वधना भी होता होयगा। ताका समाधान—जो भुज्यमान आयुका वधना

संभवै नहीं। जातैं आयु बंधै है सो पूर्वजन्मके त्रिविभागमैं ही आयुकर्मके परमाणूनिका आस्रव आय बंध होनेका जिनागममैं नियम है तातैं भुज्यमान आयु बधै नहीं है ॥

ऐसैं इस अध्यायमैं जीवतत्त्वका निरूपण है तहां प्रथम ही जीवके उपशमकादि पंच भाव कहे तिनके तेपन भेद सात सूत्रमैं कहे। आगै जीवका प्रसिद्ध धर्म देखि उपयोगकूं लक्षण कह्या ताके भेद कहे। आगै जीवके भेद कहे तहां संसारी अर मुक्त अर संसारीमैं संज्ञी असंज्ञी त्रस स्थावर त्रसके भेद द्वींद्रियादिक पंचेद्रियताई कहे। बहुरि पांच इंद्रियके द्रव्येंद्रिय भावेंद्रियकरि भेद नाम विषय कहे। बहुरि एकेंद्रियादिक जीवनिकै इंद्रिय पाइए तिनका निरूपण अर संज्ञीजीवनिका, बहुरि परभवकूं जीव गमन करै ताका गमनका स्वरूप कह्या।

आगै जन्मके भेद, योनिके भेद अर गर्भज कैसैं उपजैं, देव नारकी कैसे उपजैं, सन्मूर्च्छन कैसे उपजैं ताका निर्णय है। आगै पंच शरीरनिके नाम कहि अर तिनका सूक्ष्म स्थूलका स्वरूप कहि अर ए कैसे उपजैं तिनका निरूपण किया। आगै वेद जिनकै जैसा होय ताकौ कहिकरि जिनकै उदयमरण तथा उदीरणामरण होय तिनका नियम कह्या ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अर्थ—ऐसैं तत्त्वार्थका है अधिगम जातै ऐसा दशाध्यायरूप जो मोक्षशास्त्र तामैं दूसरा अध्याय पूर्ण भया ॥ २ ॥

दोहा।

है जातैं तत्त्वार्थका, अधिगम सबसुखदाय। मोक्षशास्त्र मंगलमय, नमो द्वितीय अध्याय ॥ २ ॥



अथ तृतीयोऽध्यायः।

दोहा।

अधो मध्य ऊरध सकल, जीवनिवास सुदेखि।
कह्यो वचन वृषपूर जिन, ज्ञानविरागविशेष ॥ १ ॥

अब जीवतत्त्वका वर्णनमैं जीवनिका आधार विशेषका प्रतिपादनमैं प्रथम अधोलोकका वर्णनकै अर्थि सूत्र कहै हैं—

रत्नशर्कराबालुकापंकधूमतमोमहातमःप्रभाभूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ॥ १ ॥

अर्थ—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, महातमःप्रभा ए सात भूमि नीचे नीचे तीन वातवलय अर आकाश इनिकै आश्रय तिष्ठै हैं। तहां ते समस्त पृथ्वी तो घनोदधिवातवलयके आधार हैं। अर घनोदधिवातवलय है सो घनवातवलयकै आधार है। अर घनवातवलय है सो तनुवातवलयकै आधार है। अर तनुवातवलय है सो आकाशकै आधार है। अर आकाश आपहीकै आधार है।

जातैं आकाश सबतैं बडा है यातैं याकै अन्य आधारकी कल्पना नहीं है। बहुरि रत्नप्रभा नाम प्रथम पृथ्वी है सो एक लक्ष असी हजार योजनकी मोटी है तिसके मोटाईके स्कंधमैं तीन विभाग हैं। तिसमैं सोलह हजार योजन मोटा ऊपरिका खरभाग है। तिसमैं चित्रवज्रा वैडूर्य इत्यादिक हजार हजार योजनकी मोटी सोलह पृथ्वी हैं। ऐसैं सोलह हजार योजन मोटा ऊपरिका खरभाग वर्णन किया। बहुरि ताके नीचे पंकभाग है सो चौरासी हजार योजन मोटा है। अर ताके नीचै असी हजार योजनका मोटा अब्बहुल भाग है तिनमैं खर पृथ्वीका ऊपरला नीचला एक एक हजार योजन छांडिकरि मध्यकी चौदह हजार मोटी अर एक रज्जु प्रमाण चौडी लम्बी पृथ्वीविषै तो किंन्नर, किंपुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, भूत,

पिशाच इन सप्त प्रकार व्यंतरदेवनिके अर नाग, विद्युत्, सुपर्ण, अग्नि, वात, स्तनित, उदधि, द्वीप, दिक्कुमार, ऐसैं नव प्रकारके भवनवासिनिकै आवास हैं। अर पंकभागविषै असुरकुमार अर राक्षसनिकै आवास हैं। अर अब्बहुल भागविषै प्रथम नरक है तिसमैं नारकी दुखित हुए वसै हैं। ऐसैं प्रथम पृथ्वीकी मोटाई एक लक्ष असी हजार योजनकी कही।

बहुरि एक रज्जु प्रमाण अन्तर छांडि नीचे दूसरी शर्कराप्रभा पृथ्वी है, तिस दूसरी पृथ्वीकी मोटाई बत्तीस हजार योजनकी है। बहुरि एक राजू अन्तराल छांडि तीसरी पृथ्वी अठाईस हजार योजनकी मोटी है। बहुरि एक राजू प्रमाण अन्तराल छांडि चौवीस हजार योजन मोटी चौथी पृथ्वी है। बहुरि एक राजू प्रमाण अन्तराल छांड़ी वीस हजार योजन मोटी पंचमी पृथ्वी है। बहुरि एक राजू अन्तराल छांडी सोलह हजार योजन मोटी छठी पृथ्वी है। बहुरि एक राजू अन्तराल छांडी अष्ट हजार योजन मोटी सप्तमी पृथ्वी है। ऐसैं पृथ्वीपृथ्वीप्रति सामान्यपनैं एक एक राजूका अन्तर है। ऐसैं छह अन्तरालके छह राजू भए।

बहुरि सप्तम पृथ्वीके एक राजू नीचे अधोलोकका अन्त है। बहुरि इन सातों पृथ्वीनिकी चौडाई लम्बाई लोकका अन्त पर्यंत जाननी। बहुरि जिस पृथ्वीका जैसा नाम है तैसी ही ताकी प्रभा है॥ अब इहां जे सात पृथ्वी कहीं तिनिमैं नारकीनिका आवास सर्वत्र है कि कोऊ कोऊ स्थानमैं है इसका निर्द्धार करनेकूं सूत्र कहैं हैं—

तासु त्रिंशत्पंचविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनैकनरकशतसहस्राणि पंच चैव यथाक्रमं ॥ २ ॥

अर्थ—तिन रत्नप्रभादिक भूमिनिविषैं नरकनिकी इस प्रकार संख्या है। प्रथम पृथ्वीके अब्बहुलभागविषैं तीसलाख बिल (नरक) हैं। दूजा पृथ्वीविषैं पचीस लक्ष, अर तीसरी पृथ्वीविषैं पंद्रह लक्ष अर चौथी पृथ्वीविषैं दश लक्ष, अर पांचमी पृथ्वीविषैं तीन लक्ष, अर छट्ठी पृथ्वीविषैं पांच घाटी एक लक्ष, अर सातमी पृथ्वीविषैं पांच एते नरक कहिए बिल हैं। अनुक्रमकरि सातों पृथ्वीनिका जोड चौरासी

लाख विल हैं। तेई नरक हैं। ते विल गोल त्रिकोण चौकौर इत्यादिक अनेक आकाररूप केई विल संख्यात योजनके, केई असंख्यात योजनकै चौडे लम्बे हैं।

बहुरि विलनिकै परस्पर बरावर अन्तराल विषै तथा ऊपरी नीचे हरेक तरफ पृथ्वीस्कन्ध हैं। जैसैं ढोल जमीनविषैं गाडदे तव ढोलकै सब तरफ पृथ्वी रहै। अर ढोलकी पोलारी समान नारकीनिकै विल हैं। तिन एकएक विलविषै संख्यात असंख्यात नारकी वसै हैं—

प्रथम पृथ्वीका अब्बहुलभागविषैं तेरह प्रस्तर हैं अर दूजी पृथ्वीविषैं ग्यारह प्रस्तर हैं। तीजी पृथ्वीविषैं नव प्रस्तर हैं चौथी पृथ्वीविषैं सात प्रस्तर हैं अर पंचमी पृथ्वीविषैं पंच प्रस्तर हैं अर छट्टी पृथ्वीविषैं तीन प्रस्तर हैं अर सातमी पृथ्वीविषैं एकही प्रस्तर है, ऐसैं सातौ पृथ्वीनिकै मध्य उनचास प्रस्तर हैं ते समस्त प्रस्तर नीचै नीचै हैं। तिन प्रस्तरनिविषैं इंद्रक श्रेणीवद्ध प्रकीर्णक ऐसैं तीन प्रकारके विल हैं। तहां प्रस्तरके मध्य तो एक एक इंद्रकविल है अर तिस इंद्रककी चार दिशा चार विदिशानिविषैं पंक्तिरूप विल हैं ते श्रेणीवद्ध हैं।

बहुरि दिशाविदिशानिके आठ अंतरालविषैं जहां तहां विल हैं ते प्रकीर्णक हैं। ऐसैं तीन प्रकार विल कहैं। तहां प्रथम कस्तरके श्रेणीवद्ध विल चारो दिशानिविषैं प्रत्येक उनचास उनचास हैं। अर चारो विदिशानिविषैं प्रत्येक अडतालीस अडतालीस विल हैं। तहां प्रथम प्रस्तारके आठ दिशानिकै श्रेणीवद्धका जोड तीनसै अठ्यासि विलनिका होय है। आगै नीचै नीचै एक एक प्रस्तरप्रति चारो दिशानिमैं अर चार विदिशानिप्रति एक एक श्रेणीवद्ध विल घटते घटते हैं। यातैं एक एक प्रस्तर प्रति आठ आठ विल घटती होय हैं। ऐसैं एक एक दिशाप्रति तथा विदिशाप्रति एक एक श्रेणीवद्ध विल घटतै गुणचासमा प्रस्तर सप्तम नरकका है। तामैं दिशानिमैं एक एक श्रेणीवद्ध विल विदिशामैं विलका अभाव ऐसैं पांच ही विल हैं। अब यहां समस्त गुणचास प्रस्तारनिकै श्रेणीवद्ध विलनिका जोड नव हजार छसै च्यार होय है अर इंद्रक विल गुणचास ही हैं। अब शेष तीयासीलाख निवै हजार तीनसै सैंतालीस प्रकीर्णक विल हैं।

बहुरि उनचास इंद्रक कह्या ताका विस्तार ऐसा जानना जो प्रथम इंद्रक पैंतालीस लक्ष योजनके विस्तारकूं धरै है। सो अढाई द्वीपकी बराबर सूधीमै नीचै है। आगे नीचै समान अनुक्रमकरि घटता अन्तका उनचासमा इंद्रक एक लाख योजन चौडा है। ऐसैं गुणचास इंद्रक तो समस्त संख्यात योजनके हैं अर श्रेणीबद्ध समस्त असंख्यात असंख्यात योजनके हैं। बहुरि प्रकीर्णक बिल केई संख्यात योजनके विस्तार लीए हैं। केई बिल असंख्यात योजनके विस्तारतैं हैं॥ अब सीमांतादिक नरकविषैं पापकर्मके वशतैं प्रगट होता प्राणीनिका कह्या लक्षण है इस हेतुतैं सूत्र कहै हैं—

नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥ ३ ॥

अर्थ—इनि बिलनिविषैं नारकी जीव हैं ते सदा अशुभतर लेश्या अशुभपरिणाम अशुभदेह अशुभवेदना अशुभविक्रिया सहित हैं। नारकीनिकै अशुभकर्मनिका उदयकरि अत्यन्त अशुभलेश्यादिक ही पाइए हैं। पहिली दूजी पृथ्वीके नारकीनिकैं तो कापोतलेश्या ही है। बहुरि तीजी पृथ्वीके नारकीनिकै ऊपरले बिलनिकै नारकीनिकै कापोत नीचलेनिकै नील लेश्या है। चतुर्थ पृथ्वीके नारकीनिके नील लेश्या है। पांचमीवाले ऊपरिकेनिकै नील है नीचलेनिकै कृष्ण है। छट्ठीवालेनिकै कृष्ण ही है। सातमीवालेनिकै परम कृष्ण है। ऐसे नीचै नीचै अधिक अशुभ लेश्या है, अर नारकीनिका स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण शब्दनिका परिणमन जे परिणाम तेहू क्षेत्रका विशेषतैं अति दुखका कारण अत्यन्त अशुभ हैं।

बहुरि तिनका देह अशुभ कर्मके उदयतैं अत्यन्त अशुभ है। अंगउपांग वर्ण, स्पर्श, रस, गन्ध, शब्द अशुभ हैं। हुंडकसंस्थानी हैं। जैसैं कोऊ पक्षीका केश पांख उडी जाय तिस समान तिनके शरीरकी आकृति है। महाक्रूर भयके कारण जिनका दर्शन है, जिनका वैक्रियिक शरीर है तोहू मल मूत्र कफ रुधिर नशाजाल राधि वमन सिड्याहुवा मांस केश हाड चाम औदारिक देह सम्बन्धी है तिनतैं हू अत्यन्त अशुभ नारकीनिके वैक्रियिक पुद्गल है। प्रथम पृथ्वीविषै तेरवा पटलमैं नारकीनिका देहकी ऊँचाई सात धनुष तीन हाथ छः अंगुल प्रमाण है।

बहुरि नीचै नीचै पृथ्वी पृथ्वीप्रति दूनादूना शरीरकी ऊँचाईका प्रमाण जानना। ऐसैं होतैं इनकी सप्तम पृथ्वीविषै शरीरकी ऊँचाई पांचसैं धनुष प्रमाण होय है। बहुरि तिनकैं अभ्यन्तर तो असाता वेदनीयका उदय अर बाह्य उष्ण शीतकी तीव्र वेदना है। तहां पहली पृथ्वीतैं लेय चौथी पृथ्वी पर्यंत तौ समस्त बिल उष्ण ही हैं। बहुरि पांचमी पृथ्वीविषै तीन लक्ष बिल हैं तिनका च्यार भाग कीजै तहां तीन भागके सवादोय लक्ष बिल तो अति उष्णरूप ही हैं। अर चौथे भागके पिचोत्तर हजार बिल अति शीतरूप हैं। बहुरि छठी सातमी पृथ्वीविषैं शीत ही वेदना है। ऐसैं तो शीतकी उष्णकी अतिवेदना है।

बहुरि नानाप्रकारकी रोग वेदना तथा क्षुधा तृषाकी वेदना है, अर क्षेत्र महादुर्गंध है। ऐसैं अतिवेदना है। तथा तिनके क्रूर सिंह व्याघ्रादिरूप ही अशुभ विक्रिया होय है। ऐसैं नारकीनिकै लेश्या परिणाम देह वेदना विक्रिया नित्य अशुभ ही होय है ॥ अब कहैं हैं जो नारकीनिकै शीत उष्णजनित ही दुःख है कि और प्रकार भी होय है यातैं सूत्र कहैं हैं—

परस्परोदीरितदुःखाः ॥ ४ ॥

अर्थ—नारकी जीव परस्परहू दुःख उपजावै हैं। जैसें श्वान हैं ते कारण बिना ही जातिस्वभावकृत वैरकरि महानिर्दयी भए संतै परस्पर भक्षण मारण छेदनादिककरि परस्पर दुःखकूं उपजावै हैं। तैसें नारकीहू भवप्रत्यय अवधिज्ञान करि मिथ्यादर्शनका उदयकरि विभङ्गावधिज्ञानतैं दुःखके कारणनिकौं दूरहीतैं जानि परस्पर दुःख उपजावै हैं। तथा निकट प्राप्त भए नारकी परस्पर अवलोकनमात्रतैं ही कोपाग्निकरि प्रज्वलित होय हैं। अर आपहीकरि विक्रियाकरि कीए खड्ग भाला छुरी मुद्गरादि आयुधनिकरि तथा सिंहव्याघ्रसर्पादिरूप धारणकरि परस्पर छेदन भेदन मारणादिकरि दुःखकी उदीरणा करै हैं। तथा क्रोधके भरे वचननिके घातकरि महान् वैर उपजाय लरै हैं। अर जिनका देह परस्पर घातकरि खण्डखण्ड होजाय तोहू पाराकीज्यौं मिल जाय है, आयु पूर्णभये विना मरणकूं नहीं प्राप्त होय हैं। स्थितिपर्यंत बहुत दुःख भोगवै हैं ॥ अब नारकीनिकै इतने ही दुःखउत्पत्तिके कारण हैं कि और हू हैं यातैं सूत्र कहै हैं—

संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्च प्राक्चतुर्थ्याः ॥ ५ ॥

अर्थ—संक्लेशपरिणामनि करि सहित जे असुरकुमार देव तेहू तीसरी पृथ्वीपर्यंतके नारकीनिकै उदीरणा करावैहैं। केई अंबांबरीष जातिके असुरकुमार देव ते तीजी पृथ्वी तांई जाय दुःख उपजावै हैं। नारकीनिमैं परस्पर कलह उपजावै हैं। इहां कोऊ पूछै उनकै कहा प्रयोजन है ताकूं कहिए हैं, जैसैं इहां केई बलध, मिंढा, भैंसा, कूकड, मुर्गा, तीतर इत्यादिकांनैं लडाय कलह देखि हर्ष मानै हैं तैसैं ही दुष्ट असुरके परिणाम जाननैं।

तथा तप्त लोहमय रसका पावना, अग्निरूप तप्तायमान लोहमय स्तंभनितैं आलिंगन करावना, कूट शाल्मलीवृक्ष उपरि चढावना उतारना, लोहमय घनानिका घात करना, वसूलनितैं छीलना तप्त तेलमैं सींचना, लोहमय कडाहेनिमैं पकावना, भाडमैं भुलसाना, घाणीनिमैं पेलना, शूली चढ़ावना, शूलनितैं बीधना, करोतनितैं चीरना, अंगारनिमैं लोटना, व्याघ्र सिंह रीछ श्वान स्याल स्याली मार्जार न्योल्या सर्प्प उंनर काक गीध कंक घूघू शिकरा (बाज) इत्यादिकनिकरि बाधा करनेकरि तथा तप्त बालुकामैं विचरण, असिपत्रवनमैं प्रवेशन वैतरणीनिमज्जनादिकरि महादुःख उपजावना इत्यादि परस्पर दुःख उपजावै हैं। परंतु आयुका अंतविना मरण नहीं होय है ॥ अब नारकीनिकी आयुका प्रमाण कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥

अर्थ—नारकी जीवनिका आयु पहली पृथ्वीविषै एक सागरका है। दूजी पृथ्वीविषै तीन सागरका आयु है। तीजी पृथ्वीविषै सात सागरका आयु है। चौथी पृथ्वीविषै दश सागरका आयु है। पञ्चमी पृथ्वीविषै सतरह सागरका आयु है। छट्ठी पृथ्वीविषै बाईस सागरका आयु है। सप्तमी पृथ्वीविषै तेतीस सागरका आयु है।

ऐसैं सातौ पृथ्वीविषै नारकीजीवनिकी उत्कृष्ट स्थिति है। ऐसैं पृथ्वीपृथ्वीप्रति नारकीनिकी उत्कृष्ट स्थिति सामान्यकरि कही। बहुरि इन सात पृथ्वीनिविषै गुणचास प्रस्तर हैं। तहां प्रस्तरप्रस्तरप्रति नारकी

निका आयुका प्रमाण तथा शरीरका प्रमाणका विशेष है, ते अन्य ग्रन्थनितैं जाननै। नारकीनिका उपजनेका विरहकाल ऐसा जानना। प्रथम पृथ्वीमैं उत्कृष्ट विरह चौवीस मुहूर्त्तका, दूजी पृथ्वीविषै सप्त दिनरात्रीका, तीजीमैं एक पक्षका, चौथीमैं एक मासका, पञ्चमीमैं दोय महीनाका, छट्ठीमैं च्यारि मासका, सप्तमीमैं छ मासका उपजनेका विरहकाल है। जैसे प्रथम पृथ्वीमैं असंख्यात नारकी हैं तिनमैं नवा नारकीका जन्म चौवीस मुहूर्त्तमैं किसीका होय ही होय।

अब कौन पृथ्वीतांई कौन जीवका उपजनेका नियम है सो कहै हैं—तहां असैनी पंचेंद्रिय जीव जो नरकायु बांधै तो प्रथम पृथ्वीविषै ही उपजै, द्वितीयादिकनिमैं उपजने योग्य कर्म नहीं बांधै हैं। बहुरि सरीसृप हैं ते प्रथम द्वितीय दोय पृथ्वीपर्यंत ही जाय, भेरुंडादिक पक्षी तीजी पृथ्वीपर्यंत जाय आगैं नहीं जाय। विषधर सर्प च्यार पृथ्वीसिवाय नहीं जाय। सिंह पञ्चमी पृथ्वीतांई जाय उपजै मनुष्यणी छठी पृथ्वीपर्यंत ही जाय अर मत्स्य अर मनुष्य सप्तम पृथ्वीपर्यंत उपजैं। बहुरि नारकी देव भोगभूमिया एकेन्द्रिय विकलत्रय ए जीव मरिकरि नरकमैं नहीं उपजै हैं ऐसा नियम है।

अब नरकतैं निकसि कौन पर्यायमैं जन्म पावै सो कहै हैं। नरकतैं निकस्या जीव मनुष्य तिर्यंचगतिविषै कर्मभूमिका सैनी पंचेंद्रिय पर्याप्त गर्भज ही होय। भोगभूमिमैं तथा असंज्ञी लब्धिपर्याप्तक सन्मूर्छनमैं नहीं उपजै। तथा नरकतैं निकस्या जीव बलभद्र नारायण प्रतिनारायण चक्रवर्ती इनका पद नहीं पावै। बहुरि तीसरी पृथ्वीतांईका निकस्या केचित् तीर्थंकर पदधारक होय तो होजाय।

बहुरि चौथी पृथ्वीतांईका निकस्या केचित् निर्वाणगमन करै हैं। पांचमी तांईका निकस्या केचित् महाव्रत धारण करैहैं, मोक्षगमन नहीं होय है। छट्ठी तांईका निकस्या केचित् संयमासंयम देशचारित्र ग्रहण करै हैं, अर सप्तमी पृथ्वीका निकस्या क्रूर तिर्यंच ही होय मनुष्य नहीं होय, ऐसैं सप्तभूमिका विस्तारकूं धरै जो अधोलोक ताका वर्णन तो किया॥ अब तिर्यग्लोक कह्या चाहिए यातैं स्वयंभूरमण समुद्रपर्यन्त तिर्यक्प्रचयरूप अवस्थित असंख्यात द्वीपसमुद्र है तिनका नामनिर्देशादिकै अर्थि सूत्र कहै हैं—

जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥ ७ ॥

अर्थ—जम्बूद्वीपादिक द्वीप अर लवणोदादिक समुद्र ए शुभनामके धारक असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। तहां प्रथम तो जंबूद्वीप अर लवणसमुद्र अर दूजा धातकीखंडद्वीप कालोदधिसमुद्र तीजा पुष्करवरद्वीप पुष्करवरसमुद्र आगे जैसा द्वीपका नाम तैसा समुद्रका नाम जानना। चौथा वारुणीवर द्वीप, पांचमा क्षीरवरद्वीप, छट्टा घृतवर, सातमा क्षौद्रवर, आठमा नंदीश्वर, नवमा अरुणवर, दशमा अरुणभासवर, ग्यारमा कुण्डलवर, बारमा शंखवर, तेरमा रुचकवर, चौदमा भुजङ्गवर, पन्द्रमा कुशवर, सोलमा क्रौंचवर इत्यादि स्वयंभूरमणपर्यंत एकराजूके विस्तारमें अढाई उद्धारसागरप्रमाणके जेते समय होंय तितने असंख्याते द्वीपसमुद्र हैं ॥ अब इन द्वीपसमुद्रनिका विस्तार रचना संस्थान इत्यादिकका विशेषका प्रतिपादनकै अर्थि सूत्र कहै हैं—

द्विर्द्विर्विष्कंभाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥ ८ ॥

अर्थ—जो प्रथमद्वीपका विस्तार है तातैं दुगणा विस्ताररूप प्रथमसमुद्र है। तातैं दूणा विस्ताररूप द्वितीयद्वीप है। तातैं दूणा विस्ताररूप द्वितीयसमुद्र है। ऐसैं पूर्वपूर्वकूं वेढे दूणेदूणे विस्तार लीए वलय कहिए कङ्कण तथा कडाकी आकृति लिए द्वीपसमुद्र हैं। आदिमें जंबूद्वीपका विस्तार तातैं दूणा लवण समुद्र चौड़ा है। तातैं दूणा धातकीखण्ड द्वीप है। तातैं दूणा कालोदधि समुद्र है। तातैं दूणा पुष्करवर द्वीप है। ऐसैं ही द्वीपतैं दूणा चौडा समुद्र है। समुद्रतैं दूणा चौडा अगिला द्वीप है। याही अनुक्रमतैं स्वयंभूरमण समुद्र पर्यंत असंख्यात द्वीप असंख्यात ही समुद्र हैं।

बहुरि जंबूद्वीपकूं लवणोदधि समुद्र वेढे है। लवणोदधिकूं धातकीखण्डद्वीप वेढे है। धातकीद्वीपकूं कालोदधि समुद्र वेरे हैं, ऐसैं समस्त द्वीपसमुद्रनिकी रचना है ॥ आगैं पूछै हैं, जम्बूद्वीपका ठिकाना आकार विस्तारका परिमाण कह्या चाहिए जातैं अगिले द्वीपसमुद्रनिका भी विस्तारादिकका ज्ञान होय ऐसैं पूछे सूत्र कहै हैं—

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजशतसहनस्त्रविष्कम्भो जंबूद्वीपः ॥ ९ ॥

अर्थ—पूर्वैं कहे जे द्वीपसमुद्र तिनकै बीच जम्बूद्वीप है सो सूर्यमंडलकै आकार है। ताके बीचि नाभिकी ज्यों मेरुपर्वत है। अर एकलक्ष योजन प्रमाण चौडा है। अर तीन लक्ष सोलह हजार दोयसै सत्ताईस योजन तीन कोस एकसौ अठाईस धनुष साडा तेरह अंगुल कुछ अधिक प्रमाण परिधि जंबूद्वीपकी है।

बहुरि इस जंबूद्वीपकै चौगिरद अष्ट योजन ऊँची अर अर्ध योजनकी नीव सहित वेदी है सो नीचैं बारा योजन, मध्यमैं अष्ट योजन, उपरि चार योजन चौडी है, वज्रमय मूलमैं वैडूर्यमणिमय है अंत जाका अर सर्व रत्नमय है मध्य जाका ऐसी वेदी है। ताके पूर्वादिक चार दिशानिमैं विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित नाम धारक च्यार महान द्वार हैं। ते द्वार च्यार योजन चौडे लम्बे हैं अष्ट योजन ऊंचे हैं। तिनमैं विजय वैजयन्त द्वारमैं गुण्यासी हजार बावन योजन पौंणाच्यार कोश बत्तीस धनुष सवातीन अंगुल कुछ अधिक अन्तराल है।

ऐसैं ही अन्य द्वारनिकैहू परस्पर अन्तर है। बहुरि यो जम्बूद्वीप है सो जम्बूवृक्ष सहित है। उत्तरकुरु भोगभूमिमैं ईसानकोणमैं अनादिनिधन पृथ्वीकायरूप अकृत्रिम परिवारके वृक्षनि सहित जंबूवृक्ष है अर तैसैं ही देवकुरु भोगभूमिमैं नैऋतकोणाविषैं शाल्मलीवृक्ष है॥ अब इस जम्बूद्वीपविषै षट्कुलाचलनिकरि विभागनैं प्राप्त भए सप्तक्षेत्र तिनकै नाम कहै हैं—

भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥ १० ॥

अर्थ—तिस जम्बूद्वीपविषै भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत, ऐरावत, ए सप्त क्षेत्र हैं तिनमैं हिमवान् पर्वतके अर पूर्व दक्षिण पश्चिम इन तीन वोडि (तरफ) समुद्रके मध्य भरतक्षेत्र जानना योग्य है। तिस भरतक्षेत्रके मध्य पूर्वपश्चिम लम्बा विजयार्द्ध पर्वत है। सो पचीस योजन ऊंचा अर पचास योजन

चौड़ा अर सवाछह योजन नीवको धरै है। अर श्वेतवर्ण है। अर पूर्व पश्चिम अपनी कोटी तिनकरि पूर्व पश्चिमका समुद्रकूं स्पर्शै है यातैं समुद्रपर्यंत लम्बा है।

बहुरि इस पर्वतकै भूमितै दश योजन ऊँचा जाइए तहां दश योजन चौड़ी पर्वत समान लम्बी दोय विद्याधरनिकै वसनेकी श्रेणी है। तिनमैं दक्षिण श्रेणीविषै तो रथनूपुरादिक पचास नगरी है, अर उत्तरश्रेणीविषै चक्रवालादिक साठि नगरी हैं। तिन नगरीनिमैं प्रज्ञप्त्यादिक विद्याके धरनहारै विद्याधर वसै हैं। तहांतै दश योजन ऊँचा जाइए तहां दश दश योजन चौडी पर्वत समान लम्बी दोय श्रेणी हैं। तिनमैं व्यंतरदेव बसै हैं। शक्रके, सोम यम वरुण वैश्रवण नाम लोकपालनिकै, आभियोग्य व्यंतर-देवनिके निवास हैं।

बहुरि पञ्च योजन ऊँचा जाइए तहां पर्वतका शिखरतल है सो दश योजन चौडा पर्वत समान लंबा है तिस उपरि सवाछह योजन ऊँचा पूर्वदिशामैं सिद्धायतन कूट है तिस सिद्धायतन कूटपरि पद्मवेदिका-करि वेष्टित उत्तर दक्षिण एक कोश लम्बा अर पूर्व पश्चिम आधा कोश चौडा कुछ घाटि एक कोश प्रमाण ऊँचा अरहन्त भगवानका आयतन मन्दिर है। पूर्व उत्तर दक्षिण तीन द्वारनिकरि युक्त है। तिस सिद्धा-यतन कूटतैं पश्चिमकी तरफ अष्ट अन्य कूट हैं। तिनकी हू ऊँचाई चौडाई सिद्धायतनकूट समान है। तिनमैं व्यंतरादि देवनिके निवास हैं। अर इस विजयार्द्ध पर्वतकै दोऊ तरफ भूमिउपरि अनेक फल फूल-निकरि मण्डित पद्मदेवीकरि संयुक्त दोय वनखण्ड हैं। तिस पर्वतकै नीचै तमिस्रा अर खण्डप्रपाता नाम सहित दोय गुफा है।

दक्षिण उत्तर पर्वतकी चौडाई समान पचास पचास योजन लम्बी हैं, अर पूर्व पश्चिम द्वादश योजन चौडी अष्ट योजन ऊँची हैं, अर तिन गुफानिकै सवाछह योजन चौडा एक कोश मोटा अष्टयोजन ऊँचा वज्रमय कपाट युगल है। अर हिमवान् पर्वततैं पडी जे गंगा सिंधु नदी ते इन ही गुफाद्वारकी देहली नीचै होय निकसि करिकै दक्षिण भरतमैं आय भरतक्षेत्रका छह विभागकरि समुद्रमैं प्रवेश करै है।

विजयार्द्धके उत्तर तीन खण्ड अर दक्षिण तीन खण्ड हैं। तहां दक्षिणके तीन खण्डनिका मध्य एक आर्यखण्ड है। अन्य पंच म्लेच्छखण्ड हैं। अर विजयार्द्धके उत्तरका मध्यखण्डके मध्य प्रदेशमैं एक वृषभाचल नाम पर्वत है सौ सौ योजन ऊँचा गोल आकार है। या उपरि चक्रवर्ती अपना नाम लिखे हैं। या प्रकार छह खण्डरूप भरतक्षेत्र है।

बहुरि तैसे ही यथासंभव ऐरावतक्षेत्र जानना। बहुरि हैमवत, हरि, रम्यक, हैरण्यवत, इन च्यारो क्षेत्रनिमैं एक एक नाभिगिरि पर्वत है। ते गोल ऊँचे एक हजार योजन हैं। तहां क्षेत्रके मध्यप्रदेशमैं नाभिज्यों जानने। ऐसैं छह क्षेत्र तो कहे। अब निषध अर नील कुलाचलके मध्य विदेहक्षेत्र है जिस विषै योगीश्वर आत्मध्यानकरि देहरहित होय हैं, तातैं विदेह ऐसा सार्थक नाम है। इस क्षेत्रमैं सास्वतो मोक्षमार्ग प्रवर्त्तै है। ताका विशेष ज्ञानकै अर्थ क्षेत्रनिका विभागादि लिखिए हैं। तहां ऐसा जानना।

जो सुदर्शन मेरु है सो भद्रसाल वनकै मध्यविषै है। सो भद्रसाल वन पूर्व पश्चिम बावन हजार योजन लम्बा है। तिसकै बीच दश हजार योजन चौडा गोल सुदर्शन नाम मेरु है। ताकी पूर्वदिशामैं अर पश्चिम दिशामैं बाईस बाईस हजार योजनका चौडा भद्रसाल नाम वन है। ताहीकी पूर्व दिशामैं पूर्वविदेह है अर ताकी पश्चिम दिशामैं पश्चिम विदेह है। तहां पूर्वविदेहके मध्य होय सीता नदी पूर्व समुद्रकूं जाय है। तिसकरि सीताके उत्तर दक्षिणरूप पूर्वविदेहमैं दोय भाग भए। तिन दोऊ दिशामैं ही रचना समान है। इतना विशेष—जो दक्षिणके विदेहनिके अन्तमैं निषध नामा कुलाचल है। अर उत्तरमैं नीलाचल है।

अब सीता नदीकी उत्तरकी तरफकी रचना कहिए हैं। भद्रसालकी वेदीतैं लेय देवारण्यकी वेदीतांई पूर्वविदेहका क्षेत्र है। तहां च्यार वक्षार पर्वत हैं ते नीलकुलाचलतैं लेय सीता नदीके तटको प्राप्त ऐसैं उत्तर दक्षिण लम्बे हैं। इन वक्षारगिरिनिकी ऊँचाई कुलाचलके निकट च्यारसै योजन अर क्रमतैं वधती सीताके तटकनैं पांचसै योजन है तहां सीताकी तरफ ही या उपरि जिनभवन है। या प्रकार च्यार वक्षार-

गिरि जानने। तिन वक्षारगिरिनिकै बीच बीच तीन विभंगा नदी हैं। ते विभंगा नदी नीलकुलाचलतैं निकसि सीताविषै जाय मिली हैं।

ऐसैं ही सीता नदीकी दक्षिणकी तरफहू च्यार वक्षार तीन विभंगा नदी अर दोऊ तरफ अंतविषै वेदी इन नवनिकै बीच आठ विदेहक्षेत्र हैं। सो ही दिखाईए हैं। पूर्व भद्रसालकी वेदी ताकै आगै विदेह, ताकै आगै वक्षार ताके आगै विदेह ताकै आगै विभंगा ताकै आगै विदेह ताकै आगै वक्षार ताकै आगै विदेह ताकै आगै विभंगा ताकै आगै विदेह ताकै आगै वक्षार ताकै आगै विदेह ताकै आगै विभंगा ताकै आगै विदेह ताकै आगै वक्षार ताकै आगै विदेह ताकै आगै देवारण्यकी वेदी ऐसैं चार वक्षार तीन विभगा एक भद्रसाल वनकी वेदी एक देवारण्यकी वेदी इनि नवनिक बीच आठ विदेह ऐसैं सीता नदीके दोऊ तट सम्बन्धी सोलह विदेह छह विभंगा नदी आठ वक्षारगिरि जानने।

अब इनका प्रमाण ऐसैं—तीन विभंगा नदी प्रत्येक सवासै सवासै योजन चौडी अर वक्षारगिरि चार, प्रत्येक पांचसै पांचसै योजन चौडा, अर आठ विदेहक्षेत्र, प्रत्येक बाईससै बारह योजन साडातीन कोश प्रमाण चौडे हैं। इनि सबनिका जोड वीस हजार अठहतरि योजन होय है। भद्रसालकी वेदीतैं लेय देवारण्यकी वेदीतांई एता पूर्वविदेह हैं।

बहुरि पश्चिमकी रचना भी पूर्ववत् जाननी। तहां सीतोदा नदी पश्चिम विदेहकै बीचि होइ पश्चिम समुद्रमैं जाय है। ताकरि सीतोदाके उत्तर दक्षिणरूप पश्चिम विदेहमैं दोय भाग भए। तहां दोऊ दिशा रचना समान है। इनिका प्रमाण भी पूर्ववत् है। तीन विभंगा नदी चार वक्षारगिरि आठ विदेह क्षेत्र इनि सबनिका जोड वीस हजार अठहतरि योजन है। इहां पश्चिम भद्रसालकी वेदीतैं लेय भूतारण्यकी वेदीतांई एता पश्चिम विदेह है। अर जैसा पूर्वविदेहका अन्तमैं समुद्रकी तरफ उनतीससै बाईस योजन प्रमाणका देवारण्य वन है, तैसैं ही पश्चिम विदेहका अन्तमैं उनतीससै बाईस योजन प्रमाण भूतारण्य नामा वन है।

बहुरि भद्रसाल वन मेरु सहित अर दोऊ तरफका विदेह अर देवारण्य भूतारण्य ए दोऊ वन इन सबनिका जोड एक लक्ष योजन प्रमाण जानना। बहुरि सोलह तो पूर्वविदेह अर सोलह पश्चिम विदेह ऐसैं सब बत्तीस विदेहक्षेत्र हैं। तहां क्षेत्रनिकै मध्य पूर्व पश्चिम लम्बा एक एक विजयार्द्ध पर्वत है। बहुरि नीलाचल निषधाचलतैं निकसि एक एक विदेहक्षेत्रमैं दोय दोय नदी विजयार्द्ध पर्वतकै नीचे होय सीता सीतोदामैं जाय मिलै हैं। तातैं एक एक विदेहमैं छह छह खण्ड भए हैं। तहां कुलाचलकी तरफ तीन खण्डनिकै मध्य बीचले खण्डमें वृषभाचल है, बहुरि सीता वा सीतोदाके दोऊ तरफ तीन खण्डनिकै मध्य बीचला आर्यखण्ड है, अन्य पांच म्लेच्छखण्ड हैं। बत्तीस विदेहक्षेत्रनिमैं चौसठि नदी हैं। तिनमैं निलाचलतैं निकसी बत्तीस नदी तो गङ्गा सिंधु ऐसे नामकूं धारै हैं। अर निषधकुलाचलतैं निकसी बत्तीस नदी रक्ता रक्तोदा नामकूं धारै हैं। या प्रकार विदेहक्षेत्र है।

बहुरि इहां अन्य विशेष लिखिए हैं—सुदर्शन मेरुकी च्यार विदिशानिविषै च्यार गजदन्त पर्वत हैं। तहां ईशान दिशाविषै मौल्यवान गजदन्त पर्वत है ताका वैडूर्यमणीकासा वर्ण है अर अग्निविदिशा विषै श्वेत रूपाकै वर्णका सौमनस गजदन्तपर्वत है, अर नैऋत्यविषै तप्तसुवर्णवर्ण विद्युत्प्रभगजदन्त पर्वत है, अर वायुविदिशाविषै सुवर्णवर्ण गन्धमादन गजदन्त पर्वत है। ते गजदन्त मेरुतैं लेय नीलाचल निषिधाचलतैं जाय मिलै हैं, तीसहजार दोयसै नव योजन कुछ अधिक इनिकी लम्बाई है, अर इनकी ऊंचाई मेरुकै निकट पांचसै योजन है। अर कुलाचलनिकै निकट चारसै योजन प्रमाण हैं। ऐसैं मेरुकै चार विदिशानिविषै चारगजदन्त पर्वत कहे।

बहुरि सुदर्शनमेरु है सो चित्रा पृथ्वीविषै हजार योजन याकी नीव है तहां तो दश हजार निवै योजन अर दश योजनके ग्यारवै भागप्रमाण चौडा है। बहुरि अनुक्रमतैं घटता घटता समभूमीविषै दश हजार योजन चौडा है अर अन्तविषै एकहजार योजन चौडा महा शोभायमान एक लक्ष योजनप्रमाण ऊंचा है। तहां एक हजार योजन तो चित्रा पृथ्वीविषै नीव है। अर समभूमिविषै चौगिरद जो भद्रसाल

वन तातैं अनुक्रमतैं घटता पांचसै योजन ऊँचा चढि चारौ तरफ पांचसै योजन चौडी कटनी है। तिस कटनीविषै चारौ तरफ नन्दनवन है।

बहुरि ताकै उपरि ग्यारह हजार योजन तो समान चौडाई लिए पर्वत ऊंचा गया है। अर ग्यारह हजार योजन उपरि साढा इक्यावन हजार योजनक्रमतैं घटता घटता साढा बासठि हजार योजन ऊंचा चढ़िए तहां पांचसै योजन सर्व तरफ चौगिरद कटनी है, तिस कटनीविषै सर्व तरफ सौमनस नामा वन है। बहुरि तहांतै ग्यारह हजार योजन ऊँचा समान प्रमाण लिए है। बहुरि क्रमतैं पचीस हजार योजन घटि जाय है। सो छत्तीस हजार योजन ऊँचा चढिए तहां च्यारसै चोराणवै योजन चौडी चौगिरद कटनी है तिस विषै पांडुक नामा वन है। तिसकै बीच नीचै बारह योजन चौडी ऊपरि क्रमतै घटि च्यार योजन चौडी रही ऐसी च्यालीस योजन ऊँची वैडूर्य मणिमयी चूलिका है।

ऐसे च्यार वन मेरुके हैं तिनकी दिशाविषै च्यारि जिनमन्दिर हैं सो च्यारो वनविषैं सोलह जिन-मन्दिर हैं। अर नन्दनवन अर सौमनस वन इन दोऊ वनविषैं सोलह सोलह बावडी हैं। ते मिष्टजलकरि पूरित अतिमनोहररूप हैं। बहुरि पांडुकवनविषैं महा सुन्दर च्यारि शिला हैं। तिन ऊपरि तीर्थंकर प्रभुके जन्माभिषेकका सिंहासन है। पूर्वविदेह अर पश्चिमविदेह अर ऐरावत इन च्यार क्षेत्रनिमैं उपजै तीर्थंकर-निका जन्माभिषेक मेरुका पांडुकवनकी शिलाविषैं इंद्रादिकनिकरि करिए हैं।

अब किछु अन्य विशेष लिखिए हैं—मेरुपर्वत है सो समस्त क्षेत्रनितैं उत्तरदिशामैं है। जातैं आगमविषैं सूर्यकै उदयकी अपेक्षा पूर्वादिक दिशा कही हैं। पूर्वविदेह क्षेत्रमैं सूर्यका उदय नीलाचल ऊपरि दीखै है। अर निषधाचल ऊपरि अस्त होता दीखै है। तातैं पूर्वदिशामैं नीलपर्वत है। अर पश्चिम दिशामैं निषिध पर्वत है। अर दक्षिणमैं समुद्र है, उत्तरमैं मेरु है, बहुरि पश्चिम विदेहमैं निषध पर्वततैं सूर्यका उदय है। अर नीलपर्वत ऊपरि अस्त होय है। तातैं निषधाचल तो पूर्व है। अर नील पश्चिम है। अर दक्षिणमैं समुद्र है। अर उत्तरमैं मेरु है। बहुरि उत्तरकुरु भोगभूमिमैं गन्धमादन गजदंत ऊपरि

सूर्यका उदय है। अर माल्यवान् गजदंत ऊपरि अस्त होय है। तातैं पूर्वमैं गन्धमादन और पश्चिममैं माल्यवान् और दक्षिणमैं नील और उत्तरमैं मेरु है।

बहुरि देवकुरु भोगभूमिमैं सौमनस गजदंत ऊपरि सूर्यका उदय है। अर विद्युत्प्रभ गजदंत ऊपरि सूर्यका अस्त है। तातैं सौमनस पूर्व है। अर विद्युत्प्रभ पश्चिम है। अर निषध दक्षिण है। अर मेरु उत्तर है। या प्रकार च्यारो तरफतैं मेरुगिरि उत्तरमैं जानना। सो इनका विस्तार कथन तथा विदेहक्षेत्रका अनेक विशेष वर्णन राजवार्तिक ग्रन्थतैं जानना। अब जिन क्षेत्रनिका विभाग भया वे कौन हैं अर कैसैं तिष्ठै हैं इस हेतुतैं सूत्र कहै हैं—

तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥ ११ ॥

अर्थ—तिन भरतादिक क्षेत्रनिके विभाग करनेवाले पूर्व पश्चिम लम्बे ऐसैं हिमवान् महाहिमवान् निषध नील रुक्मी शिखरि ए छह कुलाचल पर्वत क्षेत्रनिका विभाग धारण करै हैं। तातैं इनकी वर्षधर संज्ञा है। भरतक्षेत्र अर हैमवत क्षेत्र इन दोऊनिकी सीमाविषै पूर्व पश्चिम समुद्र पर्यंत लम्बा सौ योजन ऊंचा पचीस योजन भूमिविषै नीव जाकी ऐसा हिमवान नामा पर्वत है। सो भरतक्षेत्रकी चौडाईतै दूणा एक हजार बावन योजन अर एक योजनका उगणीस भागमैं बारह भाग प्रमाण चौडा है।

बहुरि तिस हिमवान् पर्वतकै पहिली तरफ पूर्व पश्चिम लम्बा दक्षिण उत्तर चौडा हैमवत क्षेत्र है। सो इकवीससै पांच योजन पांच कलाका चौडा है। इस विषैं मनुष्यनिका शरीर एक कोश ऊँचा होय है। एक दिनके अन्तराल आंवला प्रमाण आहार करै हैं। कल्पवृक्षनिके दिये नानाप्रकारके भोग भोगवै हैं, विनयवान मंदकषाय हैं।

बहुरि यातैं परैं महाहिमवान् पर्वत है सो पूर्व पश्चिम समुद्रपर्यंत लम्बा है। याका बियालीससै दश योजन दश कला प्रमाण चौडा विस्तार है। दोयसै योजन ऊँचा है। यातैं परै हरिक्षेत्र चौरासीसै इकवीस योजन एक कलाका चौडा है। पश्चिम समुद्रपर्यंत लम्बा है। इस विषैं मनुष्यनिका दोय कोश

प्रमाण ऊँची काय है। दोय पल्यका आयु है। दोय दिन व्यतीत भए बहेडा प्रमाण आहार ले हैं। यातैं परै सोलह हजार आठसै बीयालीस योजन दोय कला प्रमाण चौडा पूर्व पश्चिम समुद्रपर्यंत लम्बा च्यारिसै योजन ऊँचा निषधपर्वत है। यातैं परै तेतीस हजार छहसै चौरासी योजन च्यार कला प्रमाण विदेहक्षेत्र है। पूर्व पश्चिम समुद्रपर्यंत लम्बा है। यातैं परै सोलह हजार आठसै बीयालीस योजन दोय कला प्रमाण चौडा पूर्व पश्चिम समुद्रपर्यंत लम्बा च्यारिसै योजन ऊँचा नीलपर्वत है।

यातैं परै आठ हजार च्यारसै इकईस योजन एक कला प्रमाण चौडा पूर्व पश्चिम समुद्रपर्यंत लम्बा रम्यकक्षेत्र है। यामैं मनुष्यनिकी हरिक्षेत्रवत् रचना है। यातैं परै च्यार हजार दोयसै दस योजन दश कलाका चौडा पूर्व पश्चिम समुद्रपर्यंत लम्बा दोयसै योजन ऊँचा रुक्मीपर्वत है। यातैं परै दोय हजार एकसौ पांच योजन पांच कला प्रमाण चौडा पूर्व पश्चिम समुद्रपर्यंत लम्बा हैरण्यवत नाम क्षेत्र है। यामैं मनुष्यनिकी हिमवतक्षेत्रवत् रचना है। यातैं परै एक हजार बावन योजन बारह कला प्रमाण चौडा सौ योजन ऊँचा पूर्व पश्चिम समुद्रपर्यंत लम्बा शिखरी पर्वत है। यातैं परै ऐरावत नामा क्षेत्र भरतक्षेत्रवत् है। ऐसैं षट्कुलाचलनिकरि क्षेत्रनिका सात विभाग होय हैं। तिन षट्कुलाचलनिका वर्णविशेष प्रतिपादनकै अर्थि सूत्र कहै हैं—

हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ॥ १२ ॥

अर्थ—हिमवान् कुलाचल हेममय कहिये सुवर्णमय पीतवर्णका है। महाहिमवान् पर्वत अर्जुनवर्ण कहिये रूप्यमय है। निषधपर्वत तरुणसूर्यके समान तप्त सुवर्णमय है। नीलपर्वत वैडूर्यमणिवत् कहिये मयूर कण्ठके समान वर्णका है। रुक्मि पर्वत रजतमय कहिये शुक्लवर्ण है, अर शिखरी पर्वत हेममय कहिये पीतवर्णका है ऐसा जानना ॥ अब इन पर्वतनिका और भी विशेष स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥ १३ ॥

अर्थ—नानाप्रकारके वर्ण अर प्रभावादिकनिकरि सहित जे मणि तिनकरि इन कुलाचलनिके

पसवाडे विचित्र हैं। बहुरि मूलतैं लेय ऊपरितांई समान चौडे हैं। बहुरि सुगन्ध पुष्पादिकनिके धारक नानाप्रकारके उत्तम वृक्षनिकरि शोभा सहित हैं। सर्व ही पर्वतनिके दोऊ पार्श्वनिविषैं वेदी हैं॥ अब इन पर्वतनिके ऊपरि तिष्ठते हृदनिके कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

पद्ममहापद्मतिगंछिकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका हृदास्तेषामुपरि ॥ १४ ॥

अर्थ—हिमवान् कुलाचल ऊपरि पद्महृद है। महाहिमवान ऊपरि महापद्म है। निषध ऊपरि तिगंछि हृद है। नील ऊपरि केसरि हृद है। रुक्मी ऊपरि महापुण्डरीक हृद है। शिखरीके ऊपरि पुण्डरीक हृद है। ऐसैं छह कुलाचलनि ऊपरि छह हृद कहै॥ अब इन हृदनिके आकारविशेष कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो हृदः ॥ १५ ॥

अर्थ—इनमैं प्रथम जो पद्म नामा हृद है सो पूर्व पश्चिम एक हजार योजन लम्बा है। अर दक्षिण उत्तर पांचसै योजन चौडा है। वज्रमय याका तल है। बहुरि अनेक प्रकारके मणि तथा सुवर्ण तथा रजत तिनकरि विचित्र इसका तट है। बहुरि च्यार द्वारनिकरि सहित हृद समान लम्बी चौडी अर्द्ध योजन ऊँची पांचसै धनुष चौडी रूपामयी याके वेदी है॥ च्यारू तरफ वनखण्डकरि मण्डित है। स्फटिकमणि समान स्वच्छ गम्भीर अक्षय जलकरि भर्‍या है। अब तिसका ऊँडापना कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

दशयोजनावगाहः ॥ १६ ॥

अथ—पद्महृदकी ऊँडाई दश योजनकी है—

तन्मध्ये योजनं पुष्करं ॥ १७ ॥

अर्थ—तिस पद्महृदमैं एक योजन प्रमाण चौडा लम्बा कमल है। ताकै एक कोस लम्बा पत्र है। अर दोय कोसूं कोश चौडी बीचिमैं कर्णिका है। अर जलतलतैं दोयु कोश ऊंचा याका नाल है। अर दोय कोश मोटे पत्र हैं। याका वज्रमय मूल है। अरिष्टमणिमय कन्द है। रजतमणिमय मृणाल है। वैडूर्यमणि-

मय नाल है। सुवर्ण समान पत्र है। तप्त सुवर्ण समान केसर है। नानामणिकरि विचित्र सुवर्णमय कर्णिकायुक्त कमल है। तिस कमलकी ऊंचाईतैं अर्द्धउचताके धारक एक लक्ष चालीसहजार पन्द्रह याके परिवारके कमल हैं। तिन परिवारके कमलनिमैं श्रीदेवीके परिवारके देवनिके बसनेके महल मकान हैं॥

अव अन्य ह्रदनिका प्रमाण तथा कमलनिका प्रमाण कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

तद्द्विगुणा द्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥

अर्थ—पहिले ह्रदतैं तथा कमलतैं दूने दूने लम्बाई चौडाईरूप अगिले ह्रद तथा कमल जानने तहां पद्मह्रदतैं सर्व प्रकार दूना महापद्म ह्रद है। अर महापद्म ह्रदतैं दूना तिगंछि ह्रद है। ऐसे तीन ह्रद कहे तैसैं ही प्रमाण लिए उत्तरके तीन ह्रद हैं। इन ह्रदनिकी लम्बाई चौडाई, ऊँचाई दक्षिणके तीन ह्रदनिकै समान उत्तरकेनिके जानना। अर इनि ह्रदनिमैं जे कमल हैं तेहू दूणा प्रमाणकूं लीए हैं। पद्म ह्रदमैं एक योजनका कमल कह्या तातैं दूणा महापद्म ह्रदमैं कमल है सो जलतलतैं दोय कोश ऊँचा है। अर दोय कोश लम्बा पत्र है। अर एक योजन मोटा पत्र है। अर एक योजनका कमलके बीचि कर्णिका है। अर ताके परिवारके कमल पद्म ह्रद समान ही एक लाख चालीस हजार पनरा है। विस्तार दूणा है। यातैं तिगंछि ह्रदका प्रमाण तथा कमलका विस्तार दूणा है। अर उत्तरका इन तीन ह्रदनिकै तुल्य है।

अब इनि ह्रदनिकै बीच कमलनिमैं निवास करनेवाली देवी हैं तिनके नाम आयु परिवारके जाननेकूं सूत्र कहै हैं—

तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः ॥ १९ ॥

अर्थ—जे ह्रदनिविषैं कमल कहे तिनिमैं छह देवी क्रमतैं बसनेवाली हैं। तिन ह्रदनिमैं कमल हैं ते वनस्पतिकाय नहीं है। पृथ्वीकाय रत्नमय हैं। कमलनिकै आकार हैं। तिन कमलनिकी कर्णिकाकै मध्य अति निर्मल उज्ज्वल महल हैं। तिन महलनिमैं निवास करनेवाली अनुक्रमतैं श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि

लक्ष्मी हैं नाम जिनके ऐसी देवी वसै हैं। तिनकी एक एक पल्यकी आयु है। अर तिस बडे कमलके परिवारके कमल हैं तिन विषै तिन देवीनिके सामानिक जातिकै पारिषदजातिके देव वसै हैं।

अब जिन नदीनिकरि क्षेत्रनिमैं विभाग भया तिनके नाम कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

गंगासिंधुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकांतासीतासीतोदानारी-
नरकांतासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥ २० ॥

अर्थ—इनि छहो हृदनितैं निकसि सप्तक्षेत्रनिविषै गमन करैं ऐसी चौदह महानदी हैं। तिनके नाम- गंगा सिंधु रोहित् रोहितास्या हरित् हरिकांता सीता सीतोदा नारी नरकांता सुवर्णकूला रूप्यकूला रक्ता रक्तोदा ए चौदह नदी छहो हृदनितैं निकसी हैं। तहां पहला पद्महृद अर छठा पुंडरीक हृद इनतैं तीन तीन नदी निकसी हैं। अर च्यार हृदनितैं दोय दोय नदी निकसी हैं। अब इन नदीनिका दिशाप्रति गमनका नियम कहै हैं—

द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥ २१ ॥

अर्थ—दोय दोयमैंतैं जे पहिले नामकरि कहीं ते पूर्व समुद्रकूं जाय हैं। एक एक क्षेत्र विषै दोय दोय नदी अनुक्रमतैं गई हैं तहां दोय दोयमैं पहिले नाम करि कही जे गंगा रोहित् हरित् सीता नारी सुवर्णकूला रक्ता ए सात नदी पूर्व समुद्र प्रति गमन करै हैं। अन्य सप्त नदीनिका गमन जणावनेकूं सूत्र कहै हैं—

शेषास्त्वपरगाः ॥ २२ ॥

अर्थ—दोय दोयमैं जे पाछैं कही ते पश्चिमसमुद्रमैं गमन करैं हैं। सिधु रोहितास्या हरिकांता सीतोदा नरकांता रूप्यकूला रक्तोदा ए सात नदी पश्चिमसमुद्रमैं गमन करैं हैं। इहां ऐसा विशेष जानना। जो च्यार तोरणद्वार सहित जो पद्महृद ताका पूर्वतोरणद्वारकरि गंगा नाम नदी निकसी पांचसै योजन तो पूर्वसन्मुख जाय अपना प्रवाहकरि गंगा नाम कूटनैं स्पर्शनकरि तथा त्रिलोकसारजीमैं कहैं हैं जो आधा

योजन गंगाकूटतैं उलीतरफतैंही दक्षिणकूं मुडिकरि पांचसै तेईस योजन अर एक योजनका उगणीस भागमैं छह भाग प्रमाण पर्वत ऊपरि दक्षिण सन्मुख आय अर सवाछह योजन चौडी अर आधे कोश ऊंडी ऐसी सौ योजनतैं कुछ अधिक प्रमाण हिमवान् पर्वततैं गोमुख सिंहाकार प्रनालिकातैं हिमवान् पर्वततैं पचीस योजन परैं दश योजन मोटी कहलाकर धारा भरतक्षेत्रमें पड़ी सो तहां एकसठि योजन चौड़ा लंबा गंगा नाम कूंड है।

ताकी दश योजन प्रमाण ऊँडाई है, वज्रमय जाका तल है, तिस कुण्डमैं साडादस योजन ऊँचा अष्ट योजन चौडा लम्बा एकद्वीप है तिस द्वीप ऊपरि श्रीदेवीका गृहप्रमाण महलकरि मण्डित श्रीदेवीका मंदिर है। तिस मंदिर ऊपरि कमलासन सिंहासन ऊपरि परम शांत स्वरूप जिनेन्द्रका प्रतिबिम्ब विराजै है। तिस प्रतिबिम्ब ऊपरि हिमवान पर्वततैं पडिकरि तिस कुण्डके दक्षिण तोरण द्वारकरिकै निकसी सो सवाछह योजन चौडी अर्ध योजन ऊँडी क्रमकरि विस्तारकूं प्राप्त होती भुजंगवत् कुटिलगामिनी खण्ड प्रपातनाम विजयार्द्धकी गुफाकरि विजयार्द्धकै नीचैं गमनकरि विजयार्द्धकूं व्यतीतकरि दक्षिण सन्मुख होय दक्षिण भरतका मध्यमैं जाय पूर्व सन्मुख मोडा खाय सवा योजन ऊँडी साडाबासठि योजन चौडा विस्तारकरि मागध द्वारकरि लवणसमुद्रमैं प्रवेश करै है।

बहुरि तिसही पद्महृदके पश्चिम तोरणद्वारकरि निकसी गंगाकीज्यौं पांचसै योजन हिमवान् पर्वत ऊपरि सूधी जाय सिंधुकूटतैं दक्षिण सन्मुख मुडि गंगाकीज्यौं सिंधुकुण्डमैं पडि तमिस्रा गुफाकरि विजयार्द्धकूं छांडि पश्चिम सन्मुख होय दक्षिण भरतके अर्द्धतैं प्रभासतीर्थ द्वारकरि लवण समुद्रमैं प्रवेश करै है। याका कुण्डादिककी स्वामिनी सिंधुदेवी है। बहुरि तिस ही पद्महृदके उत्तर तोरण द्वारकरि रोहितास्या नाम नदी निकसी सो दोयसै छिहत्तरी योजन अर छह कला तो उत्तरके सन्मुख हिमवान् पर्वत ऊपरी गई फेरि साढा द्वादश योजन विस्तार अर एक योजन ऊंडी सौ योजन कुछ अधिक लम्बी हिमवत् क्षेत्रमैं एकसौवीस योजनप्रमाण वीस्तीर्ण अर वीस योजन ऊंडा वज्रमय तलसहित कुंड है, तामैं सोलह योजन

चौडा लम्बा साढा बारह योजन ऊंचा द्वीप है ता ऊपरि श्रीदेवीका गृहप्रमाण मन्दिर ता विषै जिनप्रतिबिम्ब ऊपरि रोहितास्या नामा नदी पडिकरि तिस कुंडका उत्तर तोरणद्वारतैं निकसि उत्तर सन्मुख शब्दवद्वैताढ्य पर्वतकी अर्द्ध प्रदक्षिणा देय अर अर्द्धयोजन परसूं मुडि पश्चिम सन्मुख जाय पश्चिम लवणसमुद्रमैं प्रवेश करै है। सो या नदी निकसी तहां तो साढा बारा योजन चौडी एक कोश ऊंडी है। अर समुद्रमैं प्रवेश किया है तहां एकसौ पचीस योजन चौडी अर अढ़ाई योजन ऊँडी है। ऐसैं ए तीन नदी हिमवान् पर्वततैं निकसी हैं।

बहुरि ऐसैंही महापद्म ह्रदके दक्षिण तोरण द्वारतैं निकसी रोहित नदी सो सूधी दक्षिण सन्मुख होय हैमवत् क्षेत्रमैं पडि पूर्व समुद्रको जाय है। बहुरि महापद्म ह्रदके उत्तरद्वारतैं निकसी हरिकांता नदी हरिक्षेत्रमैं होय पश्चिमसमुद्रमैं प्रवेश करै है। बहुरि तिगंछ ह्रदके दक्षिण तोरणद्वारतैं निकसी हरित् नदी हरिक्षेत्रमैं होय पूर्व समुद्रको जाय है। बहुरि तिगंछ ह्रदके उत्तर तोरणद्वारतैं निकसी सीतोदा नाम नदी सो देवकुरु क्षेत्रमैं पडि मेरुके सन्मुख जाय दोय कोशतैं ही मेरुतैं टलि मेरुकी अर्द्ध प्रदक्षिणा देय विद्युत्प्रभ गजदन्तकी गुफामैं प्रवेशकरि पश्चिम विदेहके मध्य होय पश्चिम समुद्रमैं गमन करै है। बहुरि केसरि ह्रदके दक्षिण तोरणद्वारतैं निकसी सीता नाम नदी उत्तरकुरु भोगभूमिमैं पडि मेरुके सन्मुख जाय आध योजनतैं मेरुकी अर्द्धप्रदक्षिणा देय माल्यवान गजदन्तके नीचैं होय पूर्वविदेहमैं होय पूर्व समुद्रमैं प्रवेश करै है। बहुरि केसरी ह्रदके उत्तर तोरणद्वारतैं निकसी नरकांता नदी रम्यकक्षेत्रकी मध्य होय पश्चिम समुद्रमैं जाय है।

बहुरि महापुण्डरीक ह्रदके दक्षिण तोरणद्वारतैं निकसी नारी नाम नदी रम्यकक्षेत्रमैं होय पूर्व समुद्रमैं प्रवेश करै है। बहुरि महापुण्डरीक ह्रदके उत्तर तोरणद्वारतैं निकसी रूप्यकूला नदी सो हैरण्यवतक्षेत्रमें होय पश्चिम समुद्रको जाय है। अर पुण्डरीक ह्रदके दक्षिण तोरणद्वारतैं निकसी सुवर्णकूला नदी हैरण्यवतक्षेत्रमैं होय पूर्व समुद्रको जाय है। बहुरि सोही पुण्डरीक ह्रदके पूर्व तोरणद्वारतैं निकसी

रक्ता नाम नदी सो शिखरी पर्वत ऊपरी पांचसै योजन सूधी जाय। बहुरि उत्तर सन्मुख होय ऐरावत-क्षेत्रमें पडी गंगानदीकी ज्यौं पूर्व समुद्रमैं गमन करै है। बहुरि पुण्डरीक ह्रदके पश्चिम तोरणद्वारकरि निकसी रक्तोदा नाम नदी सिंधु नदीकी ज्यौं पश्चिम समुद्रमैं प्रवेश करै है। इन सर्व नदीनिके दोऊ तटानिविषै सुन्दर फलपुष्पादियुक्त नानाप्रकारके वृक्षनिका वन है।

अब इन नदीनिका निकसना अर परनाली होय पडना अर चौडाई ऊंडाई अर जिनकुण्डनिके द्वीपनिऊपरि पडी तिन कुण्डनिका द्वीपनिका विस्तार अर मूलतैं निकसि विस्तार ऊंडाई अर समुद्रमैं मिली तहांकी चौड़ाई ऊंडाईका विस्तार विदेहकै मध्य प्राप्त हुई सीता सीतोदा नदी पर्यंत दूणादूणा जानना। इहां जुदा जुदा तथा और विशेष वर्णन ग्रन्थ वधनेके भयतैं नहीं लिखा है।

ऐसैं सात क्षेत्रनिमैं चौदह नदी हैं। तहां हिमवत हरि रम्यक हैरण्यवत इनि च्यार क्षेत्रनिमैं मध्य विषै च्यार नाभिगिरि हैं। अर विदेहक्षेत्रकैं मध्य मेरु ही नाभिगिरि है। जिन क्षेत्रनिमैं दोय दोय नदी हैं ते तो नाभिगिरिकै सन्मुख जाय आधआध योजन उरैं तैं मुडि नाभिगिरिकी तथा मेरुकी अर्द्ध-प्रदक्षिणा देय समुद्रमैं गमन करै हैं। ऐसैं पांच क्षेत्र सम्बन्धी दश नदी जाननी। अर भरत ऐरावत विषैं नाभिगिरी नाहीं हैं। तहां सम्बन्धी च्यार नदीनिका प्रवाहादिक समान है॥ अब इन नदीनिका परिवार कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गङ्गासिंध्वादयो नद्यः ॥ २३ ॥

अर्थ—गङ्गा सिंधु नदी चौदह चौदह हजार परिवारकी नदीनिकरि सहित समुद्रमैं मिलै हैं। अर आगै रोहित रोहितास्याकी अठाईस अठाईस हजार परिवारकी नदी हैं। हरित हरिकांताकी छपन छपन हजार परिवारकी नदी हैं। सीताकी परिवार नदी एक लाख बारह हजार हैं। अर इतनी ही सीतोदाकी परिवार नदी जाननी। अर उत्तर क्षेत्रनिविषैं दक्षिणके क्षेत्रनिसमान जाननी॥ अब कहैं जो भरतादिक क्षेत्रनिका तुल्य विस्तार है कि विशेष है तातैं सूत्र कहै हैं—

भरतः षड्विंशतिपंचयोजनशतविस्तारः षड्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य ॥ २४ ॥

अर्थ—भरतक्षेत्र है ताका पांचसैं छबीस ५२६ योजन अर एक योजनका उगणीस भागमैं छह भाग प्रमाण दक्षिण उत्तर विस्तार है ॥ अन्य क्षेत्रनिका विस्तारविशेषकी प्रतिपत्तिकै अर्थि कहै हैं—

तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहांताः ॥ २५ ॥

अर्थ—तिस भरतक्षेत्रतैं कुलाचल तथा क्षेत्र दूनादूना विस्ताररूप विदेहक्षेत्र पर्यंत हैं। तहां भरतक्षेत्रतैं दूना चौडा एकहजार बावन योजन बारह कलाका हिमवान् पर्वत है। हैमवतक्षेत्र इकईससै पांच योजन पांच कला है। महाहिमवान् कुलाचल च्यार हजार दोयसै दश योजन दश कलाका है। हरिक्षेत्र आठ हजार च्यारसै इकईस योजन एक कला है। निषधकुलाचल सोलह हजार आठसै बीयालीस योजन दोय कला है। विदेहक्षेत्र तेतीस हजार छहसै चौरासी योजन च्यार कला है। ऐसैं विदेहपर्यंत दूना दूना विस्तार है ॥ आगैं उत्तरके कुलाचल क्षेत्रादिकनिका प्रमाण कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥ २६ ॥

अर्थ—उत्तरके ऐरावतादिक नीलपर्यंत भरतादिक दक्षिणके क्षेत्रनिकरि तुल्य जानने योग्य हैं ॥ अब कहै हैं—जो भरतादिक क्षेत्रनिमैं मनुष्यादिकनिकै सुखदुःखादिकनिका अनुभवादिक तुल्य है कि कुछ विशेष है। यातैं सूत्र कहै हैं—

भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्यां ॥ २७ ॥

अर्थ—भरत ऐरावत इन दोय क्षेत्रनिविषैं उत्सर्प्पण जो बढना अर अवसर्पण जो घटना इनिरूप जो छह काल तिनकरि मनुष्यादिकनिके आयुका प्रमाण कायका प्रमाण भोग उपभोग संपदा वीर्य बुद्ध्यादिकनिका बढना घटना होय है। उत्सर्पिणीमैं दिनदिन बधै हैं। अवसर्पिणीमैं घटै हैं। तहां अवसर्पिणी तो सुखमसुखमा १, सुखमा २, सुखमदुःखमा ३, दुःखमसुखमा ४, दुःखमा ५, अतिदुःखमा

६, ऐसैं छह प्रकार हैं। अर उत्सर्पिणीहू अतिदुःखमा १, दुःखमा २, दुःखमासुखमा ३, सुखमदुःखमा ४, सुखमा ५, सुखमासुखमा ६, ऐसैं छह प्रकार हैं।

अवसर्पिणीका प्रमाण दश कोडाकोडी सागरका है। सो ही उत्सर्पिणीका प्रमाण दश कोडाकोडी सागरका है। ऐ दोऊ मिले हुये कल्पकाल हैं तहां सुखमसुखमा च्यार कोडाकोडी सागर प्रमाण है। इसकी आदिमैं मनुष्य उत्तरकुरु भोगभूमिका मनुष्यके तुल्य हैं। तिसकी क्रमतैं हानि होतै दूजा काल सुखमा नामा तीन कोडाकोडी सागरका प्रवर्त्तै है। तिस कालकी आदिमैं मनुष्य हरिवर्षके मनुष्य समान हैं। मध्य भोगभूमिकी रचना इस कालमैं है। तिसकी क्रमतैं हानि होतै सुखमदुःखमा नामा तीजा काल दोय कोडाकोडी सागरका प्रवर्तै है। तिस कालकी आदिमैं मनुष्य जघन्य भोगभूमिकी ज्यौं हैमवतक्षेत्र ताके मनुष्यनिकरि तुल्य होय हैं। तिस कालकी क्रमतैं हानि होतै दुःखमसुखमा नामा चौथा काल प्रवर्तै है। याका बेयालीस हजार वर्ष घाटि एक कोडाकोडी सागर प्रमाण काल है। तिसकी आदिमैं मनुष्य विदेहनिके मनुष्यनिके तुल्य हैं। तिस कालकीहू क्रमतैं हानि होतै दुःखमा नामा पंचम काल इकईस हजार वर्षका प्रवर्तै है। इस कालकूं क्रमतैं व्यतीत होतै अतिदुःखमा नामा काल इकईस हजार वर्षका प्रवर्तै है।

प्रथम कालकी आदिमैं मनुष्यनिका आयु तीन पल्यका अनुक्रमतैं घटता अन्तमैं दोय पल्यका है। द्वितीय कालकी आदिमैं आयु दोय पल्यका अन्तमैं अनुक्रमतैं घटतै एक पल्यका है। तृतीय कालकी आदिमैं आयु एक पल्यका अन्तमैं घटतै २ एक कोटी पूर्वका है। चतुर्थ कालकी आदिमैं एक कोटी पूर्वका अन्तमैं अनुक्रमतैं एकसौवीस वर्षका। पंचमकालकी आदिमैं मनुष्यनिका आयु एकसोवीस वर्षका अन्तमैं क्रमतैं घटता वीस वर्षका है। छट्टा कालकी आदिमैं मनुष्यनिका आयु वीस वर्षका अन्तमैं क्रमतैं घटता पन्द्रहवर्षका है। ऐसैं मनुष्यनिका छह काल सम्बन्धी उत्कृष्ट आयु कह्या।

बहुरि मनुष्यनिका शरीरकी ऊँचाई प्रथम कालकी आदिमैं तीन कोस अन्तमैं दोय कोस, द्वितीय

कालकी आदिमैं दोय कोस अन्तमैं एक कोस, तृतीय कालकी आदिमैं एक कोस अन्तमैं पांचसै धनुष्य ऊँचा है। चतुर्थ कालकी आदिमैं पांचसै धनुष्य अन्तमैं सप्त हस्त ऊँचा है। पंचमकालकी आदिमैं सप्त हस्त ऊँचा अन्तमैं दोय हस्त ऊँचा है। छठा कालकी आदिमैं दोय हस्त ऊँचा अन्तमैं एक हस्त ऊँचा है। ऐसैं छह कालमैं शरीरकी ऊँचता कही। प्रथम कालमैं मनुष्यनिका वर्ण ऊगता सूर्य समान है। दूजामैं पूर्णमासीके चन्द्रमा समान है। तृतीय कालमैं हरित श्यामवर्ण है। चतुर्थ कालमैं पंचवर्ण हैं। पंचमकालमैं कांतिहीन मिश्र पंचवर्ण है। छठामैं-धूमवत् श्यामवर्ण है। ए छह कालमैं शरीरका वर्ण कह्या।

अब इनकै आहार कहै हैं। प्रथम कालमैं तीन दिन गये चौथे दिन बदरीफलकै प्रमाण आहार ग्रहण करै हैं। द्वितीय कालमैं एक दिन गए पाछैं बहेडा प्रमाण आहार ग्रहण करै हैं। अर तृतीय कालमैं एक दिन गया पाछैं आमला प्रमाण भोजन करै हैं। अर चतुर्थ कालमैं रोजीना एकवार, पंचमैं कालमैं बहुतवार, अर छठा कालमैं अति प्रचुरवृत्तिकरि भोजन करै हैं।

ऐसैं मनुष्यनिकै छह कालमैं आहारको क्रम कह्या। अर तीजा कालतांई इस भरतक्षेत्रमैं भोगभूमि प्रवर्तै है। अर चतुर्थ पंचमकालमें कर्मभूमि प्रवर्त्तै है। अर अवसर्पिणीका पंचमकालका तीन वर्ष साढाआठ महीना अवशेष रहे कल्कीका निमित्ततैं प्रभात कालमैं धर्मका नाश होयगा, मध्याह्न कालमें राजाका नाश होयगा, अर अपराह्न कालमें अग्निका नाश होयगा। तीठा पाछैं छठा कालमें मनुष्य नग्न रहैंगे। मत्स्यादिकनिका आहार करैंगे। जातैं पुद्गलनिका लूखापणातैं तो अग्निका नाश होयगा। अर मुनि श्रावकादिकका अभावतैं धर्मका नाश होयगा। अर असुरपतिका कोपतैं राजाका नाश होयगा। ऐसैं दुखम जो पंचमाकाल ताका स्वरूप कह्या।

अब अति दुःखमा नामा छठा काल इकवीस हजार वर्ष पर्यंत प्रवर्त्तैगा। इस कालमैं मनुष्य नरक तिर्यंच गतिके आए ही उपजै हैं अर नरक तिर्यंच गतिहीमें जाय उपजै हैं। अर इस छठे कालमैं मनुष्य मत्स्यादिकनिका आहार करै हैं नग्न रहै हैं। तिस छठा कालका अन्तमैं आर्यखण्डमें संवर्त्तक नाम पवन

चलै है। सो पवन पर्यंत वृक्ष भूम्यादिकको चूर्ण करती दिशाका अन्ततांई आर्यखण्डमें परिभ्रमण करै है। तिस पवन करि आर्यखण्डके जीव मरणकौ प्राप्त होय हैं। अर कितनेक विजयार्द्धके वा गंगासिंधुकी वेदीके निकटवर्ती मनुष्य तिर्यंच जीव विजयार्द्धके वा गंगासिंधुकी वेदीके क्षुद्रबिलनिमें प्रवेश करै हैं। अर कितनेक देव विद्याधर दयावान होय हैं, मनुष्य युगलादि बहुत जीवनिनैं बिल गुफादिकनिमैं प्रवेश करावे हैं।

ऐसैं छठा कालका अन्तमैं सात सात दिन पर्यंत पवन अति शीतल क्षार विष कठोर अग्निरज धूप इनकी गुणचास दिन पर्यंत वृष्टि होय है। तदि तिन वर्षानिकरि अवशेष जन नष्ट होय हैं। अर विषकी अर अग्निकी वर्षाकरि पृथ्वी एक योजन पर्यंत नीचातांई कालका प्रभावतैं चूर्ण होय है। इसकूं प्रलयकाल कहै हैं। और जो एकांती महाप्रलय मानै हैं सो नहीं जानना।

बहुरि उत्सर्पिणी कालका प्रवेश होय है। तिसका प्रथम कालकी आदिमैं मेघ वर्षै हैं। ते सात सात दिन पर्यंत जल दुग्ध घृत अमृत रसानैं वर्षै हैं। तदि तिन वर्षानिकरी भूमि उष्णता छांडि सचिक्कणता कांतिमानतानैं धारण करै है। अर वल्ली वृक्ष औषधादिक प्रकट होय है तदि नदी तीर गुफादिकमैं तिष्ठते जीव भूमिका शीतल सुगंधगुणकरि खैंचे हुए निकसिकरि क्रमतैं भूमिविषैं विचरैंगे ते नग्न रहैंगे मृत्तिकाका आहार करैंगे।

ऐसैं उत्सर्पिणीका प्रथमकाल इकईस हजार वर्ष प्रमाण व्यतीत होय चुकै तदि उत्सर्पिणीका दुःखमा नाम द्वितीय काल इकईस हजार वर्षका प्रवर्तै है। तिस द्वितीय कालका एक हजार वर्ष बाकी रहै सोलह कुलकर होय हैं। ते कुलकर कुलका आचारअग्निसैं अन्नादिक पकावना इत्यादिक क्रिया प्रगट करै हैं। बहुरि बियालीस हजार वर्ष घाटि एक कोडाकोडीसागरप्रमाण तीसरा काल प्रवर्तै हैं। तिसमैं तीर्थंकरादिक तिरेसठिशलाका पुरुष प्रगट होय हैं।

बहुरि उत्सर्पिणीक चौथा कालमैं जघन्यभोगभूमि, पांचमामैं मध्यभोगभूमि, छठामैं उत्कृष्टभो-

गभूमि ऐसैं उत्सर्पिणीका छह काल। बहुरि अवसर्पिणीका पहला दूजा तीजामैं भोगभूमि चोथामैं पांचमामैं कर्मभूमि छठामैं प्रलय ऐसैं शुक्लपक्ष कृष्णपक्षकीज्यों निरंतर प्रवर्त्तैं हैं॥ अब कहै हैं अन्य भूमिनिविषैं कैसी अवस्थिति है यातैं सूत्र कहै हैं—

ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥ २८ ॥

अर्थ—तिन भरत ऐरावत क्षेत्रनितैं अन्य जे क्षेत्र हैं ते अवस्थित हैं। जैसीकी तैसी ही रचना रहै है। जैसैं भरत ऐरावत क्षेत्रमैं काल पलटै है। आयुकायादिक घटै बधै हैं तैसैं नहीं घटै बधै हैं॥ अब अन्य क्षेत्रनिमैं आयु अवस्थित कैसैं रहै हैं यातैं सूत्र कहै हैं—

एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ॥ २९ ॥

अर्थ—हैमवत क्षेत्रके मनुष्यनिका आयु एक पल्यका है। हरिक्षेत्रके मनुष्यनिका आयु दोय पल्यका है। देवकुरुके मनुष्यनिका आयु तीन पल्यका है। इन तीन भोगभूमिमैं कायका प्रमाण एककोश दोय कोश तीन कोश ऊंचा है। अर आहार जघन्य भोगभूमिमैं एकदिनके अंतर, मध्यमैं दोय दिनकै अंतर, उत्कृष्टमैं तीन दिनकै अंतर है। इनिकै मल मूत्र पसेवादिक नहीं हैं। रोग नहीं, मरणके अवसरमैं वेदना नहीं। पुरुषकूं उवासी स्त्रीकूं छींक मरण समयमैं आवै है। अन्य वेदना नहीं होय है। बालवृद्धपणाका क्लेश नहीं है। व्रतसंयम नहीं है। कैईकनिकै सम्यक्त्व होय है। कलहादिक दुःख नहीं है। पृथक्त्व अपृथक्त्व दोऊ प्रकारकी विक्रिया करै हैं। मरण भए पीछे देह कपूरवत् विलाय जाय है। मरे पीछैं सम्यग्दृष्टी तो सौधर्म ईशान स्वर्गमैं देव होय हैं। मिथ्यादृष्टि भवनत्रिकमैंही उपजै हैं।

भोगभूमिके तिर्यंचनिकाहू मरणकरि देवलोकमैं उपजना है। परस्पर ईर्षा वैरभाव रहित है। तिर्यंच हैं ते च्यार अंगुल ऊँचे महामिष्ट तृण अमृत समान भक्षण करै हैं। जहां तावडा शीत गरमी आताप नहीं। मणिमयी भूमिका है। वर्षा नहीं होय है। जहां स्वामी सेवक नहीं। छह कर्मके क्लेशकरि जीविका नहीं है। कल्पवृक्षनिके दीए मनोवांछित भोजन वस्त्र आभरण वाहन महल पात्र वादित्र समस्त भोग

उपभोगकी सामग्री भोगै हैं। व्यभिचारादिक निंद्यकर्म जहां नहीं हैं। विकलत्रयादिक जीव नहीं हैं। जहां तिर्यंच महाभद्र परिणामी वैर विरोध रहित स्थलचर नभचर ही हैं, जलचर नहीं हैं। ऐसे भोगभूमिका वर्णन किया ॥ अब उत्तरक्षेत्रनिकी अवस्थितिके अर्थि सूत्र कहै हैं—

तथोत्तराः ॥ ३० ॥

अर्थ—जैसैं दक्षिणके क्षेत्रनिकी रचना है तैसैं ही उत्तरके क्षेत्रनिमैं है। तहां हैरण्यवतकी रचना हैमवतक्षेत्रकै तुल्य है। अर रम्यकक्षेत्रकी रचना हरिक्षेत्रकै तुल्य है। अर उत्तरकुरुकी रचना देवकुरुकै तुल्य है। ऐसैं उत्कृष्ट मध्यम अर जघन्य इन तीन भोगभूमिका दोय दोय क्षेत्र हैं। पञ्चमेरु सम्बन्धी तीस भोगभूमि हैं ॥ अब विदेहकी अवस्थिति कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

विदेहेषु संख्येयकालाः ॥ ३१ ॥

अर्थ—पञ्चमेरु सम्बन्धी पांच विदेहक्षेत्रनिविषे मनुष्यनिका आयु संख्यात वर्षका है। तहां दुःखमसुखम कालकी आदिमैं जो रीति है सो शास्वती रहै है। अर मनुष्यनिका पांचसै धनुषका काय है। नित्य आहार करै हैं। उत्कृष्ट आयु कोडी पूर्वका है। जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्तका है। इहां पूर्वका प्रमाण ऐसा जानना। चोरासी लक्ष वर्षका एक पूर्वांग होय है। चोरासी लाख पूर्वांगका एक पूर्व होय है। सो कर्मभूमिमैं उत्कृष्ट आयु कोडी पूर्वकी है ॥ अब आगैं कह्या जो भरतक्षेत्रका विस्तार ताकूं प्रकारांत करि कहै हैं—

भरतस्य विष्कम्भो जंबूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जम्बूद्वीप एकलक्ष योजन प्रमाण है ताका एकसो निवै भागकी जेतामैं एक भाग मात्र भरतक्षेत्रका विस्तार है। पूर्वैं जो भरतक्षेत्रका पांचसौ छवीस योजन छ कला प्रमाण विस्तार कह्या सो जम्बूद्वीपका लक्ष योजन क्षेत्रमैं ऐसैं वटवारा है। भरतकी एक शलाका हिमवानपर्वतका विस्तार दोय शलाकामैं है, हिमवत क्षेत्रका च्यार, महाहिमवतका आठ, हरिक्षेत्रका सोलह भागमैं है। निषधाचल

बत्तीस भागमैं है। विदेह चौसठि भागमैं है। नीलाचल पर्वत बत्तीसमैं, रम्यक सोलहमैं, रुक्मीपर्वत आठभागमैं, हैरण्यवत क्षेत्र चारि भागमैं, शिखरीपर्वत दोय भागमैं, ऐरावतक्षेत्र एक भागमैं।

ऐसैं एकसोनिवै विभाग जानने। अब इस जम्बूद्वीपकूं वेढे लवणनामा समुद्र है। सो समभूमि विषै है। याका विस्तार दोय लाख योजनका सर्वतरफ है। अर इस समुद्रकी ऊंडाई दोऊ तटनिविषै तो मांशीकी परसमान है। फिर अनुक्रमतैं ऊंडाई बधी है सो पिच्याणवै अंगुल गए एक अंगुलकी ऊंडाई है। अर पिच्याणवैं हस्त गए एक हस्तप्रमाण ऊंडा है। पच्याणवै योजन गये एक योजन ऊंडा है। ऐसैं ही तटतैं पच्याणवै हजार योजन दूरि गये एक हजार योजनका ऊंडा है। जहां हजार योजन ऊंडा है तहां दश हजार योजनके विस्तार रूप रह्या तितनीही जलकी चौड़ाई है। ऐसैं तो नीचैं क्रमतैं दोऊ तटनितैं ऊंडाई बधी है सो दोऊ तटनितैं पच्याणवै पच्याणवै हजार योजन गए हजार योजनका ऊंडा है। तहां दश हजार योजनकी चौडाई है।

बहुरि समभूमितैं दोऊतरफ जलकी ऊंचाई बधी है। सो दोऊ तटनितैं पच्याणवै हजार योजन गए सोलह हजार योजन ऊंचा जल है तहां दश हजार योजनकी चौडाई है। यवनिकी राशिकी ज्यौं याका ऊंचा जल है। यातैं लवणसमुद्रका मृदंगका संस्थान है। जैसैं मृदङ्गका एक विभाग लम्बा ऊंचा होय एक विभाग छोटा होय है। अर जैसैं मृदङ्ग बीचिमैंतैं चौडा होय नीचैं ऊपरि दोऊ तरफ क्रमतैं घटता घटता होय दोऊ मुखकी चौडाई समान होय। तैसैं समुद्रहू बीचिमैं दोय लक्ष योजन प्रमाण चौडा अर नीचैं क्रमतैं घटता हजार योजन ऊंडा गया तहां दश हजार योजनका चौडा है। अर ऐसैं ही ऊपरि क्रमतैं घटता घटता सोलह हजार योजन ऊंचा समभूमितैं गया तहां जल दश हजार योजनका चौडा है। सो पूर्णमासीके दिन तो समभूमितैं जल सोलह हजार योजन ऊंचा होय है। अर ऊपरि दश हजार योजन चौडा विस्तार होय है।

फिर पडिवाके दिनतैं लगाय दिनदिनप्रति तीनसै तेतीस योजन अर एक योजनका तीजा भाग

प्रमाण उच्चताकरि घटता जाय है सो अमावसीकै दिन ग्यारह हजार योजन समभूमितैं ऊंचा जल रहिजाय है। इस सिवाय घटै नहीं तहां जलकी चौडाईका प्रमाण गुणहत्तरि हजार तीनसै पचेतरि योजन-प्रमाण रहै है। फिर शुक्लपक्षकी पडिवातैं जलकी ऊंचाई तीनसै तेतीस योजन एक योजनका तीजा भाग नित्य बधै है। सो पूर्णिमा पर्यंत पन्द्रह दिनमैं पांच हजार योजन बधै तदि सोलह हजार योजन ऊंचा होय है। अर ऊपरि दश हजार चौडाई होय है। सो इहां जलके घटनेबधनको ऐसा हेतु जानना। जो लवणसमुद्रकै मध्यभागकी परिधिकै अभ्यन्तर पृथ्वीमैं खाडे समान एक हजार आठ पातालकलश हैं तहां च्यारों दिशा-निमैं एक एक लक्ष योजनके ऊंडे च्यार पातालकलश हैं। तिनकी ऊंडाई रत्नप्रभापृथ्वीका पङ्कभागताईं है।

बहुरि च्यारो विदिशानिविषैं दश हजार योजन ऊंडा च्यार अन्य कलश हैं। बहुरि इन आठौ कलशनिकै आठ अन्तराल तिन एक एक अन्तराल विषैं एकसो पचीस एकसो पचीस अन्य छोटे कलश हैं। ऐसैं आठ अन्तरालनिकै एक हजार कलश हैं। ते एक हजार योजनकी ऊँडाई लिए हैं। ऐसैं समस्त कलश एक हजार आठ हैं।

वज्रमय इन पातालनिकी सर्व तरफ भीति है। तिन भीतिनिकी मोटाई दिशानिकै पातालनिकी पांचसै योजनकी, विदिशानिकेकी पचास योजनकी, अन्तरालके, हजारकी पांच पांच योजन मोटी है मृदंगके आकार हैं। सो इनकी ऊँचाईकै प्रमाण मध्यस्थानकी चौडाई है। अर पींदा अर मुख अपनी ऊंचाईकै दशवै भाग है। दिशानिकै च्यार कलशनिकी ऊंचाई अर मध्यकी चौडाई लक्ष लक्ष योजनकी है। अर मध्यमैं सूं अनुक्रमतैं नीचै ऊपरि दोऊ तरफ घटता गया है सो पींदा अर मुख प्रत्येक दश हजार योजनका चौडा है। अर विदिशाकै च्यार प्रत्येक ऊँचे दश हजार योजन हैं अर मध्यमैं उदरहू दश हजार योजनका है। बहुरि मध्यतैं नीचै वा ऊपरि क्रमतैं घटता एक हजार योजन चौडा है। अर आठ अंतरा-लनिमैं तिष्ठतै एक हजार कलश एक हजार योजन ऊंडे अर मध्यमैं चौडे हैं। अर मध्यतैं ऊपरि नीचैं घटे हैं सो पींदा अर मुख एकसौ योजन प्रमाण है।

बहुरि इन समस्त एक हजार आठ कलशनिकी अपनी अपनी ऊंचाईका तीन तीन भाग करिए तहां नीचला त्रिभागविषैं तो पवन है। अर मध्यका त्रिभागविषैं जल अर पवन दोऊ हैं। अर ऊपरला त्रिभागविषैं केवल जल ही भरया है। तहां शुक्लपक्षमें तो पातालनिका मध्यभागविषै पवन वधै है। सो दिनप्रति जल ऊंचा वधै है अर कृष्णपक्षमें पवन नीचैं बैठै है। तातैं जल दिनप्रति घटै है। ऐसै लवणसमुद्रका वर्णन है।

बहुरि ए पातालकलश लवणसमुद्रहीमैं है। अन्य समस्तसमुद्रनिमैं नहीं हैं। अर समभूमिसैं लवणसमुद्रका ही जल ऊंचा है अन्य समुद्रनिका जल समभूमितैं ऊंचा नहीं है बराबरी है। बहुरि अन्य समस्तसमुद्र एक हजार योजनके ऊंडे दोऊ तटनितैं समान ऊंडाई हैं।

बहुरि लवणसमुद्रका जल लवणसमान क्षाररसमय है। अर कालोदधि अर पुष्कर अर अंतका स्वयंभूरमण इन तीन समुद्रनिका जल है सो जलके स्वादरूप ही है। अर चौथा वारुणीवरका जल मदिराका रसरूप है। पांचमा क्षीरवरसमुद्र दुग्धके स्वादरूप है। अर छठा घृतवर घृतके स्वादरूप है। ऐसैं सातसमुद्र तो भिन्न स्वादरूप कहै। अर इनतैं अन्य असंख्यात समुद्र हैं तिनके जलका इक्षुरसके समान स्वाद है। बहुरि कच्छमच्छादिक जलचर जीव हैं ते लवणसमुद्र अर कालोदधिसमुद्र अर स्वयंभूरमण इन तीन समुद्रनिमैं ही हैं। अन्य असंख्यात समुद्रनिमैं नहीं हैं। अर समस्त समुद्र हजार योजन प्रमाण समान ऊँडे हैं॥ अब आगैं लवणोदधिकै अनन्तर धातकी खण्ड नाम दूसरा द्वीप है तहां सम्बन्धी रचना कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

द्विर्धातकीखण्डे ॥ ३३ ॥

अर्थ—धातकीखण्डद्वीपविषै भरतादिक्षेत्र दोयदोय हैं। धातकीखण्ड दूसरा द्वीप है सो लवणसमुद्रको कडाकी ज्यौं वेढिकरि च्यार लक्ष योजन चौडा तिष्ठै है। जो जम्बूद्वीप समान खण्ड करिए तो लवण समुद्रका चोईस होय। धातकीखण्डका १४४ कालोदधिका ६७२ पुष्करका २८८० ऐसैं विस्तार जानना

ताकी दक्षिण उत्तरदिशामैं दोय इष्वाकार पर्वत हैं। द्वीप प्रमाण च्यारि लाख योजन लम्बे हैं। ते लवणोदधि कालोदधिकी वेदीकूं स्पर्शैं हैं। ते इक्ष्वाकार च्यारसै योजन ऊँचे हैं। सौ योजन ऊँडे हैं। एक हजार योजन प्रमाण चौड़े हैं। तिनकरि द्वीपमैं दोयभाग भया। तहां पूर्वभागके मध्य विदेहविषैं अचल मेरु है। सो इन मेरुगिरिनिकी प्रत्येक एक हजार योजन नींव अर चौरासी हजार योजन उचता है। तहां समभूमिविषैं तो भद्रसाल वन है। तातैं पांचसै योजन ऊपरि नन्दनवन है अर साढे पचपन हजार योजन ऊपरि सौमनसवन अर अठाईस हजार योजन ऊपरि पांडुक वन ऐसैं च्यार वन हैं। ऐसैं दोय मेरुपर्वत इनकी चूलिका चालीस हजार योजन ऊँची पन्नाके वर्ण है। बहुरि इन दक्षिण इष्वाकारतैं लगाय दोय दोय तरफ भरतक्षेत्र हैं।

बहुरि हिमवान पर्वत इत्यादि ऐरावतक्षेत्र तांई रचना है सो इष्वाकार तांई प्रवर्त्तै हैं। बहुरि उत्तर इष्वाकारके दोऊ तरफ ऐरावतक्षेत्र है। ऐसैं चौदह क्षेत्र बारह कुलाचल हैं। इनकी रचनाका दृष्टांत ऐसा है जैसैं पृथ्वी ऊपरि गाडोका पह्या धरि देखिए तिस पह्याका आरा समान कुलाचल पर्वत तिष्ठै हैं। ते पर्वत दोउ तरफ सर्वत्र समान चोडे हैं। अर आरनिके बीचका छिद्रका क्षेत्र होय तैसैं भरतादिक्षेत्र हैं। बाह्य कालोदधिके निकट अधिक चोडे हैं। अभ्यंतर लवणोदधिके निकट अल्प चोडे हैं। ऐसैं तहां क्षेत्र अर कुलाचल तिष्ठै हैं। बहुरि तहां भरतक्षेत्रका मध्य विस्तार बारह हजार पांचसै इक्यासी योजन अर एक योजनका दोयसै बारह कला करिए तिनमैं छत्तीस कला प्रमाण है। अर आगै हैमवत हरि विदेह पर्यंत क्षेत्रनिका चोगुणा चोगुणा विस्तार है। बहुरि उत्तरके क्षेत्र कुलाचल हैं ते दक्षिणकेनिकै समान हैं। ऐसैं धातकीखण्ड नामा दूसरा द्वीप है। ताके उत्तरके कुरुक्षेत्रविषै परिवारके वृक्षनि सहित धातकीवृक्ष है ताकरि शोभित है।

पुष्करार्द्धे च ॥ ३४ ॥

अर्थ—पुष्करार्द्धद्वीपविषे भी त्यों ही भरतादिक दोय दोय क्षेत्र तथा कुलाचल हैं। इहांहू दक्षिण उत्तर दिशाविषैं दोय इष्वाकारपर्वत हैं। एक एक हजार योजन चौडे हैं। अर च्यारसै योजन ऊँचे हैं।

अर आठ लाख योजन लम्बे हैं। कालोदधि अर मानुषोत्तरकी वेदीताईं हैं तातैं द्वीपमैं दोय भाग भया तहां पूर्व तो मन्दरमेरु है। अर पश्चिम विद्युन्माली मेरु है। दोऊ तरफ क्षेत्र कुलाचलनिकी रचना है। पुष्करार्द्धके भरतक्षेत्रका मध्यविस्तार त्रेपन हजार पांचसै बारह योजन अर एक योजनका दोयसै बारह भाग करिए तिनमैं एकसौ निन्याणवै भाग अधिक है। बहुरि इन च्यार मेरुगिरिनिका प्रमाण समानरूप है।

बहुरि कुलाचल तथा वक्षारगिरि तथा नदी हैं तिनकी चौडाई जंबूद्वीपतैं दूनी धातकीद्वीप विषै है। अर धातकीद्वीपतैं दूनी चौडाई लीए पुष्करार्द्ध विषै हैं। परन्तु ए समस्त पर्वत उच्चताकरि जम्बूद्वीपके पर्वतनिकी ऊंचाईकरि समान हैं। अधिक ऊंचा नाहीं। बहुरि धातकी पुष्करार्द्धमें क्षेत्रनिकी बाह्य चौडाई अभ्यन्तर चौडाईतैं अधिक है। याहीतैं तहांके गजदंत पर्वत हैं ते दोय तो अधिक लंबे हैं। अर दोय अल्प लंबे हैं। ऐसैं प्रत्येक च्यारों मेरुसंबंधी जानने। धातकीद्वीप तथा पुष्करार्द्धद्वीपविषैं प्रत्येक चौदह क्षेत्र बारह कुलाचल दोय इष्वाकार सहित अठाईस स्थान रूप च्यारों तरफ रचना है। सो सर्वस्थाननिके चौडाईका अंक जोडि द्वीपकी परिधि जानीजाय है।

बहुरि इस पुष्करार्द्धमें उत्तरकुरुक्षेत्रविषै परिवार वृक्षनिसहित पुष्करनामा वृक्ष है सो अपने परिवारके वृक्षनिकरि शोभित है याहीतैं पुष्करार्द्ध ऐसी सार्थक संज्ञा है। बहुरि पुष्करार्द्धद्वीपके बीच ही बीचि वलयाकृतिरूप चौफेर सुवर्ण वर्ण मानुषोत्तर नामा पर्वत है सो सतरहसै इकईस योजन उंचा है। अर एक हजार बाईस योजन मूलविषै चौडा है। अर चारसै तेतीस योजन एक कोश याकी पृथ्वीविषैं नीव है। सातसै तेईस योजन याका मध्यविस्तार है। च्यारसै चोईस योजन याका ऊपरि विस्तार है। अर मनुष्यलोककी तरफ भींतिसमान सपट सूधा है। अर बाहिरकी तरफ मूलतैं ऊपरि ऊपरि क्रमहानिकरि अल्प चौडा है। सो याकी आकृति अर्द्ध यवराशीके समान है।

बहुरि पुष्करार्द्धकी चौदह नदी निकसनेकी पर्वतके नीचै १४ गुफा हैं। इस पुष्करार्द्धद्वीपके मध्यविषैं

मानुषोत्तरपर्वतका पतनकरि अर्द्धद्वीप बाह्य रह्या तातैं पुष्करार्द्ध ऐसी संज्ञा कहिए है ॥ जो क्षेत्र पर्वतादि-कनिकी रचना है सो अर्द्धपुष्करद्वीपमैंही है, समस्त पुष्करद्वीपमैं नहीं है यातैं सूत्र कहै हैं—

प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५ ॥

अर्थ—मानुषोत्तर पर्वतकै मांही अढाई द्वीपहीमैं मनुष्य हैं। जम्बूद्वीप धातकीद्वीप अर लवणोदधि कालोधधि समुद्र अर आधा पुष्करद्वीप पर्यंत ही मनुष्य हैं। अढाईद्वीप बारै ऋद्धिधारी तथा विद्याधरनिका गमन नहीं है। उपपादसमुद्घात वा मरणांतिकसमुद्घात विना अन्यका गमन नहीं है। बहुरि ऐसैं ही द्वीपतैं समुद्र दूना समुद्रतैं द्वीप दूना ऐसैं दूणा दूणा विस्तार रूप होतै ही अष्टमा नंदीश्वर नामा द्वीप है। ताकी चौडाई एकसो तरेसठि कोडि चौरासी लाख योजनप्रमाण है। अर दोय हजार बहतरि कोडी तेतीस लाख चोपन हजार एकसो निवै योजन अर एक कोशतैं कुछ अधिक इस द्वीपकी परिधिका प्रमाण है।

इस द्वीपका अतिमध्यभागविषै च्यारौ दिशानिविषै च्यार अंजनगिरिनाम पर्वत हैं। अंजनवर्ण स्याम हैं। सो एक हजार योजन तिनकी भूमिविषै नीव है अर समभूमितैं चौरासी हजार योजन ऊँचे हैं। अर तिनका मूलमैं मध्यमैं अर अग्रभागमैं समानविस्तार लीए चौरासी हजार योजन ही उचताके समान चौडे हैं। ढोलके आकार हैं। तिनकी च्यारौ दिशानिमैं एक लक्ष योजन क्षेत्र छांडि एक एक अंजनगिरिकी च्यार दिशामैं च्यार बावडी हैं। ते एकलक्ष योजन लंबी अर चौडी अर हजार योजन ऊंडी चोकोर हैं।

ऐसैं च्यार अंजनगिरि संबंधी सोलह बावडी हैं। इनि बावडीकै च्योगिरद चार वन हैं। अशोकवन सप्तपर्णवन चंपकवन आम्रवन ते च्यारौ वन बावडीसमान एक लक्ष योजन लंबे हैं। अर पचास हजार योजन चौडे हैं।

बहुरि तिन बावडीनिकै मध्यविषै एकएक दधिमुख नाम पर्वत है। ते हजार योजनभूमिमैं नींव सहित हैं। अर दश हजार योजन ऊंचे तथा मूलमैं मध्यमैं ऊपरि समान विस्तार लीए दश हजार

योजनके चौडे हैं, गोल हैं, ढोलकै आकार हैं, सुवर्णमय हैं। तिनकै ऊपरिम भाग श्वेत रूपामय हैं। याहीतैं इनिकूं दधिमुख संज्ञाकरि कहिए हैं। ऐसैं सोलह दधिमुख पर्वत हैं।

बहुरि इन एक एक बावडीकी च्यारो कोणनिकै समीप च्यारि रतिकर पर्वत हैं। ते एक हजार ऊँचे अर मूलमें मध्यमैं ऊपरिम भागविषै सर्वत्र एक हजार योजनके विस्तार चौडे हैं। अढाईसै योजनकी पृथ्वीविषैं नीव है। ढोलकै आकार हैं। सुवर्णमणिरूप हैं। ऐसैं चौसठि रतिकर हैं। तिनमैं अभ्यंतर कोणमैं तिष्ठते बत्तीस रतिकर पर्वतविषैं देवनिके क्रीडा करनेके स्थान हैं। अर बाह्य दोय दोय कोणनिमैं तिष्ठते तिनि ऊपरि अरहन्त भगवानके आयतन हैं। ऐसैं ही च्यार दिशानिकै च्यार अंजनगिरि अर सोलह दधिमुख अर बत्तीस रतिकरनिकै ऊपरि मध्यभागविषैं जिनमंदिर हैं ऐसैं नन्दीश्वरद्वीपमैं बावन जिनमंदिर हैं। आगैं नवमा अरुणवर अर दशमा अरुणभास द्वीपसमुद्र है।

बहुरि ग्यारमा कुण्डलवरद्वीप है। ताका मध्यविषैं कुंडलगिरि पर्वत चौफेर द्वीपका अर्द्धभागकूं बेढें वलयाकार सुवर्ण वर्ण पचहत्तरि हजार योजन ऊँचा है। मूलमैं दश हजार दोयसै वीस योजन चौडा है। ऊपरि च्यार हजार दोयसै चालीस योजन ऊँचा चौडा है। ताकी च्यारों दिशामैं च्यार जिनमंदिर हैं। कुण्डलवर द्वीपको बेढें कुण्डलवर समुद्र है।

बहुरि बारमा शंखवर नामा द्वीपसमुद्र है। आगैं तेरमा रुचकवर नामा द्वीप है। ताका मध्यविषैं वलयाकार चौगिरद रुचक नामा पर्वत है सो सुवर्णवर्ण है चौरासी हजार योजन ऊँचा है। चौरासी हजार योजन ही नीचैं ऊपर मध्यमैं बराबर समान चौडा है। तिस गिरिकै ऊपरि च्यारो दिशानिमैं च्यार जिन मन्दिर हैं।

बहुरि इस पर्वत ऊपरि अनेक कूट हैं। तिनमैं अनेक देवीनिका निवास है। ते देवी तीर्थंकरप्रभू-निकै गर्भजन्मकल्याणकमैं माताकी अनेक प्रकारकरि सेवा करै हैं॥ आगैं कहैं जे मानुषोत्तरकै अभ्यंतर मनुष्य ते दोय प्रकार हैं यातैं सूत्र कहै हैं—

आर्या म्लेच्छाश्च ॥ ३६ ॥

अर्थ—आर्य अर म्लेच्छ इस भेदतैं दोय प्रकार मनुष्य हैं। ते आर्य दोय प्रकार हैं-ऋद्धिप्राप्त आर्य, अनृद्धिप्राप्त आर्य। तिनमैं ऋद्धिप्राप्त आर्य तो जिनकै अष्ट प्रकार ऋद्धिनिमैंतैं कोऊ ऋद्धि उपजी ते ऋद्धिप्राप्त आर्य हैं। अर जिनकों ऋद्धि नहीं उपजी ते अनृद्धिप्राप्त आर्य हैं। तिनमैं अनृद्धिप्राप्त आर्यके पञ्च भेद हैं। क्षेत्रआर्य १, जातिआर्य २, कर्मआर्य ३, चारित्रआर्य ४, दर्शनआर्य ५। तहां काशी कोसलादि आर्यदेशनिविषै उपजै ते क्षेत्रआर्य हैं। इक्ष्वाकुवंश भोजवंशादिकविषैं उपजै ते जाति आर्य हैं।

बहुरि कर्मआर्य तीन प्रकार हैं—सावद्यकर्म आर्य, अल्पसावद्यकर्म आर्य, असावद्यकर्म आर्य। तहां सावद्यकर्मार्य छह प्रकार हैं-असि, मसि, कृषि, विद्या, शिल्प, वाणिज्य। जे खड्गादिक आयुद्ध धारणकरि जीविका करैं सो असिकर्म आर्य हैं। बहुरि द्रव्यका आवन्दि अर खरच लिखनेमैं निपुण ते मसिकर्म आर्य हैं। अर हल दांतला इत्यादिक खेतीके उपकरणनिकरि खेतीकरि जीविका करणमैं प्रवीण सो कृषिकर्म आर्य हैं। आलेख्य गणितादिक बहत्तरि कलामैं प्रवीण ते विद्याकर्मार्य हैं। बहुरि धोबी, नाई, कुम्भार, लुहार, सुनार इत्यादिक शिल्पकर्म आर्य हैं।

बहुरि चन्दनादि गन्ध घृतादि रस शाल्यादि धान्य कर्पासवस्त्रादिक मुक्ताफल माणिक्यादिक नानाप्रकार द्रव्यनिके संग्रह करनेवाले बहुत प्रकार वणिक्कर्म आर्य हैं। ए छहू अविरतमैं समर्थपणातैं सावद्यकर्म आर्य हैं। अर विरताविरत परिणत जे श्रावक ते अल्पसावद्य कर्मार्य हैं। अर सकल संयमी जे साधु ते असावद्यकर्म आर्य हैं।

बहुरि चारित्र आर्य दोय प्रकार हैं। अभिगतचारित्रार्य, अनभिगतचारित्रार्य। विना उपदेशे ही चारित्र मोहका उपशम क्षय क्षयोपशमतैं आत्माकी उज्ज्वलतातैं ही चारित्र परिणामकूं ग्रहण करैं ऐसैं उपशांत कषाय गुणस्थान धारनेवाले तथा क्षीण कषायी ते अभिगतचारित्रार्य हैं। बहुरि अन्तरंगमैं चारित्र मोहके क्षयोपशमतैं बाह्यमैं उपदेशके निमित्ततैं संयमरूप परिणाम धारैं सो तो अनभिगत

चारित्रआर्य हैं। बहुरि दर्शनआर्य दशप्रकार हैं। तिनका आज्ञामार्गादि दश भेद हैं। ऐसैं तो अनृद्धिप्राप्तार्य पंचप्रकार कह्या।

अब ऋद्धिप्राप्तार्य अष्ट प्रकार हैं। बुद्धि[1] क्रिया[2] विक्रिया[3] तप[4] बल[5] औषध[6] रस[7] क्षेत्र[8] ए भेद हैं। तिनमैं बुद्धिऋद्धि अष्टादश प्रकार हैं। केवलज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, बीजबुद्धि, कोष्ठबुद्धि, पदानुसारिणी, संभिन्न श्रोतृत्व, दूरादास्वादनसमर्थता, दूरदर्शनसमर्थता, दूरस्पर्शनसमर्थता, दूरघ्राणसमर्थता, दूरश्रोतृसमर्थता, दशपूर्वित्व, चतुर्दशपूर्वित्व, अष्टांगनिमित्तज्ञता, प्रज्ञाश्रमणत्व, प्रत्येकबुद्धता, वादित्व। तहां केवलज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान इनिका स्वरूप तो पहिले अध्यायविषैं वर्णन है तहांतैं जानना।

बहुरि जैसैं संवारे क्षेत्रविषैं कालादिकका सहायतैं बोया एक बीज अनेक कोटी बीजका देनेवाला होता है। तैसैं नोइंद्रियावरण अर वीर्यांतरायके क्षयोपशमकी आधिक्यता होतै एक बीजपदकूं ग्रहणकरनेतैं अनेकपद अनेक अर्थका जानना सो बीजबुद्धिऋद्धि है। बहुरि जैसैं कोष्ठाध्यक्षकरि कोष्ठमैं स्थापे न्यारे न्यारे प्रचुर धान्य बीजादिक ते बहुतकालतक कोठेमें जितनेके तितने धरे रहैं घटैं बढ़ैं नहीं परस्पर मिलैं नहीं जिसकालमैं संभालैं तिसकालमैं तैसैं ही पावैं तैसैं ही परके उपदेशकरि ग्रहण किए जे बहुत शब्द अर्थ बीज तिनका बुद्धिमैं जैसैके तैसैं अवस्थान रहै। एक अक्षर तथा अर्थ घटै बधै नहीं आगैं पाछैं अक्षर होय नहीं सो कोष्ठबुद्धिऋद्धि है। बहुरि जो ग्रंथकी आदिका वा मध्यका वा अंतका एकपदपरतैं श्रवणकरि समस्तग्रन्थ वा अर्थका निश्चय करना सो पदानुसारित्वऋद्धि है।

बहुरि चक्रवर्त्तीका कटक बारह योजन लंबा नव योजन चौडा पड़े है। तिस विषैं गज घोडा ऊँट बल मनुष्यादिकनिके नानाप्रकारके अक्षर अनक्षरात्मक एक काल जाने युगपत् उपजे शब्दनिकूं तपोविशेषके बलका लाभतैं सर्व जीवके प्रदेशविषैं श्रोत्रेंद्रियावरणकर्मका क्षयोपशम होय तातैं भिन्न भिन्न श्रवण करै सो संभिन्नश्रोतृत्व नाम ऋद्धि है ॥ ७ ॥

बहुरि तपके विशेषकरि प्रकट भया जो असाधारण रसनेंद्रिय श्रुतज्ञानावरणवीर्यांतरायका क्षयो-

पशम अंगोपांगनामकर्मका जाकै उदय ऐसा मुनिके रसनाका विषय नव योजनप्रमाण ताकै बाह्यतैं रसका स्वादके जाननेका सामर्थ्य सो दूरास्वादनसामर्थ्य नामा ऋद्धि है। ऐसैं ही स्पर्शनेंद्रिय तथा घ्राणेंद्रिय चक्षुरिंद्रिय श्रोत्रेंद्रिय इनके विषयके क्षेत्रतैं बाह्य बहुत क्षेत्रके गंध स्पर्श शब्दके जाननेका सामर्थ्य होय सो ऋद्धि है तातैं पांच इंद्रियसंबन्धी पांच ऋद्धिएं भई ॥ १२ ॥

बहुरि महारोहिणी आदिक विद्यादेवता तीनबार आवैं अर प्रत्येक अपना अपना स्वरूप सामर्थ्य प्रकट करैं ऐसी वेगवान विद्यादेवतानिका लोभादिककरि जिनका चारित्र चलायमान न होय ते दशपूर्वरूप दुस्तरसमुद्रकै पार प्राप्त होंय तिनकै दशपूर्वित्वऋद्धि है ॥ १३ ॥

अर संपूर्ण श्रुतकेवलीपणों सो चतुर्दशपूर्वित्वर्द्धि है। बहुरि अंतरिक्ष भौम अंग स्वर व्यंजन लक्षण छिन्न स्वप्न नामधारक अष्टांगनिमित्तज्ञान हैं। बहुरि सूर्य चंद्रमा ग्रह नक्षत्रनिका उदय अस्तादिक देखि अतीत अनागत फलका कहना सो अंतरिक्ष नामा निमित्तज्ञान है। बहुरि पृथ्वीकी कठोरता कोमलता सचिकणता रूक्षतादिक देखि विचार करवेकरि वा पूर्वादिकदिशामैं सूत्र पड़ते देखकरि हानिवृद्धि जय पराजय इत्यादिक जानना। तथा भूमिमैं तिष्ठते सुवर्ण रूप्यादिकका प्रकट जानना सो भौम नामा निमित्त ज्ञान है। बहुरि अंग उपांगादिकके दर्शन स्पर्शनादिक करि त्रिकालभावी सुखदुःखादिकका जानना सो अंग नाम निमित्तज्ञान है। अर अक्षर अनक्षररूप तथा शुभ अशुभके श्रवणकरि इष्टानिष्टफलका प्रकट करना सो स्वरनामा निमित्तज्ञान है। बहुरि शिर मुख ग्रीवादिक विषै तिल मुसल सण इत्यादिलक्षणके देखनेकरि त्रिकाल सम्बन्धी हिताहितका जानना सो व्यंजन नामा निमित्त ज्ञान है। बहुरि श्रीवृक्ष स्वस्तिक भृंगार कलश आदि चिह्न शरीरविषै देखनेतैं तीन कालक विषै पुरुषके स्थान मान ऐश्वर्यादिक विशेषकूं जानै सो लक्षण नाम निमित्त ज्ञान है। बहुरि वस्त्र शस्त्र छत्र उपानत अशन शयनादिकविषैं देव मनुष्य राक्षसादिककरि तथा शस्त्रकंटकमुखी आदिककरि छेदे गए होय तिनके देखनेतैं त्रिकाल सम्बन्धी लाभ अलाभ सुख दुःखका जानना सो छिन्न निमित्त ज्ञान है।

बहुरि वात पित्त श्लेष्म दोषकरि रहित पुरुषक पश्चिम रात्रिविषै चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, प त समुद्रका मुखमैं प्रवेशादि करै सो तो शुभ स्वप्न है। अर घृत तैलकरि अपना देहकै लिप्तता तथा खर उष्ट्र ऊपरि चढि दक्षिण दिशामैं गमन इत्यादिक अशुभ स्वप्न हैं। तिनका दर्शनतैं आगामी कालमैं जीवन मरण सुख दुःखादिकका प्रकट करनेवाला स्वप्न नामा निमित्त ज्ञान है। ए अष्ट प्रकार निमित्त ज्ञानका ज्ञाता होय सो अष्टांग निमित्तज्ञ नामर्द्धि है ॥ १५ ॥

बहुरि कोऊ अतिसूक्ष्म अर्थका स्वरूपका विचार जैसा होय तिसमैं चौदह पूर्वकै धारी ही निरूपण करि सकैं अन्य नहीं करि सकैं ऐसै सूक्ष्म अर्थका जो सन्देह रहित निरूपण करैं सो प्रकृष्ट श्रुतज्ञानावरण अर वीर्यांतरायके क्षयोपशमतैं प्रकट भई जो प्रज्ञाशक्ति तातैं प्रज्ञाश्रमणत्व ऋद्धिका धारक हैं ॥ १६ ॥ बहुरि परके उपदेश विना ही अपनी शक्तिके विशेषतैं ज्ञान संयमके विधानविषैं निपुणता होय सो प्रत्येक बुद्धता है ॥ १७ ॥

बहुरि इन्द्र भी आय वाद करै तो ताकूं निरुत्तर करदें, अर आप नहीं रुकैं वादीके छिद्रकूं जाणि ले सो वादित्वर्द्धि होय हैं। ऐसैं अठारह प्रकार बुद्धि ऋद्धि हैं। बहुरि विक्रियर्द्धि दोय प्रकार है। एक आकाशगामित्व, एक चारण। तहां चारणर्द्धि अनेक प्रकार है। तहां जल ऊपरि भूमिकीज्यौं चरणनिका उठावना मेलना इत्यादिककरि जल कायके जीवनिकै बाधा नहीं उपजै सो जल चारण है। बहुरि भूमितैं च्यार अंगुल ऊंचे आकाशविषैं जंघा उठाय शीघ्रतातैं बहुत सैकडा योजन गमन करनेमैं समर्थ सो जंघा-चारण है। ऐसैं ही तन्तुचारण पुष्पचारण पत्रचारण श्रेणीचारण अग्निशिखाचारण इत्यादिक चारणर्द्धि हैं। ते पुष्प फलादिक ऊपरि गमन करतैहू पुष्प फल अंकुर पत्र अग्नि इत्यादिकनिके जीवनके बाधा नहीं होय ते समस्त चारणर्द्धि हैं।

बहुरि पर्यंकासन बैठा कायोत्सर्गकरि खडेतैं पगके उठावने मेलने विना आकाशमैं गमन करनेमैं कुशल ते आकाशगामित्व ऋद्धिके धारक हैं। बहुरि विक्रियर्द्धि अनेक प्रकार हैं। अणिमा महिमा लघिमा

गरिमा प्राप्ति प्राकाम्य ईशित्व वशित्व अप्रतिघात अन्तर्धान कामरूपित्व इत्यादिक विक्रियाद्धि है। तहां अणुमात्र शरीर करना सो अणिमा ऋद्धि है। तहां कमलके छिद्रविषैं प्रवेशकरि तहां बैठि चक्रवर्तीकी विभूति रचैं ऐसा सामर्थ्य हैं ॥ १ ॥ बहुरि मेरुतैं भी महान् शरीर करनेका सामर्थ्य सो महिमा ऋद्धि है ॥ २ ॥ बहुरि पवनतैं हू लघुतर शरीर करनेका सामर्थ्य सो लघिमा ऋद्धि है ॥ ३ ॥ वज्रतैं हू अतिभारी शरीर करनेका सामर्थ्य सो गरिमा ऋद्धि है ॥ ४ ॥ बहुरि भूमिमैं तिष्ठिकरि अंगुलीके अग्रकरि मेरुकी शिखर तथा सूर्य विमानादिक स्पर्शनका सामर्थ्य सो प्राप्तिऋद्धि है ॥ ५ ॥ बहुरि जलविषै भूमिकीज्यौं उन्मज्जन निमज्जन करनेका सामर्थ्य सो प्राकाम्य ऋद्धि है ॥ ६ ॥ बहुरि त्रिलोकका प्रभुपणा रचनेका सामर्थ्य सो ईशित्व ऋद्धि है ॥ ७ ॥ बहुरि देव दानव मनुष्यादिकनिके वशीकरण करनेका सामर्थ्य सो वशित्व ऋद्धि है ॥ ८ ॥ बहुरि पर्वतादिकनिकै मध्य आकाशकी ज्यौं गमनागमन करनेका सामर्थ्य सो अप्रतिघात नामा ऋद्धि है ॥ ९ ॥ अदृश्य होनेकी सामर्थ्य सो अन्तर्धान ऋद्धि है ॥ १० ॥ बहुरि युगपत् अनेक आकार रूप करनेका सामर्थ्य सो कामरूपित्व ऋद्धि है ॥ ११ ॥ ऐसैं अनेक प्रकार विक्रियर्द्धि है।

बहुरि सप्त प्रकार तप रिद्धि है। तहां जो एक उपवास वा बेला तेला, पंचोपवास पक्षोपवासादिक-निमैंतैं कोऊ योगका आरंभ भया तो मरणपर्यंत उपवासनितैं हीन पारणा नहीं करै। बहुरि कोऊ कारणतैं अधिक उपवास होजाय तो वातैं मरणपर्यंत कमती उपवासकरि पारणा नहीं करैं। ऐसा सामर्थ्य प्रकट होना सो उग्रतपनामर्द्धि है ॥ १ ॥ बहुरि महान उपवासादि करतैंहू मन वचन कायका बल बधता ही रहै। दुर्गंधरहित मुख रहै। अर कमलादिककी सुगंधवत् सुगंध निश्वास नीसरैं। अर शरीरकी महान दीप्ति प्रगट होजाय सो दीप्ततप ऋद्धि है ॥ २ ॥ बहुरि तप्तायमान लोहके कडाहमें पडा जलके कणकी ज्यों आहार सूकि जाय मल रुधिरादिक रूप नाहीं परिणमै ऐसैं आहार करतैंहू जिनके नीहार नहीं होय सो तप्तऋद्धि है ॥ ३ ॥ बहुरि सिंहनिक्रीडितादि महानतपक करनेमैं तत्पर सो महानतप ऋद्धि है ॥ ४ ॥

बहुरि वात पित्त श्लेष्म सन्निपाततैं उपज्या ज्वर कास स्वास नेत्रशूल कोढ प्रमेहादिक अनेक

प्रकारके रोग तिनिकरि संतापित हैं देह जिनका तौभी अनशन कायक्लेशादिक तपतैं नहीं छूटते अर भयानक श्मशान पर्वतके शिखर गुफा दराडा कंदरा शून्यग्रामादिकविषैं दुष्ट राक्षस पिशाचनिके प्रवर्तें वेतालरूप विकार होतेहू अर कठोर स्यालनीनिके रुदन तथा निरंतर सिंह व्याघ्रादिक दुष्ट जीवनिके भयानक शब्द जहां निरंतर प्रवर्तें ऐसें भयंकर स्थाननिविषै निर्भय भए बसैं सो घोरतप ऋद्धिका प्रभाव है ॥ ५ ॥ बहुरि पूर्व कहे रोग तिनकरि युक्त हुए अर अतिभयंकर स्थानमें वसतेहू तपके योग बधावनेमें तत्पर सो घोरपराक्रम ऋद्धिके धारक हैं ॥ ६ ॥ बहुरि बहुत कालतैं ब्रह्मचर्यके धारक मुनिनिके अतिशय रूप चारित्र मोहनीय कर्मका क्षयोपशमतैं नष्ट भए हैं खोटे स्वप्न जिनके ते घोरब्रह्मचर्य ऋद्धिके धारक हैं ॥ ७ ॥ ऐसें सप्त प्रकार तपरिद्धि है इनिके स्मरणमात्रतैं कोटि विघ्न विनाशनैं प्राप्त होय अप्रमाण शक्तिके धारक होय हैं।

बहुरि पंचमी मन वचन कायके भेदकरि बलर्द्धि तीन प्रकार हैं। बहुरि मनःश्रुतज्ञानावरण वीर्यांतरायका क्षयोपशमका प्रकर्ष होतैं अंतर्मुहूर्त्तमें समस्त श्रुतका अर्थका चिंतवनका सामर्थ्य जिनकै होय ते मनोबलर्द्धिके धारक हैं ॥ १ ॥ बहुरि मन इंद्रियावरण अर जिह्वा श्रुतावरण वीर्यांतरायके क्षयोपशमकै अतिशय होतैं अन्तर्मुहूर्तमें सकल श्रुतके उच्चारण करनेका सामर्थ्य होय वा निरन्तर उच्च स्वरतैं उच्चारण करतें हू खेद नहीं उपजै अर कण्ठ स्वरभंग नहीं होय सो वचनबल ऋद्धि है ॥ २ ॥ बहुरि वीर्यांतरायका क्षयोपशमतैं असाधारण कायका बल प्रगट होनेतै मासिक चातुर्मासिक वार्षिक प्रतिमायोग धारतें हू शरीर खेदरूप नहीं होय सो कायबल ऋद्धि है ॥ ३ ॥ ऐसें तीन प्रकार बलर्द्धि कही।

बहुरि आगें अष्ट प्रकार औषधर्द्धि है सो कहै हैं—आमर्ष, क्ष्वेल, जल, मल, विट्, सर्वौषधि, आस्याविष, दृष्टिविष। तहां असाध्य भी रोग होय सो जिनके हस्त चरणादिकके स्पर्श होतैं ही सर्व रोग जाय सो आमर्षौषधिनामर्द्धि है ॥ १ ॥ बहुरि जिनका थूक लाल कफादिकनिके स्पर्शतैं ही रोग मिटि जाय सो क्ष्वेलौषधिनामर्द्धि है ॥ २ ॥ बहुरि जिनके देहका पसेवरजके स्पर्शतैं रोग मिटि जाय सो जलौषधिनामर्द्धि है ॥ ३ ॥ बहुरि जिनके कर्ण दन्त नासिका नेत्रनिका मल ही समस्त रोगनिके निराकरण

करनेकूं समर्थ होय सो मलौषधिनामर्द्धि है ॥ ४ ॥ बहुरि जिनका विट जो मल तथा मूत्र ही औषधरूप होय सो विडौषधिनामर्द्धि है ॥ ५ ॥ बहुरि जिनका अंग उपांग नख दन्त केशादिक ही स्पर्श भए समस्त रोगनिकूं हरै सो सर्वौषधिनामर्द्धि है ॥ ६ ॥ बहुरि तीव्र जहरका मिल्या हुआ आहार जिनके मुखमैं प्राप्त भया विष रहित होजाय तथा जिनके वचनतैं ही विषकरि व्याप्त जीवनिका विष मिटि जाय ते आस्याविषर्द्धिके धारक हैं ॥७॥ बहुरि जिनके देखनेथकी महान् विषधारी जीवनिका विष जाता रहै। तथा काहूके जहरकी लहरी चढी होय तिसका विष उतरिजाय सो दृष्ट्यविषर्द्धि है ॥ ८ ॥ ऐसैं अष्ट प्रकार औषधर्द्धि कह्या।

बहुरि सप्तमी रसर्द्धि है सो छह प्रकार है। जो प्रकृष्ट तपके बलका धारक योगी कदाचित् क्रोधी होयकरि कहै जो तू मरिजा तो तत्काल विष चढिकरि मरिजाय सो आस्यविषर्द्धि है ॥१॥ बहुरि कदाचित् क्रोधरूप दृष्टिकरि देखैं तो विष चढिकरि मरिजाय सो दृष्टिविषर्द्धि है ॥ २ ॥ ऐसी सामर्थ्य है तोऊ वीतरागी मुनि क्रोधादिककूं नहीं प्राप्त होय हैं। बहुरि जिनका हस्तमैं प्राप्त भया विरसहू भोजन क्षीर रसरूप होय परिणमैं तथा जिनका वचन दुर्बलनिकों क्षीरका ज्यौं पुष्ट करै सो क्षीररसर्द्धि है ॥ ३ ॥ तैसैं ही मिष्ट रसरूप परिणमनतैं मधुस्रावीनामर्द्धि है ॥ ४ ॥ तैसैं ही घृतरसरूप परिणमनेतैं घृतस्रावीनामर्द्धि है ॥५॥ तैसैं ही अमृतरसरूप परिणमनेतैं अमृतस्रावी नामर्द्धि है ॥ ६ ॥ तहां ऐसैं छह प्रकार रसनानामर्द्धि कही।

बहुरि अष्टमी क्षेत्रर्द्धि दोय प्रकार है। एक अक्षीणमहानसर्द्धि अर एक अक्षीणालयर्द्धि, तहां लाभांतरायका प्रकर्ष क्षयोपशमका अतिसंयमवान मुनि तिसको जिस भाजनमैं तै भोजन देय तिस भाजनमैं तै जो चक्रवर्त्तीका समस्त कटक भोजन करै तोहू तिस दिनमैं भोजनसामिग्री नाहीं घटै सो अक्षीणमहानसर्द्धि है। बहुरि ऋद्धि कर सहित मुनि जिस स्थानकमैं बैठे तिसमैं देव, राजा, मनुष्यादिक बहुत आय बैठैं तो हू सकडा नहीं होय परस्पर बाधा नहीं होय सकै सो अक्षीणमहालयर्द्धि है। ऐसैं अष्ट प्रकार ऋद्धि जिनके प्राप्त होय ते ऋद्धिप्राप्त आर्य हैं। ऐसैं आर्यनिके भेद कहे।

बहुरि म्लेच्छ दोय प्रकार हैं—अन्तर्द्वीपज १, अर कर्मभूमिज २, तहां अन्तर्द्वीपज हैं ते लवणसमुद्रकी आठ दिशा अर अष्ट दिशानिकै बीच अष्ट अन्तरालमैं सोलह तो ए हैं। अर हिमवान् शिखरी कुलाचल अर दोय विजयार्द्ध इन च्यार पर्वतनिके दोऊ ओरके अष्ट अन्तके विषैं आठ ऐसैं चोईस अन्तर्द्वीप हैं। ते जम्बूद्वीपकी वेदीतैं च्यारो दिशानिमैं तिर्यक् पांचसै योजन समुद्रमैं जाय तहां सौ योजनके विस्तार लिए च्यार दिशाके द्वीप हैं। अर च्यार विदिशाके वेदीतैं पांचसैं योजन परे द्वीप हैं ते पञ्चावन योजनके विस्तार हैं। अर आठ दिशानिके अन्तरालके द्वीप हैं ते लवणसमुद्रका वेदीतैं पांचसै पचास योजन परै जाइए तहां पचास योजनके विस्तार हैं। अर पर्वतके अन्तके अष्ट द्वीप हैं ते लवणसमुद्रकी वेदीतैं छहसै योजन दूर हैं। अर पचीस योजनके विस्तार हैं। तिनमैं पूर्वदिशाकै द्वीपमैं एक जंघावाले एकटंगे उपजै हैं। पश्चिम दिशाके द्वीपमैं पूछवाले मनुष्य उपजे हैं। उत्तर दिशाके द्वीप विषैं वचन रहित गूँगा उपजै हैं। दक्षिण दिशाविषै सींगवाले मनुष्य उपजै हैं।

बहुरि च्यार विदिशाके द्वीपनिविषै क्रमतैं सूश्यासमान कर्णवाले अर शांकलीसमान कर्णवाले अर कर्णप्रावरण कहिए एक कानकूं विछायलैं एक कानकूं ओढि लैं ऐसै अर लंबकर्ण ऐसै ऊपजै हैं। बहुरि अष्ट अंतर्दिशानिमैं घोडाकासा मुख सिंहकासा मुख भैंसाकासा मुख सूकरकासा मुख व्याघ्रसारिखा मुख घूघूसारिखा मुख काककासा मुख वानरसारिखा मुख ऐसै मनुष्य उपजै हैं। बहुरि शिखरीपर्वतके अंतके सन्मुख द्वीपनिमैं मेघसारिखे विजुलीसारिखे मुख हैं। अर हिमवानपर्वतके दोऊ अंत विषै मत्स्यमुख कालमुख मनुष्य हैं।

बहुरि उत्तर विजयार्द्ध पर्वतके दोऊ अन्तविषैं हस्ती समान मुख, अर दर्पण समान मुखवाले मनुष्य हैं। बहुरि दक्षिण विजयार्द्धके उभय अन्तरविषैं गौ समान मुख अर मीढा समान मुखके धारक हैं। बहुरि इनमैं एक जंघावाले इकटंगे हैं ते मृत्तिका जो मांटी ताका आहार करै हैं, अर गुफानिमैं वसै हैं। अर अन्य हैं ते वृक्षनिके फल फूलनिका आहार करै हैं। अर वृक्षनिकै नीचैं वसै हैं। अर समस्त अन्त-

द्वीपके मनुष्यनिका एक एक पल्यका आयु है। बहुरि ते चौवीस अन्तर्द्वीप जलतैं एक योजन ऊंचे हैं। जैसें लवणसमुद्रमैं अंतर्द्वीप अडतालीस हैं दोऊ तटसम्बन्धी तैसैंही कालोदधिसमुद्रमैं अडतालीस जानना।

ऐसैं समस्त छिनवै अन्तर्द्वीपनिमैं कुभोगभूमिया मनुष्य हैं। बहुरि कर्मभूमिके म्लेच्छ शक यवन शबर पुलिंदादिक अनेक जाति हैं। बहुरि एकसो सत्तरि कर्मभूमिके क्षेत्र हैं। तिनमैं एकसो सत्तरि तो आर्यखण्ड हैं। अर आठसै पचास म्लेच्छ खण्ड हैं, तिनके निवासी म्लेच्छ ही हैं॥ अब कर्मभूमि कौन हैं इस प्रश्नतैं सूत्र कहै हैं—

भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥ ३७ ॥

अर्थ—पांच भरतक्षेत्र पांच ऐरावतक्षेत्र अर देवकुरु उत्तरकुरु विना पांच विदेहक्षेत्र इनिमैं कर्मभूमि हैं। जातैं पञ्चमेरु सम्बन्धी पंच भरत पंच ऐरावत अर पंच विदेह हैं, तिनमैं विदेहके एक मेरु सम्बन्धी बत्तीस भेद हैं तातैं विदेह सहित एकसौ साठि क्षेत्र हैं। ऐसै सब मिलि कर्मभूमिके एकसो सत्तरि क्षेत्र हैं। अर एक मेरु सम्बन्धी हिमवत् हरिक्षेत्र रम्यकक्षेत्र हिरण्यवतक्षेत्र अर देवकुरु उत्तरकुरु ऐसैं छह भोगभूमिके क्षेत्र हैं। सब भोगभूमि पंचमेरु सम्बन्धी तीस हैं तिनमैं दश जघन्य दश मध्यम दश उत्कृष्ट हैं। तिनमैं दश प्रकारके कल्पवृक्षनिकरि दीए भोगभोगतै संक्लेश रहित सुखरूप तिष्ठै हैं।

अब कोऊ पूछै जो कर्मभूमिके एकसो सत्तरि क्षेत्र कहै सो कर्मका आश्रय तो तीन लोकका क्षेत्र है इनिकूं ही कर्मभूमिका क्षेत्र कैसैं कह्या। ताकूं कहिए है। जो सप्तम नरक पहुँचनेका पापकर्म अर सर्वार्थसिद्धि जावनेका शुभ कर्म इन क्षेत्रविषैं ही उपार्जन होय है। तथा असि मसि कृषि शिल्प वाणिज्य पशु पालन ए छह कर्म भी इनि क्षेत्रनिविषैं ही हैं तथा देवपूजा गुरु-उपासना स्वाध्याय संयम तप दान ए छह प्रकार प्रशस्त कर्म इनि क्षेत्रनिविषैं ही है। तातैं इनकूं कर्मभूमि कहिए हैं॥ अब समस्त भूमिविषैं मनुष्यनिकी स्थितिके जनावनेकूं सूत्र कहै हैं—

नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमांतर्मुहूर्त्ते ॥ ३८ ॥

अथ—मनुष्यनिकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्यकी है जघन्य अन्तर्मुहूर्तकी है। मध्यके अनेक भेद हैं। मुहूर्त्तका प्रमाण दोय घडीका है। अर दोय घडीके अभ्यंतर होय सो अन्तर्मुहूर्त्त है। अब पल्यका कहा प्रमाण है तातैं प्रकरण पाय प्रमाणकी विधिका प्ररूपण करै हैं। तहां प्रमाण दोय प्रकार है। एक लौकिक, दूजा अलौकिक। तहां लौकिक मान छह प्रकार है। मान, उन्मान, अवमान, गणितमान, प्रतिमान, तत्प्रतिमान, ऐसैं छह प्रकार हैं। तिनका दृष्टांत कहिए हैं। पाई माणि इत्यादिकरि अन्नादिकका प्रमाण करिए सो पाई माणीकूं मान कहिए। बहुरि तुला जो कांटा ताखडीं इत्यादिकरि प्रमाण करिए ताकूं उन्मान कहिए। बहुरि हस्तकी चलू इत्यादिकरि प्रमाण करिए सो अवमान है। बहुरि एक दोय तीन च्यार इत्यादि करि प्रमाण करिए सो गणितमान है। बहुरि गुंज रत्ती मासा तोला इनिकूं प्रतिमान कहिए। बहुरि तुरंग घोडादिकनिका मोल सो तत्प्रतिमान कहिए। ऐसैं लौकिक मान छह प्रकार कह्या।

बहुरि लौकिकमानकू अन्य प्रकारहू कहै हैं। तिनमैं गज हस्त वांस इत्यादिकनिकरि मापा अवमान है। बहुरि मल्लनिका शरीरका बलका वा तिर्यंचनिका बलका हीन अधिक अपेक्षासे प्रमाण कहना सो प्रतिमान है। तथा मणिमाणिक्यादिकनिकी दीप्तिकरि मोलका प्रमाण करिए जो इस मणिकी एती दीप्ति है वा इस रत्नकी दीप्ति जितने क्षेत्र ऊपरि व्यापै तितना प्रमाण सुवर्णका पुंज याका मोल है। तथा इस रत्नके स्वामीकै जितना धनकरि सन्तोष आजाय तितना ही याका मोल है ऐसैं ही इस घोडेकी ऊँचाई जितनी तितना प्रमाण ही सुवर्णका ढेर पुंज देना याको यो मोल है। इत्यादिक औरहु तत्प्रतिमान जानना।

बहुरि लोकोत्तर मान द्रव्य क्षेत्र काल भावकै भेदतैं च्यार प्रकार है। तहां जघन्य द्रव्यका प्रमाण परमाणु है, अर उत्कृष्ट समस्त द्रव्यका समुदाय है। अर क्षेत्रमानविषैं जघन्य तो आकाशका एक प्रदेश है उत्कृष्ट समस्त आकाश है। अर कालप्रमाणविषैं जघन्य एक समत उत्कृष्ट तीन कालके समयनिका समूह है। पुद्गलका परमाणु मन्दगतिकरि एक आकाशके प्रदेशतैं दूजे प्रदेशमैं जाय तहां जेता वार लागै

सो ताकूं समय कहिए है। सो कालकी अति सूक्ष्मताको धरै है। बहुरि भावमानविषैं जघन्य सूक्ष्मनिगोदिया लब्धि अपर्याप्तका अक्षरकै अनन्तवैं भाग पर्याय नाम ज्ञान है। अर उत्कृष्ट जिनेन्द्र भगवानका केवलज्ञान है। अर जघन्य अर उत्कृष्टके मध्य बीचके जितने भेद हैं तितने मध्यममानके हैं।

बहुरि द्रव्यमान दोय प्रकार है। एक संख्यामान अर दूजा उपमामान। तिनमैं संख्यामानके तीन भेद हैं। संख्यात, असंख्यात, अनन्त। तिनमैं संख्यात तो एक प्रकार अर असंख्यात तीन प्रकार है– १ परीतासंख्यात, २ युक्तासंख्यात, ३ असंख्यातासंख्यात। बहुरि अनन्तहू तीन प्रकार है–१ परीतानन्त, २ युक्तानन्त, ३ अनन्तानन्त। ऐसे सप्तभेद भए। इनके प्रत्येक जघन्य मध्य उत्कृष्ट भेद करिए तब इकईस भेद संख्या प्रमाणके भए।

तहां संख्यातका प्रमाण जाननेके अर्थि जम्बूद्वीप प्रमाण लक्ष योजन चौडे लम्बे अर गोल अर एक हजार योजन ऊँडे ऐसे च्यार कुण्ड कल्पना करिए। तिनके नाम ऐसे हैं। अनवस्थाकुण्ड १, शलाकाकुण्ड २, प्रतिशलाकाकुंड ३ महाशलाकाकुंड ४। तिनमैं अनवस्थाकुंडकूं सरसूंनिकरी भरीए अर ऊपरि शिखा चढाइए। तिस शिखासहितकुंडमैं केती सरसूं मावै सो प्रमाण कहै हैं। लक्ष योजन प्रमाण कुण्डका जो एक योजन ऊँडा एक योजन चौडा एक योजन लम्बा चौकोर खण्ड करिए तो ७५०००००००००० सात लाख पचास हजार कोटी खण्ड होंय। सो इस येक योजनके कुण्डमैं सरसूं भरिए तो केती मावै सो कहै हैं।

इस एक योजनके पांचसै पांचस व्यवहार योजन होय हैं। अर एक योजनके चार कोश होय हैं। एक कोशके दोय हजार धनुष होय हैं। एक धनुषके च्यार हाथ होय हैं। एक हस्तके चोईस अंगुल होंय। एक अंगुलके आठ यव होंय। एक यवकी आठ चोकोर सरस्यूं होय। ए समस्त राशि घनरूप है सो इनका तीन तीन जायगां मांडि परस्पर गुणाकार करना। जैसैं जो क्षेत्र च्यार कोश लम्बा, च्यार कोश चौडा, च्यार कोश ऊँचा होय ताका एक कोश चौडा एक कोश लम्बा एक कोश ऊँचा खण्ड करिए तो च्यारके अक्षरकौ तीन जायगां मांडि परस्पर गुणिए तो चोसठी खण्ड होय।

ऐसैं तीन तीन जायगां मांडि परस्पर गुणाकार कीए चौकोर सरसूं होय तिस नव चौकोर सरस्यूंकी गोल सोलह सरसूं होय हैं। ऐसैं करतै जम्बूद्वीप समान जो कुण्ड ताकै विषै इतने अंकप्रमाण सिरसूं मावै हैं। १९७९११२०९२९९९६८००००००००००००००००००००००००००००००००० । बहुरि इस कुण्ड ऊपरि जो शिखा जाय है सो परिधिकै ग्यारवै भाग प्रमाण ऊँची जाय है। तिस शिखाकी सिरसूंका प्रमाण ऐसा जानना। १७९९२००७४९४५१६२२३६३३३५३५३५३५३५३५३५३५३५३५३५३५३६ $\frac{४}{११}$।

अब कुण्डकी सिरसूंका प्रमाण अर शिखाकी सिरसूंका प्रमाण मिलाइए है सो एता होय है। १९९७११२९३८४५१३१६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६ एता प्रमाण अनवस्थाकुण्डकी सरसूका भया। एकवार अनवस्थाकुण्ड पूर्ण भस्या तब एक सरसूं शलाका नाम दूसरा कुण्डविषैं क्षेपी। बहुरि तिस अनवस्थाकुण्डकै मध्यवर्त्ती जे समस्त सरसूं तिनकौं मति कहिए बुद्धिका विचार तिहकरि ग्रहण करै अथवा देव ग्रहण करिकै एक द्वीपविषै एक समुद्रविषैं बहुरि एक द्वीपविषैं एक समुद्रविषैं ऐसैं सरसों क्षेपतैं जहां परिपूर्ण होय तिह द्वीपसों वा समुद्रसों लगाय पहिले भए जे द्वीप वा समुद्र जंबूद्वीपपर्यन्त तिन सबनिका प्रमाणकै समान अर ऊँडा हजार योजनका ऐसा कुण्ड करना सो कुँड तिन पूर्वोक्तप्रकार गोल सरसूंनिकरि भरना तदि शलाका कुण्डमैं एक सरसूं और नाखणी।

फिर उस अनवस्थाकुण्डकी हू सरसूं आगले द्वीपसमुद्रनिमैं एक एक क्षेपतैं उस कुण्डकी सरसूं भी जिस द्वीप वा समुद्रमैं पूर्ण होजांय तितना द्वीपसमुद्रप्रमाण कुण्ड एक हजार योजन ऊँडा फिर शिखासहित सरसूकरि भरना तदि तीजी सरसू शलाकाकुण्डमैं फेर क्षेपिए। ऐसैं करतै करतै अनवस्थाकुण्डका प्रमाण वधता जाय अर एक एक अनवस्थाकुण्ड भरणेका समस्यारूप एक एक सिरसूंनिका प्रमाण कह्या था तितने कोश लम्बा च्यार कोश चौडा च्यार कोश ऊँचा होय ताका एक एक कोश चौडा अनवस्थाकुंड होजाय तदि शलाकाकुंड शिखासहित भरिजाय तदि एक सिरसों प्रति शलाकाकुंडविषै क्षेपिए।

बहुरि तिस शलाका कुण्डकूं रीताकरि पूर्वोक्त प्रकारकरि ही वधता वधता व्यासको लीए अन-

वस्थाकुण्ड करि करि भरीए तब येक येक सिरसों शलाकाकुण्डविषैं गेरिए ऐसैं करतै करतै दुसरीवार भी शलाकाकुण्ड भरै तब येक सिरसों और प्रतिशलाका कुण्डमैं निक्षेपण करना। येसैं ही येक येक वार शलाका कुण्ड रीता करि करि भरीए तब एक सिरसों प्रति शलाकाकुण्डविषैं क्षेपते जाइए ऐसैं प्रतिशलाकाकुण्डविषैं क्षेपते जाईए, ऐसैं प्रतिशलाकाकुण्ड भी भरि जाय तवतक एक सिरसों महाशलाका कुण्डमैं क्षेपिए।

बहुरि तिस प्रतिशलाकाकुण्डकूं रीता करि पूर्वोक्त प्रकार अनवस्थाकुण्डनिके भरण करि तो शलाका कुण्डकौ अर शलाकाकुण्डनिके भरण करि प्रतिशलाकाकुण्डको एक एक वार भरि एक एक सिरसों महाशलाकाकुण्डमैं गेरते जाईए ऐसैं जब महाशलाकाकुण्ड भरिजाय तिह कालविषै च्यारों ही कुण्ड भरिजाय हैं। तहां जो अंतका अनवस्थितकुण्डविषै जेते प्रमाण लीए सिरसों शिखासहित भरिगए तिह प्रमाण जघन्यपरीतासंख्यात जानना। इसमैं एक घटाय उत्कृष्ट संख्यातका प्रमाण जानना।

अब जघन्य परीतासंख्यातका एक एक करि विरलन नाम जुदाजुदा विखेरीए अर तिस परीतासंख्यातका एकएक ऊपरी देय परस्पर गुणन करीए जो महाराशी उपजै सो जघन्य युक्तासंख्यातका प्रमाण उपजै है। जैसे च्यारकों विरलन करिए तब च्यार जायगां मांडिए। १, १, १, १। तिसकै ऊपरी च्यारकौ दीजिए। $\frac{4}{1}$। $\frac{4}{1}$। $\frac{4}{1}$। $\frac{4}{1}$। इनकौ परस्पर गुणन करिए तब दोयसै छप्पन होंय। ऐसैं ही जहां जघन्य परीतासंख्यातकौ एकएक जुदा करिए अर तितने ही प्रमाण जघन्य परीतासंख्यातकी राशिकौ परस्पर गुणैं जो महाराशि होय सो जघन्य युक्तासंख्यातका प्रमाण होय है। यह ही आवलीका प्रमाण है। जातैं जघन्य युक्तासंख्यात समयनिकै समूहकूं आवली कहै हैं। इसमैं एक घटाईये यह उत्कृष्ट परीतासंख्यात जानना।

बहुरि जघन्य युक्तासंख्यातके प्रमाणको जघन्य परीतासंख्यात करि ही गुणियै तदि जघन्य असंख्यातासंख्यातका प्रमाण जानना। इसमैं एक घटाइये सो उत्कृष्ट युक्तासंख्यातका प्रमाण है। अब जघन्यको असंख्यातासंख्यातका तीन राशिरूप स्थापन करिये। तहां विरलनराशिकूं तो येक येक भिन्न-

भिन्न वखेरिये। अर तिस येक येक ऊपरि दोय राशी मांडि परस्पर गुणन करिये। जब समस्त राशिका गुणन होचुकै तदि शलाका राशिमैंसूं एक घटा दीजिए। जैसैं च्यारि प्रमाणराशिको शलाका विरलन देय तीन जायगां स्थापन करिए तहां विरलन राशिको येक येक बखेरिये ऊपरि देय राशिको ४, ४, ४, ४, च्यार जायगा विरलन तथा ताकै ऊपरि देय परस्पर गुणिये तब दोयसै छपन्न होय। तदि शलाका राशि च्यारिकीमैंतैं येक घटाइये तदि शलाकामैं तीन रह्या।

बहुरि दोयसै छपन्नकौ दोयसै छपन्न जायगां वखेरिये अर दोयसै छपन्न जायगां परस्पर गुणिये तब जो महाराशि उपजै तदि शलाका राशिमैंतैं येक और घटाइए। तदि शलाका राशिमैं दोय रहे। फेरि जो महाराशि उपजी ताकौ विरलन करि तितनीही जायगां तिस महाराशिको परस्पर गुणन करिये तदि जो महाराशि उपजै तदि शलाका राशि दोय था तामैं एक और घटाइये शलाका राशिमैं एक रह्या। अर जो महाराशि उपजै ताको विरलन करि ताकै ऊपरि तितनाहीं देय राशि स्थापन करि परस्पर गुणन किये जो महाराशि होय सो च्यारकी राशिका शलाकात्रयका प्रमाण होय है।

ऐसैं जघन्य असंख्यातकों शलाका विरलन देय रूप स्थापन करि विरलन देयका अनुक्रमकरि शलाकाराशि सम्पूर्ण होजाय जब जो कुछ महाराशि उपज ताको फेरि शलाका विरलनदेय रूप स्थापन-करि विरलनकूं वखेरि देयराशिकूं देयशलाकाराशिमैंतैं येक येक घटाता जाइए तदि दूजीबारहू शलाका पूर्ण होजाय तदि जो महाराशि आवै सो तिस प्रमाण तीसरा शलाका विरलनदेयका क्रमकरि शलाका पूर्ण होय।

ऐसैं शलाकात्रय निष्ठापन हुआ पाछैं जो कुछ महाराशि उपजै मध्यम असंख्यातासंख्यातप्रमाण तिस विषै धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य एक जीवद्रव्य लोकाकाश अलोकाकाश इन च्यारोनिका प्रदेशनिका प्रमाण अर लोकाकाशके प्रदेशनिका प्रमाणतैं असंख्यातगुणा अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिजीवनिका प्रमाण बहुरि तातैं हू असंख्यात गुणा प्रत्येक वनस्पतिजीवनिका प्रमाण ऐसैं छह राशि मध्य असंख्याता-

संख्यात प्रमाणविषैं मिलाइ दीजिये तिनकूं मिलाय जो मध्यम असंख्यातासंख्यातरूप प्रमाण होय ताका फिर शलाकात्रय स्थापन करना।

ऐसैं एकवार वा दोयवार वा तीनवार शलाका विरलनदेयके क्रमकरि शलाकात्रय पूर्ण होजाय तदि जो मध्यम असंख्यातासंख्यातका जो महाराशि उपजै तिस विषैं उत्सर्पिणी अवसर्पिणी मिलकरि भया जो कल्पकाल ताका समय अर तातैं असंख्यात लोकगुणा स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान तातैं असंख्यात लोक गुणअनुभागबन्धाध्यवसायस्थान तातैं असंख्यातलोकगुणा योगनिके उत्कृष्ट अविभागप्रतिच्छेद ए च्यार राशि प्रक्षेपण करिए। अब एहू च्यार राशिकों मिलाय जो प्रमाण भया ताको पूर्वोक्त प्रकार शलाकात्रय निष्ठापन करिये जैसैं करते जो प्रमाण होय सो जघन्यपरीतानंत जानना। यामैं येक घटाइये सो उत्कृष्ट असंख्यातका प्रमाण जानना।

बहुरि तिस जघन्य परीतानन्तको एकएक करि विरलन करि येकयेक प्रतितिसही जघन्य परीतानन्तकों देइ तिनकौ परस्पर गुणैं जो महाप्रमाण होय सो जघन्य युक्तानंत जानना सो यह अभव्यसमान है। अभव्यजीवनिका एता प्रमाण है यामैं एक घटाये उत्कृष्ट परीतानन्त होय है। बहुरि जघन्य युक्तानन्तका वर्ग करिये जघन्य युक्तानन्तकों जघन्य युक्तानन्तकरि गुणिए तदि जघन्य अनन्तानन्त होय है यामैं येक घटाय उत्कृष्ट युक्तानन्त होय है।

बहुरि जघन्य अनन्तानन्तके प्रमाणकों पूर्वोक्त शलाकात्रय निष्ठापन करिये। विरलन देयके अनुक्रमकरि येक शलाका दोय शलाका वा तीन शलाका पूर्ण करि जो मध्य अनन्तानन्तरूप महाराशि भया तिसमैं ये तीन राशिका प्रक्षेप करिये। जीवराशिके अनन्तवै भाग सिद्ध राशिका प्रमाण अर तातैं अनन्तगुणा पृथिव्यादि चतुष्टय अर प्रत्येक वनस्पति अर त्रस राशि इन तीन राशिकरि न्यून संसारी जीवनिकी राशि सो ही निगोद राशि है। अर तातैं प्रत्येक वनस्पतिकरि अधिक जो निगोदराशि सो ही वनस्पतिराशि, बहुरि जीवराशितैं अनन्तगुणा पुद्गलराशि अर तातैं अनन्तगुणा कालके समयनिका प्रमाण

रूप कालराशि, तातैं अनन्तगुणा अलोकाकाशके प्रदेशनिका प्रमाणरूप अलोकाकाशराशि, ए छह अनंत रूपराशि मिलावना।

इनि छहो राशिको मिलाय जो राशि भया ताका पूर्वोक्त प्रकार शलाका विरलन देयके क्रमकरि वर्गित संवर्गित करि बहुरि दूजा तीजा शलाका पूर्ण करि जो मध्य अनन्तानन्त प्रमाण भया तामैं धर्मद्रव्य अर अधर्मद्रव्यके अगुरुलघुगुणके अविभागप्रतिच्छेद मिलाय बहुरि इस राशिकों शलाकात्रय पूर्ववत् निष्ठापन करिये जो कोऊ मध्य अनन्तानन्त प्रमाण भया तिसकूं केवलज्ञानके अविभागप्रतिच्छेद निमैं घटाय जो केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद रहै तिनमैं ज्यूंका त्यूं पूर्वोक्तराशि मिलाइये सो उत्कृष्ट अनन्तानन्त है। यामैं येक घटेताई मध्य अनन्तानन्त है। जातैं उत्कृष्ट अनन्तानन्त केवलज्ञानप्रमाण है। अर जो केवलज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदनिमैं पूर्वोक्तराशि घटाए विना मिला दीजिए तो केवलज्ञानतैं अधिकप्रमाण होजाय सो है नाहीं तातैं घटाय मिलाया है। ऐसैं संख्याप्रमाणके इकवीस भेद वर्णन कीए। इहां और जानना।

श्रुतका संख्यात विषय है। अवधिका असंख्यात विषय है। केवलज्ञानका अनन्त विषय है। अब अष्टप्रकार उपमाप्रमाणकूं संक्षेपकरि कहै हैं। पल्य १, सागर २, सूच्यंगुल ३, प्रतरांगुल ४, घनांगुल ५, जगत् श्रेणी ६, जगत्प्रतर ७, घनलोक ८, ऐसैं अष्टप्रकार उपमाप्रमाण है। अब पल्यके जाननेका विधान कहै हैं। पल्य तीन प्रकार है—व्यवहारपल्य १, उद्धारपल्य २, अद्धापल्य ३। तिनमैं पहली व्यवहारपल्यका प्रमाणकूं कहै हैं। येक योजन चौडा येक योजन ऊँडा नीचा येक योजन लम्बा येसा गोल बडा योजन प्रमाण खाडा करना। तिसमैं सातवां जन्मयुक्त जो उत्तम भोगभूमिका गाडर (भेड) ताके जन्मतैं सप्त दिनमांहि ग्रहे जो रोम तिनके अग्रभाग तिनकरि खाडा भरिये। सो ऐसा जानना। चौडाई येक योजनकी ताका वर्ग करिये ताकूं दश गुणाकरि ताका वर्गमूल काढिये सो सूक्ष्मपरिधि कहिये तारतम्यपरिधि होय है।

सो इहां येक योजनका वर्गहू येक भया, ताकूं दशगुणा किये दशभया, दशका वर्गमूल तीन अर येकका छठा भाग भया ३ याकूं समच्छेद विधानकरि जोडे उगणीसका छठा भाग भया — येसैं इस येक योजन प्रमाण कुण्डकी सूक्ष्म परिधिका प्रमाण होय है। बहुरि विष्कम्भका चौथा भागतैं परिधिको गुणै क्षेत्रफल भया $\frac{१९}{२४}$ बहुरि याके वेधनो ऊँडाई येक योजन प्रमाण तिंहकरि गुणै भी तितना ही भया ऐसैं इस कुण्डका घनरूप समस्त सूक्ष्म क्षेत्रफल उगणीसका चोवीसमा भाग प्रमाण भया।

बहुरि यह कह्या जो प्रमाण योजनरूप सूक्ष्म क्षेत्रफल ताके व्यवहार योजनादि कैसैं करने सो कहै हैं। येक प्रमाण योजनरूप क्षेत्र ताके पांचसै व्यवहार योजन होय हैं। सो इहां घनरूप क्षेत्रका गुणाकार भागहारहू घनरूप ही होय है। जातैं एक प्रमाण योजनकी लम्बाईमैं पांचसै खण्ड भया। अर लम्बा एक एक खण्डका पांचसै चौडाईमैं खण्ड भया। बहुरि इन खण्डनिका येकयेकका पांचसै पांचसै ऊंचाईमैं खण्ड भया। यातैं तीन जायगां मांडिये तदि गुणे हुये व्यवहार योजन होंय।

बहुरि येक व्यवहार योजनका सात लाख अडसठि हजार अंगुल अर येक अंगुलके आठ यव अर येक यवके आठ तिल, येक तिलके आठ लीख, येक लीखके आठ कर्मभूमियाके रोम, येक कर्मभूमियाके रोमका आठ जघन्य भोगभूमियाके रोम, येक जघन्य भोगभूमियाके रोमके आठ मध्य भोगभूमियाके रोम, मध्य भोगभूमियाके येक रोमका आठ उत्तम भोगभूमियाके रोम। इनका त्रैराशिक करिये घनरूप राशि है। तातैं सबनिकूं तीनतीन बार मांडि परस्पर गुणिये। $\frac{१९}{२४}$ ५००, ५००, ५००, ७६८०००, ७६८०००, ७६८०००। ८, ८।

इन सबनिकों परस्पर गुणिये ते पैतालीस अक्षर व्यवहारपल्यके होयहैं। ४१३४५२६३०३०८२०-३१७७७४९५१२१९२०००००००००००००००००० ॥ इस व्यवहारपल्यके रोमनिकों एकसौ वर्ष एकसौ वर्ष गए एकएक रोम तिन रोमनिमैं सों ग्रहण करिए। ऐसैं ग्रहण करते सर्व रोम समाप्त जितने कालकरि होंय तावन्मात्रकालके जेते समय होंय सो व्यवहारपल्यके समयनिकी संख्या होय है। सो एक रोमका ग्रहण-विषै सौवर्ष होय पूर्वोक्त रोमनिके ग्रहणविषै केते वर्ष होय।

ऐसैं त्रैराशिक करि बहुरि एक वर्षके तीनसैं साठि दिन, एक दिनके तीस मुहूर्त, अर मुहूर्तके तीन हजार सातसै तिहत्तरि उच्छ्वास, एक उच्छ्वासकी संख्यात आवली, एक आवलीके जघन्ययुक्तासंख्यात-प्रमाण समय होय तितना व्यवहारपल्यका काल है। आगै उद्धारपल्यके कालकों दिखावै हैं—

जो व्यवहारपल्यविषै जे रोम कहे तिन विषै एक एक रोमके असंख्यात वर्षके समयनिके समान खण्डरूप कीजिए तब उद्धारपल्यके रोमनिका प्रमाण होय। तिन रोम खण्डनिके एक एककूं एक एक समयमें ग्रहण करतै सर्व रोमखण्ड जेते कालकरि समाप्त होय सो उद्धारपल्यका काल जानना। उद्धार-पल्यके कहे जे रोम तिनका असंख्यात वर्षनिके समयनिका गुणाकरि दीजिए जेता प्रमाण होय तेता प्रमाण अद्धापल्यके समयनिका जानना। इहां असंख्यात वर्षके समय कह्या। सो मध्यम असंख्यातका भेद सर्वज्ञदृष्ट है ऐसा जानना। जो व्यवहारपल्यकरि तो रोमनिकी संख्या वर्णन करी है, अर उद्धारपल्यकरि द्वीपसमुद्रनिकी संख्याका वर्णन है। जातैं पचीस कोडाकोडी उद्धारपल्यके जेते समय हैं तेते जम्बूद्वीपकूं आदि लेय स्वयंभूरमणपर्यंत द्वीपसमुद्र जानना।

बहुरि अद्धापल्यकरिकैं ही समस्त कर्मनिकी स्थितिका वर्णन जानना। और भी पल्यकरि जिनका प्रमाण कह्या ते अद्धापल्यतैं हैं। बहुरि दशकोडि उद्धारपल्यका उद्धारसागर है। अढाई उद्धारसागर-प्रमाण द्वीपसमुद्र हैं। उद्धारसागरका द्वीपसमुद्रकी गिणती हीमें प्रयोजन है। अर दश कोडाकोडी अद्धा-पल्यका एक अद्धासागर है। बहुरि अद्धापल्यके जेते अर्द्धच्छेद होंय तितना जायगां अद्धापल्यके प्रमाणकों मांडि परस्पर गुणिए सो सूच्यंगुलके प्रदेशनिका प्रमाण है। एक अंगुल लम्बे एक प्रदेश चौडे एक प्रदेश ऊँचे क्षेत्र प्रमाण है। अर सूच्यंगुलके प्रदेशके प्रमाणका वर्ग करिए सो प्रतरांगुलके प्रदेशनिका प्रमाण है। सो एक अंगुल चौडे एक अंगुल लम्बे एक प्रदेश ऊँचे क्षेत्रका प्रमाण है। अर प्रतरांगुलके प्रदेशनिकूं सूच्यं-गुलके प्रदेशनिकरि गुणिए ते घनांगुलके प्रदेशनिका प्रमाण है। सो एक अंगुल लम्बे एक अंगुल चौडे एक अंगुल ऊँचे प्रदेशनिका प्रमाण है।

बहुरि पल्यका अर्द्धच्छेदका असंख्यातवां भाग प्रमाण धनांगुल मांडि परस्पर गुणिए सो जगतश्रेणी होय है। सो सात राजू प्रमाण लम्बे अर एक प्रदेश चौडे ऊँचे आकाशके प्रदेशनिकी पंक्तिकूं जगतश्रेणी कहिए हैं। बहुरि जगतश्रेणीका वर्गकूं जगत्प्रतर कहिए हैं। सो सातराजू लम्बा चौडा क्षेत्रके प्रदेशनिका प्रमाण जानना। बहुरि सात राजू लम्बे चौडे ऊँचे क्षेत्रकूं जगतघन कहिए वा घनलोक कहिए हैं। ऐसैं उपमा प्रमाण अष्टप्रकार कह्या। जो विशेष जाणनेका इच्छुक होय सो त्रिलोकसारादिकनितैं जानहु। तथा इनका अनेक स्थान अल्पबहुत्व चौदहधारानितैं जानहु। ऐसैं प्रसंग पाय प्रमाणका वर्णन किया।

बहुरि योजनके प्रमाणकी उत्पत्ति ऐसैं जानहु। अनन्त पुद्गल द्रव्यके परमाणुनिका स्कन्ध तो एक अवसन्नासन्न होय है। तातैं आठ आठ गुणे बारह स्थान जानने। सन्नासन्न, त्रुटिरेणु, त्रसरेणु, रथरेणु, उत्तम भोगभूमियाका बालका अग्रभाग त्योंही मध्य भोगभूमियाका, जघन्य भोगभूमियाका, कर्मभूमियाका, लीख सिरसों यव अंगुल ए बारह हैं। ऐसैं अंगुल भया सो उत्सेध अंगुल है। याकरि नारकी तिर्यंच मनुष्य देवनिका देह तथा अकृत्रिम जिन प्रतिमाका देहका प्रमाण कीजिए हैं। तथा देवनिका नगर मन्दिर मापिए हैं। बहुरि उत्सेधांगुलतैं पांचसै गुणा प्रमाणांगुल होय है। सो अवसर्पिणी कालका प्रथम चक्रवर्तीका अंगुल है।

बहुरि जिस कालमैं जैसा मनुष्य होय ताका अंगुल होय सो आत्मांगुल है। तहां प्रमाांगुलकरि तो द्वीपसमुद्र पर्वतादिक तथा द्वीपसमुद्रका वेदी विमान नरकके प्रस्तार आदिक अकृत्रिम वस्तुका विस्तार आयामादिकका प्रमाण है। सो सर्व प्रमाणांगुलकरि वर्णन जानना। बहुरि छह अंगुलका एक पाद होय बारह अंगुलका एक वितस्ति होय, दोय वितस्तिका एक हस्त होय। दोय हातका एक इषु होय गज होय। दोय गजका एक धनुष होय। दोय हजार धनुषका एक कोश होय। च्यार कोशका एक योजन होय। ऐसैं लौकिक अलौकिक मान कह्या॥ जैसैं उत्कृष्ट मध्य जघन्य स्थिति मनुष्यनिकी कही तैसैं ही तिर्यंचनिकी आयु कहै हैं—

तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३९ ॥

अर्थ—तिर्यंच जीवनिकी भी आयुकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्यकी अर जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त है। मध्यके नानाभेद हैं। इहां विशेष कहै हैं-शुद्ध पृथ्वीकाय जीवनिका बारह हजार वर्षका आयु है। अर कठोर पृथ्वीकायका बाईस हजार वर्षका आयु है। जलकायके जीवनिका सात हजार वर्षका आयु है। वायुकायके जीवनिका तीन हजार वर्षका आयु है। अग्निकायके जीवनिका तीन दिन रात्रिका आयु है। ऐसैं एकेंद्रिय जीवनिका उत्कृष्ट आयु कह्या।

बहुरि बेंद्रिय जीवनिका आयु उत्कृष्ट द्वादश वर्ष प्रमाण है। त्रींद्रिय जीवनिका उत्कृष्ट आयु गुणचास दिनका है। चतुरिंद्रियका आयु छह महीनाका उत्कृष्ट है। पंचेन्द्रिय जलतिर्यंचनिका आयु उत्कृष्ट कोटीपूर्वका है। बहुरि सरीसृप (गोधा) नकुलादिकनिका नवपूर्वांगका आयु है। बहुरि उरग जे सर्प तिनका उत्कृष्ट आयु बीयालीस हजार वर्षका है। पक्षीनिका उत्कृष्ट आयु बहत्तरि हजार वर्षका है। चतुष्पदनिका उत्कृष्ट आयु तीन पल्यका है। अर समस्त तिर्यंचनिका जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त्तका है। ऐसैं तीसरा अध्यायमैं अधोलोकका वर्णन तथा मध्यलोकमध्ये द्वीपसमुद्रादिकनिका वर्णन किया।

अब इहां कोई अन्यवादी ऐसैं कहै हैं जो इस जगतका कोऊ ईश्वर कर्त्ता है। जातैं कर्त्ताविना कोऊ ही सत रूप वस्तु होय नहीं। ताकूं पूछिये। ईश्वरकूं कौन किया। ईश्वरहू सत् वस्तु है याका कर्त्ताहू कह्या चाहिए। अर जो कहोगे याका कर्त्ताह्न अन्य है, तो वाकूं कौन किया। ऐसैं अनवस्था नाम दोष आवेगा। बहुरि और पूछै हैं जो पहली सृष्टि रचना नहीं थी। तो सृष्टिबाहिर ईश्वर कहां था अर कौन स्थानमैं बैठि जगतकूं रच्या अर ईश्वर आप जगतविना निराधार अर बहोत कालसैं विद्यमान आप तो कहां तिष्ठता अर इस जगतकूं रचि कर कहां स्थापन किया। अर किसीके आधार कहोगे, तो वह कौनके आधार, उसका अन्य आधार कहोगे तो उस अन्यका कौन आधार ऐसैं अनवस्था नामा दोष आवैगा। अर जो या कहोगे निराधारमैं अनादिनिधनमैं तर्क नहीं तो सृष्टिका कर्त्तापना कहना बनै नहीं।

ऐसैं तो समस्त पदार्थनिकूं ही अनादिनिधन कहै हैं। जाके मतमैं सृष्टिकूं करी हुई मानैं ताके मतमैं ही दोष आवैगा।

बहुरि ईश्वर एक, जगत् नानात्मक, सो एक होइ नानात्मक जगतकी रचनामैं कैसैं समर्थ होय? बहुरि ईश्वर शरीर रहित अमूर्तीक तातैं शरीरादिक मूर्तिक उत्पन्न होनेयोग्य नहीं। अमूर्तिकतैं मूर्तिक कैसैं होय। बहुरि अन्य करणादि सामग्री विना लोककूं कैसैं रच्या। जातैं उपादान कारण विना कोऊ वस्तुकी रचना नहीं देखिए हैं। जैसैं मृत्तिका विना समर्थ कुम्भकार घटकी रचना करनेकूं नहीं समर्थ है। अर जो या कहोगे पहली सामग्री बनाय पाछैं जगतकूं रच्या तो पूछिये उस सामग्रीकूं काहेतैं रची। अर सामग्रीकूं अन्य सामग्रीकरि रची कहोगे तो अन्य सामग्रीकों काहेतैं रची ऐसैं अनवस्था दोष आवैगा। अर जो या कहोगे जगतके रचनेयोग्य सामग्री तो स्वभावहीतैं सिद्ध है तो लोककूं स्वतःसिद्ध माननेका प्रसङ्ग आवैगा।

बहुरि जैसैं लोकका कर्त्ताकों स्वतःसिद्ध मान्या तैसैं लोककैंहू स्वतःसिद्ध माननेका प्रसङ्ग आवै है। बहुरि या कहोगे ईश्वर समर्थ है सो सामग्री विना ही इच्छा मात्रकरि लोककूं रचै है। तो ऐसैं इच्छा मात्र युक्तिरहित तुमारा कहना कौनकै श्रद्धान करनेयोग्य है। इच्छा मात्र करनेकी कल्पना औरहू करो कौन रोकै है। इच्छा मात्र कह्या तहां विचार काहेका रह्या।

बहुरि ईश्वर कृतार्थ है कृतकृत्य है कि अकृतार्थ है। जो कृतार्थ कहिए करनेयोग्य अर्थ करि लिया अन्य कुछ करनेयोग्य बाकी जाकै नहीं रह्या, ऐसाकूं कृतार्थ कहिए है। तो जगतकूं रचनेकी इच्छा ईश्वरकै कैसैं उपजी? अर जो अकृतार्थ कहोगे तो अकृतार्थ होयगा सो समस्त जगतकूं रचनेकौं कुम्भकारकी ज्यौं समर्थ नहीं होय। जातैं अकृतार्थ कुम्भकार एक घटकूं रचि कृतार्थपणा अपने मानै समस्त जगतकूं करना तो अकृतार्थकै बनैगा नहीं। तैसैं ईश्वरकूं अकृतार्थ ही मानो हो तो अकृतार्थपना होतैं तो एक एक वस्तुकरि खेदित क्लेशित होता अनन्त पदार्थनिकूं कैसैं पूर्ण करैगा। तातैंहू जगतका कर्त्तापणा ईश्वरकै नहीं सम्भवै है। बहुरि ईश्वरकूं अमूर्तिक कहै हैं, अर निष्क्रिय कहै हैं, अर व्यापी कहै हैं सो ऐसा ईश्वर जगतकूं

कैसैं रचै। जातैं अमूर्तिकतैं तो मूर्तिक उत्पन्न होय नहीं। अर जो निःक्रिया कहिये क्रिया रहित होय रचनेको क्रिया कैसैं वनै। बहुरि जो व्यापी समस्तमैं व्याप रह्या ताके लोकका रचना कैसैं वनै समस्तमैं ताके अनादिहीका व्याप्त होरह्या।

बहुरि ईश्वरकूं विक्रियारहित निर्विकार कहैं ताकैं रचनेके अर्थि विकारी होना नहीं सम्भवै। बहुरि ईश्वर सृष्टिकूं कहा फल चाहता रची। ईश्वर तो कृतकृत्य है ताके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन च्यारो पदार्थनिमैं कुछ करना बाकी नहीं रह्या तदि सृष्टिकूं रची कहा? फल चाह्या प्रयोजन विना तो मूर्खहू नहीं प्रवर्त्तै है। अर जो या कहोगे ईश्वरकै सृष्टि रचनेमैं कुछ प्रयोजन तो नहीं परन्तु विना प्रयोजन ही रचै हैं तो अनर्थरूप कार्य करनेका प्रसंग आया। अर जो कहोगे ईश्वरकै या क्रीडा है तो बडा मोहका सन्तान आया। क्रीडा तो अज्ञानी मोही बालक करै हैं। वा दुःखित हुवा क्रीडाकरि दिन व्यतीत करै है।

बहुरि और पूछै हैं। जो ईश्वर जगतकू रच्या तो सुखरूप उज्वल रूपवान मनोहर ऐसैं ही समस्त पदार्थनिकों क्यों नहीं रच्या। जगतमैं केई दरिद्री रोगी कुरूप निद्य नीच जाति ऐसैं क्यों रचै। विषादिक कंटकादिक काहेतैं बनाए। तथा दुष्ट भील चांडाल म्लेच्छ क्यों रचे? जगतमैं भी देखिए है-जो महा-बुद्धिमान चतुर होय सो बहोत सुन्दर ही बनाया चाहे। अपना किया कार्यकूं विगाडते नहीं चाहे। यातैं ईश्वर है सो बुद्धिमान अर समर्थ होय ग्लानिरूप भयानक विडरूप रचना कैसैं करी सो कहो। अर जो या कहोगे प्राणी जैसैं कर्म उपार्जन कीए तैसैं उनकै शरीरादिक रचै तो याकै ईश्वरपणा कहा रह्या। जैसैं कोलीकूं महीन सूत दिया महीन वुणि दिया मोटा दिया मोटा वुणि दिया ईश्वरपणा नहीं रह्या। फिर और पूछै हैं। प्राणीनिनैं भले खोटे कर्म किए ते ईश्वरके अभिप्रायतैं किए कि ईश्वरतैं निराले जबर होय किए सो कहो? जो ईश्वरके अभिप्रायतैं किए तो ईश्वर होयकरि अपनी प्रजातैं खोटे कृत्य कैसे कराए अर जो ईश्वरकी इच्छा विना ही किए तो ईश्वरकै ईश्वरपणा कर्त्तापना कहा रह्या? जगत् स्वयं ही कर्मादिककार्यके कर्त्ता भए।

बहुरि कहोगे कार्य तो होय है सो जैसा कर्म किया तैसा ही होय है। परन्तु ईश्वरके निमित्ततैं होय है। तो ऐसैं सिद्धवस्तुकैं विनाकारण ईश्वरका कियापणां क्यों पोषो हो? अत्यंत असत्यको पुष्टकरना बडा अनर्थ है। बहुरि और पूछै हैं जो ईश्वर तो समस्त प्राणीनिमैं वात्सल्य करै है और जगत्‌के अनुग्रह करनेकूं रचै है तो समस्त सृष्टिको शोक रहित उपद्रव रहित रची चाहिये, दुःखमय वियोगमय कैसैं रची, ऐसैं ईश्वरपणा रह्या नहीं और जो कहोगे जे ईश्वरके भक्त थे तिनकूं सुखी किये और दुष्टनिकूं दुःखी किये तो पूछिये है–ईश्वर होइ दुष्ट कैसैं रचै, अपने भक्त ही रचने थे, म्लेच्छादिकनिकूं काहेको बनाया? कहोगे ईश्वरको पहिले ठीक नहीं था। फिर दुष्ट देखे तदि दण्ड दिया तो ईश्वरका अज्ञानपणा प्रकट भया।

बहुरि पूछै हैं। ईश्वर जगतकूं रचै है सो जगत् पहिले विद्यमान है ताकूं रचै है कि अत्यंत असत्‌कूं रचै है? जो विद्यमानकूं रचै है तो पहिले ही सत्‌रूप विद्यमान था उसकू कहा रचैगा अर जो अत्यंत असतकू रचै है तो आकाशका फूलका रचना समान अवस्तु ठहर्‌या। बहुरि जो ईश्वरकूं मुक्त कहो हो तो उदासीन वह सृष्टिकूं कैसैं रचै। अर जो ईश्वर संसारी है तो आपणैसमान है उसका किया समस्त जगत् कैसैं रचनारूप होय। तातैं तुमारा सृष्टिवाद कहना कुछ नहीं रह्या। बहुरि पहैली तो जगत्‌कूं रच्या अर पाछैं संहार किया सो प्रजाकूं रचै अर संहार करै ताकै महान् अधम भया। अर जो कहोगे दैत्यादिक दुष्ट इकट्ठे भये तिनके मारनेकूं प्रलयकालमैं संहार करै है। तो दैत्यादिक दुष्ट पहली रचे कैसैं। अर पहली ठीक नहीं था तो ईश्वरकै अज्ञानीपणा भया। अर दुखिया भया जो नई रचना करिवो करै और चूक बणिजाय जदि मारता फिरै हेरता फिरै। ऐसैं तो ईश्वरकै बहुत अज्ञान रागद्वेषादिक क्लेश बहुत दोष आये। अर इस ही ईश्वरकूं सदाशिव कहै हैं। सदा काल मुक्त मानै हैं। बहुरि केई ऐसा कहै हैं—

जो जगत् कुछ वस्तु नहीं है। एक ब्रह्म ही नाना जगतरूप दीखै है। ब्रह्मतैं दूजा पदार्थ अन्य है ही नहीं। जैसैं सूर्य तो एक है। अर सूर्यका प्रतिबिम्ब अनेक जलके भाजननिमैं देखिए हैं। ताकूं कहिए हैं–जो भाजन अर सूर्य तो दोय वस्तु भया तैसैं ब्रह्म अर जगत दोय भया तब तुमारा अद्वैत ब्रह्मका

मानना तो नहीं रह्या। बहुरि जैसैं सूर्य एक है तो ताका प्रतिबिम्ब अनेक पात्रनिमैं सदृश ही जिस दिन ग्रहण होयगा अर सूर्यकी कोर दक्षिणदिशाकी लुप्त भई होयगी तो समस्त पात्रनिमैं दक्षिणकी कोर ही लुप्त भई भासगी, अन्य प्रकार नहीं दीखे। तैसैं ब्रह्म एक ही है तो समस्त पदार्थनिमैं एकरूप ही दीख्या चाहिए। जगत तो मनुष्य पशु पक्षी वा केई दुःखी केई सुखी केई रंक केई राजा केई जड केई चेतन ऐसैं नानारूप कैसैं भासै है। जो एक ब्रह्मस्वरूप ही होय तो चांडाल अर ब्राह्मणादिकनिका भेद नहीं रहेगा।

बहुरि जो समस्त जगत ब्रह्मरूप ही है तो जप ध्यान आराधन दर्शन कौनका अर ध्यानादिक करनेवाला कौन रह्या। एक ब्रह्म ही रह्या तब दीक्षा शिक्षा गुरुशिष्यादिकका भेदका लोप भया। बहुरि कहोगे जो ए भेद दीखै हैं सो अविद्यामाया है। तो पूछै हैं—या अविद्या ब्रह्मसैं जुदी है कि एक है। जो अविद्याकूं वा मायाकूं जुदी कहेगा तो ब्रह्म अर अविद्या दोय ठहर्या तदि ब्रह्मकै अद्वैतपणा कहां रह्या। अर ब्रह्मको एक कहैगा तो ब्रह्म अविद्यारूप भया मायारूप भया असत्य भया। बहुरि अविद्याकूं अवस्तु कहोहो जो अविद्या तो कुछ वस्तु ही नहीं। तो यह कैसैं कहो जो अविद्यातैं जगत नानारूप दीखै है ब्रह्म सिवाय कुछ नहीं। अर वस्तुक कार्यकारणपणा कैसैं भया। बहुरि सब जगत ब्रह्म ही है तो अविद्या अर माया ए कौनकै भया ब्रह्महीकै भया, तब ब्रह्म कहना मानना तुमारे अभिप्रायतैं ही असत्य भया।

बहुरि अद्वैत शब्द ही द्वैतपना विना होय नहीं। जातैं कोऊ वस्तु होयगा ताका निषेध भी होयगा, द्वैत विना ही द्वैतपणाका निषेध कैसे किया। अर जो कहोगे हम तो समझायबेकूं अद्वैत कह्या है। जातैं जगतमैं जीव भ्रमतैं द्वैत मानि राख्या है इनिका निषेधकूं कह्या है। जो द्वैतका निषेध करो हो सो सत्का करो हो कि असत्का करो हो, जो सत्का करो तो झूठा भया। अर असत्का निषेध संभवै नहीं।

ऐसै इनिका विधि निषेध श्लोकवार्तिकमैं तथा अष्टसहस्रीमैं है। अर ईश्वरवादकाहू आप्तपरीक्षादिक ग्रन्थनिमैं है तहांतैं जानना, इहां तो प्रकरण पाय दिग्मात्र दिखाया है। ऐसैं सप्तभूमि विल

लेश्या आयु द्वीप समुद्र पर्वत ह्रद नदी मनुष्य तिर्यंचनिका आयु इत्यादिक वर्णन करि तीसरा अध्याय समाप्त किया ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ३ ।

अर्थ—ऐसैं तत्वार्थका है अधिगम जातैं ऐसा दशाध्यायरूप मोक्षशास्त्रमैं तीसरा अध्याय समाप्त भया ॥३॥

दोहा ।

है जातैं तत्त्वार्थका, अधिगम शिवसुखदाय । मोक्षशास्त्र मंगलमयी, नमूं तृतिय अध्याय ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

दोहा ।

वंदनकरि पद आप्तका, मुनि आगम उपदेश ।
स्वास्वरूपके कथनमैं, रहै न भ्रमतमलेश ॥ १ ॥

केई प्रकरणमैं देव शब्द कह्या परन्तु यह नहीं जाण्या जो देव कितने हैं, कौन हैं इसके निश्चयके अर्थि सूत्र कहै हैं—

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥ १ ॥

अर्थ—देवगति नामकर्मके उदयतैं देवनिका च्यारि निकाय है । निकाय नाम समूहका है । भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष, वैमानिक ऐसैं देवनिके च्यार समूह हैं ॥ अब इनकैं लेश्याका जाननेकूं सूत्र कहै हैं—

आदितस्त्रिषु पीतांतलेश्याः ॥ २ ॥

अर्थ—आदितैं लेय भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्क इन तीन निकायनिविषै पीतपर्यंत लेश्या हैं । कृष्ण नील कापोत पीत ए च्यार लेश्या हैं ॥ अब तिन देवनिके अन्तर्भेद दिखावनेकूं सूत्र कहै हैं—

दशाष्टपंचद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥ ३ ॥

अर्थ—भवनवासीनिके दश भेद, व्यंतरनिके अष्टभेद, ज्योतिष्कदेवनिके पांच भेद, कल्पवासिनिके द्वादश भेद ऐसैं कल्पोपपन्न जे स्वर्गनिवासी तिन पर्यंत भेद हैं ॥ अथ इन देवनिमैं विशेष हैं तिनके जाननेकूं सूत्र कहै हैं—

इंद्रसामानिकत्रायस्त्रिंशत्पारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः ॥ ४ ॥

अर्थ—देवनिमैं एकएक निकायमैं दश दश भेद हैं। इंद्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंशत्, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य, किल्विषिक, ऐसैं भेद हैं। (तहां अन्य देवनिविषै नहीं पाइए ऐसी अणिमा महिमादिक अनेक ऋद्धिनिकरि परम ऐश्वर्यकूं प्राप्त होय सो इंद्र है।) जैसैं इहां राजा आज्ञा ऐश्वर्यकरि प्रवर्त्तै।

बहुरि जिनका स्थान आयु वीर्य परिवार भोगादिक इंद्रकै समान होय, एक आज्ञा ऐश्वर्य नहीं होय जातैं आज्ञा ऐश्वर्य तो इंद्रका ही होय है ते सामानिक देव हैं। इंद्र इनकूं पिता गुरु उपाध्याय तुल्य बड़े गिणै है। बहुरि मन्त्री पुरोहित समान तो शिक्षा करनेवाले अर पुत्रसमान प्रीतिका पात्र जिनकूं देखनेकरि वचनालापकरि पुत्रसमान इंद्रकै मनकै आनन्द उपजै ऐसै तेतीस देव ते त्रायस्त्रिंशत् हैं। बहुरि जे इंद्रकी बाह्य अभ्यन्तर मध्य जे तीन प्रकारकी सभा तिनमैं तिष्ठने योग्य सभा निवासी देव हैं ते पारिषद देव हैं। बहुरि जे इंद्रकी सभामैं पाछै खडे रहनेवाले शस्त्र धारण किए जे देव हैं ते आत्मरक्षक हैं। यद्यपि देवनिकै किछु घातादिक नहीं है तथापि ऋद्धि विभवकी महिमाकै अर्थि है।

बहुरि कोट्टपालतुल्य होय अमार्गकी प्रवृत्तिका निषेधक लोकपाल है। बहुरि पयादा, अश्व, वृषभ, रथ, हस्ती, गंधर्व, नर्त्तकी ए सात प्रकार इंद्रकी सेनाके देव ते अनीक कहिए। बहुरि नगरनिवासी समान प्रीतिका कारण प्रकीर्णक देव हैं। बहुरि दासादिकनिकै समान हस्ती घोडादिक वाहन बणि सेवा करैं ते आभियोग्य देव हैं। बहुरि दूर तिष्ठनेवाले इंद्रादिकनिके सन्मानादिकके अधिकारी नहीं, बाहिर दूरि ही

खडे तिष्ठै रहैं ते किल्विषिक देव हैं ॥ इस सूत्रमैं "एकशः" कहने करि एकएक निकायमैं दश दश भेद हैं परन्तु व्यन्तर ज्योतिषीनिमैं आठ आठ ही भेद हैं । यातैं सूत्र कहै हैं—

त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यंतरज्योतिष्काः ॥ ५ ॥

अथ—व्यंतर अर ज्योतिष्क देवनिमैं त्रायस्त्रिंशत् अर लोकपाल ए दोय भेद नहीं हैं, आठ ही हैं ॥ अब इन्द्रनिका नियम कहै हैं—

पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥ ६ ॥

अर्थ—पहली दोय निकायनिके भेदनिमैं दोय दोय इन्द्र हैं । दश प्रकारका भवनवासीनिमैं चमर वैरोचनादिक दोय दोय इन्द्र हैं यातैं वीस इंद्र हैं । व्यंतरनिके अष्ट भेदनिमैं किन्नर किंपुरुषादिक षोडश इंद्र हैं ॥ अब देवनिकै कामसेवनका नियम कहै हैं—

कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥ ७ ॥

अर्थ—इहां प्रवीचार नाम मैथुनसेवनका है । भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्क अर सौधर्म ईशान स्वर्गके देव अर इनिकी अंगना इनिकैं मनुष्यनिकै समान संक्लेश कर्मकरि कायथकी मैथुनसेवन है ॥ अब ऊपरिके देवनिकै कैसैं है सो कहै हैं—

शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥ ८ ॥

अर्थ—पहिले सूत्रमैं कहे देव तिनतैं अवशेष रहे ते सनत्कुमारादिक देव तिनकैं स्पर्श रूप शब्द मनकै विषै ही मैथुन है । सनत्कुमार माहेन्द्रके देवनिकै मैथुनकी इच्छा उत्पन्न भई जाणि देवी नजीक प्राप्त होय हैं । तहां देवीनिका अंगका स्पर्श मात्रतैं ही प्रीतिनैं प्राप्त होय हैं, अर कामकी इच्छा मिटि जाय है, अर देवीनिकैहू तृप्ति होय है ।

बहुरि ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्ठ इन च्यार स्वर्गनिके देवनिकै देवांगनानिके स्वभावतैं ही सुन्दर

शृँगार आकार विलास चतुर मनोज्ञ वेष रूप लावण्य इनिके अवलोकन मात्रतैं ही परमसुख होय २ बहुरि शुक्र महाशुक्र शतार सहस्रारके देव हैं ते देवांगनानिके मधुर गीत, कोमल हास्य, कोमल वचन, भूषणनिके शब्दश्रवणादि, रूप अमृतपानकरि परमप्रीतिकूं प्राप्त होय हैं।

बहुरि आनत प्राणत आरण अच्युत इन च्यार स्वर्गनिविषै देव हैं ते अपनी देवांगनानिका मनविषै ही संकल्पमात्र करनेतैं परमसुखकूं प्राप्त होय हैं॥ अब सोलह स्वर्गनिके ऊपरि अहमिंद्रनिकै कैसैं सुख है इसके निश्चयके अर्थि सूत्र कहै हैं—

परेऽप्रवीचाराः ९ ॥

अर्थ—इहां "पर" शब्दके कहनेकरि कल्पातीत समस्त देवनिका संग्रह भया यातैं अच्युत स्वर्गके ऊपरि नवग्रैवेयिकनिके तीनसै नव ३०९ विमान अर नव अनुदिश विमान अर पंच अनुत्तर विमान इनमैं बसनेवाले अहमिंद्र हैं तिनकै काम सेवन नाहीं। तहां देवांगना नाहीं। विषयवेदनाके अभावतैं वेदनारहित स्वाभाविक परमसुख निरन्तर भोगै हैं॥ अब भवनवासी देवनिकी विशेष संज्ञा कहनैकूं सूत्र कहै हैं—

भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥ १० ॥

अर्थ—भवननिमैं वसै हैं तातैं इनकूं भवनवासी कहिए हैं। भवनवासीनिमैं असुरकुमार नागकुमार विद्युत्कुमार सुपर्णकुमार अग्निकुमार वातकुमार स्तनितकुमार उदधिकुमार द्वीपकुमार दिक्कुमार ऐसैं दश विशेष संज्ञा नाम कर्मकरि कीनी जानना। बहुरि कोऊ श्वेतांबरादिक कहैं जो देवनिकरि 'अस्यंति' कहिए युद्ध करैं प्रहार करैं ते असुर हैं ऐसैं कहैं सो नहीं। ए कहना तो देवोंकों अवर्णवाद है, इसमें मिथ्यात्वका बन्ध होय है।

ते सौधर्मादिकनिके देव महाप्रभाववान है। इनकै ऊपरि हीनदेव मनकरिकैंहू प्रतिकूलपणा नहीं विचारै हैं। जो एता विशेष है। जो चमरेन्द्र अर वैरोचन ए इन्द्र अपनी ऐश्वर्य सम्पदाकरि परिणाममैं

ऐसा मद करैं हैं जो हमारे सौधर्म ईशान इन्द्रसौं कौनसी सम्पदा घटै है हम भी उनके तुल्य ही हैं ऐसी परिणामनिमैं ईर्षा है सो अभिमानकी अधिकतातैं ऐसी ईर्षा करै ही हैं।

बहुरि सौधर्मादिक देवनिकैं विशिष्ट शुभ कर्मका उदयकरि विभव है। सो अरहन्त पूजा तथा भोगानुभवन इत्यादिकमैं लीन हैं। इनकैं परकी दाराहरणादिक वैरका कारण ही नहीं। तातैं असुर हैं ते सुरनिकरि युद्ध नाहीं करै हैं। बहुरि समस्त देवनिकै बाल यौवनादिक अवस्था नहीं पलटै हैं। उपज्या जिस अवसरतैं मरणपर्यंत एकसी अवस्था रहै है तातैं थिर अवस्थाकरि कुमार नहीं हैं। इनिकै कुमार समान उद्धतवेष भाषा आभरण आयुध वस्त्र गमन वाहन राग क्रीडन हैं तातैं कुमार कहिए है। अब इनका भवन कहां है सो कहै हैं।

इस जम्बूद्वीपकी दक्षिण दिशामैं असंख्यात द्वीपसमुद्रनिकूं व्यतीतकरि रत्नप्रभा पृथ्वीका पंक भागविषैं असुरकुमारनिका चमर नाम इंद्रके चौंतीस लाख भवन हैं। अर चौसठि हजार सामानिक देव हैं। तेतीस त्रायस्त्रिंशत् देव हैं। बहुरि सोम यम वरुण कुबेर ए च्यार लोकपाल हैं। तीन सभा हैं तिनमैं पहली सभामैं अठाईस हजार देव हैं। मध्यकी सभामैं तीस हजार बाह्य सभामैं बत्तीस हजार देव हैं। अर सात सेना हैं। महिषनिकी घोड़ेनिकी रथनिकी हाथीनिकी पयादनिकी गंधर्वनिकी नृत्यकारिणीनिकी। तिन एक एक सेनामैं सात सात कक्षा हैं।

पहिलो कक्षा चौसठि हजार देवनिकी दूजी यातैं दूणी ऐसैं सप्त जायगां दूणी दूणीकी इक्यासी लाख अठाईस हजार प्रमाण महिषनिकी सेना भई। इनिकूं सप्तकरि गुणिए तदि पांच कोटी अडसठी लाख छिनवै हजार देव सातौ सेनाके भए। ऐसैं ही वैरोचनादिक इंद्रनिकैं सेनाका प्रमाण जानना। इनि सात प्रकारकी सेनामैं एक एक सेनाधिपति महत्तर देव हैं। नृत्यकारणीनिकी सेनामैं महत्तरी देवी है। अर प्रकीर्णक देव नगरनिवासी समान प्रीतिके पात्र असंख्यात हैं।

बहुरि छप्पन हजार देवी हैं तिनमैं सोलह हजार वल्लभिका अर पांच पट्टदेवी हैं। अर पट्टदेवी

आठ हजार विक्रिया करैं हैं। ऐसैं ही वैरोचनादि इंद्रनिकै समस्त दश भेदनिमैं भवन परि त्रिलोकसारादि ग्रन्थनितैं जानना। बहुरि रत्नप्रभा पृथ्वीका पङ्कभाग विषै असुरकुमारनिके भवन हैं अर नागकुमारादिक नव जातिके भवन खरभाग विषैं हैं।

बहुरि केई भवन जघन्य हैं ते तो संख्यातकोटी योजनके हैं। उत्कृष्ट भवन असंख्यात योजनके विस्ताररूप हैं चौकोर हैं। तीनसै योजनकी ऊंचाई लिए हैं। भवनकी भूमिसूं लेय छातीपर्यंत तीनसै योजनकी ऊंचाई है। अर एकएक भवनके मध्यविषैं एक योजन ऊंचा पर्वत है तिस पर्वत ऊपरि जिनेन्द्र-मन्दिर हैं ऐसैं दश जातिके भवनवासीनिके सांत कोटी बहत्तरी लाख भवन हैं। अर सात कोटी बहत्तरी लाख ही जिनचैत्यालय हैं। अष्टगुणरूप ऋद्धिनिकरि सहित हैं। नाना मणिमय भूषणनिकरि जिनका दीप्तिसंयुक्त अंग हैं।

अर दशप्रकारके चैत्यवृक्ष जिनप्रतिमाकरि विराजित हैं। अपने तपके प्रभावकरि सुखरूप भोग भोगते तिष्ठैं हैं। जिनकैं मलमूत्र रुधिर चाम हाड मांस आदिककरि वर्जित दिव्य देह है। तिनमैं असुर-कुमार देवनिकैं एक हजार वर्ष गए आहारकी इच्छा उपजै सो मानसिक आहार मन चलत प्रमाण कण्ठमैं अमृत झरै है। वेदना व्यापै नाहीं। अर पंदरह दिन व्यतीत भए उच्छ्वास होय है। अर अन्य नागकुमार सुपर्णकुमार द्वीपकुमार इन तीननिकै आहारकी इच्छा साडाबारह दिन गए होय, अर साढाबारा मुहूर्त्त गए उच्छ्वास होय अर उदधिकुमार विद्युत्कुमार स्तनितकुमार इन तीनकैं बारह दिन गए आहारकी इच्छा अर बारह मुहूर्त्त गए उच्छ्वास होय है।

अर दिक्कुमार अग्निकुमार अर वातकुमार इन तीनकै आहारकी इच्छा साडा सात दिनमैं अर उच्छ्वास साडा सात मुहूर्त्तनिमैं होय है। बहुरि देहकी ऊँचाई असुरकुमारनिकैं पचीस धनुषकी अन्य नव जातिकेनिकैं दश धनुष है। समस्त भवन महासुगन्ध महारमणीक महाउद्योतरूप हैं॥ अब व्यंतरनिकी संज्ञा कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

व्यंतराः किन्नरकिंपुरुषमहोरगगंधर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥ ११ ॥

अर्थ—विविध कहिए नानादिशांतरनिमैं इनका निवास हैं तातैं व्यंतर कहिए है। सो सामान्य संज्ञा है। अर नानाकर्मके उदयकरि इनका ए आठ विशेष संज्ञा हैं। ते किन्नर किंपुरुष महोरग गन्धर्व यक्ष राक्षस भूत पिशाच ऐसैं आठ हैं। कितने अज्ञानी कहै हैं जो किन्नरान् कामयन्ते इति किन्नराः। किंपुरुषान् कामयन्ते इति किंपुरुषाः, पिशिताशनात् पिशाचाः ऐसैं निरुक्तिकरि ऐसा विपरीत अर्थ करैं जो कुत्सित नरनिकूं इच्छा करैं ते किन्नर कहिए अर कुत्सित पुरुषां सों कामसेवन करैं ते किंपुरुष हैं। अर पिशित जो मांस ताके भक्षणतैं पिशाच हैं। सो ऐसा कहना देवनिका अवर्णवाद है। मिथ्यादर्शनके बन्धका कारण है।

पवित्र वैक्रियिक देहका धारक देव कदाचित् भी अशुचि औदारिक मनुष्यनिका देहतैं कामसेवन नहीं करै, मांसभक्षण देवनिकैं कदाचित् नहीं है। देवनिकैं मानसिक आहार है कवलाहार नहीं है। अर लौकिकमैं प्रवृत्ति सुनिए देखिए है सो पूर्वजन्मके संस्कारतैं क्रीडा सुखकै निमित्त है। पूर्वजन्मका संस्कार खोटा होय तातैं खोटी क्रीडामैं प्रवृत्ति है। तिनमैं किनरनिका हरितवर्ण है। किंपुरुषनिका धवलवर्ण है। महोरगनिका श्यामवर्ण है। गन्धर्वनिका हेमवर्ण है। यक्षनिका श्यामवर्ण है। राक्षस भूत पिशाच श्याम-वर्ण हैं। इनिकैं जिनप्रतिमाकरि सहित अष्टप्रकारके चैत्यवृक्ष हैं ते मानस्तम्भादिक सहित हैं।

बहुरि इन अष्टभेदनिमैं दोय दोय इंद्र हैं। एक एक इंद्रके च्यार हजार सामानिक देव हैं। च्यार पट्टदेवी हैं। सोलह हजार अगरक्षक हैं। तीन सभा हैं। अभ्यंतर सभामैं आठसै देव, मध्यममैं हजार देव, बाह्यमैं बारासै देव, अर एक एक इंद्रके सात सात प्रकार सेना हैं। हस्ती, घोड़ा, पयादा, रथ, गन्धर्व, नृत्यकारिणो, वृषभ। एक एकमैं सात सात कक्षा हैं। पहली कक्षा अठाईस हजारकी। फिर दूणी दूणी। सातमी कक्षामैं हस्ती सतरा लाख बाणवै हजार भया। सात कक्षानिका मिल्या हुवा पैंतीस लाख छप्पन हजार हस्ती भया। ऐसैं ही प्रमाण लिया घोडा पयादा रथादिकनिकी सेना हैं। ऐसैं इनक समस्त इन्द्र सोलह तिनकैं सेनादिक ऋद्धि जाननी।

बहुरि इनका आवास इस जम्बूद्वीपतैं तिर्यक् दक्षिणदिशा विषैं असंख्यात द्वीपसमुद्रनिकूं उ करिकैं अर खरपृथ्वीका भागविषैं किंनरेंद्रका असंख्यात हजार भवन हैं। ऐसैं ही उत्तरदिशा विषैं किंपुरुष इंद्रका विभव परिवार है। ऐसैं ही सत्पुरुष गीत रतिपूर्ण भद्रस्वरूप काल नाम भद्रका दक्षिण भागमैं आवास है। तैसैं ही महापुरुष महाकाल गीनयश मणिभद्र अप्रतिरूप महाकाय ए उत्तरके अधिपति तिनका उत्तरमैं निवास है तथा पंकभागविषैं दक्षिणदिशामैं राक्षसनिका इंद्र भीम नामका असंख्यात नगर हैं।

बहुरि उत्तर दिशाविषैं महाभीम नाम राक्षसेन्द्रका असंख्यात नगर हैं। बहुरि इन व्यंतरनिके नगर अनेक पृथ्वी ऊपरि बहुत द्वीपनिमैं हैं। जम्बूद्वीपप्रमाण बड़े हैं। अनेक वन उपवन महल मंदिर दरवाजे कोट पडकोटनि सहित अनेक रचना हैं। बहुरि व्यंतरनिका आवास पृथ्वी ऊपरि द्वीप पर्वत समुद्र देश ग्राम नगर त्रिक चोहटा गृहांगण रस्ता गली जलके निवाण (घाट) बाग वन देवकुलादिकविषैं असंख्यात विचरै हैं॥

अब तृतीयनिकायकी संज्ञा कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥ १२ ॥

अर्थ—सूर्य १, चंद्र २, ग्रह ३, नक्षत्र ४, प्रकीर्णकतारा ५, ऐसैं पञ्चप्रकार ज्योतिष्क देव हैं। इनिका ज्योति उद्योतरूप स्वभाव है यातैं ज्योतिष्क ऐसी सामान्य संज्ञा है। सूर्य चंद्रमा ग्रह नक्षत्र प्रकीर्णकतारा ए विशेष संज्ञा हैं।

इहां सूर्याचन्द्रमसौ इनिकी भिन्नभिन्न विभक्तिकरि इनका प्रधानपणा जणाया है। इनिकैं प्रभावादिक विशेष हैं। सूर्यका पहली ग्रहण अल्पस्वरपणातैं है। जिस शब्दमैं स्वर अल्प होय सो पहली कह्या जाय है। जैनेंद्रमैं याकी अच्संज्ञा है। इनिमैं चंद्रमा इंद्र है सूर्य प्रतींद्र हैं। इनिके आवास मध्यलोकमैं हैं।

इस समभूमि भागतैं सातसै नवै योजन ऊपरि समस्त ज्योतिषनिकै नीचे तारा विचरै हैं। तिन

तारनितैं दश योजन ऊँचे सूर्य जातिके देव हैं, अर सूर्यनितैं असी योजन ऊँचा जाईये चन्द्रमा भ्रमे हैं। चन्द्रमातैं तीन योजन ऊपरि नक्षत्र हैं। तिनतैं तीन योजन ऊँचे जाय बुधदेव हैं। तिनतैं तीन योजन ऊंचे शुक्रदेव हैं। तिनतैं तीन योजन ऊंचे बृहस्पति हैं। तिनतैं च्यार योजन ऊंचे मंगल हैं। तातैं च्यारि योजन ऊंचे शनैश्चर हैं।

ऐसैं यो ज्योतिर्गणनिका विषयरूप आकाश एकसो दश योजनकी ऊँचाईमैं है। जातैं समभूमितैं सातसैनिवैं योजनके ऊपर नवसै योजन पर्यंत एकसौ दश योजन मोटा ज्योतिषी देवनिका पटल हैं। अर तिर्यक् असंख्यात द्वीपसमुद्र प्रमाण चौडा लम्बा घनोदधिपवन पर्यंत तिष्ठै है। बहुरि एक योजनका इकसठि भागकी जेतीमैं छप्पन भाग प्रमाण चन्द्रमाका विमान है। अर एक योजनका इकसठि भागकी जेतीमैं अडतालीस भाग प्रमाण सूर्यका विमान है। शुक्रका विमानका व्यास एक कोश प्रमाण है। बृहस्पतिका किंचित् न्यून एक कोश प्रमाण है। अर बुध मंगल शनैश्चरका विमान अर्द्धकोश विस्तार है।

बहुरि तारानिका विमान जघन्य है सो तो एक कोशका चतुर्थ भाग प्रमाण विस्तार है अर उत्कृष्ट एक कोशका तारानिका तथा नक्षत्रनिका विमानका विस्तार है। अर ए समस्त विमाननिका आकार जैसैं कोऊ गोला सब तरफतैं घटता जानना सो लोहादिकनिका गोला बीचिमैं चीरिए तब ऊपरि विस्ताररूप अर नीचै क्रमतैं घटता होय है। अर विमाननिका विस्तारतैं आधा ऊँचाईका प्रमाण है। अर विस्तारतैं तिगुणीतैं कुछ अधिक परिधि है। बहुरि राहुको विमान चन्द्रमाका विमानकै नीचैं गमन करै है। अर केतुको सूर्य विमानकै नीचैं गमन करै है। अर राहु केतुका विमान किंचित् न्यून एक योजनके विस्तार है।

बहुरि राहुका विमानका ध्वजादण्डके ऊपरि च्यारि प्रमाणांगुलका अन्तर छांडि चन्द्रमाका विमान है। अर केतुका विमानका ध्वजादण्डके ऊपरि च्यार प्रमाणांगुलका अन्तर छांडि सूर्यका विमान है। चन्द्रमाका विमान दिनप्रति अपना विस्तारके सोलमै भाग कृष्ण वा शुक्ल होय है। सो राहुका विमानकी गति विशेषकरि होय है। बहुरि चन्द्र विमानकूं अर सूर्य विमानकूं सोलह सोलह हजार देव लेकर बहै हैं।

ते पूर्वमैं च्यार हजार देव सिंहकै आकार हैं। दक्षिणदिशामैं हस्तीके आकार च्यार हजार देव हैं। पश्चिममैं वृषभकै आकार च्यार हजार देव हैं। उत्तरमैं तुरंगाकार च्यार हजार देव वसै हैं।

बहुरि अन्य ग्रहनिके विमानका वाहक आठ हजार देव हैं। नक्षत्रविमानकै च्यार हजार देव हैं। ताराविमानकै दोय हजार देव विमानकूं वहनेवाले हैं। बहुरि सूर्यके बारह हजार किरण उष्ण कठोर हैं। चन्द्रमाके शीतल बारह हजार किरण हैं। शुक्रकै अढाई हजार किरण हैं। प्रकाशकरि उज्ज्वल हैं। और ग्रहादिक मन्दकिरण हैं मन्द प्रकाश सहित हैं।

बहुरि इहां कोऊ कहै—ज्योतिषीदेवनिकैं गमनका कारणविना गमन कैसैं होय? ताका उत्तर—गतिमैं रत आभियोग्य देव हैं तिनकै कर्म गमनकरिक ही पचै हैं। कर्मकी विचित्रता है। तप्तायमान सुवर्णवर्ण सूर्यविमान है। निर्मल कमलतंतुकै वर्ण चन्द्रविमान है। रूपावर्ण शुक्रका विमान है। मोती समान बृहस्पतिविमान है। कनकमय बुधविमान है। तप्तायमान सुवर्णवर्ण शनैश्चरविमान है। ताया सुवर्ण समान मंगलविमान है॥ ज्योतिषीनिका गमन विशेष जनावनेकूं सूत्र कहै हैं—

मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥ १३ ॥

अर्थ—ज्योतिषी देव मेरुकी प्रदक्षिणारूप निरन्तर मनुष्यलोकमैं गमन करैं हैं। मेरुकूं ग्यारहसे इकईस योजन तिर्यक् छांडिकरि तारागणादिक विचरैं हैं। अढाई द्वीपमैं अर दोय समुद्रमैं मनुष्यनिका क्षेत्र है। तिनमैं जम्बूद्वीपमैं दोय चन्द्रमा, लवणसमुद्रमैं च्यार हैं। धातकी द्वीपमैं बारह हैं, कालोदधिमैं बीयालीस हैं। पुष्करार्द्धमैं बहत्तरी हैं। ऐसैं पंचस्थान ऊपरी एकसौ बत्तीस चन्द्रमा भए। इतने ही सूर्य हैं। बहुरि जम्बूद्वीपमैं छत्तीस ध्रुवतारा हैं। लवणसमुद्र ऊपरी एकसौ गुणतालीस, धातकीमैं एक हजार दश, कालोदधि ऊपरी इकतालीस हजार एकसौ बीस, पुष्करार्द्ध ऊपरि त्रेपन हजार दोयसै तीस हजार ध्रुवतारा है।

बहुरि एक चन्द्रमा सम्बन्धी एक सूर्य अर अठासी ग्रह अठाईस नक्षत्र अर छासठि हजार नवसे

पिचहत्तरी कोडाकोडी तारा हैं। एता परिवार सहित समस्त चन्द्रमा जानना। कह्या जे जम्बूद्वीपविषै दोय सूर्य दोय चन्द्रमा इनका गमन करनेका क्षेत्रकूं चार क्षेत्र कहिए हैं। तहां एकसौ असी योजन तो द्वीपविषै अर तीनसै तीस योजन अर सूर्यका बिम्बका प्रमाणकरि अधिक लवणसमुद्रविषैं गमनका क्षेत्र है।

ऐसैं पांचसै दश योजन साधिक इनका चार क्षेत्र हैं। यामैं सूर्यके गमन करनेकी एकसौ चौरासी गैली हैं। तहां बिम्ब प्रमाण तो एक गैलीकी चौडाई है। अर गैलीप्रति दोय दोय योजनका अन्तर ऐसैं एकसौ तीयासी अन्तर जाननैं। इनका गमनकरि जम्बूद्वीपमैं अभ्यन्तर परिधिमैं गमन करै सो प्रथम गैली कहिए। अर लवणसमुद्रमैं तीनसै तीस योजनपरै जो गैली सो अन्तकी बाह्य परिधि है। प्रथम अभ्यंतर वीथीविषै तिष्ठता सूर्यके दक्षिणायनका प्रारम्भ है। अर अन्तर्बाह्य वीथीविषै तिष्ठता सूर्यकै उत्तरायणका प्रारम्भ होय है।

बहुरि कर्कराशिविषै सूर्य प्राप्त होय तब अभ्यंतर वीथीविषै भ्रमण करै है। अर मकर राशिविषैं सूर्य प्राप्त होय तब बाह्य वीथीविषैं भ्रमण करै है। सूर्य ज्यौं ज्यौं बाह्य वीथीकूं प्राप्त होय त्यौं त्यौं शीघ्र गमन करै हैं। अर जैसैं जैसैं अभ्यंतर वीथीकूं प्राप्त होय तैसैं तैसैं मंद गमन करै है। जब अभ्यंतर परिधिमैं गमनका प्रारम्भ करै है तदि अठारह मुहूर्त्तका दिन बारह मुहूर्त्तकी रात्रि होय है। अर बाह्य परिधिमैं सूर्य भ्रमण करै है तदि बारह मुहूर्त्तका दिन अठारह मुहूर्त्तकी रात्रि होय है। बहुरि चन्द्रमाकी वीथी पन्द्रह हैं। बहुरि इहां इनके गमनके चार क्षेत्रकी चौडाई पांचसै दश योजन प्रमाण कह्या तिसमैं एकसो चौरासी वीथी सूर्यकी हैं। तिनमैं जंबूद्वीपसंबंधी चारक्षेत्र एकसो असी योजनमैं जम्बूद्वीपकी वेदीका व्यास च्यार योजनका है।

तातैं द्वीप ऊपरि एकसो छिहत्तरी योजन अर वेदी ऊपरि च्यार योजनका लवणसमुद्रकै ऊपरि तीनसै तीस योजन है। तिनमैं सूर्यका बिंब तो अडतालीस योजनका इकसठवां भागविषै अर दोय योजनको अंतराल इनकूं मिलाय एकसो सत्तरिका इकसठिवां भाग प्रमाण दिनप्रति परिधिको अंतराल जानना

सो द्वीप ऊपरि बासठि उदय हैं अर वेदीसम्बन्धी दोय अर लवणसमुद्रसम्बन्धी एकसो अठारह हैं।

ऐसैं एकसो चौरासी उदय कहे। बहुरि भरतक्षेत्रके निवासीनिकूं त्रेसठि उदय तो निषधपर्वत ऊपरि दीसै हैं। अर चोसठिवीं पैंसठिवीं वीथीविषै तिष्ठता सूर्य हरिक्षेत्र ऊपरि उदय दीसै हैं। अर छ्यासठवींतैं लगाय अन्तपर्यंत वीथीनिविषैं तिष्ठता सूर्य लवणसमुद्रकै ऊपरि उदय होता भरतक्षेत्रके निवासीनिकूं दीखै है। बहुरि मेरुगिरिके मध्यतैं लगाय यावत लवणसमुद्रका छठा भागपर्यंत सूर्यका आताप फैलै है। जंबूद्वीपका आधा क्षेत्र पचास हजार योजन तामैं द्वीप चार क्षेत्र एकसो असी योजन घटाए गुणचास हजार आठसै वीस योजन प्रमाण तो अभ्यंतर वीथी मेरुगिरिका मध्यपर्यंत उत्तरदिशाविषै आताप फैलै है।

बहुरि लवणसमुद्रको व्यास दोय लाख योजनका ताका छवां भाग तेतीस हजार तीनसै तेतीस योजन अर एकका तिसरा भागप्रमाण यामैं द्वीपका चारक्षेत्र एकसो असी योजन मिलाए तेतीस हजार पांचसै तेरह योजन अर एकका तिसरा भागप्रमाण दक्षिणदिशा विषै आताप फैलै है। ऐसैं ही अन्य वीथीनिविषै जानना। बहुरि नीचैं अठारहसै योजन चित्रापृथ्वीपर्यंत फैलै है। बहुरि ऊपरि सौ योजनपर्यंत आताप फैलै है।

बहुरि चंद्रमाका आयु एक पल्य अर एक लक्ष वर्षका है। सूर्यका आयु हजार वर्ष अधिक पल्यका अर शुक्रका आयु सौ वर्षसहित पल्यका अर वृहस्पतिका आयु एक पल्यका बुध मंगल शनैश्चरका आध पल्यका अर तारानिका आयु अर नक्षत्रनिका उत्कृष्ट आयु पावपल्यका अर जघन्य आयु पल्यका अष्टम भागप्रमाण है।

बहुरि चन्द्रमा अर सूर्य इनिकै चार चार पट्टराणी हैं। अर एक एक पट्टदेवीकै च्यार च्यार हजार परिवारकी देवी हैं। अर एक एककैं एतीही विक्रिया है। अर ज्योतिषीनिकी देवांगनाकी आयु अपने अपने स्वामी देवकी आयुतै अर्द्धप्रमाण है॥ गतिमान् ज्योतिषीनिकरिही कालका विभाग है ऐसैं दिखावनेकूं सूत्र कहै हैं—

तत्कृतः कालविभागः ॥ १४ ॥

अर्थ—तिन ज्योतिषी देवनिके गमनकरि किया कालका विभाग है। लव, पल, घडी, मुहूर्त्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन संवत्सरादिक कालका विभाग ज्योतिषीदेवनिकरि किया प्रकट होय है। काल है सो दोय प्रकार है निश्चयकाल, व्यवहारकाल। सो निश्चयकाल तो पंचम अध्यायमैं वर्णन करसी ही। निश्चयकालका जनावनेवारा व्यवहारकाल है ॥ अब मनुष्यक्षेत्र जो अढाईद्वीप तातैं वाहरि ज्योतिषी देवनिका स्थिरपणाका नियम कहै हैं—

बहिरवस्थिताः ॥ १५ ॥

अर्थ—मनुष्यलोककै बाहिर असंख्यात द्वीपसमुद्रनि ऊपरि ज्योतिषी देवनिका विमान अवस्थित ही हैं गमनरहित हैं। इहां कोऊ कहैं इनका अवस्थान अढ़ाई द्वीपवारैं कैसैं है। ताहि कहै हैं—मानुषोत्तर पर्वतनैं पचास हजार योजनपरैं जाय ज्योतिषीनिके विमाननिका प्रथम वलय हैं। तहां एकसो चवालीस चन्द्रमा हैं। आगैं एक लक्ष योजन क्षेत्र परैं जाय एक एक वलय है। अर वलय वलय प्रति च्यार च्यार चन्द्रमा अधिक हैं। ऐसैं बाह्य पुष्करार्द्ध द्वीपविषैं आठ वलय कहिए परिधि। तहां चन्द्रमा सूय परिवार अवस्थित हैं।

बहुरि पुष्करवर समुद्रविषैं वेदीतैं पचास हजार योजन परैं जाय प्रथम वलय है। सो प्रथम वलयविषैं दोयसै अठासी चन्द्रमा हैं। आगैं एक लाख योजन परैं जाय दूसरा वलय है तहां दोयसै बाणवै चन्द्रमा हैं। ऐसैं एक एक लाख योजन परैं जाय एक एक वलय है। एक एक वलयप्रति च्यार चन्द्रमा अधिक हैं। ऐसैं पुष्करवर समुद्रविषैं बत्तीस वलय हैं।

बहुरि तातैं दूना वारुणीवर द्वीपविषैं चौसठि वलय हैं तहां वेदीतैं पचास हजार योजन परैं जाय पहला वलय है सो पहला वलयविषैं पांचसै छिहत्तरि चन्द्रमा हैं। आगैं एक एक लाख योजन क्षेत्र परैं जाय एक एक वलयप्रति च्यार च्यार चन्द्रमा अधिक हैं। समस्त वलयविषैं चन्द्रमा सूर्य अपने परिवार

सहित तिष्ठै हैं अवस्थित हैं। इहां ऐसा जो पुष्करवर समुद्रमैं बत्तीस वलय हैं। तातैं वारुणीवर द्वीपविषैं दूणा वलय हैं चोसठि हैं पुष्करवर समुद्रके पहले वलयविषैं दोयसै अठ्यासी चन्द्रमा तातैं दूणा वारुणीवर द्वीपके पहले वलयविषैं पांचसै छिहत्तरी चन्द्रमा है।

ऐसैं ही वारुणीवर समुद्र तथा क्षीरवर द्वीपादिक विषैं दूना दूना वलय अर याही अनुक्रमकरि चन्द्रमा सूयकी संख्याकी वधतीका परिमाणादिक लोकका अन्तमैं स्वयंभूरमण समुद्रपर्यंत ज्योतिर्लोक स्थिर तिष्ठै है, ऐसैं ज्योतिषीनिका वर्णन पर्यंत तीन निकायका वर्णन किया।

अब चतुर्थनिकायकी सामान्य संज्ञा कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

वैमानिकाः ॥ १६ ॥

अर्थ—जिनमैं तिष्ठते जीवनिकूं पुण्यवन्त विशेषपणाकरि मानैं सत्कार करैं ते विमान हैं। विमाननिमैं उत्पन्न भए ते देव वैमानिक हैं। ते विमान चौरासी लाख सत्याणवै हजार तेईस हैं। अर एक एक विमान बहुत योजनके विस्तार हैं। तहां विमान तीन प्रकार हैं। १-इंद्रक, २ श्रेणीबद्ध, ३ प्रकीर्णक। तिनमैं श्रेणीबद्ध विमान तो एक एक असंख्यात योजनका ही है। अर इंद्रक संख्यात योजननिके ही हैं। अर प्रकीर्णक केई असंख्यात योजनके केई संख्यात योजनके विस्तारकूं धरै हैं। तिनमैं उत्तम मंदिर कल्पवृक्ष वन बाग बावडी नगरादिक अनेक रचना पाइए है। तिनमैं मध्यस्थानमैं तिष्ठता इन्द्रक विमान है। अर पूर्वादि च्यारो दिशानिविषै पंक्तिरूप तिष्ठै हैं ते श्रेणीबद्ध हैं। बहुरि च्यारो दिशानिके वीचि अन्तरालरूप विदिशानिविषैं जहां तहां विखरे पुष्पकी ज्यौं तिष्ठैं ते प्रकीर्णक विमान हैं।

अब वैमानिकनिमैं भेद दिखावनेकूं सूत्र कहै हैं—

कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥ १७ ॥

अर्थ—वैमानिकदेवनिमैं कल्पोपपन्न अर कल्पातीत ऐसैं दोय प्रकार हैं। जहां इंद्र सामानिकादि दशप्रकार कल्पना संभवै है ते षोडशस्वर्ग कल्प कहावै हैं। अर जिनमैं इंद्रादिक कल्पना नहीं समस्त-

देव समान हैं ते ग्रैवेयकादि कल्पातीत हैं, वहांके देव अहमिंद्र हैं ॥ अब इनका अवस्थान विशेष जनावनेके अर्थि सूत्र कहै हैं—

उपर्युपरि ॥ १८ ॥

अर्थ—कल्पनिके जुगल तथा पटल बहुरि नवग्रैवेयक अर नव अनुदिश पंच अनुत्तर ए समस्त ऊपरि ऊपरि हैं ॥ अब कल्पादिकनिका नाम कहै हैं तिनमैं देव वसै हैं—

सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेंद्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलांतवकापिष्ठशुक्र-
महाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवे-
यकेषु विजयवैजयंतजयंतापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ १९ ॥

अर्थ—सौधर्म, ऐशान अर सानत्कुमार, माहेंद्र अर ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर अर लांतव, कापिष्ठ अर शुक्र, महाशुक्र अर शतार, सहस्रार अर आनत, प्राणत अर आरण, अच्युत ऐसैं अष्ट युगलकै षोडश स्वर्ग हैं। तिनकै बावन पटल हैं। ऊपरि नव ग्रैवेयकनिके नव पटल हैं। ऊपरि अनुदिश विमाननिका एक पटल है। ऊपरि नव विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित, सर्वार्थसिद्धि इनि पंचविमाननिका एक पटल है।

ऐसैं समस्त त्रेसठि पटल हैं। इहां ऐसा विशेष जानना। इस भूमितलतैं निव्वाणवै हजार च्यालीस योजन ऊँचा जाय सौधर्म ऐशान दोय कल्प हैं। तिनका प्रथम पटलका अत्यन्त मध्यमैं ऋतुनामा इन्द्रक विमान है। सो ऋतुनामा इंद्रक मेरुकी चूलिकाके ऊपरि एक बालका अग्र समान अन्तरकरि तिष्ठै हैं सो अढाईद्वीप समान पैंतालीस लक्ष योजनके विस्तार सहित हैं। तिसकै च्यार दिशानिमैं बासठि बासठि सूधी पंक्तिरूप श्रेणीबद्ध विमान हैं। अर दिशानिके श्रेणीबद्धनिकै बीचि बहुत प्रकीर्णक विमान है। बहुरि इसके ऊपरि असंख्यात योजनका अंतराल छांडि दूसरा पटल है। तिसके मध्य चंद्रनाम इंद्रक है। अर च्यारो दिशानिमैं इकसठि इकसठि श्रेणीबद्ध हैं। अर तिनकै बीचि प्रकीर्णक हैं।

बहुरि असंख्यात योजननिका अंतराल छांडि तीजा पटल है। तिसकै बीचि विमल नामा इंद्रक-विमान है। अर च्यार दिशामैं साठि साठि श्रेणीबद्ध विमान हैं। अर दिशानिके अंतरालनिमैं प्रकीर्णक विमान हैं। ऐसैं असंख्यात असंख्यात योजनका अंतराल छांडि ड्योढ राजूकी ऊंचाईमैं इकतीस पटल हैं। अर पटल पटल प्रति एक एक दिशाप्रति एक एक श्रेणीबद्ध घटता गया है। सो तहां इकतीसमा पटलमैं दिशानिके श्रेणीबद्ध बत्तीस बत्तीस रहै हैं। अर इंद्रकविमानका विस्तारहू पटलपटलप्रति सत्तरि हजार नवसै सडसठि योजन अर तेईस योजनका इकतीसमा भागप्रमाण ऊपरि घटता घटता है।

भावार्थ—सौधर्मका प्रथम इंद्रक पैंतालीस लक्ष योजनका है। अर त्रेसठिमा पटल अनुत्तर विमान सर्वार्थसिद्धिनामा इंद्रक एक लक्ष योजन प्रमाण विस्तारनैं लीया है। तातैं चवालीस लक्ष योजन बासठि स्थाननिमैं क्रमतैं घटा है। तातैं पटलप्रति सत्तरि हजार नवसै सडसठि योजन अर तेईस योजनका इकत्तीसवां भाग प्रमाण इंद्रक प्रति हानिचय है।

ऐसैं ड्योढ राजूका ऊंचाईमैं इकतीस पटलरूप सौधर्म ऐशान कल्प है। तहां पटल पटलप्रति तीन दिशाके श्रेणीबद्ध अर इंद्रक अर पूर्व दक्षिण दिशाके श्रेणीबद्धनिके बीचि अर दक्षिण पश्चिम इन दोय तरफकै श्रेणीबद्धनिके बीचि जे प्रकीर्णक हैं इनमैं तो सौधर्म इंद्रकी आज्ञा प्रवर्त्तै हैं। अर उत्तर दिशाका श्रेणीबद्ध अर पश्चिम उत्तर वीचि अर उत्तर पूर्वकै बीचि जे प्रकीर्णक तिनमैं ईशान इन्द्रकी आज्ञा प्रवर्तै है।

ऐसैं इकतीस पटलके पूर्व दक्षिण पश्चिमका श्रेणीबद्ध अर इंद्रक अर दोय दिशाके प्रकीर्णकनिमैं सौधर्मकी आज्ञा है। अर उत्तरके श्रेणीबद्ध अर प्रकीर्णकनिमैं ईशान इन्द्रकी आज्ञा है। सौधर्म इन्द्रकै बत्तीस लाख विमान हैं। तिनमैं इकतीस इन्द्रक हैं। अर तेतालीसस इकहत्तरि श्रेणीबद्ध हैं। अर इकतीस लाख पिचाणवै हजार पांचसै अठाणवै प्रकीर्णक हैं। अर ऐशान स्वर्गके इन्द्रकैं चोदहसै सत्तावन श्रेणीबद्ध अर सत्ताईस लाख अठाणवै हजार पांचसै तेतालीस प्रकीर्णक हैं।

ऐसैं समस्त अठाईस लाख विमाननिमैं ईशानेंद्रकी आज्ञा प्रवर्तै है। अब इन्द्र कहां वसै हैं सो

कहै हैं-तिस सौधर्म स्वर्गका इकतीसमा पटलकै मध्य प्रभा नामा इन्द्रक विमान है तिसकी दक्षिणदिशा-सम्बन्धी बत्तीस श्रेणीबद्ध विमाननिकी पंक्ति तिस विषै अठारमों श्रेणीबद्ध विमान है। तिसके स्वस्तिक वर्द्धमान विश्रुत नाम धारक तीन कोट हैं। तिनमैं बाह्य कोटमैं बसनेवाली सेना है। अर सभानिवासी देव हैं। अर मध्यम प्राकारमैं निवास करनेवाले त्रायस्त्रिंशत् देव हैं। अभ्यंतर प्राकारमैं निवास करनेवाला देवनिका राजा सौधर्मेंद्र है। तिसके विमानके च्यारि दिशानिमैं च्यार नगर हैं। तिनका कांचन अशोक मंदिमस्तार गल्व ए नाम हैं। अर तेतीस त्रायस्त्रिंशदेव हैं। चोरासी हजार आत्मरक्षक देव हैं। तीन सभा हैं। सप्त सेना हैं। चोरासी हजार सामानिक देव हैं। च्यार लोकपाल हैं। अष्ट पट्टदेवी हैं। चालीस हजार वल्लभिका देवी हैं।

पट्टदेवी अर वल्लभिका देवी प्रत्येक पांचपल्यका आयुकूं धारे हैं। अर एक एक देवी सोलह हजार परिवारकी देवीनिकरि वेष्टित है। अर येक येक पट्टदेवी अर येक येक वल्लभिका सोलह हजार देवीनिके रूप विक्रिया करनेकूं समर्थ है। तिनके सौधर्मेन्द्रकी अभ्यंतर समिता नामा सभा बारह हजार देवनिकी है। तिनका पंचपल्यका आयु है। अर चन्द्रा नामा मध्यमकी सभा चौदह हजार देवनिकी है। तिनका च्यार पल्यका आयु है।

अर चातुर्नामा बाह्यसभा तिनमैं सोलह हजार देव हैं। तिनका तीन पल्यका आयु है। अभ्यंतर सभाके देवनिकै एक एककै सातसै देवी हैं। तिनका अढाई पल्यका आयु है। अर मध्यकी सभाका एक एक देवकै छहसै देवी हैं तिनका दोय पल्यका आयु है। बाह्य सभाकै एक एक देवके पांचसै देवी हैं। तिनका ड्योढ पल्यका आयु है। अर तितनी ही देवीनिका रूप विक्रिया करनेकू समर्थ हैं। बहुरि आठ महापट्टदेवीनिकै अभ्यंतर सभामैं सातसै देवी, मध्यमैं छहसै, अर बाह्य सभामैं पांचसै देवी हैं। ए तीन सभाकी समस्त देवी अढाई पल्यकी आयुकूं धरै हैं।

बहुरि पयादा अश्व गज वृषभ रथ नृत्यकी गन्धर्व नाम धारक सप्त सेना हैं। तिन सेनाके देवनिका

एक पल्यका आयु है। अर इन सेनामैं एक एक महत्तरी है। तिनकाहू आयु एक पल्यका है। तिनमैं वायु नामा पयादनिकी सेनानिकी महत्तरी है। सप्त कक्षानिकरि सहित पयादनिकी सेना है। तहां पहली कक्षामैं चौरासी लाख पयादा हैं। दूसरीमैं यातैं दूणा, तीसरीमैं यातैं दूणा, येसैं सप्त कक्षा दूणी दूणी जाननी। ऐसैं ही सप्त सेनाका प्रमाण सप्त कक्षा सहित जानना। हरिनाम घोड़ाकी सेनाका महत्तर है। ऐरावत नाम हस्तीनिकी सेनाको महत्तर है। दामयष्टि वृषभाकी सेनाको महत्तर है। माथली नाम रथानिका महत्तर है। नीलांजना गणिकानिकी सेनाकी महत्तरिका है। अरिष्टयशस्क नाम गन्धर्व सेनाको महत्तर है। सो या संख्या विक्रियाकरि होय है। इंद्रकी लार विक्रियातैं इतना रूपकरि सेवा करै है। अर स्वाभाविक तो इनि एक एक सेनाके छहसै छहस देव हैं। इन सेनाके देवनिकै छहसै छहसै देवी हैं। अर एक एक देवी छह देवीनिकी रूपकी विक्रिया करनेकूं समर्थ है। अर आधपल्यका आयु है। अर तिन एक एककै दोयसै देवी हैं। अर एक एक देवी विक्रियाकरि अपना छहरूप करनेकूं समर्थ है। अर्द्धपल्यकी जिनकी आयु है।

बहुरि इंद्रकै बालक नाम अभियोग्य देव है। ताको एक पल्यकी आयु है। अर जम्बूद्वीप प्रमाण वाहन विमानरूप विक्रिया करनेकूं समर्थ है। तिसकै छहसै देवी हैं। एक एक देवी है। एक एक देवी छसै रूपविक्रिया करनेकूं समर्थ है। अर्द्धपल्यकी जिनकी आयु है। बहुरि पूर्वदिशामैं स्वयंप्रभविमानविषै सोमनामा लोकपाल है। ताका अढाई पल्यका आयु है। अर ताकै चार हजार सामानिक देव हैं। तिनका अढाई पल्यका आयु है। अर ताकै चार हजार देवी हैं। तिनका अढाई पल्यका आयु है। अर च्यारों हो लोकपालनिकै च्यार च्यार महापट्टदेवी हैं। तिनका अढाईपल्यका आयु है। अर सोमकै अभ्यंतर ईषा नामा पचास देवनिकी सभा है। तिनका सवापल्यका आयु है। अर दृढानाम मध्यकी सभा च्यारिसै देवनिकी है। तिनका सवापल्यका आयु है। चतुरंत नाम बाह्य सभा पांचसै देवनिकी है तिनका सवापल्यका आयु है।

बहुरि दक्षिणदिशाविषै वरज्येष्ट विमानमैं यमनाम लोकपाल है। ताकै सामानिकादि समस्त विभव सोमतुल्य है। बहुरि पश्चिम दिशाविषै अंजनविमानविषै वरुण नाम लोकपाल है। ताका पोणा तीन पल्यका आयु है। इसक ईषा नाम अभ्यंतर सभामैं साठि देव हैं। तिनका ड्योढ पल्यका आयु है। अर दृढानाम मध्यकी सभा पांचसै देवनिकी है। तिनका देशोन ड्योढ पल्यका आयु है। अर चतुरंत बाह्य सभा छहसै देवनिकी है तिनका कुछ अधिक ड्योढ पल्यका आयु है। इन तीनूं ही सभाके देवनिक देवीनिकी आयु अपने भर्त्तारतैं अर्द्धप्रमाण है। और इनकी विभूति सोमतुल्य है।

बहुरि उत्तर दिशाविषैं वल्गु विमानमैं वैश्रवण लोकपाल है। तीन पल्यका जाका आयु है। इसकी अभ्यंतर सभाके सत्तरि देव हैं। मध्यसभा छसै देवनिकी अर बाह्य सभा सातस देवनिकी तिनकी सवा-पल्यकी आयु है। इनिकी देवीनिकी अर्द्धप्रमाण आयु है। और विभव सोमलोकपाल तुल्य है। अर इन चारि लोकपालनिक एक एककै साढातीन कोटि अप्सरा हैं। सौधर्म इंद्रका नृत्य गान वादित्रका बडा समाज है। ऐसैं राजवार्तिकजीतैं लिख्या है।

बहुरि सौधर्मादिकनिकै एक एक विमानमैं एक एक जिनमंदिर कोटीनि विभूतिकरि संयुक्त है। बहुरि इंद्रका नगरकै बाह्य अशोकवन सप्तच्छदवन चंपकवन आम्रवन हैं। एक हजार योजन लम्बा पांचसै योजन चौडा तिन वननिमैं एक चैत्यवृक्ष है। तिनकी च्यारों दिशानिमैं पल्यंकासन जिनेन्द्रकी प्रतिमा है तिनको मैं बन्दना करूँ हूँ। बहुरि अमरावतीपुरकै मध्य इंद्रका आवासगृहकी ईशान दिशामैं सुधर्मा नाम इंद्रका आस्थान मण्डप है। सो आस्थान मण्डप सौ योजन लम्बा पचास योजन चौडा पचेतरी योजन ऊँचा है। तिस सुधर्मा नाम आस्थान मण्डपका जो सभागृह ताकै पूर्व उत्तर दक्षिण दिशाविषैं द्वार हैं तिन द्वारनिका अष्ट योजन विस्तार है। अर षोडश योजन ऊँचे हैं। तिस सभाके बीच इन्द्रके बैठनेका सिंहासन है। तिस ही सिंहासनके अग्रभागविषै अष्ट महादेवीनिका आसन है। तिन देवीनिका आसनतैं बाह्य पूर्वादिदिशाविषै सोम यम वरुण कुबेर इनके आसन हैं॥

बहुरि इन्द्रका सिंहासनतैं अग्नि दक्षिण नैऋत्य दिशाविषै त्रायस्त्रिंशत् देवनिके तेतीस आसन हैं। बहुरि पश्चिम दिशाविषै सेनापतिनिके सात आसन हैं। बहुरि चौरासी हजार सामानिक देवनिमैं बीयालीस हजारके आसन तो वायुदिशामैं हैं। अर बीयालीस हजारके आसन ईशान दिशाविषै हैं। इनतैं बाह्य आत्मरक्षक देवनिका चारो दिशानिमैं चौरासी हजार चौरासी हजार भद्रासन हैं॥

तिस आस्थान मण्डपके अग्रभागमैं मानस्तंभ है। सो एक योजन चौडा छत्तीस योजन ऊंचा पीठकरि सहित गोल बारह धारानिकरि संयुक्त जानना। मानस्तंभ एक योजन चौडा तब याकी बारह कोशकी परिधि भई, तामैं एक एक कोशकी धारा जानना। तिस मानस्तंभविषै एक कोश लम्बे पाव कोश चौडे रत्ननिकी सांकलके लटकते रत्नमय करण्ड कहिए पिटारे हैं। तिन पिटारेनिविषै तीर्थंकर देवनिके पहरनेके योग्य आभरण भरे हैं। इंद्र तिनमैंसों काढि तीर्थंकर देवके तांई आभरण पहुँचावै है। मानस्तंभ छत्तीस योजन ऊँचे हैं। तिनमैं नीच पोणा छह योजन मानस्तंभमैं पिटारे नहीं पाईए। अर ऊपरि सवा-छह योजनमैं पिटारे नहीं हैं। बीचिमैं चौईस योजनकी ऊँचाईविषै छीकाकी ज्यों लटकते एक कोश लम्बे पाव कोश चौडे रत्नमय पिटारे पाइए है।

बहुरि सौधर्मके मानस्तंभके रत्नमय करण्डकनिविषै भरतक्षेत्र सम्बन्धी तीर्थंकरनिके आभरण हैं। अर ईशान स्वर्गके मानस्तंभनिविषै ऐरावतक्षेत्र सम्बन्धी तीर्थंकरनिके आभरण हैं। सानत्कुमारके मानस्तंभनिविषै पूर्वविदेह सम्बन्धी तीर्थंकरनिके अर माहेन्द्रमैं पश्चिम विदेह सम्बन्धी तीर्थंकरनिके आभरण हैं। तातैं ही ये मानस्तंभ देवनिकरि पूजनीक हैं। इस मानस्तंभके निकट ही आठ योजन चौडा आठ योजन लम्बा ऊँचा उपपादगृह है। तिस उपपादगृहमैं दोय रत्नमय शय्या पाईए है। इहां इन्द्रका जन्म-स्थान है। अर इस उपपादगृहके निकट ही बहुत शिखरनिकरि संयुक्त जिनमंदिर है। बहुरि और विशेष त्रिलोकसारादि ग्रन्थतैं जानना।

बहुरि इकतीसमा पटलमैं जो प्रभाविमानतैं उत्तर श्रेणीविषै बत्तीस विमानरूप उत्तर श्रेणीका

अठारहमा विमान तामैं ऐशान नाम इन्द्र वसै है। तिसक परिवार वर्णन सौधर्मवत् जानना। ईशान इन्द्रके अठाईस लाख विमान हैं। तेतीस त्रायस्त्रिशदेव हैं। बहुरि असी हजार सामानिक देव हैं। तीन सभा हैं। सप्त अनीक कहिए सेना हैं। असी हजार आत्मरक्षक हैं। च्यार लोकपाल हैं।

बहुरि श्रीमती सुशीमा[2] वसुमित्रा[3] वसुन्धरा जया जयसेना अमला प्रभा ए अष्ट महादेवी हैं। तिनकी सप्तपल्योपम आयु है। बहुरि बत्तीस हजार वल्लभिका हैं। तिनका सप्तपल्यका आयु है। अभ्यंतर समिता नाम सभा दश हजार देवनिकी है। तिनका सप्तपल्यका आयु है। चन्द्रमा नाम मध्यमसभा बारह हजार देवनिकी है। तिनका छह पल्यका आयु है। जातु नाम बाह्यसभा तामैं चौदह हजार देव हैं तिनका पंच पल्यका आयु है। लघु पराक्रम नाम पयादनिकी सेनाको महत्तर है। अमितगति नाम अश्वनिकी सेनाको महत्तर है। द्रुमकांत नामा वृषभानीक महत्तर है। पुष्पदंत नामा गजनिकी सेनाका महत्तर है। किन्नर नामा रथानीक महत्तर है। गीतयश नामा गन्धर्व सेनाका महत्तर है। श्वेता नाम नर्त्तकीनिकी सेनाकी महत्तरी है। तहां पयादनिकी सेनामैं सात कक्षा हैं। तिनमैं पहली असी हजार देवनिकी, दूजी यातैं दूणी, तीजी यातैं दूणी। ऐसैं सप्तकक्षा पर्यंत दुगण दुगण एक एक सेना है। ए समस्त सेनाके देव अर इनका महत्तरनिका कुछ अधिक एक पल्यका आयु है। ऐशान इन्द्रके पश्चिम दिशाविषै समनाम विमानविषै सोम नाम लोकपाल है। तिसका साढाच्यार पल्यका आयु है। तिसकै अभ्यंतरसभा साठि देवनिकी है। मध्यसभा पांचसै देवनिकी है। अर बाह्यसभा छसै सात देवनिकी है। दक्षिण दिशाविषै सर्वतोभद्र विमानविषै यम नाम लोकपाल है। साढाच्यार पल्यका आयु है। और सोमवत् रचना है।

बहुरि उत्तर दिशाविषै सुभद्र विमानविषै वरुणनामा लोकपाल है। तिसका पंच पल्यका आयु है। ताकै अभ्यन्तरसभा अस्सी देवनिकी है। मध्यसभा सातसै देवनिकी है। बाह्यसभा आठसै देवनिकी है। बहुरि पूर्वदिशाविषै अमित नाम विमानविषै वैश्रवण नाम लोकपाल है। पोणापांच पल्यका आयु है। तिसकै अभ्यंतर सभा सत्तरि देवनिकी है। मध्यम छहसै देवनिकी है। बाह्यसभा सांतसै देवनिकी है। ऐशान

इंद्रके पुष्पक नाम अभियोग्य देव हैं। बालकदेव सौधर्मके तुल्य हैं। सो जम्बूद्वीप प्रमाण विमान वाहन करनेकूं समर्थ हैं। और रचना सौधर्म इंद्रवत् जानना। ऐसैं उत्तरश्रेणी अर पुष्प प्रकीर्णकनिका स्वामी ऐशानेंद्र है। अब इस प्रभाविमानतैं ऊपरि असंख्यात योजन जाइए तहां सानत्कुमार माहेन्द्र कल्प हैं॥ तिनमैं सप्त पटल हैं। इत्यादिक रचना विस्तार सहित राजवार्त्तिकतैं जानना। इहां लिख्ये कथन बहुत होजाता तातैं विस्तार बधनेके भयतैं इहां नहीं लिख्या है। इहां अन्य विशेष जानना। मेरुका तलतैं चित्रा पृथ्वीतैं ड्योढ राजू ऊँचा सौधर्म ऐशान युगल है। ताके ऊपरि ड्योढ राजूविषै सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गयुगल है। आगैं ऊपरि ऊपरि आध आध राजूविषै छह युगल क्रमकरि हैं। ऐसैं छह राजूनिविषैं सोलह स्वर्ग हैं।

बहुरि तिनके ऊपरि एक राजूविषै नव ग्रैवेयक अनुदिश पंच अनुत्तर विमान क्रमतैं हैं। बहुरि प्रथम स्वर्गके विषै बत्तीस लाख विमान हैं। ऐशानविषैं अठाईस लाख हैं। सानत्कुमारविषै बारह लाख हैं। माहेंद्रविषैं आठ लाख विमान हैं। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर युगलविषै च्यारिलाख, लांतव कापिष्ठमैं पचास हजार हैं। शुक्र महाशुक्रमैं चयालीस हजार, शतार सहस्रारविषैं छह हजार हैं। बहुरि आनतादि च्यार कल्पनि विषैं सातसै हैं। तीन अधोग्रैवेयकविषैं एकसौ ग्यारह विमान हैं। अर तीन मध्यमग्रैवेयकविषैं एकसौ सात विमान हैं। अर तीन ऊर्ध्वग्रैवेयकनिविषैं इक्याणवै विमान हैं।

बहुरि नव अनुदिशविषै नव विमान हैं। अर अनुत्तरविषैं पंच विमान हैं। बहुरि सौधर्मयुग्मविषै इकतीस पटल अर इकतीस ही इंद्रक हैं। सानत्कुमार युगलविषै सात इंद्रक अर सात पटल हैं। ब्रह्मयुगलविषै च्यारि इंद्रक हैं च्यारि ही पटल हैं। लांतवयुग्म विषै दोय इंद्रक हैं दोय पटल हैं। शुक्रयुग्मविषै एक इंद्रक है एक ही पटल है। शतारयुग्मविषैं एक इंद्रक है एक पटल है। आनतादि च्यार कल्पनिविषैं छह इंद्रक हैं छह पटल हैं। अधस्तनादि तीन प्रकार ग्रैवेयकविषै तीन तीन पटल हैं। अर तीन ही इंद्रक हैं। अर नव अनुदिशविषै एक पटल है एक इंद्रक है। पंच अनुत्तरविषै एक पटल है एक इंद्रक है। ऐसैं त्रेसठि पटल हैं। तिनमैं तिरेसठि ही इंद्रक विमान हैं।

बहुरि इहां एता संक्षेप और है। सौधर्म स्वर्गविषै अन्तका इकतीसमा पटलका इंद्रक विमानतैं अठारमा दक्षिण दिशाका विमानमैं सौधर्मेन्द्र वसै है। उत्तर दिशाका अठारमा श्रेणीबद्ध विमानमैं ईशानेंद्र वसै है। सनत्कुमारका अंतका पटलका सोलमा श्रेणीबद्ध है तामैं सानत्कुमार इंद्र वसै है। उत्तरश्रेणीबद्धमैं माहेंद्र इंद्र वसै है। ब्रह्मयुगलका अंतपटलका चोदमा दक्षिण श्रेणीबद्धविषै ब्रह्मेंद्र वसै है। लांतवयुग्मका अंत पटलका बारमा उत्तरश्रेणीबद्धविषै लांतवेन्द्र वसै है। शुक्र युगलका अन्त पटलका दशम दक्षिण श्रेणीबद्धविषैं शुक्रेंद्र वसै है। शतार युगलका अन्त पटलका आठमा उत्तरश्रेणीबद्धविषैं शतारेंद्र वसै है। आनतयुगलका अन्त पटलका दक्षिण श्रेणीबद्धविषैं आनतेन्द्र उत्तर श्रेणीबद्धविषैं प्राणतेन्द्र वसै है। आरण युगलका अन्तका चौथा श्रेणीबद्धविष आरणेन्द्र अर उत्तरश्रेणीबद्धविषै अच्युतेन्द्र वसै है। दक्षिण दिशामैं छह इंद्र वसैं। सौधर्ममैं १, सानत्कुमारमैं २, ब्रह्ममैं ३, शुक्रमैं ४, आनतमैं ५, आरणमैं ६, उत्तरके इन्द्र ईशानमैं १, माहेन्द्रमैं २, लांतवमैं ३, शतारमैं ४, प्राणतमैं ५, अच्युतमैं ६। मेरुगिरिकी चूलिकाकै ऊपरि बालका अग्रभागप्रमाण अन्तराल छांडि पहला ऋतुनाम इंद्रकविमान तिष्ठै है।

बहुरि अपना अपना अन्तका इंद्रकका ध्वजादंड है सो कल्प सम्बन्धी पृथ्वीका अन्त जानना। बहुरि समस्त कल्पनिविष जे बत्तीस लाख अठाईस इत्यादिक प्रमाण लिये विमान हैं तिनमैं पांचमा भाग प्रमाण तो संख्यात योजनके विस्तारकूं धारे है। अर शेष विमान असंख्यात योजनके विस्तारकूं धरे हैं। बहुरि अधोग्रैवेयकविषै तीन, मध्यग्रैवेयकविषैं अठारह, उपरिग्रैवेयकविष सत्रह, नव अनुदिशनिविषै एक, पंच अनुत्तरनिविष एक, संख्यातरूप योजनके विस्ताररूप हैं।

बहुरि सौधर्म ऐशानविषै विमान पंचवर्ण हैं। सनत्कुमार माहेन्द्रविष कृष्णविना च्यारि वर्ण हैं। ब्रह्मादि च्यारि कल्पनिविष नील भी नाहीं तीन वर्ण हैं। शुक्रादिक च्यार स्वर्गनिविष रक्त भी नाहीं तातैं दोय वर्ण हैं। तातैं परैं आनतादि अनुत्तरपर्यंत समस्त विमाननिविषै शुक्लवर्ण ही है। ऐसैं विमाननिका रंग जानना।

बहुरि सौधर्म युगलके विमान तौ जलरूप पुद्गलस्कंधनिका आधारकरि ऊपरि तिष्ठै हैं। बहुरि सानत्कुमार माहेन्द्रके विमान पवनके आधार तिष्ठै हैं। बहुरि ब्रह्मादिक आठ स्वर्गके विमान जलरूप वा पवनरूप परणए पुद्गल स्कंधनिकै ऊपरि तिष्ठै हैं। बहुरि आनतादि अनुत्तर पर्यंतके विमान पुद्गल स्कंधनिका आधार रहित आकाशकै आधार तिष्ठै हैं। बहुरि विमाननिकी भूमिकी मोटाई ऐसैं हैं। सौधर्मादिक छह युगलनिकै छह स्थान अर अवशेष आनतादि कल्पनिका एक स्थान अर तीन तीन अधोग्रैवेयकादिकनिका एक स्थान तातैं तीन स्थान अनुदिश अनुत्तरका एक स्थान ऐसैं इन ग्यारह स्थानकनिविषै विमाननिकी भूमिकी मोटाई सो आदिविषै ग्यारहसै इकईस योजन प्रमाण अर ऊपरि दश स्थानविषै क्रमतैं निन्याणवै २ योजन प्रमाण घाटि घाटि है। याहीतैं अनुदिश अनुत्तरकी एकसो इकतीस योजन भूमिकी मोटाई रही।

बहुरि दक्षिण उत्तर स्वर्गसम्बन्धी सोलमा स्वर्गपर्यंतकी देवी सौधर्म ऐशान स्वर्गविषै ही उपजै हैं ऊपरि नाहीं उपजै हैं। जिन विमाननिविषै कोऊ देव नहीं उपजै केवल देवांगना ही जहां उपजै ऐसैं सौधर्मविषै छह लाख विमान हैं। अर ईशानविषै च्यारि लाख विमान हैं। तहां सौधर्म वा ऐशानविषै उपजै पीछैं ऊपरिले स्वर्गनिके जिन देवनिकी नियोगिनी होंय ते देव अपनै अपनै ठिकानै लेजाय हैं। अर अन्य सौधर्मके छव्वीस लाख विमान अर ऐशानके चोईस लाख विमान तिनमैं देव देवी उपजै हैं। सानत्कुमारादिक स्वर्गके विमाननिमैं देवांगनाका उत्पाद ही नहीं हैं, केवल देवनिहीकी उत्पत्ति है।

बहुरि अधोदिशाविषै जहां पर्यंत गमनादिक विक्रियाकी शक्ति है तहां पर्यंत अवधिज्ञानकरि पदार्थ जाननेकी शक्ति है। सौधर्म ऐशानके देवनिके प्रथम पृथ्वी पर्यंत गमन शक्ति है। दोय स्वर्गनिविषै दूसरी नरक पृथ्वी पर्यंत है। च्यारि स्वर्गनिमैं तीसरी पर्यंत, च्यारिमैं चौथी पर्यंत, च्यारमैं पांचमी पर्यंत, नवग्रैवेयकविषै छठी पर्यंत, अनुदिश अनुत्तर चौदह विमानके देवनिकै सातवीं नरक पृथ्वीपर्यंत गमन-शक्ति अर अवधिज्ञानशक्ति है।

बहुरि जन्ममरणका अन्तर ऐसैं जानना। जेते काल किसीहीका तहां जन्म नहीं होय सो जन्मका

अन्तर है। अर जेते काल किसीहीका मरण नहीं होय सो मरणांतर है। सो ए दोय उत्कृष्टपनैं सौधर्मादि दोय स्वर्गनिविषै सात दिन दोय स्वर्गनिविषै च्यार मास अवशेष ग्रैवेयकादिकविषै छह मास प्रमाण जानना। बहुरि उत्कृष्ट विरह कहिए है। उत्कृष्टपणैं मरण भए पीछैं तिहकी जायगां अन्य जीव आय यावत् काल नहीं अवतरै तिस कालका प्रमाण कहै हैं। इंद्र अर इंद्रकी महादेवी अर लोकपाल इनका विरहकाल छह मास है। बहुरि त्रायस्त्रिंशदेव अर अंगरक्षक अर सामानिक अर पारिषद इनका च्यार मास अंतर जानना। बहुरि इंद्रनिकी अपेक्षा कल्प संख्या ऐसैं है। ब्रह्मब्रह्मोत्तरमैं एक ब्रह्म नाम इन्द्र है, अर लांतव कापिष्ठमैं एक लांतव नाम इंद्र है। अर शुक्रमहाशुक्रमैं एक शुक्र नाम इंद्र है। शतार सहस्रारविषै एक शतार नाम इंद्र है। अन्य आठ स्वर्गनिविषै भिन्न भिन्न आठ इंद्र हैं। ऐसैं वैमानिकनिका वर्णन किया। विशेष जाननेका इच्छुक राजवार्तिकतैं जानहु ॥ अब वैमानिक देवनिकै परस्पर विशेष जनावनेकूं सूत्र कहै हैं।—

स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धींद्रियावधिविषयतोऽधिकाः ॥ २० ॥

अर्थ—वैमानिक देव हैं ते स्थिति प्रभाव सुख द्युति लेश्याकी विशुद्धिता इंद्रियनिका विषय अवधिका विषय इनकरि ऊपार ऊपरि अधिक अधिक हैं। अपना आयुकर्मका उदयतैं जिस भवमैं रहना सो स्थिति है। बहुरि परके उपकार तथा निग्रह करनेकी शक्ति सो प्रभाव कहिए है। बहुरि साता वेदनीयका उदयतैं इंद्रियनिकै इष्टविषयनिकूं भोगना सो सुख कहिए। बहुरि शरीरकी तथा वस्त्र आभरण बलकी दीप्ति सो द्युति कहिए। बहुरि लेश्याकी उज्ज्वलता सो विशुद्धि कहिए। बहुरि इंद्रियनिकरि विषयका जानना बहुरि अवधिकरि विषयका जानना इनकरि अधिकाधिक हैं।

भावार्थ—स्वर्गनिकै पटल पटल प्रति नीचेके देवनितैं ऊपरले देवनिकैं स्थिति प्रभावादिक अधिक अधिक जानना। सौधर्मादिकनिकै निग्रह अनुग्रह विक्रिया परके योगतैं ऊपरि ऊपरि बहुत गुणे हैं तोऊ मन्द अभिमानकरि अल्पसंक्लेशकरि प्रवर्त्तनमैं नहीं आवै हैं ॥ जैसैं स्थित्यादिककरि अधिक हैं तैसैं गमनादिककरि अधिक नहीं यातैं सूत्र कहै हैं—

गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥

अर्थ—वैमानिक देव हैं ते गमन अर शरीरकी ऊँचाई अर परिग्रह अभिमान इनकरि ऊपरि ऊपरि हीन हीन घाटि घाटि हैं। जातैं एकदेश छांडि अन्य क्षेत्रमैं जावना सो गमन है। अर शरीरका विस्तार सो शरीर है। अर लोभ कषायका उदयतैं ममता परिणाम सो परिग्रह है। मानकषायके उदयतैं अहंकार सो अभिमान है। इहां कोऊ आशङ्का करै जो ऊपरिके देवनिके विक्रियाकी अधिकतातैं गमन वधता है गति घाटि कैसैं कहीं ताका समाधान—जो गमनकी शक्ति तो ऊपरि ऊपरि वधती है परन्तु अन्य क्षेत्रनिमैं गमन करनेका परिणाम अधिक नहीं तातैं घाटि है। जैसैं सौधर्म ऐशानके देव क्रीड़ादिकके निमित्त महान विषयानुरागतैं वारम्वार अनेक क्षेत्रनिमैं गमन करै हैं तैसैं ऊपरिके देवनिके विषयनिकी उत्कट वांछाका अभाव है तातैं गतिकरि हीन हैं।

बहुरि सौधर्म ऐशानके देवनिका शरीर सात हाथ ऊंचा है। सानत्कुमार माहेंद्रमैं छह छह हस्तप्रमाण है। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्ठमैं पंचहस्तप्रमाण है। शुक्र महाशुक्र शतार सहस्रारमैं च्यार हस्त ऊंचा है। आनत प्राणतमैं साढा तीन हाथ ऊंचा है। आरण अच्युतमैं तीन हाथ ऊंचा है। अधोग्रैवेयकमैं अढाई हाथ, मध्यमैं दोय हाथ उपरिमग्रैवेयक अर नव अनुदिशमैं ड्योढ हाथ अर पंचोत्तरनिमैं एक हस्तप्रमाण ऊंचा है।

बहुरि विमान परिवारादिक लक्षण परिग्रहहू ऊपरि घाटि घाटि हैं। अर कषायनिका मंदपणातैं अवधिज्ञानादिकमैं विशुद्धता वधती है तातैं अभिमान घटि जाय है। जातैं इहां जिनके मंदकषाय हैं ते ही ऊपरि ऊपरि उपजै हैं। तातैं ऊपरि ऊपरि कषाय मंद हैं, पूर्वला संस्कार प्रमाण होय हैं।

अब इहां ऐसा विशेष जानना। असैनी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच शुभपरिणामनिके वशतैं पुण्यबंधकरि भवनवासीनिमैं तथा व्यंतरनिमैं उपजै हैं। अर सैनी पर्याप्त कर्मभूमिका तिर्यंच मिथ्यादृष्टि वा सासादन सम्यग्दृष्टि बारमा स्वर्ग पर्यंत उपजै हैं। अर ते ही सम्यग्दृष्टि सौधर्मादिक अच्युत स्वर्गपर्यंत उपजै हैं।

अर भोगभूमिका मनुष्य तिर्यंच मिथ्यादृष्टि सासादन सम्यग्दृष्टि ज्योतिषीनिमैं उपजै हैं अर तापसीहू ज्योतिषीनिमैं उपजै हैं। अर भोगभूमिके मनुष्य तिर्यंच सम्यग्दृष्टि सौधर्म ऐशानमैं जन्म धारै हैं। अर कर्मभूमिका मनुष्य मिथ्यादृष्टि अर सासादन सम्यग्दृष्टि भवनवासीकूं आदि लेय उपरिम ग्रैवेयक पर्यंत उपजै हैं। जिनकै द्रव्यतो जिनलिंग होय भाव मिथ्यात्व सासादन होय तो ग्रैवेयकताईं जावै हैं। अर अभव्य मिथ्यादृष्टि निर्ग्रंथलिंग धारणकरि महान शमभाव अर तपके प्रभावतैं उपरिम ग्रैवेयकपर्यंत उपजै हैं।

बहुरि परिव्राजक तापसीनिका उत्कृष्ट उपपाद ब्रह्म स्वर्गपर्यंत है। आजीवक (कांजिका आहारी) इनिका बारमा स्वर्गपर्यंत उपपाद है। अन्य लिंगिनिका ऊपरि उपपाद नहीं है। अर निर्ग्रंथलिंगके धारक मिथ्यादृष्टि उत्कृष्ट तपकरि मन्दकषायके प्रभावतैं उपरिम ग्रैवेयकपर्यंत जाय हैं। बहुरि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी प्रकर्षताके योगतैं श्रावकनिका सौधर्मादि अच्युत स्वर्गपर्यंत उत्पाद है नीचै नहीं उपजैं। अर ऊपरि भी नहीं जाय। अर भावलिंगी निर्ग्रंथनिका सर्वार्थसिद्धिपर्यंत उत्पाद है।

बहुरि अणुव्रतधारी तिर्यंचनिका सौधर्मकूं आदि लेय बारमा स्वर्गपर्यंत गमन है। बहुरि एकेंद्रिय विकलत्रय तथा देव अर नारकी ए मरणकरि देव नहीं उपजै हैं। अर अभव्य जीव निर्ग्रंथ लिंगधारि भवनत्रिकादि उपरिम ग्रैवेयकपर्यंत उपजै है। बहुरि पंचमेरु सम्बन्धी तीस भोगभूमिके मनुष्य तिर्यंत मिथ्यादृष्टि भवनत्रिकमैं उपज हैं। सम्यग्दृष्टि सौधर्म ऐशानमैं उपजै हैं। बहुरि छाणवै कुभोगभूमिके अर मानुषोत्तर स्वयंप्रभाचल पर्वतके बीचि जे असंख्यात द्वीप तिनकै उपजे तिर्यंच भवनत्रिकविषै ही उपजे हैं। ऐसैं देवनिका उपपाद कह्या। बहुरि देव चय कौन पर्याय धारै हैं सो कहै हैं। भवनत्रिक देव अर सौधर्म ऐशान ताईके देव चयकरि एकेंद्रिय बादर पर्याप्त ऐसै पृथ्वीकाय अप्काय प्रत्येकवनस्पतिमैं तथा मनुष्यनिमैं पंचेंद्रिय तिर्यंचनिमैं उपजै हैं। सानत्कुमारादिकनिका आया स्थावर नहीं होय है।

बहुरि बारमा स्वर्गपर्यंतका देव चयकर तिर्यंच पंचेंद्रिय पशु तथा मनुष्यमैं आय उपजै है। आनतादिकके देव नियम करि मनुष्यनिमैं ही आय उपजै हैं, तिर्यंचनिमैं नाहीं उपजै हैं। बहुरि सौधर्मकूं

आदि लेय नवग्रैवेयकपर्यंतके आये देव त्रेसठिशलाका पुरुष भी उपजै हैं। बहुरि अनुदिश अनुत्तरके आये तीर्थंकर तथा चक्रवर्ती बलभद्र तो आय उपजै हैं। परन्तु अर्द्धचक्री नहीं होय हैं।

बहुरि भवनत्रिक देवपर्यायतैं आये त्रेसठिशलाका पुरुष नहीं उपजै हैं। बहुरि देव पर्यायतैं चय सर्व सूक्ष्मनिमैं अर तैजसकाय वातकायनिमैं नहीं उपजै हैं। तथा विकलत्रयमैं असनीमैं अपर्याप्तमैं नहीं उपजै हैं तथा भोगभूमिमैं नहीं उपजै हैं॥ अब वैमानिक देवनिकैं लेश्याका नियम कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥

अर्थ—सौधर्म ऐशान स्वर्गके देवनिकैं पीतलेश्या है। अर सानत्कुमार माहेंद्रके देवनिमैं पीत पद्म दोऊ लेश्या हैं। बहुरि ब्रह्मादि तीन युगलनिमैं पद्मलेश्या कही सो ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्ठ इनमैं तो पद्म लेश्या है। अर शुक्र महाशुक्र शतार सहस्रार इनि च्यारनिमैं पद्म शुक्ल दोऊ लेश्या जानने योग्य हैं। आनतादिक शेष कल्पनिविषै शुक्ललेश्या है तहांहू अनुदिश अनुत्तर संज्ञक चौदह विमाननिमैं परम शुक्ल लेश्या है॥ बहुरि कल्प कौन हैं यातैं सूत्र कहै हैं—

प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥ २३ ॥

अर्थ—सौधर्मकूं आदि लेय ग्रैवेयकनितैं पहली अच्युतस्वर्गपर्यंत कल्पसंज्ञा है। जिनमैं इंद्रादिक कल्पना पाईए ते कल्प हैं। अर नव ग्रैवेयक नव अनुदिश पंच अनुत्तर विमान इनिमैं इंद्रादिक कल्पना नाहीं हैं तातैं इनकी कल्पातीत संज्ञा है। इन कल्पातीत विमाननिमैं समस्त अहमिंद्र समानसुखकूं धारै हैं॥ अब कौन कल्पविषै लौकांतिक देव हैं यातैं सूत्र कहै हैं—

ब्रह्मलोकालया लौकांतिकाः ॥ २४ ॥

अर्थ—ब्रह्मलोक है आलय कहिए निवासस्थान जिनका ऐसे लौकांतिक देव हैं। ब्रह्मलोक जो पंचम

स्वर्ग तिसकै अंतविषैं है निवास जिनका ऐसे लौकांतिक देव हैं। अथवा लोक जो संसार ताका अंत जाकैं भया ते लौकांतिक हैं। जातैं एकवार गर्भवासमैं मनुष्यजन्म लेय निर्वाण प्राप्त होय हैं तातैं लौकांतिक हैं॥ अब इनके भेद कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५ ॥

अर्थ—सारस्वत[1] आदित्य[2] वह्नि[3] अरुण[4] गर्दतोय[5] तुषित[6] अव्याबाध[7] अरिष्ट[8] ए अष्टप्रकारके देव ब्रह्मलोककी पूर्वादिक अष्टदिशानिमैं वसै हैं। इहां ऐसा विशेष जानना। जो अरुणनाम समुद्रमैंतैं संख्यात योजनका मूलमैं विस्ताररूप समुद्रवत् वलयाकार अंधकारका समूह उत्पन्न भया है सो अतितीव्र अन्धकारमय परिणम्या है। सो ऊपरि अनुक्रमकरि वृद्धिकूं प्राप्त होय मध्यमैं अर अंतमैं संख्यात योजनका मोटा है। सो ब्रह्मस्वर्गका पहला पटलका अरिष्ट नाम विमानका अधोभागकूं प्राप्त होय कुक्कुटकी कुटीवत् अवस्थित होय तिसकै ऊपरि अरिष्ट नाम इंद्रक विमानके परिधिरूप च्यारि दिशानिमैं दोय दोय अंधकारकी पंक्ति तिर्यक्लोकका अंतपर्यंत गई हैं। तिन पंक्तिनिके अन्तरालनिमैं सारस्वतादिक देव वसै हैं। ईशान पूर्व इत्यादिक आठ दिशानिविषै अनुक्रमतैं आठ लौकांतिक देव जानने।

बहुरि "च" शब्दतैं इनके विमाननिके आठ अंतरालविषे अग्न्याभ[1] सूर्याभ[2] चन्द्राभ[3] सत्याभ[4] श्रेयस्कर[5] क्षेमंकर[6] वृषभ[7] कामंवर[8] निर्माणरज[9] दिगन्तरक्षित[10] आत्मरक्षित[11] सर्वरक्षित[12] मरुद्[13] वसु[14] अश्व[15] विश्व[16] ए षोडश देवगण दोय दोय बसै हैं। ऐसैं सर्व चोईस प्रकार हैं। ते समस्त चोवीस प्रकारके लौकांतिक देव च्यारि लाख सात हजार आठसै वीस हैं। ए समस्त ही एक जन्मधारि निर्वाण पावै हैं। समस्त ही चतुर्दश पूर्वके धारक हैं। स्वाधीन हैं। हीनता अधिकता रहित हैं। अर विषयनितैं विरक्त हैं।

तातैं अन्य देवनिकरि वन्दनीक देवर्षि हैं। निरन्तर ज्ञान भावनामैं लीन है मन जिनका अर संसारतैं नित्य भयभीत हैं, विरक्त हैं। अनित्य अशरणादि अनुप्रेक्षानिमैं जिनका मन लीन है। अतिविशुद्ध सम्यग्दर्शनके धारक हैं। तीर्थंकरनिकौं तप कल्याणके प्रतिबोधनमैं तत्पर हैं, ब्रह्मचारी हैं, इनके

स्त्रीनिका प्रसंग नहीं है ॥ अब जे मनुष्यके दोय दोय भव धारण करि निर्वाण जांय दोय भव सिवाय भवधारण नहीं करैं तिन देवनिका नियम कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥

अर्थ—विजयादिक च्यार विमानवाले तथा अनुदिश नव विमानवाले अहमिंद्र दोय भव मनुष्यका लेय निर्वाण जाय हैं। इहां आदि शब्द प्रकारार्थमें है। तातैं विजय वैजयंत जयंत अपराजित तथा नव अनुत्तर विमान इष्ट हैं तिनका ग्रहण है। जातैं इन विषै सम्यग्दृष्टिहीका उत्पाद है।

इहां कोऊ कहै—आदि शब्दकरि तो सर्वार्थसिद्धिका भी ग्रहण होय है ताकूं कहिए हैं। सर्वार्थसिद्धिके देव परम उत्कृष्ट हैं। तातैं इनकी संज्ञा ही सार्थक है। एक भव लेय मोक्ष पावै हैं। अर विजयादिकनितैं आय जीव एक जन्म भी लेवैं अर दोय जन्म भी मनुष्यके लेवै हैं। तातैं ऐसैं अर्थ है जो विजयादिकनितैं चयकरि मनुष्य होय। बहुरि संयम आराधि फेरी विजयादिकनिमैं उपजै तहांतैं चय मनुष्य होय मोक्ष जाय है। ऐसैं द्विचरम देहपना है। ऐसैं अनुदिश अर च्यार अनुत्तरके देव तो दोय भव भी धारैं, एक भी धारैं। अर सर्वार्थसिद्धिके देव अर दक्षिणइन्द्र अर सौधर्मके लोकपाल अर सौधर्मको शची नाम इन्द्राणी एक जन्म मनुष्यका लेय निर्वाण होय हैं। ऐसैं ग्यारह सूत्रनिकरि वैमानिकदेवनिका वर्णन किया॥

अब तिर्यंचयोनिधारकनिके जनावनेकूं सूत्र कहै हैं—

औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥ २७ ॥

अर्थ—औपपादिक कहिए देव नारकी अर मनुष्य इन सिवाय बाकी रहे जे संसारी ते तिर्यंच हैं। देव नारकी मनुष्य इनिकूं पूर्वै कहे। इनितैं अन्य समस्त संसारी जीव तिर्यंच हैं। तिनमैं सूक्ष्म एकेंद्रिय तो समस्त लोकमैं व्याप्त हैं। लोकका एक प्रदेशहू सूक्ष्मविना नहीं। अर बादर एकेंद्रिय पृथिव्यादिकनिकै आधार हैं। अर विकलत्रय अर सैनीपंचेन्द्रिय त्रसनालीमैं कहूंकहूं पावै हैं सर्वत्र नहीं हैं ॥ अब देवनिकी आयुकी स्थिति कहनेकूं सूत्र कहैं हैं—

स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिता ॥ २८ ॥

अर्थ—असुरकुमारनिका आयु एकसागरका है। अर नागकुमारनिका तीन पल्य आयु है। सुपर्णकुमारनिका अढाई पल्य है। अर द्वीपकुमारनिका दोय पल्य है। अर अवशेष रहे जे छह कुमार तिनकी प्रत्येक ड्योढपल्य प्रमाण आयु है॥ ऐसैं भवनवासीनिकी उत्कृष्ट आयु कहि। अब सौधर्म ऐशानका आयु कहै हैं—

सौधर्मैशानयोः सागरोपमेऽधिके ॥ २९ ॥

अर्थ—सौधर्म ऐशानके देवनिका आयुका प्रमाण दोय सागरतैं कुछ अधिक है। जातैं सौधर्म ऐशानमें उत्कृष्ट आयु दोय सागरहीका है। परंतु सम्यग्दृष्टि होय अर घातायुष्क होय तो तिस जीवकै आयु उत्कृष्ट आयुतैं आध सागर अधिक होय। अर दोय सागर आयु पावै तो घातायुष्क अढाई सागर अतर्मुहूर्त घाटि पावै सो बारमा देवलोकपर्यंत घातायुकष्वालाका उत्पाद है आगैकूं नाहीं।

भावार्थ—पूर्वभव विषैं किसी जीवनैं विशुद्धपरिणामनितैं आयुका बंध अधिक किया था पीछैं संक्लेशपरिणामनिके बसतैं आयु घटाय थोडा आणि राख्या तिस जीवकूं घाटायुष्क कहिये। जैसैं कोऊ मनुष्य ब्रह्मब्रह्मोत्तर स्वर्गका आयु दश सागर प्रमाण बंध किया फिर उस ही मनुष्यभवमैं संक्लेश परिणामनिके बधनेतैं आयुकी स्थितिका घात करि सौधर्म ऐशानमैं जाय उपज्या सो घातायुष्क है सो अन्य देवनिकी दोय सागर प्रमाण आयुतैं आध सागर अधिक आयु पावै है।

सो वंध्याहुवा देवआयुका घातकरि पूर्वले मनुष्य तिर्यंचभवमैं ही संक्लेशपरिणामनितैं होय सो घातायुष्क नामकरि कह्या है। अर देवनिकै भुज्यमान आयुका घात नहीं है। जातैं आयुका घात दोय प्रकार है। एक अपवर्तनघात दूजा कदलीघात। तहां वध्यमान आयुका घटावना सो अपवर्त्तनघात है। अर भुज्यमान आयुका घटावना कदलीघात है। सो देवनिमैं कदलीघान संभवै नाहीं तातैं अपवर्त्तनघात है॥ अब अन्य स्वर्गनिमैं आयुका प्रमाण कहै हैं—

सानत्कुमारमाहेंद्रयोः सप्त ॥ ३० ॥

अथ—सानत्कुमार माहेन्द्रमैं देवनिका आयु उत्कृष्ट सात सागर है। घातायुष्कका आधा सागर अधिक है ॥ अब ऊपरले स्वर्गनिमैं आयु कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपंचदशभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥

अर्थ—तीन सात नव ग्यारह तेरह पंद्रह इनकरि सात सागरमैं मिलाय अनुक्रमतैं छह युगलनिविषै आयु जानना। सो ही कहिए है-ब्रह्मब्रह्मोत्तरमैं दश सागर कुछ अधिक प्रमाण उत्कृष्ट आयु है। लांतव-कापिष्ठविषै चौदह सागर प्रमाण कुछ अधिक है। शुक्रमहाशुक्र स्वर्गमैं सोलह सागर कुछ अधिक है। शतार सहस्रार स्वर्गविषै अठारह सागर कुछ अधिक है। आनतप्राणत स्वर्गविषै बीस सागर प्रमाण आयु है। आरण अच्युत दोय स्वर्गके देवनिका आयु बावीस सागर प्रमाण है। इहां सूत्रमैं "तु" शब्द है सो सहस्रारपर्यंत कुछ अधिक सहित जानना। आगैं अधिक प्रमाण नहीं है॥ आगै कल्पातीतकी स्थिति कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ ३२ ॥

अथ—आरण अच्युत स्वर्गके ऊपरि प्रथम ग्रैवेयकविषै तेईससागर प्रमाण आयु है। बहुरि ऊपरि ऊपरि ग्रैवेयकविषै एकएक सागरप्रमाण आयु बधै है। सो नव ग्रैवेयकमैं इकतीस सागर प्रमाण आयु है। अर अनुदिशविमाननिमैं बत्तीस सागर आयु है। अर विजयादिक विमाननिमैं तेतीस सागर आयु है। इहां सर्वार्थसिद्धिमैं उत्कृष्ट ही आयु है, जघन्य आयु नहीं है॥

देवनिका उत्कृष्ट आयु तो कह्या, अब जघन्य आयु कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

अपरा पल्योपममधिकं ॥ ३३ ॥

अर्थ—सौधर्म ऐशानके देवनिका जघन्य आयु एक पल्यतैं कछु अधिक है॥ अब याकै ऊपरि जघन्य स्थिति कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

परतः परतः पूर्वा पूर्वानंतरा ॥ ३४ ॥

अर्थ—पूर्वले पूर्वले स्थानमैं जो उत्कृष्ट आयु है सो ऊपरके ऊपरके स्थानविषै जघन्य आयु है। सौधर्म ऐशानविषै जो दोय सागरतैं अधिक आयु है, सो सानत्कुमार माहेन्द्रमैं जघन्य आयु है। अर सात सागर अधिक उत्कृष्ट आयु है सो ही ब्रह्म ब्रह्मोत्तरमैं जघन्य है। ऐसैं ऊपरि समस्त स्थाननिमैं जानना। इहां प्रसंगपाय एता विशेष और जानना। जो जहां जेता सागरका आयु होय है तितना हजार वरस व्यतीत भए आहार मानसिक ग्रहणकी इच्छा उपजै है। अर जेता सागरकी आयु होय तितना पक्ष गया उच्छ्वास होय है। जैसैं सौधर्म ऐशानमैं दोय सागरका आयु है। अर दोय हजार वरस गए मानसिक आहार होय है। अर दोय पक्ष व्यतीत भए श्वासोच्छ्वास होय है।

आगैं नारकीनिकी उत्कृष्ट स्थिति तो कही थी, अब इहां नारकीनिका प्रकरण नहीं है तोहू थोरे अक्षरनिकरि कह्या जाय यातैं जघन्य स्थिति कहै हैं—

नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥ ३५ ॥

अर्थ—नारकीनिकीहू द्वितीयादिक पृथ्वीमैं ऐसैं ही "च" शब्दकरि स्थिति जाननी। जो रत्नप्रभामैं नारकीनिकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागरकी है, सो शर्कराप्रभामैं एक सागर जघन्यस्थिति है। बहुरि शर्कराप्रभामैं जो तीन सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है, सो वालुकाप्रभामैं तीन सागर जघन्य स्थिति जाननी। ऐसैं सप्तम पृथ्वी पर्यंत जाननी ॥ अब प्रथम पृथ्वीके नारकीनिकी जघन्य स्थिति कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

दशवर्षसहस्राणि प्रथमायां ॥ ३६ ॥

अर्थ—प्रथम पृथ्वी जो रत्नप्रभा तिसविषै नारकीनिका जघन्य आयु दश हजार वर्षका है ॥ अब भवनवासीनिकी जघन्य स्थिति कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

भवनेषु च ॥ ३७ ॥

अर्थ—भवनवासीनिविषैहू जघन्य स्थिति दश हजार वर्षकी है। अब व्यंतरनिहूका जघन्य आयु कहै हैं—

व्यंतराणां च ॥ ३८ ॥

अर्थ—व्यंतरदेवनिकाहू जघन्य आयु दश हजार वर्षका है॥ अब व्यंतरनिका उत्कृष्ट आयु कहा है? सो कहै हैं—

परा पल्योपममधिकं ॥ ३९ ॥

अर्थ—व्यंतरनिका उत्कृष्ठ आयु एक पल्य कछु अधिक है॥ अब ज्योतिष्कनिका आयु कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

ज्योतिष्काणां च ॥ ४० ॥

अर्थ—ज्योतिषी देवनिका उत्कृष्ट आयु एक पल्य कछु अधिक है॥ अब ज्योतिषीनिकी जघन्य स्थिति कहै हैं—

तदष्टभागोऽपरा ॥ ४१ ॥

अर्थ—ज्योतिषी देवनिका जघन्य आयु पल्यके अष्टम भाग प्रमाण है। इहां इतना विशेष जानना। चन्द्रमाका आयु एक पल्य एक लाख वर्षका है। सूर्यका आयु एक हजार वर्षकरि अधिक एक पल्यका है। शुक्रका आयु सौवर्ष अधिक एक पल्यका है। बृहस्पतिका आयु एक पल्य प्रमाण है। शेष जे बुधादिक ग्रह तिनका उत्कृष्ट आयु अर्द्धपल्यका है। नक्षत्रनिका उत्कृष्ट आयु अर्द्धपल्यका है। तारकानिका आयुका प्रमाण पल्यका चतुर्थभाग है। अर नक्षत्रनिका अर तारकानिका जघन्य आयु पल्यके अष्टम भाग प्रमाण है। और सूर्यादिकनिका जघन्य आयु पल्यके चौथे भाग प्रमाण है॥ अब लौकांतिक देवनिकी आयु कहै हैं—

लौकांतिकामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषां ॥ ४२ ॥

अर्थ—बहुरि समस्त लौकांतिक देवनिका आयु अष्ट सागर प्रमाण है। ते समस्त शुक्ललेश्याके धारक

हैं, पंच हस्त प्रमाण ऊंचा शरीर है। ऐसैं इहां च्यार निकायनिके देवनिका वर्णन किया। सो ए देव अति उत्तम हैं। इन सबनिका उत्तम मनुष्यनिकासा आकार है। एक मस्तक दोय नेत्र दोय कर्ण एक नासिका एक मुख दोय हस्त एक हृदय दोय पग समस्त अति सुन्दर आकार अंग उपांग अति मनोहर उत्तम संस्थानके धारक मल मूत्र हाड मांस चाम रुधिरादिक सप्त धातु सप्त उपधातु रहित महा सुगंध वैक्रियिक शरीर अणिमा महिमादि अनेक शक्तिनिकरि युक्त रोगरहित पसेवरहित मलरहित जिनका शरीर है। अर केश बधनेका संस्काररहित वाफणी भंवारा मस्तकके केशादिक चाहिए तहां स्वयमेव श्याम पुद्गल परिणमै हुए केशनिके आकारकूं धारण करैं हैं, केशनिका वधना घटना नहीं है। जहां जरा (बुढापा) नहीं आवै है। जिसदिन उपज्या तिसदिनतैं मरणपर्यंत एक दशा रहै है। बलवीर्य रूपसंपदा बढ़ै घटै नहीं है, आहारकी इच्छा मनमैं ही उपजै है। जब कंठविषै अमृत स्रवै है तातैं तत्काल तृप्त होय हैं। कवलाहार नहीं है। मानसिक आहार ही च्यारि निकायके देवनिकै है। ऐसैं च्यारि अध्यायमैं जीवतत्वका वर्णन किया। सो जीव एकरूपहू है, अर अनेक रूपहू है सो इसका कथन राजवार्तिक श्लोकवार्तिकतैं जानना। इहां जो सामान्य लिखिए तो संशय दूरि होय नहीं। अर विशेष लिखिए तो ग्रन्थ बहुत बधि जाय, अर मन्दज्ञानी जे हैं ते नहीं समझैं तिनको बड़ा कठिन होजाय। तदि वाचनेमैं मन्दता रहि जाय यातैं जहां जैसा प्रयोजन आवेगा तहां तैसा लिख्या जायेगा।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः।

अर्थ—तत्त्वार्थका है अधिगम जातैं ऐसा दशाध्यायरूप जो मोक्षशास्त्र तामैं चौथा अध्याय समाप्त भया।

दोहा।

है जातैं तत्त्वार्थका, अधिगम शिवसुखदाय। मोक्षशास्त्र मङ्गलमयी, नमूं चतुर्थ अध्याय॥ ४॥

अथ पंचमोऽध्यायः।

रहै अजीव प्रपंचतै, सदा स्वछंद अफंद।
गहि अप्पा पर नहिं चहैं, नमो आप्त निर्द्वंद्व ॥

अब सम्यग्दर्शनका विषयपणाकरि कहे जे जीवादिक पदार्थ तिनमैं अब अजीव पदार्थके विचारका अवसर आया तिसकी भेदसंज्ञा कहनेकूं सूत्र कहै है—

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥

अर्थ—धर्म अधर्म आकाश पुद्गल ए च्यार द्रव्य अजीव ऐसैं काय हैं। इनि च्यारि द्रव्यनिकैं अजीवपणा अर कायपणा दोऊरूप पावै हैं। जातैं द्रव्य छह हैं। तिनमैं आत्माकै तो कायपणा तो है परन्तु अजीवपणा नाहीं। अर कालनामा द्रव्य है ताकै अजीवपणा है, अर कायपणा नहीं। अर धम अधर्म आकाश पुद्गलके अजीवपणा अर कायपणा दोऊ हैं। जिस द्रव्यमैं चेतनपणा नहीं तिसकै अजीवपणा कहिए है। अर धर्म अधर्म आकाश पुद्गल इनके चेतनपणा नहीं तातैं अजीव हैं। अर प्रदेशनिका बहुतपणातैं इन च्यारि द्रव्यनिकै कायपणा है। परन्तु जीवपणा नहीं। अर जीव द्रव्य भी बहुप्रदेशी है यातैं जीवकै भी कायपणा है परन्तु अजीवपणा नहीं।

तातैं अजीव ऐसैं काय तो च्यारि ही द्रव्य हैं। यहां जो अवयव सहितपणा सो ही कायपणा है। अर काल द्रव्यके एक एक प्रदेशरूप भिन्न भिन्न हैं तातैं कायपणा नहीं है। बहुरि गमनरूप परणमते जीव पुद्गल तिनकों एकई काल गमनकूं सहकारी कारण धर्म द्रव्य है। बहुरि स्थित रहते जीव पुद्गल तिनकों स्थित रहनेकूं कारण अधर्म द्रव्य सहकारी कारण है। बहुरि समस्त द्रव्यनिकूं अवकाश देनेकूं कारण आकाश द्रव्य है। बहुरि तीन कालविषै अनेक परमाणुनिका मिलन बिछुरन शक्तियुक्त पुद्गल द्रव्य है ॥

अब इनिका विशेष कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

द्रव्याणि ॥ २ ॥

अर्थ—धर्मादिक कहै ते द्रव्य हैं। त्रिकालविषैं अपनै गुण पर्यायनिकौं द्रवैं प्राप्त होंय तातैं द्रव्य कहिए। जातैं द्रव्यका लक्षण तीन प्रकारकरि परमागमविषै कह्या है। एक तो द्रव्यका लक्षण सत् है जातै सत्ताक अर द्रव्यकै भिन्नपणा नहीं है तातैं सत्स्वरूप ही द्रव्यका लक्षण है। अर एक उत्पाद व्यय ध्रौव्य द्रव्यका लक्षण है। द्रव्य है सो उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप है। जो एक जातिमैं विरोध रहित क्रमतैं होती जो भावनिकी परिपाटी तिसविषै पूर्व स्वभावका जो विनाश सो समुच्छेद है। अर उत्तर स्वभावका प्रगट होना सो उत्पाद है। अर पूर्वभावका उच्छेद होते और उत्तरभावका उत्पाद होतैहू जो अपनी जातिका नहीं छोड़ना सो ध्रौव्य है। सो समस्त द्रव्यनिमैं उत्पाद विनाश ध्रुवपणा पाईए है। कोऊ द्रव्यहू काहू समयमैंहू उत्पाद व्यय विना नहीं है समय समय परिणमैं है।

पूर्व परिणतिका अभाव होना सो ही उत्तर परिणतिका उत्पाद है। जातैं पूर्वकी परिणतिका नाश विना उत्तर परिणति होय नहीं, अर उत्तर परिणतिका उत्पाद विना पूर्व परिणतिका विनाश होय नहीं। अर पूर्व उत्तर दोऊ परिणति होतैहू द्रव्यका नाश भया नहीं, अर नवीन उपज्या नहीं तातैं द्रव्य ध्रौव्य है शाश्वत है।

तातैं द्रव्यका उत्पाद व्यय ध्रौव्य लक्षण है। अर गुण पर्यायवान्पणाहू द्रव्यका लक्षण है। द्रव्यकूं गुण कदाचित् कोऊ पर्यायमैंहू नहीं छांडै। द्रव्यका स्वभावरूप गुण है, अर क्रमतैं होय ते पर्याय हैं। गुण अर पर्याय दोऊ द्रव्यकौं नहीं छांडै हैं। द्रव्य है सो गुण पर्यायरूप है ॥ अब जीवकैंहू द्रव्यपणा है सो कहै हैं—

जीवाश्च ॥ ३ ॥

अर्थ—जीव हैं ते भी द्रव्य हैं। जीव भी गुणपर्यायवान् हैं तातैं जीव हैं तेहू द्रव्य हैं। बहुरि पूर्वै कहै जे धर्म अधर्म आकाश पुद्गल अर आगैं कहैंगे जे काल ए पांचों अजीव द्रव्य हैं। अर इहां कह्या

जीव द्रव्य अर काल द्रव्य तिनकरि सहित ए छह द्रव्य जाननैं ॥ अब इन द्रव्यनिके विशेष कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥

अर्थ—ए कहे जे धर्मादिक द्रव्य ते नित्य हैं, अर अवस्थित हैं, अर अरूपी हैं। ए धर्मादिक द्रव्य हैं तिनका गतिहेत्वादिक तो विशेष लक्षण है। अर अस्तित्वादि सामान्य लक्षण है। ते द्रव्यार्थिकनयकरि किस ही कालमैं विनाशकूं प्राप्त नहीं होयैंगे तातैं नित्य हैं। जिस स्वभावकरि द्रव्य तिष्ठै हैं तिस स्वभावका नाश नहीं है तातैं नित्य हैं।

ए धर्मादिक द्रव्य हैं ते अपनी छहकी सख्याकूं नाहीं छांडै हैं पांच नहीं होंय सात नहीं होय तातैं अवस्थित हैं। अथवा धर्म अधर्म लोकाकाश अर एक जीव इनके तुल्य असंख्यात प्रदेश हैं। अर अलोकाकाशकै अर पुद्गलकै अनन्त प्रदेशीपणा है। अर कालके एकप्रदेशीपणा है सो अपने प्रदेशनिकी संख्याकूं नहीं छांडै हैं तातैंहू अवस्थित हैं। द्रव्यविषै विशेष लक्षण है ताकूं द्रव्य छांडै नहीं। चेतन हैं ते अचेतन नहीं होय हैं। अचेतन हैं ते चेतन नहीं होय हैं। अमूर्तिक हैं ते मूर्तिक नहीं होय हैं। मूर्तिक हैं ते अमूर्त्तिक नहीं होय हैं। तातैं अवस्थित हैं।

बहुरि अरूपी कहिए रूपादि रहित हैं अमूर्तिक हैं। इहां रूपके निषेधतैं ताके सहचारी जे रस गंध स्पर्श इनकाहू निषेध जानना। ऐसैं धर्मादिक द्रव्य अरूपी हैं ऐसैं कहनेतैं पुद्गलकै भी अरूपीपनाका प्रसंग आवै है ताके निषेधकै अर्थि विशेष सूत्र कहै हैं—

रूपिणः पुद्गलाः ॥ ५ ॥

अर्थ—पुद्गलद्रव्य हैं ते रूपी हैं। यद्यपि रूप शब्दके अनेक अर्थ हैं तो हू इहां परमागमकरि कह्या मूर्त्तिक द्रव्यकूं रूपी जानना। इहां रूपी कहनेकरि जे रूपतैं अविनाभावी जे स्पर्श रस गंध तिनकरि सहितहू ग्रहण करना। बहुरि इहां "पुद्गलाः" ऐसा बहुवचन है सो पुद्गलकै अणुस्कंधादि भेदकरि बहुत

प्रकारता जणावै है ॥ अब कोऊ पुद्गलकी ज्यों धर्मादिक द्रव्यनिकैहू बहुतपणा जाणै तो ताके निषेधकूं सूत्र कहै हैं—

आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥ ६ ॥

अर्थ—धर्म अधर्म आकाश ए एक एक द्रव्य हैं। इहां धर्म अधर्म आकाश इन तीन द्रव्यनिकौं एक एक कहनेतैं ही जीव पुद्गल काल इन तीन द्रव्यनिकै अनेकपना आया। सो आगमकै अनुकूल जीवद्रव्य अनंतानन्त हैं। तिनतैं अनंतगुणे पुद्गल द्रव्य हैं। कालद्रव्य असंख्यात हैं। धर्म अधर्म आकाश द्रव्यकी अपेक्षा एक एक ही है। क्षेत्र अपेक्षा भाव अपेक्षा असंख्यात हैं अनन्त हैं॥ अब कहे जे एकद्रव्य तिनका विशेषकै अर्थि सूत्र कहै हैं—

निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥

अर्थ—धर्म अधर्म आकाश ए तीन द्रव्य हलन चलन क्रियाकरि रहित हैं। बाह्य अभ्यंतर निमित्तके वशतैं जो एक क्षेत्रकौं त्यागि अन्य क्षेत्रमैं गमन करै सो क्रिया है। सो अभ्यंतर तो द्रव्यमैं क्रियारूप परिणमनशक्ति अर बाह्य अन्य पदार्थनिका घात प्रेरणा इन दोऊ कारणनितैं पदार्थका क्षेत्रांतरमैं गमन तथा प्रदेशनिका सकम्पपना रूप क्रिया होय है सो धर्म अधर्म आकाश तथा आगै कहैंगे काल द्रव्य ए च्यारों ही निष्क्रिय हैं। अर इनकै निष्क्रियपणा कहनेतैं ही जीव पुद्गलकै क्रियावन्तपणा जानना॥ कोऊ कहै हैं-जो "अजीवकायाः" इस प्रकार कहनेतैं द्रव्यनिकै प्रदेशनिका अस्तित्वमात्रपणा तो जान्या परन्तु संख्या नहीं जानीं। यातैं प्रदेशनिकी संख्या जनावनेकूं सूत्र कहै हैं—

असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानां ॥ ८ ॥

अर्थ—धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य अर एक जीव द्रव्य इनकै एकएककैं असंख्यात प्रदेश हैं ते समान हैं। जेता क्षेत्रकूं अविभागी पुद्गल परिमाणु रोकिकरि तिष्ठै है तितना क्षेत्रकूं रोकै सो प्रदेश है। ऐसैं व्यवहार करिये है। तिनमैं धर्म द्रव्य अर अधर्म द्रव्य ए दोऊ निष्क्रिय हैं सो आकाशका अत्यन्त मध्यमैं

असंख्यात प्रदेशनिकूं व्यापकरि निश्चल तिष्ठै हैं। अर एक जीवहू प्रदेशनिकरि धर्म अधर्म द्रव्यकै समान है तो हू अपने प्रदेशनिके सकुच जानेका अर विस्तीर्ण होनेका स्वभाव है तातैं नामकर्मकरि रच्या जो छोटा बड़ा शरीर तिसकूं अवगाह्य कर तिष्ठै है। अर जिस अवसरमैं केवली होय लोकपूरण समुद्‌घात करै है तिस समयमैं मेरुगिरिके नीचे चित्रा अर वज्राका पटलनिकै बीचि आत्माका मध्य अष्टप्रदेश तिष्ठै हैं। अर अन्य समस्त असंख्याते प्रदेश ऊपरि नीचैं तिर्यक् समस्त लोकाकाशकूं व्याप्त होय हैं।

आकाशके प्रदेशनिकी संख्या कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

आकाशस्यानंताः ॥ ९ ॥

अर्थ—आकाश द्रव्यकै अनन्त प्रदेश हैं। जेता आकाश क्षेत्रकूं अविभागी पुद्गल परमाणु रोकै ताकूं एकप्रदेश कहिए हैं। यद्यपि आकाश अखण्ड एक द्रव्य है तोहू परमाणुकरि मापिए तो अनन्त परमाणु प्रमाण होय है याहीतैं अनन्त प्रदेशी कहिए हैं। अर केई अन्यमती आकाश क्षेत्रकूं सर्वथा निरंश ही मानैं सो अयुक्त है। जातैं आकाश क्षेत्रमैं अनेक पदार्थ भिन्न भिन्न तिष्ठै हैं। जैसैं यह ग्राम है यातैं मठ आगैं है, वापिका याकै पाछै है, ऐसा देश विभाग प्रत्यक्ष है ही, तातैं आकाशमैं विभाग कैसैं नहीं मान्या जाय।

इहां अनन्त कह्या सो अलौकिक प्रमाणका विशेष है। अर अनन्त ऐसा प्रमाणकूं सर्वमतके मानै हैं। केई लोक धातुकूं अनन्त मानैं हैं। केई प्रकृतिकै अर पुरुषकै अनन्तपणा कहै हैं। केई दिशाकूं कालकूं आत्माकूं आकाशकूं अनन्त मानै हैं। तातैं अनन्त हैं ही॥ अब पुद्गलनिकै प्रदेशप्रमाण कहै हैं—

संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानां ॥ १० ॥

अर्थ—पुद्गलद्रव्यक प्रदेश संख्यातहू हैं, असंख्यातहू हैं "च" शब्दकरि अनन्त भी हैं। जातैं शुद्ध पुद्गलद्रव्य तो अविभागी एक परमाणु है। परन्तु पुद्गल परमाणुनिमैं मिलन विछुरन शक्ति है तातैं केई स्कंध दोय परमाणुका, केई तीन च्यार इत्यादिक संख्यातका, कोऊ असंख्यातका, कोऊ अनन्त परमाणुका स्कंध है।

अब इहां कोऊ आशंका करै जो लोक तो असंख्यातप्रदेशी है, यामैं अनन्तानन्त परमाणुका स्कंध कैसैं तिष्ठै है। ताकूं उत्तर कहै हैं-सूक्ष्म परिणमनतैं अर अवगाहना सामर्थ्यतैं यो दोष नहीं आवै है। परमाणवादिक सूक्ष्मभावकरि परिणमे हुए एक एक आकाशका प्रदेशमैं अनन्तानन्त तिष्ठै हैं यातैं विरोध नाहीं है। ऐसा एकांत नहीं है जो अल्प आधारविषै महान द्रव्य नहीं तिष्ठै। प्रचयका विशेषतैं अल्पक्षेत्रविषै बहुतनिका अवस्थान देखिये है जैसैं चम्पाका पुष्पकी डोडी तो अल्प है। अर तामैं सूक्ष्मसंचयरूप परिणमनतैं गन्धका अवयव एते निकसै है तिन करि समस्त दिशा व्याप्त होजाय हैं।

ऐसैं ही केतकीका पुष्प तो अल्प है, अर तामैं सुगन्ध परमाणु एते निकसै हैं तिनकरि कोशन पर्यंत सुगन्ध चली जाय। तथा बिलका फल तथा छाणा (कण्डे) तथा आला काष्ठ इन विषै प्रचयविशेषतैं एते पुद्गल स्कंध हैं जो अग्निकरि बालिए तो धूमरूप होय समस्त दिशानिमैं भरि जांय तैसैं अल्पहू लोकाकाशमैं अनन्तानन्त जीव अनन्तानन्त पुद्गलनिका अवस्थान है यामैं विरोध नहीं है। अब पुद्गलकै प्रदेश वर्णन कीए तो परमाणुहू पुद्गल हैं याकैहू प्रदेशका प्रसंग आया यातें परमाणुकैं प्रदेशका निषेधक अर्थि सूत्र कहै हैं—

नाणोः ॥ ११ ॥

अर्थ—अणु जो परमाणु ताकै प्रदेश नहीं हैं। जातैं परमाणुकै प्रदेशमात्रपणों ही है। जैसैं आकाशका एक प्रदेशके भेदका अभाव है यातैं अप्रदेशपणों है, तैसैं परमाणुकैहू प्रदेशमात्रपणातैं प्रदेशभेदका अभाव है। बहुरि परमाणुतैं अन्य कोऊ सूक्ष्म पदार्थ नाहीं तातैं परमाणुकै प्रदेशनिका भेद न होय तातैं स्वयमेव परमाणु अप्रदेश है। अर जो अणुकैहू प्रदेश होय तो याकै अणुपणा नहीं होय।

अब इहां कोऊ कहै है जो अणुकै अप्रदेशपणातैं गधाका सींगकी ज्यों अभाव आया सो अभाव नहीं है। जातैं प्रदेशमात्र है, परमाणुकूं गधाका सींगकी ज्यों अप्रदेश नहीं कह्या है। अब कोऊ या कहै जो परमाणुकै आदि मध्य अन्त है कि नहीं है। जो हैं तो प्रदेशवान्पणा परमाणुकै आया। अर जो

आदि अन्त मध्य नहीं तो गधाका सींगकी ज्यों अभाव आया, सो नहीं है। जैसैं विज्ञानकै आदि मध्य अन्त नहीं है तोहू विज्ञानका अस्तित्व हैही तैसैं परमाणुका अस्तित्व भी है ही ॥ अब धर्मादिक द्रव्यनिका आधार जनावनेकूं सूत्र कहै हैं—

लोकाकाशेऽवगाहः ॥ १२ ॥

अर्थ—धर्मादिक द्रव्यनिका लोकाकाशमैं अवगाह है। अवकाशनाम द्रव्य सर्वतरफ अनंतानंत है। तिसकै मध्यविषैं जितना आकाशमैं धर्मादिक द्रव्य पाईए सो लोकाकाश है। जहां छहू द्रव्य अवलोकन किए सो लोकाकाश है। अर बाहिर सर्वतरफ अनंतानंत केवल आकाश है ताकूं अलोकाकाश कहिए है। अर लोकका क्षेत्र तीनसै तियालीस राजूप्रमाण असंख्यात है। सो यो लोकाकाश धर्मादिक द्रव्यनिका आधार है।

अब कोऊ आशंका करै—जो धर्मादिकनिका लोकाकाश आधार है तो आकाशका अन्य कौन आधार है, ताकूं उत्तर कहै हैं—जो आकाशद्रव्यकै अन्य आधार नाहीं, यो तो आपके आधारही आप है। इसतैं अन्य कोई बडा महान् द्रव्य नाहीं जाकै आधार आकाश तिष्ठै। तातैं सर्वतरफ अंतरहित आकाश सो आपकै आधारही आप है। अर जो आकाश आपकै आधार आप नहीं होय तो अनवस्था दोष आवै।

बहुरि एवंभूतनयकी अपेक्षा करि तो समस्त द्रव्य अपने २ आधार हैं ए आधाराधेयपणा कहना व्यवहारनय करि है। अब इहां कोऊ आशंका करै—जो आकाशकूं आधेय कह्या अर ताकै आधार धर्मादिक द्रव्य कह्या तब कूंडेमैं बेरकीज्यों पूर्वं आकाश तिष्ठैथा पाछै धर्मादिक याकै आधार तिष्ठै। तदि इनकै संयुक्त होय लोकमैं तिष्ठनेतैं अनादिपणाका अभाव आया नवीन संसर्ग ठहस्या, तातैं आधाराधेयपना कहना सदोष भया। ताका उत्तर—जो तुम दोष दिया सो नहीं है। जो संयुक्त होय सिद्ध नहीं भए तिनकैहू आधाराधेयपणा देखिए है। जैसैं शरीर अर हस्त इनकी युगपत् उत्पत्ति होतैहू हस्तकै आधार शरीर है। जातैं शरीरकै अर हस्तकैं उत्पत्ति पहली, पाछै नहीं है अर पहली अन्य अन्य थे, पाछैं युक्त होय

सिद्ध भए नहीं हैं। तोहू शरीरकै आधार हस्त है, हस्तकै आधार अंगुली हैं, अंगुलीकै आधार नख हैं। तैसैं आकाश अर धर्मादिक द्रव्य इनकै अनादिपारिणामिक यौगपद्यताकी सिद्धि होतैं पहली पाछैं ऐसा भेद नहीं होतैहू आकाशकै अर धर्मादिक द्रव्यनिकै आधारधेयपणा सिद्ध है, तातैं यो एकांत नहीं है, जो युतसिद्धकै ही आधाराधेयपणा होय अर अयुतसिद्धकै नहीं होय। अयुतसिद्ध तो जैसैं स्तम्भमैं सार अर युतसिद्ध जैसैं कुण्डमैं वेर दोऊनिकै आधाराधेयपणा प्रगट देखिए है तातैं अनेकांतके प्रभावतैं यो उलाहनो नहीं है॥ अब धर्म अधर्म द्रव्यका अवगाह लोकमैं कैसैं हैं यातैं सूत्र कहै हैं—

धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥

अर्थ—धर्मद्रव्य अर अधर्मद्रव्य ए दोय द्रव्य समस्त लोकाकाशके प्रदेशनिमैं व्याप्यकरि तिष्ठे हैं। जैसैं तिलनिमैं तेल व्यापि रह्या है तैसैं धर्म अधर्म दोऊ द्रव्य लोकाकाशके समस्त प्रदेशनिमैं व्याप्यकरि तिष्ठे हैं तातैं इनकैं अभिव्यापक आधार है। जैसैं गृहका एकदेशमैं घट तिष्ठे, तैसैं इनका लोकमैं अवस्थान नहीं है। बहुरि कोऊ कहै। जो लोकाकाशका प्रदेशनिमैं धर्म अधर्म द्रव्यका प्रदेश विरोध रहित कैसैं तिष्ठे है। एक प्रदेशमें तिनके प्रदेश कैसैं समावै है।

ताका उत्तर—जो जल भस्म खांड इत्यादिक मूर्तिक द्रव्य ही एक क्षेत्रमैं विरोधरहित तिष्ठै हैं तो अमूर्त्तिक धर्म अधर्म आकाश इनिकै कैसैं विरोध होय।

भावार्थ—एक घडा जल करिकै भर्‍या हुआ तामैं भस्म क्षेपिए तो एक घट भस्म मा (समा) जाय वा खांडका घडा माजाय। बहुरि लोहकी सूई माजाय ऐसा देखिए है। जो स्थूल मूर्तिक द्रव्य ही परस्पर अवकाशदान देय हैं तो अमूर्त्तिक अवकाशदान कैसैं नहीं देवै।

बहुरि भेदसंघातपूर्वक आदिसहित जिनके सम्बन्ध होय ऐसैं अतिस्थूल स्कन्ध तिनमैं केईकनिकै प्रदेशनिकै तिष्ठनेमैं विरोध है। अर धर्मादिक द्रव्यनिके तो आदिमान सम्बन्ध नहीं, पारिणामिक अनादि सम्बन्ध है इनिक कैसैं परस्पर विरोध होय॥ अब पुद्गलनिक अवगाहनविशेषकै जाननेकूं सूत्र कहै हैं—

एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानां ॥ १४ ॥

अर्थ—लोकाकाशका एक प्रदेशतैं लगाय असंख्यातप्रदेशनिपर्यंत अनेकप्रकार पुद्गलनिका अवगाह है। एक परमाणुका एक आकाशप्रदेश विषै अवगाह है। अर दोय परमाणु खुलीवा बन्धीको एकप्रदेशमैं वा दोय प्रदेशमैं अवगाह है। तीन परमाणु खुली वा बन्धीको एक प्रदेशमैं अवगाह है वा दोयमैं वा तीनमैं अवगाह है।

ऐसैं संख्यात असंख्यात अनंत प्रदेशनिका स्कंधका एक लोकाकाशका प्रदेशमैंभी अवगाह है। अर दोय तीन इत्यादि संख्यात असंख्यात प्रदेशनिमैंहू अवगाह जानना। द्रव्यनिमैं यह अवगाहनशक्ति है जातैं परस्पर अवकाश दान देहैं। जैसैं एक घरमैं अनेक प्रकाश वर्त्तै है तहां क्षेत्रका विभाग नहीं है। अर एक क्षेत्रमैं अवगाह होनेतैं तिन प्रकाशनिकै एकपणाहू नहीं है। तैसैं एक लोकाकाशका प्रदेशमैं अनंत पुद्गल परमाणुनिका स्कंध सूक्ष्मपरिणमनशक्तितैं तिष्ठै है अर एक नहीं होजाय है।

बहुरि द्रव्यनिका स्वभाव है सो प्रेरणा नहीं किया जाय है जो ऐसैं होहु ऐसैं मति होहु। यातैं अवगाहन-स्वभावपणातैं एक द्रव्यप्रदेशविषै बहुत स्कंधनिका तिष्ठना विरोधकूं नहीं प्राप्त होय है। बहुरि आर्ष जो परमागम तामैं भी ऐसैं कह्या है।

ओगाढगाढणिचिदो पोग्गलकाएहिं सव्वदो लोगो। सुहुमेहिं वादरेहिं अणंताणंतेहिं विविहेहिं ॥ १ ॥

अर्थ—यो लोक समस्त सर्वतरफतैं सूक्ष्म अर बादर नानाप्रकारके अनन्तानन्त पुद्गलकायकरि गाढा गाढा भर्या है। तातैं आगमप्रमाणतैंहू निश्चय करना योग्य है। अब जीवनिका अवगाह कैसैं है यातैं सूत्र कहै हैं—

असंख्येयभागादिषु जीवानां ॥ १५ ॥

अर्थ—लोकका असंख्यातभागादिमैं जीवनिका अवगाह है। इहां लोकशब्दकी पूर्वसूत्रतैं अनुवृत्ति है। तिस लोकाकाशका असंख्यातभाग कीजै सो एक असंख्यातवां भागहू असंख्यात प्रदेशप्रमाण है।

तिस एक असंख्यातवां भागमैं एक जीवकी अवगाहना तिष्ठैहै वा दोय असंख्येय भागमैं वा तीन च्यार इत्यादिक असंख्येय भागमैं एक जीवकी अवगाहना है। जातैं जघन्य अवगाहनाका धारक सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव ताका शरीरहू असंख्यात प्रदेशप्रमाण अवगाहनाकूं धारै है तातैं लोकका असंख्येय भागादिकमैं एक जीवकी अवगाहना कही।

यद्यपि अवगाहना नाना जीवनिकी जघन्यतैं लेय उत्कृष्ट पर्यंत एकएक प्रदेश अधिक पाइए है तोहू वे लोककै असंख्यातवैं भाग ही कहावै हैं। अर नाना जीव तो समस्त लोकमैं हैं कोऊ प्रदेश जीव-विना नहीं है॥ अब कोऊ कहैं जो एक जीवकी अवगाहना लोकाकाशका असंख्यातवां भागमैं कैसै है एक जीवका लोकप्रमाण प्रदेश है तातैं सर्व लोकमैं व्याप्त चाहिए ताकूं उत्तररूप सूत्र कहै हैं—

प्रदेशसंहारविसर्प्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥ १६ ॥

अर्थ—जीवका प्रदेश लोकाकाशकै समान है तोहू दीपककी ज्यों सङ्कोच विस्तार होनेतैं जैसा आधार होय तिस प्रमाण होय तिष्टै हैं। यद्यपि आत्माका अमूर्त्तिक स्वभाव है अर लोकाकाश तुल्य प्रदेशी है तोहू अनादिकालतैं कर्मतैं एकक्षेत्रावगाहरूप होय कथंचित् मूर्त्तिकपणाको धारण करै हैं। तातैं कर्मके वशतैं ग्रहण किया जो छोटा बडा शरीर तामैं वसै है। जैसा शरीरका आधार होय तैसैं सङ्कोच विस्तारकूं प्राप्त होय है। जैसैं दीपक छोटे बडे भाजनमैं धरिए तिस प्रमाण ही प्रकाश सङ्कोच विस्तारकूं प्राप्त होय है। छोटे बडे शरीरमैं तिष्ठना आत्माका लोकप्रमाण प्रदेश हैं ते घटै वधै नाहीं है।

अब कोऊ कहैं जो आत्माका प्रदेश संकोच होतैं कहांताईं संकुचै ताकूं कहै हैं—सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीवकै अंगुलके असंख्यातवैं भाग अवगाहना है ताकै भी असंख्यातप्रदेश हैं तिस प्रमाणतैं जीवकी अवगाहना घटै नाहीं है। अब कोऊ कहै हैं—जो धर्मादिक द्रव्यनिकै नानापणा मति कहो जातैं देश संस्थान काल दर्शन स्पर्शन अवगाहनादिक करि अन्यद्रव्यनितैं अभेद है, सो ही कहै हैं।

जिस देशमैं धर्मद्रव्य तिष्टै तिस क्षेत्रमैंही अन्यद्रव्य तिष्टै हैं तातैं देश भिन्न नहीं है। अर जो

धर्मको संस्थान आकार सोही अन्यद्रव्यनिको है तातैं संस्थान भिन्न नहीं है। अर तीन कालमैं धर्मादिक समस्त द्रव्यनिकी तुल्य प्रवृत्ति है तातैं कालहू अभिन्न है अर प्रत्यक्षज्ञानी भगवान् जिस क्षेत्रमैं धर्मद्रव्य देख्या तिसहीमैं अन्यद्रव्य देखै तातैं दर्शन अभिन्न है।

अर धर्मादिक समस्त द्रव्य सर्वात्मस्वरूपकरि परस्पर स्पर्शनकू करै हैं तातै अवगाहन भी अभिन्न है, सर्वगतपणातैं अरूपीपणो द्रव्यपणो क्षेत्रपणो इनकरि भी भिन्न नहीं है। तोहू धर्मादिक पलटि परस्पर एक नहीं होजाय हैं, प्रदेशनिकरि भेद है स्वभावकरि भेद है लक्षणकरि भेद है। यातैं जैसैं रूप रसादिकनिको तुल्य आधार होते हू लक्षणका भेदतैं भेद है॥ तैसैं भिन्न लक्षण कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ १७ ॥

अर्थ—जीव पुद्गलनिकैं गति उपकार धर्मद्रव्यकृत है अर स्थिति उपकार अधर्मद्रव्यकृत है। जीव पुद्गल एक क्षेत्रतैं अन्य क्षेत्रमैं गमनक्रिया करै हैं। तहां गमन करनेकी शक्ति तो जीव पुद्गलहीकी है सो तो अंतरंग कारण है। अर बहिरंगसहकारी अविनाभूतकारण धर्मद्रव्य है। जो जीव पुद्गल गमन करैं तो धर्मद्रव्य सहकारीकारण है अर नहीं गमन करै तो प्रेरणा नहीं करै है। परन्तु धर्मद्रव्यका सहाय विना गमन नहीं होय सकै तातैं अविनाभूत सहकारीकारण है। जैसैं मच्छीकै गमन करनेकी शक्ति तो आपहीमैं है परंतु बहिरंग सहकारी अविनाभूत कारण जल है। यद्यपि मच्छी गमन नहीं करै तो जल प्रेरणा नहीं करै है तथापि जलका सहायविना गमन नहीं करि सकै तातैं मच्छीनिकै गमन करनेकूं जल सहकारीकारण है। ऐसैं धर्मद्रव्य जीव पुद्गलके गमनकूं सहकारीकारण है।

बहुरि ऐसैं ही गमनपूर्वक स्थिति रहते जीव पुद्गल तिनकूं अधर्मद्रव्य अविनाभूतसहकारी कारण है। जैसैं ग्रीष्ममैं गमन करते पथिककै वृक्षकी छाया सहकारी अविनाभूतकारण है। इहां पूछै हैं—जो भूमि जलादि पदार्थ ही गति स्थितिरूप उपकार विषै समर्थ हैं, धर्म अधर्म द्रव्यनिका कहा प्रयोजन है। तहां कहिए है—

भूमि जलादिक तो कोई कोई द्रव्यको एक एक प्रयोजनविषै अनुक्रमतैं गमनादिक उपकार करनेमैं समर्थ हैं। अर धर्म अधर्म द्रव्य हैं ते समस्त ही जीव पुद्गलनिका एककाल गति स्थितिको साधारण आश्रय हैं। बहुरि एक कार्यकौं अनेक कारण साधै हैं तहां दोष नाहीं।

इहां तर्क—जो धर्म अधर्म द्रव्य काहूके देखनमैं आए नहीं तातैं धर्म अधर्म द्रव्य ही नहीं है। ताका समाधान—जो इनका नेत्रनिकरि देखना नहीं यातैं अभाव मति कहो। ए परोक्ष पदार्थ हैं। नेत्रादिक इंद्रियनिके ग्रहणमैं नहीं आवनेतैं अभाव कैसैं कहोहो। सर्व ही मतमैं प्रत्यक्ष पदार्थ परोक्ष-पदार्थ मानिए है। जो इंद्रियनिका ग्रहणमैं नहीं आवनेतैं अभाव मानोगे तो समस्त स्वर्ग नरक परलोक पुण्य पाप ईश्वरादिक समस्तका अभाव मान्या जायगा।

बहुरि हमारे स्याद्वादीनिके मतमैं भगवान सर्वज्ञ वीतराग प्रत्यक्ष देखिकरि कह्या है तातैं सर्वज्ञके प्रत्यक्ष होनेतैं धर्मादिक द्रव्य प्रत्यक्ष भी हैं ही तिनके सत्यार्थ प्रमाणभूत उपदेशतैं परोक्षज्ञानीहू अंगीकार करै हैं। बहुरि ए धर्म अधर्म द्रव्य परोक्ष हैं अमूर्त्तिक हैं। तिनका उपकारके सम्बन्धकरि अस्तित्व निश्चय कीजिए हैं। जीव पुद्गलके गति स्थितिकूं ए निमित्त हैं। बहुरि क्षणक्षणविषै तिनकै गति आदिका भेद है तातैं तिनके हेतुकैभी भिन्नपणा मानिए है। इस सूत्रका विशेष जाननेका इच्छुक हैं ते राजवार्त्तिक श्लोकवर्त्तिकतैं जानहु॥ अब आकाशद्रव्यका उपकार दिखावनेकूं सूत्र कहै हैं।

आकाशस्यावगाहः ॥ १८ ॥

अर्थ—सर्वद्रव्यनिकौं अवकाशदान देना आकाशद्रव्यका उपकार है। इहां उपकार शब्दकी पूर्वके सूत्रतैं अनुवृत्ति जाननी। जीवादिक अवकाश देनेयोग्य द्रव्यनिकौं अवकाशदान देना आकाशद्रव्यका उपकार है। इहां तर्क-जे जीवपुद्गलादिक क्रियावान हैं तिनकौं तो अवकाशदान देना युक्त है परंतु धर्मा-दिक द्रव्य तो नित्यसम्बन्धरूप हैं निःक्रिय हैं तिनकूं अवकाशदान देना आकाशकै कैसैं संभवै? ताका समाधान-जो गति स्थिति क्रियासहित जे जीवपुद्गल द्रव्य हैं तिनकी अपेक्षा तो आकाशकै अवकाश

देना मुख्य उपकार है। अर धर्मादिकनिकी अपेक्षा गौण है, उपचारतैं अवकाशदान देना सिद्ध है।

बहुरि तर्क—जो आकाशका अवकाश दान देना गुण है तो मूर्त्तिक द्रव्यनिकै परस्पर प्रतिघात (रुकना) अयुक्त है अर परस्पर घात देखिए है। वज्रपातादिकनिकरि पाषाणादिकनिका प्रतिघात देखिए है। भीतिकरि गवादिकनिका घात देखिए है तातैं आकाशकै अवकाशदान देना कैसैं बनै? ताका उत्तर—पुद्गलनिका परिणमन स्थूलसूक्ष्मादि अनेक प्रकार हैं। तिनमैं स्थूलपुद्गलनिकै परस्पर प्रतिघात है ते स्थूलपुद्गल परस्पर अभिघात करै हैं सूक्ष्म नहीं करै हैं सूक्ष्मकै परस्पर प्रदेशका सामर्थ्य है स्थूलपुद्गल परस्पर रोकै हैं। यामैं आकाशका दोष नहीं है, रुकना भिडना परस्पर पुद्गलनिका सामर्थ्य है। सूक्ष्मपुद्गल हैं ते परस्पर अवकाशदान देवै ही हैं।

बहुरि इहां ऐसा—जो अवगाह गुण तो समस्तद्रव्यनिमैंही है तथापि आकाश सबतैं बडा है तातैं प्रधानपनैं अवकाश दान देना याहीका गुण है। सर्वपदार्थनिकौं साधारण युगपत अवकाश देय है। बहुरि इहां कोऊ कहै—अलोकाकाशविषै अवगाह करनेवाला कोऊ द्रव्य है नाहीं तहां अवकाशदानभी नाहीं सो तहां आकाशकै अवकाश देना कैसैं कहिए? ताका उत्तर।

तहां कोई अवगाह करनेवाला नाहीं तो अवकाशका काहा दोष? आकाशका अवगाह देना तो गुण विगडा नहीं। जो द्रव्यका स्वभाव है ताकूं द्रव्य छांडै नहीं है जैसैं अवगाह करनेवाला हंसका अभाव होतैभी जलका अवगाह्यपणाका अभाव नहीं होय है तैसैं अलोकाकाशकै अवकाशदान सामर्थ्यकी हानि नहीं है॥ अब पुद्गलकृत उपकार दिखावनेकूं सूत्र कहै हैं—

शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानां ॥ १९ ॥

अथ—शरीर वचन मन प्राणापान कहिए उच्छ्वासनिश्वास ए समस्त पुद्गलकृत उपकार जीवनिकै हैं। शरीर है सो समस्त वचनादिकका आधार है तातैं प्रथम कह्या। औदारिकादि शरीर हैं सो तो पुद्गलमय हैं ही। इहां कोऊ कहै—शरीरनिकौ पौद्गलिक कह्या सो ठीक परन्तु कार्मणशरीर तो निराकार है सो

निराकारकै पुद्गलपणो कैसैं होय ? आकारवान औदारिकादि शरीरनिकैं ही पुद्गलपणा युक्त है, ताकूं कहै हैं–जो कार्मणशरीरहू निराकार नहीं है मूर्त्तिमान है यातैं पौद्गलिक ही है जातैं मूर्त्तिक पदार्थके निमित्ततैं कर्मनिका उदय आवना देखिए है।

जैसैं गुड बेरझडीकी मदिरा बनै है सो मदिरा मूर्त्तिक है ताकै पीवनेतैं चित्तकै भ्रमरूप ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय कर्मका उदय आवै है। तथा निंबभक्षण करनेतैं असातावेदनीय उदय आवै है। कांटा चुभनेतैं असाताका उदय होय है। इत्यादि मूर्त्तिक द्रव्यनिके सम्बन्धतैं उदय होते देखिए हैं तातैं कार्मणशरीहू मूर्त्तिक पुद्गलमय ही है ऐसा निश्चय करना।

बहुरि वचन दोय प्रकार है–एक भाववचन, एकद्रव्यवचन। वहां मतिश्रुतज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होतै अर अंगोपांग नामकर्मके लाभका निमित्ततैं आत्माकैं बोलनेकी शक्ति होय सो भाववचन है। सो पुद्गलकर्मके निमित्ततैं भया तातैं पौद्गलिक है। बहुरि तिस बोलनेका सामर्थ्य सहित आत्माकै कण्ठ तालु जिह्वा इत्यादिक स्थाननिकरि प्रेरे जे शब्दरूप पुद्गलस्कंध सो द्रव्यवचन हैं सोहू पुद्गलतैं उपज्या पुद्गलमय ही है। श्रोत्रेंद्रियके विषय हैं तातैं पुद्गलतैं अन्य नहीं।

अब इहां कोऊ शंका करै—जो वचनकूं पुद्गल कह्यो हो तो अन्य पुद्गलनिकीज्यों फिरहू ग्रहणमैं क्यों नहीं आवै ? वचन उत्पन्न होय एकवार ही श्रोत्रइंद्रियका ग्रहणमैं आवै हैं, निरन्तर ग्रहणमैं नहीं आवै हैं ताकूं कहिए हैं–जैसैं विजुलीके पुद्गल चक्षुइंद्रियके ग्रहणमैं आइकरिकै फेरि समस्त दिशामैं विखरिजाय हैं फेरि नहीं दीखै हैं, तैसैं वचनरूपहू पुद्गलस्कंध कर्णइंद्रियका ग्रहणमैं आय समस्त तरफ विखरि जाय तब फेरि श्रवणमें नहीं आवै है। कर्णइन्द्रिय शब्दहीकूं ग्रहण करै रूपादिककूं नहीं ग्रहण करै। जिस इंद्रियका जो विषय होय तिसकूं नियमकरि ग्रहण करै अर परका ग्रहण नहीं करै।

अब कोऊ या कहो–शब्द है सो नेत्रइंद्रियका ग्रहणमैं क्यों नहीं आवैं, ताकूं कहिए हैं। जैसैं घ्राणइंद्रिय गन्धहीकूं ग्रहण करै है रसादिककूं ग्रहण नहीं करै है। अर रसना इंद्रिय रसकूं ही ग्रहण करै है

रूपादिककूं ग्रहण नहीं करै। तैसैं चक्षुइन्द्रियहू रूपहीकूं ग्रहण करै है शब्दादिककूं नहीं ग्रहण करै हैं। अब कोऊ या कहै जो शब्द अमूर्त्तिक है। अमूर्त्त जो आकाश ताका गुण है सो नहीं। कैसैं अमूर्त्तिक नहीं? ताका उत्तर कहै हैं–जो शब्द अमूर्त्तिक होय तो मूर्त्तिमान श्रोत्रइन्द्रिय तिसकरि कैसैं ग्रहण किया जाय। अमूर्त्तिक होयगा सो इन्द्रियनिकै ग्रहणमैं नहीं आवैगा। अर अमूर्त्तिक होयगा सो मूर्त्तिमानकरि प्रेरणाकू नहीं प्राप्त होयगा। अर शब्द है सो मूर्त्तिक पवनकरि आकाशका फूल्याकीज्यों प्रेर्या हुवा अन्य दिशामैं तिष्ठते पुरुषनिके ग्रहणमैं आवै हैं। तथा शब्दकरि चूणापाषाणकी दीवाल–भीति फाटिजाय हैं। घाव फाटिजाय है। गर्भपतन होजाय है, तातैं शब्द मूर्त्तिक ही है। जो अमूर्त्तिक होय तो मूर्त्तिक करि कैसैं प्रेरणाको प्राप्त होय।

बहुरि शब्द है सो मूर्त्तिक करि रुकै हैं। नालीमैं शब्द रुकै हैं, भीतितैं शब्द रुकै हैं। जो अमूर्त्तिक होय तो मूर्त्तिक करि कैसैं रुकै। बहुरि मन दोय प्रकार है–द्रव्यमन अर भावमन। तहां ज्ञानावरण वीर्यांतरायके क्षयोपशमतैं पाया जो गुणदोषके विचारस्मरणकी शक्तिरूप लब्धि तथा उपयोग सो तो भावमन है। सो पुद्गलकर्मके क्षयोपशमतैं भया तातैं पौद्गलिक है।

बहुरि तिस भावमनसहित आत्माके अंगोपांग नामकर्मके उदयतैं गुणदोषके विचारस्मरणका उपकारी हृदयस्थानविषैं सूक्ष्मपुद्गलनिका प्रचयरूप द्रव्यमन है ते पुद्गलमय हैं ही। बहुरि वीर्यांतराय ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम अर अंगोपांग नामा नामकर्मका उदयकी है अपेक्षा जाकै ऐसा आत्मा ताकरि ऊँचा लीया जो कोष्ठतैं पवन सो तो उच्छ्वासलक्षण प्राण कहिए।

बहुरि तिस ही आत्माकरि बाहिरका पवन अभ्यंतर किया सो निःश्वास है ताहि अपान कहिए है। ए दोऊ ही पुद्गलमय हैं मूर्त्तिक हैं, हस्तादिकरि रुकते देखिए हैं। शरीरविषै पवनका बन्धान है सो आत्माका उपकारी है। शरीरमैं श्वासोच्छ्वास आदि चेष्टा आत्माका अस्तित्व जनावै हैं। या प्रकार शरीरादिक हैं ते पुद्गलमय जानना। इनकरि जीवका उपकार है। बहुरि इहां उपकारशब्दका अर्थ भला

करना ही नहीं लेना, कछु कार्यको निमित्त होय तिसको उपकारी कहिए है ॥

अब औरहू पुद्गलकृत उपकार कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥ २० ॥

अर्थ—सुख दुःख जीवन मरण ये भी उपकार पुद्गलका किया जीवकैं है। बाह्य द्रव्य क्षेत्र काल भावका निमित्ततैं सातावेदनीयका उदयतैं आत्माकै प्रसन्नताई प्रीतिरूप होना सो सुख है। तथा असातावेदनीयका उदयतैं आत्माका संक्लेशरूप परिणाम सो दुःख है। बहुरि आयुनामकर्मके उदयतैं भवमें स्थित रहता जीवकै उच्छ्वासनिश्वासादिक क्रियाका विच्छेद नहीं होना सो जीवित है। बहुरि जीवितका उच्छेद होना सो मरण कहिए। ए जीवनिकै होय हैं सो पुद्गलके निमित्ततैं होय हैं तातैं पुद्गलका उपकार कहिए।

बहुरि इहां अन्य विशेष लिखिए हैं। तहां केई अन्यमती ऐसैं कहै हैं जो सुख दुःख तो देहकैही होय है आत्मा तो सुख दुःखतैं रहित है। तथा केई कहैं आत्मा तो सर्वथा नित्य है अमर है, मरै ही नाहीं। तथा केई आत्माको अनित्य ही कहै हैं। इत्यादिक एकांत कल्पना करै हैं तिन सबनिका निराकरण इस सूत्रतैं जानना। जातैं सुख दुःखका संवेदन तो जीवकै है। पुद्गल अचेतन जड़ है ताकै सुखदुःखका संवेदन नहीं संभवै है।

बहुरि उच्छ्वासनिश्वासादि प्राणनिका उच्छेद नहीं होना सो जीवना अर प्राणनिके उच्छेदकरि शरीर छूटि अन्य शरीरकी प्राप्ति होना सो मरना है। सो यहां अन्यमती जो आत्माकूं नित्य ही वा अनित्यही एकांतरूप कल्पना करैहैं तिनके मतमैं निर्बाध कथन नाहीं बनैहै। जातैं सर्वथा नित्य मानैं ताकै सुखदुःख जीवनमरणादिक परणति नहीं बनि सकै है। तातैं वस्तुका स्वरूप नित्यानित्यात्मक मानै तिसहीकै निर्बाधकथन सिद्ध होयहै। बहुरि सूत्रमैं उपग्रह शब्दके ग्रहणकरि पुद्गलका पुद्गल भी उपकार करै है। जैसैं कतकफल जलका उपकार करै है, भस्मादिक कांस्यादिकको उपकार करै है।

अब आत्माकृत उपकारकूं कहैं हैं—

परपस्रोपग्रहो जीवानां ॥ २१ ॥

अर्थ—जीवनिकैहू परस्पर उपकार है। स्वामी सेवकका उपकार वित्तादिक देनेकरि करैहै। स्वामीका हित करनेकरि अर अहितका निषेधकरि सेवक स्वामीका उपकार करै है। दोऊ लोकके फलका देनेवाला उपदेशकरि वा उपदेशके अनुकूल आचरण करावनेकरि आचार्य शिष्यका उपकार करै है। अर शिष्य हैं ते आचार्यनिके अनुकूल प्रवृत्तिकरि आचार्यनिका उपकार करै हैं। अब कालकृत उपकार दिखावै हैं—

वर्त्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य ॥ २२ ॥

अर्थ—वर्त्तना परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व ए कालद्रव्यकृत उपकार हैं। धर्मादिक द्रव्यनिकै वर्तना आदिक कालके निमित्ततैं होइ हैं सोही दिखाइये है। धर्मादिक द्रव्य हैं ते आप ही आपने उपादानकारणकरि अपने पर्यायनिके उत्पादरूप वर्तै हैं। सो तिस वर्तनाका बाह्य निमित्त चाहिए। जातैं बाह्य उपकार निमित्तविना अन्तरङ्ग परिणति होय नाहीं सो तहां तिनकौ बहिरङ्ग निमित्त काल है। तहां तिस वर्तनाका समय है सोही कालका चिह्न है। सब द्रव्यनिके वर्तावनेवाला काल द्रव्य है। याहीकरि कालका निश्चय कीजिये है। यह वर्तना है सो कालद्रव्यका अस्तित्व जनावै है। जातैं गौण है सो मुख्य-होइ नाहीं।

बहुरि इस वर्तनाकूं जेतीवार लगै है सो व्यवहार काल है। बहुरि जो द्रव्य अपने स्वभावकूं नहीं छांडिकरि पर्यायका रूपकरि पलटना सो परिणाम है। तहां धर्मादिक द्रव्यनिके अगुरुलघुत्वगुणका अविभाग परिच्छेद रूप अनंत परिणाम है। तहां ते हानि वृद्धि सहित हैं। अतिसूक्ष्म स्वरूप है। बहुरि जीवकै औपशमिकादि भावरूप परिणाम है। तथा गति कषाय क्रोधादिक परिणाम है। अर पुद्गलकै वर्णादिक परिणाम है तथा घटादि अनेक रूप है।

इहां ऐसा जानना—जो द्रव्यके पर्यायकूं परिणतिकूं परिणाम कहिए, कैसी है पर्याय जो पूर्व अवस्थाकूं छांडि दूसरी अवस्थारूप होना। बहुरि एकक्षेत्रतैं अन्यक्षेत्रविषै गमन करना सो क्रिया है। सो

क्रिया जीव पुद्गल दोयहीकै होय है। बहुरि जाकूं बहुतकाल लागै ताकूं परत्व कहिए। अल्प कालका होय ताकूं अपरत्व कहिये। ऐसैं द्रव्यके वर्तना आदि कहे ते कालके निमित्ततैं होय हैं, अन्य द्रव्यनिकूं यह कालका उपकार है। धर्मादिक द्रव्यनिकै पर्याय समयसमय पलटै हैं सो इस पलटनिकौं समय जो काल सोही निमित्त है—तातैं ऐसा कहिए जो द्रव्यनिका पर्याय वर्तै है ताका वर्तावनेहारा कालद्रव्य है।

बहुरि यहां कोऊ कहै—जो वर्तनाहीका भेद परिणामादिक है तातैं एक वर्तना ही कहना था तिनका जुदाजुदा ग्रहण अनर्थक है। ताका समाधान—जो अनर्थक है नाहीं। यहां कालकै दोय प्रकार सूचनेके अर्थि विस्तार कह्या है। काल दोयप्रकार हैं—एक निश्चयकाल एक व्यवहारकाल। तहां निश्चयकाल तो वर्त्तनालक्षण है। अर परिणामादिक ते व्यवहारकाल भी जानिए है।

जीव पुद्गलके परिणामनकरि व्यवहारकाल प्रकट होय है सो यह व्यवहारकाल तीन प्रकार है—भूत, वर्तमान, अनागत। बहुरि परमार्थकाल जो निश्चयकाल ते लोकाकाशके एकएक प्रदेशनिविषै भिन्न-भिन्न असंख्यात कालाणुद्रव्य हैं ते परमार्थकाल हैं ते कालाणु परिणतिरूप वर्तै हैं, परद्रव्यके परिणतिरूप नाहीं वर्तै हैं, आप अपनी परिणतिरूपही वर्तै हैं सो परद्रव्य तो बाह्यनिमित्त होय है। तिनको वर्तना सर्वद्रव्यनिके परिणमनप्रति निमित्त है॥ अब पुद्गलके गुण कहै हैं—

स्पर्शरसगंधवर्णवंतः पुद्गलाः ॥ २३ ॥

अर्थ—पुद्गल हैं ते स्पर्श रस गंध वर्ण गुणनिकरि सहित हैं। कोमल, कठोर,[2] हलका[3], भारी[4], शीत[5], उष्ण[6], सचिक्कण, रूक्ष, ए अष्टप्रकारका स्पर्श है। बहुरि खाटा, मीठा,[2] कडवा[3], कषायला[4], चिरपरा[5], ए पंचप्रकार रस हैं। बहुरि सुगंध[1], दुर्गंध[2], ऐसैं दोय भेदरूप गंध हैं। बहुरि कृष्ण[1] नील[2] रक्त[3] पीत[4] श्वेत[5] ए पंचप्रकार वर्ण हैं। ऐसैं बीस भेद हैं। इन एकएकका एक दोय तीन चार संख्यात असंख्यात अनेक भेद हैं। अर अविभागप्रतिच्छेदनिकी अपेक्षा अनंतभेद हैं। ए स्पर्श रस गंध वर्ण जिनकैं होय ते पुद्गल हैं। समस्त पुद्गलनिकै ए च्यारों गुण निश्चय करना।

इहां केई अन्यमती कहै हैं–जो पृथ्वी आदिके परमाणु जातिभेद रूप हैं, पृथ्वी आदिकनिके परमाणु जुदीजुदी जातिके हैं, कदाचित् परस्पर एक होय नहीं जुदे ही रहै हैं। तहां पृथ्वीके परमाणुमैं तो स्पर्श रस गन्ध वर्ण ए चार गुण हैं। अर जलविषैं गंधविना तीनगुण कहै हैं। अग्निविषैं गन्ध रस दोऊ नाहीं हैं। स्पर्श वर्ण दोय ही गुण हैं। पवनविषैं गन्ध रस रूप ए तीन गुण नाहीं हैं एक स्पर्शगुण ही है। ऐसैं कहै हैं सो अप्रमाण है।

जातैं पृथ्वी जल अग्नि पवनके परमाणु जातिभेदके रूप नहीं हैं। एक पुद्गल ही पृथिव्यादि अनेक प्रकार परिणमै है। सबनिमैं स्पर्श रस गंध वर्ण ए च्यार गुण हैं। गुणनिकी हीनता कोई पुद्गलमैं भी नहीं है। पृथ्वीतैं जल होना जलतैं पृथ्वी होना इत्यादि जातिसंकर देखिए है। पृथ्वी जो पाषाण तथा काष्ठतैं अग्नि प्रगट होय है। अग्नितैं कज्जल तथा भस्मादिक पृथ्वी प्रगट होय है। चन्द्रकांत मणि पृथ्वी है। तातैं जल प्रगट होते देखिए है। जलतैं मोती तथा लवण ए पृथ्वी उपजते देखिए है।

पृथ्वी जो जव नाम अन्न ताके भक्षणतैं वायु उपजती देखिए है जातैं पृथ्वी जलादिक ए समस्त पुद्गलद्रव्यकेही विकार हैं, सर्वही चारों गुणनिकरि सहित हैं सो आगम अनुमान करि सिद्ध है॥ ऐसैं पुद्गलद्रव्यका गुण तो कह्या, आगैं पुद्गलद्रव्यके पर्यायनिकूं कहै हैं—

शब्दबंधसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतवंतश्च ॥ २४ ॥

अर्थ—शब्द बन्ध सूक्ष्म स्थूल संस्थान भेद तम छाया आतप उद्योत इनि पर्यायनिसहित हैं ते पुद्गल द्रव्य हैं। तहां शब्द दोय प्रकार है। एक भाषात्मक एक अभाषात्मक। तिनमैं भाषात्मकहू दोय प्रकार है। एक अक्षररूप एक अनक्षररूप। तिनमैं अक्षररूप तो शास्त्रादिककरि प्रगट किया संस्कृत वा देशभाषारूप आर्य म्लेच्छनिकै व्यवहारका कारण है। अर अनक्षररूप द्वींद्रियादिकनिकी तथा अतिशयरूप ज्ञानके प्रकाशनेकूं कारण केवलीकी दिव्यध्वनि सो ए समस्तही भाषा पुरुषके प्रयत्नतैं भई प्रायोगिक हैं।

बहुरि अभाषारूप शब्द है सो भी दोय प्रकार है–एक प्रायोगिक एक वैस्रसिक। पुरुषके यत्नतैं

उपजै ते प्रायोगिक कहिए है। बहुरि पुरुषके यत्नकी अपेक्षारहित स्वाभाविक होय सो वैस्रसिक है। सो मेघगर्जनादिकका है। अर प्रायोगिक च्यार प्रकार है। तत, वितत, घन, सौषिर। तिनमैं चर्मके तननादिउपजै नगार ढोल मृदंगादिकके शब्द ते तत कहिए है।

बहुरि तांति तारके वीणा सहतार तमूरा इत्यादिकतैं उपज्या शब्द ताकूं वितत कहिए है।

बहुरि ताल घण्टादिकके हलावनेकरि उपजा सो घन है। बहुरि बांसुरी शंख आदिकतैं उपज्या सो सुषिर हैं। ऐसैं शब्दके भेद कहे। बहुरि बंध दोय प्रकार है–वैस्रसिक अर प्रायोगिक। तहां जो पुरुषके यत्नकी अपेक्षारहित होय सो वैस्रसिक है। सो वैस्रसिक दोय प्रकार है–एक आदिमान एक अनादिमान। तिसमैं स्निग्ध रूक्षादि गुणनिके निमित्ततैं विजुली उल्कापात बादला इंद्रधनुकूं आदिमान वैस्रसिक बन्ध कहिए।

बहुरि धर्म अधर्म आकाश इत्यादिकनिकै अनादि बन्ध है। वा पुद्गलनिमैं महास्कंधादिकनिकै अनादि बन्ध है। बहुरि पुरुषके प्रयत्नतैं बन्ध सो प्रायोगिक है। सो दोय प्रकार है–एक अजीवविषय, एक जीवाजीवविषय। तहां लाखकैं अर काष्ठकैं बन्ध सो अजीवविषय बंध है। बहुरि कर्मनोकर्मबंध है सो जीवाजीवविषय है। बहुरि सौक्ष्म्य दोय प्रकार है–अंत्य अर आपेक्षिक। तहां परमाणु तो अंत्य सूक्ष्म है। अर बेलतैं आमला सूक्ष्म है। आमलातैं बेर सूक्ष्म ऐसैं अन्यकी अपेक्षातैं सूक्ष्म सो आपेक्षिकसूक्ष्म है।

बहुरि स्थौल्य भी दोय प्रकार है–एक अन्त्य, दूजा आपेक्षिक। तहां जगद्व्यापी महास्कंध तो अन्त्यस्थौल्य है। अर बेर आमला बेल तालफल इत्यादिक अन्यकी अपेक्षातैं आपेक्षिक स्थौल्य है। बहुरि संस्थान दोय प्रकार है- एक इत्थंलक्षण, एक अनित्थंलक्षण। इहां संस्थान नाम आकृतिका है। तहां गोल त्रिकोण चौकोर लम्बा चौडा परिमण्डलरूप तो इत्थंलक्षणसंस्थान है। अर जो बादलेनिकीज्यों जिनका आकार आकृति नहीं कही जाय सो अनित्थंलक्षण वे।

बहुरि भेद हैं ते छह प्रकार हैं-उत्कर चूर्ण खंड चूर्णिका प्रतर अणुचटन ऐसैं छह प्रकार हैं। तहां जो करोंतादिकनिकी काष्ठादिकनिका चूर उतारना सो उत्करनाम भेद है। बहुरि यवांका गोहांका सातू वा कणिदिक सो चूर्ण नाम भेद है। अर घटादिकनिका कपाल खंडशर्करादिक होय सो खंड नाम भेद है। उडद मूंग चोंला इत्यादिकनिकी दालि सो चूर्णिकानाम भेद है। अर अभ्रपटलादिकनिका पुडत उतलै है सो प्रतर नाम भेद है। तप्त लोहपिंडादिकनिकौं लोहके घनादिककरि घात करिए तदि स्फुलिंगनिका निर्गमन होय सो अणुचटन नाम भेद है। ऐसैं छह प्रकार भेद कह्या।

बहुरि प्रकाशका विरोधी अन्धकार सो तम है। बहुरि प्रकाशके आवरणका कारण सो छाया है। सो दोय प्रकार है। तहां काचविषैं मुखका वर्णादिकनिका परिणमन दिखना सो तद्वर्णपरिणति नाम छाया है। बहुरि दूजी प्रतिबिम्ब स्वरूप ही है। बहुरि सूर्यविमानके निमित्ततैं उत्तमप्रकाश होय सो आतप कहिए। बहुरि चन्द्रकांतमणि अग्नि इत्यादिकका प्रकाश सो उद्योत कहिए। एते शब्दादिक कहे ते समस्त पुद्गलकी पर्याय हैं। बहुरि सूत्रमैं "च" शब्द कह्या तातैं प्रेरणा अभिघात आदि भी होंय ते पुद्गलके विकार हैं तिनकाहू समुच्चय च शब्दकरि होय है। तैसैं ही औरहू अनेकप्रकार पुद्गलका पर्याय जानना।

बहुरि इहां केई अन्यमती शब्दकों आकाशका गुण मानैं हैं, सो अप्रमाण है। जातैं शब्द मूर्तिक है आकाश अमूर्तिक है सो शब्द आकाशका गुण कैसैं होय। बहुरि शब्दका मूर्तिकपणा साक्षात् है जातैं शब्दकों कर्णइन्द्रियकरि ग्रहण करिए है तथा हस्तादिकरि रोकिए है। भीती इत्यादिकरि रुकै है। पवनादिक मूर्तिकवस्तुनिकरि तिरस्कार होयहै। तातैं शब्द है सो पुद्गलद्रव्यका पर्याय है मूर्तिक है यह प्रमाणसिद्ध है। पुद्गल स्कंधनिकै परस्पर भिडनेतैं शब्दपर्याय प्रगट होय है॥ अब पुद्गलनिमैं भेद कहै हैं—

अणवः स्कंधाश्च ॥ २५ ॥

अर्थ—पुद्गलद्रव्यके अणु अर स्कंध ए दोय भेद हैं। एक प्रदेशमात्रहीमैं स्पर्शादिक गुणनिकरि निरन्तर परिणमैं है तातैं अणु कहिए है। सूक्ष्मपणातैं आप ही आदि आप ही मध्य आप ही अन्त ऐसा सूक्ष्म

अविभागी जाका विभाग नहीं होय सो परमाणु है। अर जो स्थूलपणाकरि ग्रहण निक्षेपणादि व्यापारकूं प्राप्त होय सो स्कन्ध है। अर ग्रहण निक्षेपण॥८६ व्यापारक योग्य नहीं होय ऐसैं सूक्ष्म परिणमनरूपहू स्कन्ध होय हैं। परमाणुविषैं रूक्ष सचिक्कणमैंतैं एक गुण होय अर शीत उष्णमैंतैं एक ऐसे दोय गुण तो स्पर्शके हैं। अर एक रस एक गन्ध एक वर्ण ऐसैं पांच गुणसहित होय है।

जातैं परमाणु निरवयव है याकै अंश नाहीं। जाकै अवयवसहितपणा होय ऐसे मातुलिंगादि फलके अनेक रसपणा देखिए है। मयूरादिकनिके अनेकवर्णपणा देखिए हैं। अनुलेपनादिकनिके अनेक गन्धपणा देखिए है। परमाणु अवयवरहितही हैं यातैं रस गन्ध वर्ण इनका एकपणा ही है। अर स्पर्शके दोय ही भेद हैं। जातैं हलका भारी नरम कठोर ए स्कन्धके विषय हैं तातैं परमाणुमैं नहीं हैं।

बहुरि द्व्यणुकादि बहुत परमाणुके मिलनरूप स्कन्ध हैं ते स्पर्श रस गन्ध वर्ण गुणनिसहित अनेक प्रकार हैं। ऐसैं पुद्गलद्रव्यके अणु स्कन्ध रूप दोय भेद जानने। यद्यपि द्व्यणुकादिक तथा स्पर्श रस गन्ध वर्णादिककरि अनन्तभेदरूप हैं तथापि इन दोऊ भेदनिमैं गर्भित हैं॥ अब स्कन्धनिकी उत्पत्तिके हेतु कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

भेदसंघातेभ्यः उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥

अर्थ—पुद्गलनिके स्कन्ध हैं ते भेदतैं तथा संघाततैं उपजैं हैं। बाह्य अभ्यन्तर निमित्तके वसतैं स्कंध विदारे जाय सो भेद है। बहुरि न्यारे न्यारे होंय तिनका एकपणा सो संघात है। इहां भेद अर संघात दोऊनिकै बहुवचन है तातैं तीसरा भेद जो भेद अर संघात दोऊनितैंहू स्कन्ध उपजै है। तहां दोय वा तीन च्यार इत्यादि संख्यात असंख्यात अनन्त परमाणु मिलि स्कन्ध होय है। या केई स्कन्धनिमैं कोई स्कन्ध वा परमाणु मिलि स्कन्ध होय है ऐसैं संघाततैं स्कन्धनिकी उत्पत्ति कही। अर तैसैं ही स्कन्धके भेद होतैं दोय परमाणुका स्कन्धपर्यंत स्कन्ध उपजै हैं।

बहुरि ऐसैं ही कोई स्कन्धका भेद होय, कोई अन्य स्कन्धका मिलना होय ऐसैं भेद संघाततैं भी

स्कन्ध उपजै हैं ॥ अब अणुकी उत्पत्तिका नियमकै अर्थि सूत्र कहै हैं—

भेदादणुः ॥ २७ ॥

अर्थ—परमाणु हैं सो भेदहीतैं उपजै हैं, संघाततै नहीं उपजै हैं ॥ अब इहां कोऊ कहैं-जो संघाततैं ही स्कंधकी उत्पत्ति होय है फेरि भेदसंघातका ग्रहण करना अनर्थक है ऐसैं कहतैं इनका ग्रहण करनेका प्रयोजन जनावनेकूं सूत्र कहै हैं—

भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥ २८ ॥

अर्थ—इंद्रियगोचर जो स्कन्ध होय हैं सो भेद संघात दोऊनितैं होय हैं। अनन्तपरमाणुनिका स्कंध है सो कोऊ स्कन्ध चक्षु इंद्रियकै गोचर होय कोऊ स्कन्ध चक्षु इंद्रियगोचर नाहीं होय। सो कैसैं नेत्र-इंद्रियकै गोचर होय ? इस हेतुतैं " भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः " ऐसा सूत्र कह्या है। केवल भेद ही तै नेत्र इंद्रियकै गोचर नहीं होय हैं। भेद संघात दोऊनितैं होय हैं। सो ही कहिए है।

जो सूक्ष्मपरिणमनरूप स्कन्ध है ताका भेदकूं होतैहू अपने सूक्ष्मपरिणामकूं नांहीं छांडै है तदि इंद्रियनिके ग्रहणमैंहू नाहीं आवै है। अर जब वह सूक्ष्मपरिणम्या स्कन्ध अन्य स्कन्धमैं संघातरूप होय मिलै तब सूक्ष्मपणाके परिणामकूं छांडि स्थूलपणाको प्राप्त होय चक्षु इंद्रियकै गोचर होय है, इंद्रियनिकरि ग्रहण करनेयोग्य होय है ॥ अब द्रव्यका लक्षण कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

सत् द्रव्यलक्षणं ॥ २९ ॥

अर्थ—द्रव्यका लक्षण सत् है, जो सत् है सो ही द्रव्य है। यह सामान्य अपेक्षाकरि द्रव्यका लक्षण है। जातैं सर्व द्रव्य सत्मय है। जो सत है सो द्रव्य है। इहां ऐसा विशेष जानना। जो सत्का भाव ताही सत्ता कहिए वा सत्त्व कहिए। सत् नाम अस्तित्वका है। जो वस्तु है सो सर्वथा नित्यपणा करिकै नहीं है अर सर्वथा क्षणिकपणा करिकै नहीं हैं। सर्वथा नित्य ही होय तो क्रमतैं होते जे वस्तुमैं अनेक भाव

तिनका अभावतैं विकारवानपणा कैसैं होय अर सर्वथा क्षणिक जो क्षणविनाशीक ही मानिये तो यो वस्तु जो पूर्वैं था सो ही है ऐसा प्रत्यभिज्ञानका अभाव होय तदि वस्तुके एकसन्तानपणा काहैतैं होय तातैं प्रत्यभिज्ञानका कारणभूत कोऊ स्वरूप करिकै तो वस्तु ध्रुवपणाकूं अवलम्बन करै है। अर कितने क्रमतैं प्रवर्त्तत स्वरूपकरि नष्ट होता, अर उत्पन्न होता सन्ता एककालविषै निश्चयथकी उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप तीन अवस्थाकूं धारण करता वस्तुकूं सत् मानना योग्य है।

ऐसैं सत वस्तु तीनरूप है। याहीतैं सत्ताकूंहू उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूप मानना योग्य है। जातैं भावकै अर भाववान्कै कथंचित् एकस्वरूपपणा है। अब जो यो सत्ता है सो त्रिलक्षणरूप समस्त वस्तुके स्वरूपमैं सदृशपणाकूं कहै हैं। जो यो सत् है। ऐसैं समस्त त्रिलक्षणरूप वस्तुकूं सत् कहै हैं तातैं एक है। बहुरि त्रिलक्षणरूप समस्त पदार्थनिकूं जो सत् ऐसा नाम कहिए है वा सत्पणाकी प्रतीत करिये है तिनका मूल एक सत्ता है तातैं या सत्ता सर्वपदार्थस्थिता है। बहुरि समस्त वस्तुका स्वभाव जे उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप त्रिलक्षण स्वभाव तिनकरि सहित व्यावर्त्तै है तातैं या सत्ता विश्वरूपा है।

बहुरि द्रव्यनिमैं पर्यायनिकी अनन्त व्यक्ति हैं ते समस्त व्यक्ति त्रिलक्षणरूप हैं। तिनतैं सत्ता जानिये है। यातैं या सत्ता अनन्त पर्याय है। ऐसैं या सत्ता है तोहू सर्वथा ऐसी ही एकांततैं नहीं है। अपना प्रतिपक्षीकरि सहित है, कथंचित् सत्ता कथंचित् असत्ता कथंचित् त्रिलक्षणा कथंचित् अत्रिलक्षणा कथंचित् एका कथंचित् अनेका कथंचित् एकपदार्थस्थिता कथंचित् सर्वपदार्थस्थिता कथंचित् एकरूपा कथंचित् विश्वरूपा कथंचित् एकपर्याया कथंचित् अनेकपर्याया ऐसैं सत्ताकूं अनेक भेदरूप कहै हैं॥

सत्ता दोय प्रकार है—एक महासत्ता, एक अवांतरसत्ता। तिनमैं समस्त सत्पदार्थनिका समूहमैं व्यापनेवाला जो सदृश अस्तित्व ताकी कहनेवाली सो तो महासत्ता है। जाकरिकै घट पट स्तम्भ पृथ्वी आकाश जल स्थल जीव अजीव समस्त द्रव्य सत् कहावै हैं। जो योभी सत् योभी सत् समस्त सत्रूप ही है सो तो महासत्ता है। अर वस्तुवस्तुप्रति नियमतैं भिन्न भिन्न अपने अपने स्वरूपके अस्तित्वको सुचावनेवाली

अवांतरसत्ता है। तिनमैं महासत्ता तो अवांतरसत्ताकी अपेक्षा असत्ता है। जातैं महासत्ता जो समस्त वस्तुकी सत्ता सो एक वस्तुकी सत्ता कैसैं होय। जो समस्तवस्तुकी सत्तारूप जो महासत्ता एकवस्तुकी सत्ता होजाय तो समस्तवस्तु एकवस्तुरूप होजाय सो होय नहीं तातैं अवांतरसत्ताकी अपेक्षा महासत्ता असत्ता है। अर अवांतरसत्ता महासत्तारूपकरि असत्ता है।

जातैं एकवस्तुकी सत्ता महासत्ता कैसैं होय। जो एक वस्तुकी सत्ता ही महासत्ता होजाय तो समस्त वस्तु एक होजाय। तातैं सत्तातैं प्रतिपक्षी कथंचित् असत्ता है। बहुरि जिस स्वरूपकरि उत्पाद है सो तिस स्वरूपकरि उत्पाद ही एक जाका लक्षण है। अर जिस स्वरूपकरि विनाश है तिस स्वरूपकरि विनाशैकलक्षण ही है।

अर जिस स्वरूपकरि ध्रौव्य है तिस स्वरूपकरि ध्रौव्यैकलक्षण है। जैसैं उत्पाद है सो घटपटपणाकरिकै ही है, पिंडपणाकरिकै नहीं है। अर मृत्तिकापणाकरिकै नहीं है। अर विनाश है सो पिंडपणाकरिकैं ही है। घटपणाकरिकै नहीं है। अर मृत्तिकापणाकरि नहीं है। अर ध्रौव्य है सो मृत्तिकापणाकरिकै ही है, घटपणा करिकै पिंडपणाकरिकै नहीं है। ऐसैं उत्पद्यमान उच्छिद्यमान अवतिष्ठमान जे वस्तुके स्वरूप तिनकै प्रत्येक त्रिलक्षणपणाको अभाव है यातैं कथंचित् अत्रिलक्षणपणा त्रिलक्षणपणाका प्रतिपक्षीहू वस्तुकै है।

बहुरि जो एक वस्तुका स्वरूपकी सत्ता है सो अन्य वस्तुका स्वरूपकी सत्ता नहीं होय है तातैं एकपणाका प्रतिपक्षी अनेकपणा है। बहुरि पदार्थ पदार्थप्रति सत्ताका जुदा जुदा नियम है, कोऊ पदार्थकी सत्ता कोऊ अन्य पदार्थकी सत्तासैं मिलै नहीं तातैं ही पदार्थनिकै जुदाजुदापणाका नियम है तातैं सर्वपदार्थस्थितिका प्रतिपक्षी एकपदार्थस्थितिपणा है। बहुरि जिस पदार्थका जो रूप है तिस रूपकी सत्ता तिस पदार्थहीमैं है अन्यमैं नहीं। तातैं एकरूपपणा विश्वरूपपणाका प्रतिपक्षी है।

बहुरि येकयेक वस्तुकैं अनन्तपर्याय हैं तिनमैं येकयेक पर्यायप्रति सत्ताका जुदा जुदा नियम है।

यातैं ही पर्यायनिकैं भिन्नता है। तातैं कथंचित् एकपर्यायपणा अनन्त पर्यायका प्रतिपक्षी जानना। यैसैं सामान्यविशेषस्वरूपका प्ररूपणमैं समर्थ यैसा दोऊ नयनिके आधीन समस्त कथन निर्दोष है। नयनिकूं जानेविना वस्तुका यथावत् जानना नहीं होय तदि एकांत ग्रहणकरि विपरीतताकूं प्राप्त होय है॥ अब सत्का लक्षण कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ ३० ॥

अर्थ—उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनपणाकरि युक्त है सो सत् है। अपनी जातिकों नाहीं छांडते जे चेतन अचेतन द्रव्य तिनकै बाह्य अभ्यन्तर निमित्तके वशतैं येक परणतितैं अन्य परणतिको प्राप्त होना सो उत्पाद है। जैसैं मृत्तिका द्रव्यविषैं पिंडपर्यायका नाश होना, अर घटपर्यायका उपजना ऐसैं उत्पाद जानना। तथा एक जातिमैं विरोध रहित क्रमतैं होता जो भावनिका सन्तान ताकै विषैं पूर्वभावका अभाव होना सो विनाश है ताहीकूं समुच्छेद कहिए हैं व्यय कहिए हैं। अर उत्तरभावका प्रगट होना सो उत्पाद है। अर पूव भावका नाश अर उत्तर भावका उत्पाद होतैंहू अपनी जातिका नाहीं छांडना सो ध्रौव्य है।

ए उत्पाद व्यय ध्रौव्य सामान्यतैं तो अभिन्न हैं, वोही एकद्रव्य है, द्रव्यतैं भिन्न नहीं है। अर विशेषकी अपेक्षा समस्त पर्यायक्रमवर्ती जुदी जुदी हैं परस्पर मिलै नहीं तिसकरि भिन्न हैं। द्रव्यविषैं तीनों धर्म युगपत् एक कालमैं पाइये है, द्रव्यका स्वभाव है याहीतैं द्रव्यका लक्षण है।

जातैं जो उत्तरपर्यायका उपजना सोही पूर्वपर्यायका नाश होना है अर जो पूर्वपर्यायका नाश होना सोही उत्तरपर्यायका उत्पाद है अर द्रव्य है सो उत्पादमैंहू वेही द्रव्य है अर व्ययमैंहू वेही द्रव्य है अन्य नाही भया, अर उत्पाद व्यय द्रव्यमैं समय समय होइ हैं जातैं सर्वद्रव्य परिणामी हैं, परिणमन-विना कोऊ समयमैंहू द्रव्य नहीं हैं। तातैं जो सत् लक्षण द्रव्य है सो उत्पाद ध्रौव्यस्वरूप ही है।

बहुरि ए तीनों द्रव्यमैं परस्पर सापेक्ष ही हैं। इनकै जो परस्पर अपेक्षा नहीं होय तो वस्तु ही सिद्ध नहीं होय। जो केवल उत्पाद ही मानिए तो नवीन वस्तुका उपजना ठहरै सो अत्यन्त असत् ताका

उपजना सम्भवै नहीं। पूर्वै जो वस्तु सत्रूप होयगा ताके ही अन्य पर्यायका उपजना होयगा अर जो पूर्वै सर्वथा असत् था अर फिर नवीन उपज्या मानिए तो मृत्तिकाविना घटका उत्पाद अर सुवर्णविना कुण्डलका उपजना होगगा सो सर्वथा अवस्तुका उत्पाद होना नहीं है। पर्याय नवीन उपजै हैं अर विनसै हैं। द्रव्यका स्वभावकरि उत्पाद विनाश नहीं है।

बहुरि सर्वथा वस्तुका विनाश ही मानिए तो तिसका फेर उपजना नहीं ठहरैगा, केवल शून्यका प्रसंग आवैगा। घटका विनाश होतें माटीका विनाश अर कुण्डलका विनाश होतें सुवर्णका नाश ऐसें प्रत्यक्ष दोष आवै। अर जो एकांतकरि ध्रौव्य ही मानिए तो वस्तुमैं उत्पाद विनाश प्रत्यक्ष देखिये है, तिस समस्त व्यवहारकै असत्पना आवै तब व्यवहारका लोप होय। तथा उत्पाद व्यय रूपहीकूं एकांत करि सत् कहिए तो पूर्वापरका जोडरूप नित्यभावविना वस्तुका अभाव भया, तदि उत्पाद व्यय कौनके होय, समस्त व्यवहारका लोप होय, तातैं सत् है सो उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है। अथवा आगैं सूत्र कहैंगे जो गुण पर्याय द्रव्यका लक्षण है।

अनेकांतस्वरूप वस्तुकै अन्वयी जोडरूप तो गुण है। अर व्यतिरेकी पर्याय हैं। जैसैं मृत्तिकाविषैं स्पर्श रस गन्ध रूप ये तो गुण हैं, अर पिंड घट कपाल खण्ड शर्करादिक पर्याय हैं। स्पर्श रस गन्ध वर्ण गुण हैं ते तो मृत्तिकाके साथि ही घट कपाल खण्डादिक समस्त पर्यायनिमैं पाईए है। तातैं स्पर्शादिक गुण अन्वयी हैं। अर घट कपालादिक पर्याय भिन्नभिन्न कालमैं पाइए है। जिस कालमैं पिंडपर्याय है तिस कालमैं घटादिक अन्य पर्याय नहीं अर घटपर्याय है तिसमैं पिंडादिक पर्याय नहीं तातैं पर्याय व्यतिरेकी हैं। अर द्रव्यतैं गुण पर्याय भिन्न नहीं, गुणपर्यायात्मक ही द्रव्य है। गुण हैं ते तो द्रव्यमें युगपत प्रवर्तैं हैं। पर्याय हैं ते क्रमकरि प्रवर्तैं हैं। तातैं गुणपर्याय हैं ते द्रव्यका स्वभावभूत हैं, तातैं द्रव्यका लक्षणपणाकूं धारण करै हैं। ऐसैं द्रव्यके तीन लक्षण कहै।

एक द्रव्यका लक्षण सत् कह्या। एक उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तपणा कह्या। एक गुणपर्यायवान्पणा

कह्या। इन तीन लक्षणनिकै मध्य एककूं कहनै सन्तै अन्य दोय लक्षण अर्थतैं ही आजाय हैं। जो सत् लक्षण कहिए तो उत्पादव्ययध्रौव्यपणा अर गुणपर्यायवानपणा स्वयमेव आवै है। अर उत्पादव्ययध्रौव्यवान कहिए तहां सतपणा अर गुणपर्यायवानपणा स्वयमेव आवै है। अर गुणपर्यायवानपणा तहां सतपणा अर उत्पादव्ययध्रौव्यपणा आप ही आवै है। जो सत है सो नित्यानित्यस्वभाव है यातैं ध्रुवपणा अर उत्पादव्ययपणाकूं प्रगट करै है।

बहुरि जो सत् है सो ध्रुवस्वरूप गुणनिकरि अर उत्पादव्ययस्वरूप पर्यायनिकरि सहित अपना एकपणाकूं कहै ही है। बहुरि उत्पाद व्यय ध्रौव्य जे हैं तेहू नित्य अनित्य है स्वरूप जाका ऐसा परमार्थभूत सतकूं जणावै है, अर अपने स्वरूपके लाभका निमित्त गुणपर्यायनिकूंहू विस्तारै है। जातैं उत्पादव्यय ध्रौव्यरूप होयगा सो नित्य अनित्यरूए ही होयगा। अर गुणनिविना ध्रौव्यपणा कैसैं होय। अर पर्यायनिविना उत्पाद व्यय कौनका होय तातैं गुणपर्यायवानहू होय ही।

बहुरि गुणपर्याय हैं ते अन्वयव्यतिरेकीपणातैं ध्रौव्य उत्पाद विनाशकूं अर नित्य अनित्य स्वभाव सतकूं जणावै ही हैं। यातैं एकलक्षण कहनेतैं स्वयमेव तीनू लक्षण आवै हैं।

बहुरि उत्पाद अर विनाश द्रव्यकै नहीं है। जातैं द्रव्य तो सहप्रवृत्तगुण अर क्रमप्रवृत्तपर्याय इनिका सद्भावरूपकरि अनादिनिधन है। कदाचित् गुणपर्यायका द्रव्यमैं नाश नहीं है तातैं द्रव्य तो उपजै नहीं अर विनसै भी नहीं। अर द्रव्य अपने सहभावी गुणनिकरि ध्रौव्य है तोहू क्रमप्रवृत्तरूप पर्यायनिकरि उपजैहू विनशै है। तातैं द्रव्यार्थिकनयकरिकै तो द्रव्यकै उत्पादहू नहीं, अर विनाशहू नहीं। अर पर्यायार्थिकनयकरि उत्पादसहित अर विनाशसहित द्रव्यकूं जानना योग्य है।

बहुरि कथंचित द्रव्यकै अर पर्यायकै भेद नहीं है। द्रव्यपर्याय एक ही हैं। जैसैं दुग्ध दधि नवनीत घृत इनि पर्यायनिविना गोरसनामा द्रव्य कोऊ कहावै नहीं है, गोरस होयगा सो दुग्ध दधि नवनीत घृत इनि पर्यायनिमैं ही होयगा इन विना कहूं नहीं, तैसैं पर्यायविना द्रव्य है ही नहीं।

१०

॥२१६॥

बहुरि जैसैं गोरसविना दुग्ध दधि नवनीत घृत कहूँ है नाहीं तैसैं द्रव्य विना पर्याय कहूं है नाहीं। तातैं द्रव्यकै अर पर्यायनिकै नयके वशतैं कथंचित भेद होतै हूं द्रव्य अर पर्यायका अस्तित्व भिन्न नहीं है, अस्तित्व एक ही है। यातैं द्रव्यकै अर पर्यायके वस्तुपणाकरि भेद नहीं, वस्तु एक ही है। ऐसैं ही द्रव्यकै अर गुणकैहू भेद नहीं है। जैसैं पुद्गलद्रव्यतैं भिन्न स्पर्श रस गन्ध वर्ण नहीं हैं तैसैं द्रव्य विना गुण नहीं है। अर जैसैं स्पर्श रस गन्ध वर्णतैं जुदा पुद्गलद्रव्य नहीं सम्भवै है तैसैं गुणविना द्रव्य नहीं संभवै है।

तातैं द्रव्यकै अर गुणनिकै कथंचित् भेद होतैहू अस्तित्व एकका नियम है तातैं वस्तुपणाकरि अभेद है। यहां द्रव्यकै नयका वशतैं कही सप्तभंगी है। स्यादस्ति द्रव्यं, स्यान्नास्ति द्रव्यं, स्यादस्ति च नास्ति च द्रव्यं, स्यादवक्तव्यं च द्रव्यं, स्यादस्ति अवक्तव्यं च द्रव्यं, स्यान्नास्ति च अवक्तव्यं च द्रव्यं, स्यदस्ति च नास्ति च अवक्तव्यं च द्रव्यं। ऐसैं द्रव्यविषै सप्तभंग कहे। इहां स्यात् शब्दका अर्थ तो सर्वथापनाका निषेध करनेवाला है, अर अनेकांतका उद्योतक है। कथंचित् अर्थमैं स्यात् शब्दका निपात है तहां अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि कहिये तदि तो द्रव्य अस्तिस्वरूप है। अर परद्रव्य क्षेत्र काल भावकरि कह्या हुवा द्रव्य नास्तिस्वरूप है, अर स्वद्रव्य क्षेत्र काल भावकरिकै अर परद्रव्य क्षेत्र काल भावकरिकै क्रमतैं कह्या हुवा द्रव्य अस्ति नास्तिरूप है।

बहुरि स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव अर परद्रव्य क्षेत्र काल भावकरि युगपत् कह्या द्रव्य अवक्तव्य है। बहुरि स्वद्रव्य क्षेत्र काल भावकरिकै अर युगपत् स्वपरद्रव्य क्षेत्र काल भावकरिकै कह्या द्रव्य अस्तिअवक्तव्य है। बहुरि परद्रव्य क्षेत्र काल भावकरिकै अर युगपत् स्वपरद्रव्य क्षेत्र काल भावकरि कह्या हुवा द्रव्य नास्ति अवक्तव्य है। बहुरि स्वद्रव्य क्षेत्र काल भावकरिकै अर परद्रव्य क्षेत्र काल भावकरिकै अर युगपत स्वपरद्रव्य क्षेत्र काल भावकरि कह्या हुवा द्रव्य अस्तिनास्तिअवक्तव्यरूप है। ऐसैं नयविभागतैं भंग जानना।

बहुरि जो सत्स्वरूप द्रव्य है ताका द्रव्यपणाकरि नाश नहीं है। अर असत् जो अभावरूप अन्यद्रव्य ताका द्रव्यपणाकरि उत्पाद नहीं है। जातैं जो सत्वस्तु है ताका सर्वथा अभाव कदाचित् नहीं होय

है। अर असत् जो अभाव सो कहांतैं उपजै ? नहीं उपजै। यातैं द्रव्य है ते सत्का उच्छेद अर असत्का उत्पादविना ही गुणपर्यायनिमैं विनाश अर उत्पादकूं आरम्भ है।

जैसैं घृतकी उत्पतिविषै विद्यमान गोरसका नाश नहीं है, अर गोरसविना अन्य सतअर्थका उत्पाद नहीं है। तो काहा है। सत्का उच्छेद अर असत्का उत्पादकूं नहीं प्राप्त होता जो गोरस ताके स्पर्श रस गन्ध वर्णादिक परिणामी गुणनिकै विषै पूर्वअवस्थाकरि विनसता अर उत्तरअवस्थाकरि प्रगट होतामैं नवीन पर्याय विनसै है अर घृत पर्याय उपजै है। गोरस तो उपजै नहीं अर विनसै नहीं। ऐसैं समस्तद्रव्यनिमैं जानना।

बहुरि जीवादिक तो द्रव्य हैं, अर चेतनादिक गुण हैं। अर सुर नर नारक तिर्यंचादिक जीवकी बहुत प्रकार पर्याय हैं। तहां अगुरुलघु गुणकी हानिवृद्धिकरि रची हुई तो शुद्धपर्याय है। अर जीवकै सुर नर नारक तिर्यक्कू लक्षण जे पर्याय हैं ते परद्रव्य जो पुद्गलकर्म तिसके संयोगतैं रची अशुद्धपर्याय है। समयसमयप्रति संभवती जो अगुरुलघुगुणकी हानिवृद्धिकरि रची स्वभावपर्यायकी परिपाटीकूं नहीं विच्छेद करनेवाली ऐसी कर्मकी उपाधिसहित मनुष्यपर्यायकरि तो जीव विनसै है। अर उपाधिसहित देवादिक पर्यायकरि उपजै है।

तहां मनुष्यपणाकरि नाश होतै जीवपणाकरि नाश नहीं होय है। अर देवादिपर्यायकरि उत्पन्न होतै जीवपणाकरि नहीं उपजै है, सत्का नाशविना अर असत्का उत्पादविना ही पर्याय तैसैं प्रवर्तै है। जो पूर्वपर्यायका नाश अर उत्तरपर्यायका उत्पादरूप दोऊ अवस्थाकूं अङ्गीकार करता जीवद्रव्य उपजता विनशता देखिए है। परन्तु उत्पाद विनाश दोऊ अवस्थामैं व्यापी अपना एक स्वभाव तिसकरि विनसै नहीं है अर उत्पन्न नहीं होय है। अर द्रव्य है सो पूर्वपूर्व पर्यायका नाश अर उत्तरउत्तर पर्यायका उत्पाद ऐसैं विनाश उत्पाद दोऊ धर्म धारै है। परन्तु द्रव्यतैं भिन्न नहीं है तातैं पर्यायनिकरि सहित एकवस्तुपणातैं जीवद्रव्य उपजै है अर विनसै है तोहू सर्वकालमैं जीवद्रव्य अविनष्ट है अर अनुत्पन्न है।

अर देव मनुष्यादिक पर्याय हैं ते क्रमवर्ती हैं। तातैं अपना समय व्यतीतकरि विनसैं हैं अर उपजै हैं। यातै सत्का विनाश नहीं है अर असत्का उत्पाद नहीं है। अर जो ऐसा होइ जो जीव मरै है सो ही उपजै अर जो उपजै है सोही मरै है तदि तो सत्का विनाश होय अर असत्का उत्पाद होय। अर जो देव उपजै है अर मनुष्य मरै है ऐसा कहिये तो अपने कालकी मर्यादाप्रमाण देव मनुष्यादिक पर्यायकूं रचनेवाला देव मनुष्य गति नामा नामकर्मकै तितना प्रमाणमात्रपणा है। तातैं विरोध नहीं है।

जैसैं एक बडा बासविषै अपने प्रमाणकौ लिए अनेक पेली अपना अपना स्थानविषै तो सद्भावकूं धरै हैं। अर अन्य पेलीविषै आप नहीं प्राप्त होतीं। परस्थानमैं अपना अभावकूं धारै हैं। अर वांस है सो समस्त पेलीनिमैं अपना सद्भावकूं धारै है तोहू अन्य पेलीका सम्बन्धकरि अन्य पेलीमैं सम्बन्धका अभावतैं अभावकूं भी धारण करै है। तैसैं अमर्यादरूप त्रिकालमैं तिष्ठता एक जीवद्रव्यकै क्रमतै वर्त्तती अनेक मनुष्यत्वादि पर्याय हैं, ते पर्याय अपने अपने प्रमाणकूं लीये हैं यातैं अन्यपर्यायमैं नहीं गमन करती अपने अपने स्थानमैं तो सद्भावकूं धारै हैं अर परस्थानविषै अभावकूं धारै हैं। अर जीवद्रव्य है सो समस्तपर्यायनिविषै अपना सद्भावकूं धारै है तोहू अन्यपर्यायका सम्बन्धकरि अन्यपर्यायमैं सम्बन्धको अभाव है यातैं अभावकूं धारण करै है।

भावार्थ—जैसैं एक जीवके मनुष्य देव नारक तिर्यक् अनेक पर्याय होय हैं तिन समस्त पर्यायनिमैं जीव एक ही प्रवर्तै है। परन्तु मनुष्य पर्यायमैं तो देव नारकादि पर्यायका अभाव है अर देव नारकादिकनिमैं मनुष्यपर्यायका अभाव है। मनुष्यपणाकरि देवपर्यायमैं नहीं देवपर्यायकरि मनुष्यपर्यायमैं नहीं। ऐसैं कथंचित् सद्भाव कथंचित् असद्भाव जानना।

अब सिद्धपर्याय कैसैं है सो कहै हैं। जैसैं थोरे काल है सम्बन्ध जाका ऐसा नामकर्मका भेद जो देवगत्यादिकर्म तिसकरि रची जो जीवकै देवत्वादिक पर्याय होय हैं अर जब देवगतिनामकर्मका उदय होय चुकै तदि पूर्वै कभी नहीं भई ऐसी मनुष्यादिक पर्याय उपजै हैं सो असत्की उत्पत्ति तो नहीं भई।

जीव तो वोही है नवीन नहीं उपज्या। तैसैं ही दीर्घकाल है सम्बन्ध जाका ऐसा ज्ञानावरणादिक कर्म-सामान्यका उदयकरि रची संसारीपणाकी पर्याय जीवकै अनादितैं है।

अब किस ही भव्यजीवकै संसारीपणाका कारण अष्टकर्मका उदय नाशकूं प्राप्त भया तदि संसारी-पणाकी पर्याय नष्ट भई, अर पूर्वै नहीं भई थी ऐसी सिद्धत्व पर्याय उत्पन्न भई। सो असत्की उत्पत्ति नहीं है। पूर्वै जो जीव अष्टकर्मकरि लिप्त था सो संसारी था सो ही जीव अष्टकर्मका अभाव किया तदि सिद्ध भया है। बहुरि द्रव्य है सो सदाकाल विनसे नहीं है अर उत्पन्न नहीं होय है। तातैं जीवकै द्रव्यरूपकरि नित्यपणा कह्या है। अर देवादिपर्यायकरि प्रगट होतै तिस ही जीवकै भावका कर्त्तापणा कह्या। अर मनुष्यादि पर्यायकरि विनसता तिस ही जीवकै अभावका कर्त्तापणा कह्या।

अर विद्यमान देवादिपर्यायका उच्छेदकूं आरम्भ करता तिस ही जीवकै सद्भावका अभावको कर्त्तापणो उत्पन्न होय है, अर तिस ही जीवकै अविद्यमान जो मनुष्यादिक पर्यायका उत्पादका आरम्भ कर्त्ताके अभावके भावका कर्त्तापणा कह्या। ऐसैं यह समस्त कहना निर्दोष है। द्रव्यपर्यायनिकै मध्य एककूं गौण एककूं मुख्यकरि व्याख्यान सिद्धांतमैं है यातैं सो ही कहिये हैं।

जिस अवसरमैं पर्यायकूं तो गौण करिये अर द्रव्यकूं मुख्यकरि कहिये तहां तो जीव उपजैहू नहीं है, अर विनसैहू नहीं है। अर जिस अवसरमैं द्रव्यको गौण करिये अर पर्यायकूं मुख्य करिये तदि प्रगट भी होय है। अर विनसैहू है। ऐसैं यो समस्त प्रसाद अनेकांतको है जो ऐसा विरोधकूं नहीं प्राप्त होय है॥ अब नित्यपणा कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

तद्भावाव्ययं नित्यं ॥ ३१ ॥

अर्थ—तद्भावकरि अव्ययरूप है सो नित्य है। जो पहिले समयमैं था सो ही दूसरे कालमैं होय सो तद्भाव है ताहीकूं नित्य कहिए। जो पूर्वै था सो ही यह वर्तमानमैं है ऐसा जोडरूप जो वस्तुमैं भाव सो तद्भाव है। याहीकूं प्रत्यभिज्ञान कहिये। जो तद्भावकरि अव्यय कहिये अविनाशी सो नित्य जानना।

सर्वथा नित्य कहै नित्यकूटस्थ ठहरै। कूटस्थकै पर्याय पलटनेका अभाव है। तदि संसार तथा संसारके अभावका कारणके विधानमैं विरोध आवै।

इहां तर्क—जो सो ही वस्तु नित्य सो ही अनित्य ऐसैं कहनेमैं तो विरोध है। ऐसैं विरोधके अभाव करनेकूं सूत्र कहै हैं—

अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जाकूं मुख्य करिये ताकूं अर्पित कहिये। अर जाकूं गौण करिये ताकूं अनर्पित कहिए। इनि दोऊ नयनिकरि अनेक धर्मस्वरूप वस्तुका कथन सिद्ध होय है। वस्तुमैं अनेक धर्म हैं। तहां वक्ता जिस धर्मका प्रयोजनके बसतैं प्रधानकरि कहै सो अर्पित है। अर प्रयोजनविना जिस धर्मकी कहनेकी इच्छा नहीं करै सो अनर्पित है।

बहुरि ऐसैं नाहीं जो वस्तुमैं धर्म ही नहीं है। वस्तु तो अनेक धर्मस्वरूप है ही। परन्तु किसीकी धर्मकूं कहनेकी प्रधानता किसीकी अप्रधानता दोऊनिकरि सिद्धि होय है। जैसैं एक पुरुषमैं पिता पुत्र भ्राता मामा भाणजा इत्यादिक अनेक सम्बन्ध हैं ते अपेक्षातैं सिद्ध होय हैं। पुत्रकी अपेक्षा पिता कहिये पिताकी अपेक्षा पुत्र कहिए। भाईकी अपेक्षा भाई कहिए। भाणजाकी अपेक्षा मामा कहिए। अर मामाकी अपेक्षा भाणजा कहिये।

ऐसैं एक ही पुरुषमैं अनेक सम्बन्ध कहनेतैं कुछ विरोध नाहीं। तैसैं ही वस्तुकूं सामान्य अर्पणातैं नित्य कहिये, विशेष अर्पणातैं अनित्य कहिये यामैं विरोध नाहीं। बहुरि जे सामान्य विशेष हैं ते कथंचित् भेद अभेद कर व्यवहारकै कारण होय हैं। इहां सत् असत् एक अनेक नित्य अनित्य भेद अभेद तत् अतत् इत्यादि अनेक धर्मात्मक वस्तुके कहनेमैं अन्यमती विरोधादि दूषण बतावै हैं। ते वस्तुको स्वरूप जान्यो नहीं ते सर्वथा एकांती हैं, सर्वथा एकांतका सामर्थ्यतैं अनेकांतस्वरूप वस्तु कैसैं सधै? एकांती जैसैं कहै तैसैं दूषण आवै। निर्दोष वस्तुका स्वरूप नहीं साधि सकैं। स्याद्वाद बडा महिमालायक है बलवान् है यामैं विरोधादि दूषणका अवकाश नहीं है। निर्बाध वस्तुके रूपकूं साधै है।

अब इहां कोऊ कहै हैं—सत् है ताकै अनेक व्यवहारके आधीनपणा है यातैं सत्रूप पुद्गलस्कंधनिकी जो उत्पत्ति सो भेद संघाततैं है। परन्तु इहां ऐसा संदेह है जो द्व्यणुकादिलक्षण जो स्कंध सो संघात जो संयोग तातैं ही होय है कि और कछु विशेष निश्चय करिए है। तहां कहोगे जो पुद्गलनिका संयोग होतै जो एकत्व परिणमन होना यो ही जो बन्ध तातैं संघात उपजै है तो और पूछे हैं—जो अनेक पुद्गलनिका संयोग होतैहू कैइकनिकै बन्ध होय हैं केइक भिन्न ही रहै हैं। तिनकै बन्ध होनेका कारण कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

स्निग्धरूक्षत्वाद् बंधः ॥ ३३ ॥

अर्थ—स्निग्ध कहिए सचिक्कण अर रूक्ष कहिये रूखा इन दोऊपणातैं पुद्गल परमाणुनिके परस्पर बन्ध होय है। पुद्गलपरमाणुनिकै सचिक्कनपना तथा रूक्षपणातैं ही परस्पर बन्ध होय है। दोय आदि संख्यात असंख्यात अनन्त परमाणुनिका स्कंध होय है। इहां ऐसा जानना—पुद्गलनिमैं रूक्ष तथा सचिक्कण गुण होय है तहां केई परमाणु रूक्षरूप हैं केई सचिक्कणरूप है। तहां सचिक्कणपणाका अर रूक्षपणाका अविभागपरिच्छेद केई परमाणुमैं किसी अवसरमैं अधिक होजाय है किसी अवसरमैं घटिजाय है। षट्गुणी हानिवृद्धिका क्रमकरि रूक्षपणा सचिक्कणपणाकी अधिकना हीनता निरन्तर होय है।

इहां सचिक्कणपणाका वा रूक्षपणाका अविभागपरिच्छेद है तिनहीकूं गुण कहै हैं। परमाणुमैं सचिक्कणपणा वा रूक्षपणाका एक अविभागपरिच्छेदसे लेय अनन्तपर्यंत बढै हैं। अर एक परमाणुमैं अनन्त अविभागपरिच्छेदतैं घटै तो असंख्यात वा संख्यात वा दोइ तथा एक अंशपर्यंत रहै तथा सचिक्कण परमाणु रूक्ष होजाय हैं रूक्ष परमाणु सचिक्कण होय हैं। समयसमय परिणमन है, अर बाह्य द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकनिके निमित्ततैं परिणमैं है।

ऐसैं स्निग्धरूक्षपणा परमाणुमैं तथा स्कंधमैं जानना। जसैं जलमैं सचिक्कणता है तातैं छालीका दूधमैं, छालीका दूधतैं गौदूधमैं, गौके दुग्धतैं भैंसीके दुग्धमैं, यातैं घृतमैं, घृततैं तैलमैं सचिक्कणपणा अधिक अधिक पाइए है। तथा पांसु जो रज तिसमैं रूक्षपणा है तातैं शर्करामैं अधिक अधिक रूक्षपणा

है। तैसैं परमाणुहूमैं सचिक्कणपणाकी रूक्षपणाकी अधिकता अर न्यूनता अनुमान करना योग्य है। परमाणुमैं होय तदि ही स्कंधमैं होय। ऐसैं स्निग्धरूक्षपणातैं पुद्गलनिकै परस्पर बन्ध जानना ॥ अब बन्ध होनेमैं अन्य विशेष कहै हैं—

न जघन्यगुणानां ॥ ३४ ॥

अर्थ—जे जघन्यगुणसहित परमाणु हैं तिनकै बन्ध नहीं होय हैं। इहां परमाणुमैं स्निग्धताका वा रूक्षताका अविभागपरिच्छेद है ताहि गुण कहिए है। जिस परमाणुमैं स्निग्धताका वा रूक्षताका एक अविभागपरिच्छेद रहिजाय सो जघन्यगुण है। इहां एक अविभागपरिच्छेदकूं जघन्य कह्या है। जिसमैं एकगुण स्निग्ध रूक्षताका होय सो परमाणु द्वितीयादि संख्यात असंख्यात अनन्त गुणसहित स्निग्धपरमाणुकरिकै वा रूक्षकरिकै नहीं बन्धनै प्राप्त होय है ॥ और भी जिस गुणसहित नहीं बन्धै ताके कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

गुणसाम्ये सदृशानां ॥ ३५ ॥

अथ—गुण जे स्निग्धरूक्षताके अंश तिनकरि साम्य कहिए समान संख्यारूप ऐसैं सदृश कहिए रूक्षरूक्ष अर स्निग्धस्निग्ध ऐसे सदृश होय ते परमाणुहू बन्धकूं नहीं प्राप्त होय हैं। गुणकी समानता कहिए दोऊ परमाणुमैं गुणनिके अविभागपरिच्छेदरूप अंश समान होय तिन परमाणुनिके परस्पर बन्ध नहीं होय। जामैं दोयदोय वा तीन तीन वा च्यार च्यार ऐसैं असंख्यात अनन्तगुण स्निग्धता वा रूक्षताका समान होय तिनकै बन्ध नहीं होय है। अर सदृशका कहिए रूक्षरूक्षके स्निग्धस्निग्धकैहू बन्ध नहीं होय है। स्निग्धरूक्षकैहू नहीं होय है तो कौनकै बन्ध होय यातैं सूत्र कहै हैं—

द्व्यधिकादिगुणानां तु ॥ ३६ ॥

अर्थ—दोय गुणकरि अधिक होय तिनहीकै बन्ध होय अन्यकै नहीं होय। तुल्य जातीयकैहू होय अर अतुल्यजातीयकैहू होय। जिस परमाणुमैं दोय गुण स्निग्धताका होय तिसकै एक गुण स्निग्ध वा

दोय गुण स्निग्ध वा तीन गुण स्निग्ध परमाणुकरि बन्ध नहीं है। च्यारगुण स्निग्धताका जामैं होय ताकरि बन्ध है। बहुरि तिस द्विगुण स्निग्ध परमाणुकै पंच षट् सप्त अष्ट नव दश संख्येय असंख्येय अनन्त गुण स्निग्धकरि बन्ध नही है। ऐसैं ही त्रिगुण स्निग्ध परमाणुकै पंचमगुण स्निग्धसहित परमाणुकै बन्ध है। अन्य जे पूर्व उत्तर संख्यासहित स्निग्ध गुणधारक परमाणु तिनकरि बन्ध नही है।

बहुरि चतुर्गुण स्निग्धपरमाणुकै षड्गुण स्निग्ध परमाणुकरि बन्ध है। अर शेष पूर्वोत्तरकरि नहीं है। ऐसैं ही शेष अन्य परमाणुनिविषै भी दोय गुणकरि अधिक करिकैं ही बन्ध है अन्यकरि नहीं है। बहुरि तैसैं ही द्विगुण रूक्षके एक दोय तीन गुण रूक्षकरि सहित बन्ध नहीं है अर चतुर्गुण रूक्षकरि बन्ध है। तैसैं ही द्विगुण रूक्ष परमाणुकै पंचगुण रूक्षादिक उत्तरगुण तिन करिकैहू बन्ध नहीं है। ऐसैं ही त्रिगुण रूक्षादिक परमाणुनिकेहू द्विगुण अधिककरि बन्ध योग्य है। जैसैं समान जातीयमैं कह्या तैसैं भिन्न जातीयमैंहू बन्ध जानना। द्विगुण स्निग्धकै एक दोय तीन रूक्षगुणसहितनिकरि बन्ध नहीं है चतुर्गुण रूक्षकरिक बन्ध है, अर उत्तर पंचगुण रूक्षादिकरि बन्ध नाहीं है। ऐसैं ही त्रिगुण स्निग्धपरमाणुकै पंचगुण रूक्ष परमाणुकरिक बन्ध है। शेष पूर्वोत्तर गुणसहितनिकै बन्ध नहीं है।

ऐसैं संख्यात् असंख्यात् अनन्त गुणके धारक जे स्निग्ध रूक्ष परमाणु तिनकै सजातीयमैं वा विजातीयमैं दोऊ गुण अधिककरि ही बन्ध है अन्यकै नहीं। ऐसैं ही भगवान् सर्वज्ञ वीतरागदेव प्रत्यक्ष देख्या है। अन्य छद्मस्थनिकै सर्वज्ञ वीतरागका कह्या आगमतैं प्रमाण जानना। सोही सिद्धांतमैं कह्या है।

गाथा—णिद्धस्स णिद्धेण दुराहिएण लुक्खस्स लुक्खेण दुराहिएण।
णिद्धस्स लुक्खेण उवेदि बन्धो जहण्णवज्जो विसमे समे वा॥

अर्थ—स्निग्ध परमाणुकै स्निग्धपरमाणु दोय गुण अधिककरि बन्ध होय है। अर रूक्षपरमाणुकै दोय गुण अधिक रूक्षपरमाणुकरि बन्ध होय है। अर स्निग्ध परमाणुकै रूक्षपरमाणुकरि बन्ध होय है। अर जघन्यगुणा जो एक गुण तिससहित परमाणुकरि बन्ध नहीं होय है। अर दोय च्यार छह आठ

इत्यादिक समगुणके धारकनिकैंहू बन्ध है। अर तीन पांच सात नव ग्यारा इत्यादिक विषमगुण धारक-
निकैंहू बन्ध होय है। परन्तु गुणके दोय अंशकी हीन अधिकता होय तिनहीकै बन्ध है अन्यकै नहीं है।

भावार्थ—स्निग्ध स्निग्धकै अर स्निग्ध रूक्षकै अर रूक्ष रूक्षकै दोय गुण अधिक सम विषम होतै बन्ध होय है। अन्य हीन अधिकके बन्ध नहीं होय। ऐसैं ही सर्वज्ञ वीतराग प्रत्यक्ष देख्या है। ऐसैं कही जो विधि तिस करि द्व्यणुकादि अनन्त परमाणुका स्कन्धपर्यंत स्कन्धकी उत्पत्ति जानना योग्य है। बहुरि इहां पुद्गल स्कन्धका छह भेद सिद्धांतमैं वर्णन किया है।

गाथा—बादर बादरबादर, बादरसुहमं च सुहमथूलं च। सुहमं च सुहमसुहमं, धरादियं होदि छब्भेयं॥
पुढवी जलं च छाया, चउरिंदियविषयकम्मपरमाणु। छव्विहभेय भणियं, पुग्गलदव्व जिणवरेंहि॥

अर्थ—बादरबादर १, बादर २, बादरसूक्ष्म ३, सूक्ष्मबादर ४, सूक्ष्म ५, सूक्ष्मसूक्ष्म ६, ऐसैं स्कन्धके छह भेद कहै। तिनमैं जे छेदे हुए फेर जुडनेको असमर्थ ऐसैं काष्ठ पाषाणादि बादरबादरसंज्ञक हैं। बहुरि जे छेदे भेदे हुए स्वयमेव मिलजानेमैं समर्थ ऐसैं जल घृत दुग्ध तैलादिकरस बादर हैं। बहुरि जिनका अवलम्बन तो स्थूल अर शरीरादिकनिकै आताप आह्लाद करै तोहू छेद्या नहीं जाय अर उठाय ग्रहण करनेकूं अर अन्य स्थान लेजाइयेकूं समर्थपणा नहीं होय सो ऐसैं छाया आतप अन्धकार चांदनी इत्यादिक ये बादर सूक्ष्म स्कन्ध हैं।

बहुरि जे सूक्ष्म हैं तोहू स्थूलपणातैं ग्रहणमैं आवै ऐसै स्पर्श रस गन्ध वर्ण शब्द ये च्यार इंद्रियनिके विषय ते सूक्ष्मबादर स्कंध हैं। बहुरि सूक्ष्म हैं तातै इन्द्रियनिके ग्रहणमैं नहीं आवैं ऐसी कर्मवर्गणादिक सूक्ष्म स्कंध हैं। बहुरि कर्मवर्गणातैं नीचै दोय परमाणुका स्कंधपर्यंत सूक्ष्मसूक्ष्म स्कंध हैं। जातैं सूक्ष्म स्थूल पर्याय स्कंधहीमैं होय है परमाणुमैं नहीं। परमाणुमैं तो रस एक, गंध एक, वर्ण एक, स्पर्श दोय, शीत उष्णमैंतै एक स्निग्धरूक्षमैंतैं एक एही पांच गुण हैं। सूक्ष्मबादरादिक स्कंधकै धर्म हैं॥

अब द्व्यधिकगुणकरि मिलजाय तिनका स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

बंधेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥ ३७ ॥

अर्थ—बन्ध होतै अधिक गुणसहित पुद्गल अल्पगुणसहितकौ अपने परिणामस्वरूप करै हैं। एकत्व परिणाम होय है। अल्पगुणके धारक अधिकगुणके स्कंधरूप होय हैं सो पूर्व अवस्थाका त्यागपूर्वक तीसरी अवस्था प्रगट होय है। एक स्कन्ध होय जाय है। जो एकस्कन्ध नहीं होय तो शुक्ल कृष्ण सूतके तंतुकी ज्यों संयोग होतैहू एकपरिणाम नहीं होय, भिन्न भिन्न रूपकरि ही तिष्ठै। अर एक मिलजाय तदि वर्ण गन्ध रस स्पर्श इनकी अन्य ही अवस्था प्रगट होइ स्कन्ध उपजै हैं। जैसैं कृष्णपीतादिकका संयोग होइ हरितवर्णपणा जात्यंतर प्रगट होय है। तैसैं स्कन्ध मिल्या जात्यंतरपणा प्रगट होय है ॥

अब द्रव्यका अन्य लक्षण कहै हैं—

गुणपर्ययवत् द्रव्यम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—गुणपर्यायवान् द्रव्य है। जाकै गुणपर्याय होय सो द्रव्य है। समस्त द्रव्य अपने अपने गुणपर्याय सहित हैं। इहां अन्वयी तो गुण हैं। व्यतिरेकी पर्याय हैं। जो द्रव्यकी अनेक परिणति होतैहू द्रव्यतैं भिन्न नहि होय द्रव्यका साथि ही रहै सो गुण है, अर क्रमवर्ती पर्याय है। द्रव्यके जेते गुण हैं ते द्रव्यतैं भिन्न नहीं। गुणनिका समुदाय है सो ही द्रव्य है। द्रव्यकै अनेक पर्यायकूं पलटतैहू गुण नहीं पलटै हैं, लारही रहै हैं तातैं गुण हैं ते अन्वयी हैं। द्रव्यका स्वभाव गुणरूप अर पर्यायरूप है।

द्रव्यका लक्षण पूर्व सत् कह्या सो तो सामान्यलक्षण है जातैं सत् कहनेमैं द्रव्य गुण पर्याय समस्त आगए। जातैं सत् सामान्य कहैं तो सत् द्रव्य है कि पर्याय है। यातैं द्रव्यका विशेषलक्षण गुणपर्यायवान् कह्या। जातैं द्रव्य है सो सहप्रवृत्त तो अनन्तगुण अर क्रमप्रवृत्त अनन्तपर्यायनिका आधारपणाकरि अनन्तरूपपणातैं एकहू नानारूप कहिए हैं। द्रव्यके गुणनितैं भेद मानिए वा गुणनिकै द्रव्यतैं भेद मानिए तो बडा दोष आवै। गुण हैं ते तो कोऊ द्रव्यकै आश्रय हैं। जाकै आश्रय सो ही द्रव्य अर द्रव्यकूं

गुणनितैं भेद ही मानिए अर द्रव्यमैं गुणनिकूं मिलै मानिए तो पहले गुणनिविना द्रव्यका स्वरूप तो कैसैं था अर द्रव्यविना गुण कहां तिष्ठै थे तदि दोऊनिका नाश होय, तातैं द्रव्यतैं गुण भिन्न नहीं, द्रव्य गुण-स्वरूप ही है, द्रव्यकै अर गुणनिकै प्रदेशनिकरी भेद नहीं ऐसा एकपणा है।

अर प्रदेशनिका भेदरूप अन्यपणा भी नाहीं अर अनन्यपणा भी नाहीं है, तैसैं एक परमाणुकै एक अपना प्रदेशकरि सहित अभिन्नपणातैं अन्यपणा नाहीं है तैसैं एक परमाणुकै अपने स्पर्श रस गन्ध वर्णादि गुणनिकरिकै भी भिन्नपणा नाहीं है।

बहुरि जैसैं अत्यन्त दूरवर्ती सह्याचलपर्वत अर विन्ध्याचलपर्वत इनकीज्यों तो द्रव्य गुणनिकै अन्यपणाहू नाहीं है। अर अत्यन्त मिल रहे जे दुग्ध अर जल इनकी ज्यों अनन्यपणा नाहीं है। जातैं अत्यन्त मिले हुएहू दुग्ध जल प्रदेशनिकै भिन्नपणातैं अनन्यपणाकूं नाहीं धारै हैं। अर संज्ञा संख्या लक्षण विषयादिकरि द्रव्यकै अर गुणनिकै भेद हैं तोहू सह्याचल विंध्याचलकी ज्यों प्रदेशनिकरि भेद नहीं है।

अथ कोऊ कहै—लोकमैं कहै हैं ए द्रव्यके गुण हैं ऐसैं कहनेतैं जानिए है जो द्रव्य भिन्न है अर गुण भिन्न है सो नहीं है। जातैं द्रव्य प्रदेश संस्थान संख्या विषय अन्यपणामैं भी होय अर अनन्यपणामैंहू पाइए है। जैसैं देवदत्तकै गौ है, इहां देवदत्त भिन्न है अर गौ भिन्न है। इहां अन्यत्वमैं षष्ठी विभक्तिकरि व्यपदेश है तैसैं वृक्षकै शाखा है द्रव्यकै गुण हैं ऐसैं अनन्यपणामैं भी षष्ठीव्यपदेश है। जैसैं देवदत्त जो है सो जो फल है ताहि अंकुशकरिकैं धनदत्तकै अर्थि वृक्षतैं वाडीमैं चूंटै है।

इहां अन्यत्वमैं षट्कारक हैं। जातैं देवदत्त कर्ता सो भिन्न है। अर फल कर्म सो भिन्न है। अर अंकुश कारण है सो भिन्न है। अर धनदत्तके अर्थि संप्रदान भिन्न है। अर वृक्ष जो उपादान सो भिन्न। अर वाटिका आधार सो भिन्न है। ऐसैं ही अनन्यत्वमैं षट्कारक अभिन्न हैं। जैसैं मृत्तिका घटभाव जो है ताहि स्वयं आपहीकरि आपके अर्थि आपतैं आपविषै करै है। अर ऐसैं ही आत्मा अपनै आपकरि आपकै अर्थि आपतैं आपमैं जाणै है ऐसै अनन्यपणामैंहू कारकव्यपदेश है। जैसैं ऊंचे देवदत्तकी ऊंची गौ इस

प्रकार अन्यत्वमैं संस्थान है तैसैं ऊंचा वृक्षकै ऊंची शाखा अर मूर्तद्रव्यका मूर्तगुण ऐसैं अन्यत्वमैं भी संस्थान होय है।

जैसैं एक देवदत्तकै दश गाय हैं ऐसै अन्यत्वमैं संख्या है तैसैं एक वृक्षकै दश शाखा हैं। एक द्रव्यकै अनन्त गुण हैं ऐसैं अनन्यत्वमैं भी संख्या है। जैसैं गायवाडामैं गाय है ऐसैं अन्यत्वविषै विषय है तैसैं वृक्षमैं शाखा है द्रव्यमैं गुण है ऐसैं अनन्यत्वमैं भी विषय है। तातैं व्यपदेशादिक हैं ते द्रव्य-गुणनिकै वस्तुपणाकरि भेद नहीं साधै हैं। वस्तुपणाकरि एक ही हैं। अब वस्तुपणाकरि भेदका अर अभेदका उदाहरण कहै हैं। जैसैं धनका अस्तित्व भिन्न है अर पुरुषका अस्तित्व भिन्न है। अर धनका संस्थान कहिए आकार सो भिन्न है, अर पुरुषका संस्थान भिन्न है।

बहुरि धनकी संख्या भिन्न है अर पुरुषकी संख्या भिन्न है। अर धन भिन्नविषयमैं प्रवत्त हैं अर पुरुष भिन्नविषयमैं प्रवर्त्तै है। ऐसैं धनक अर पुरुषकै बडा भेद है तोहू धनका सम्बन्धकरि धनी ऐसा नाम पृथक्प्रकारकरि पावै है। बहुरि जैसैं ज्ञानका अस्तित्व अर पुरुषका अस्तित्व भिन्न नहीं अर पुरुषका संस्थान अर ज्ञानका संस्थान भिन्न नहीं, अर ज्ञानकी संख्या अर पुरुषकी संख्या भिन्न नहीं, अर ज्ञानका विषय अर पुरुषका विषय भिन्न नहीं तोहू पुरुषक ज्ञानी ऐसा नाम नाम एकत्वप्रकारकरि करै हैं। ओठैहू जहां द्रव्यकै भेदकरि कथन होय तहां पृथक्पणा है अर जहां अभेदकरि कथन होय तहां एकत्वकरि कथन है।

बहुरि जो ज्ञानी आत्मा ज्ञानतैं जुदा ही होय तो जैसैं अपना कर्त्रंशविना जैसैं फरसीरहित देवदत्त काष्ठकूं नहीं छेदिसकै तैसैं किसी पदार्थकूं जाननेकूं नहीं समर्थ होय ज्ञानविना काहेतैं जानै यो दोष आवै। बहुरि ज्ञान है सो तो ज्ञानीतैं भिन्न नहीं होय तो कर्त्रंशविना कोन जानै। जैसैं देवदत्तरहित फरसी काष्ठ छेदनेकू समर्थ नहीं तैसैं ज्ञानी जो आत्मा तिस विना ज्ञान जाननेकूं नहीं समर्थ होय तदि ज्ञानकै अचेतन-पना आया यो दोष आयो।

बहुरि ज्ञान अर ज्ञानी दोऊनिकै संयोग मिलिकरिकै भी चेतनपणा प्रगट नहीं होय है। ज्ञानगुणविना तो ज्ञानीका अभाव है। अर आत्माविना निराश्रय गुणका अभाव है। तातैं आत्माविना ज्ञान कहूं सिद्ध होजाय अर ज्ञानविना आत्मा सिद्ध होजाय तो दोऊनिका संयोग भी सिद्ध होय सो भिन्न कहूं सिद्ध है नहीं।

बहुरि केइक एकांती ऐसैं कहै हैं। जो आत्मा अर ज्ञान दोऊनिकै भेद है परन्तु समवाय नाम एक पदार्थ है सो ज्ञानकूं अर आत्माकूं युक्त करिदेय है। समस्त गुणगुणीनिकूं समवायपदार्थ जोडै है। ऐसैं मानै है, ताकूं कहै हैं—जो तुम आत्मातैं ज्ञानकूं भिन्न मानो हो अर ज्ञानका समवायतैं आत्माकूं ज्ञानी मानो हो सो नहीं बणि सकै है। सो पूछै हैं- ज्ञानका समवाय पूर्वैं नहीं भया तदि आत्मा ज्ञानी था कि अज्ञानी था। जो या कहोगे ज्ञानका समवाय भये पहली भी आत्मा ज्ञानी था तदि तो ज्ञानका समवाय मानना निष्फल है, पहली ही ज्ञानी था।

अर कहोगे पहली अज्ञानी था तो पूछै हैं—अज्ञानका समवायकरि अज्ञानी था कि अज्ञानकरि सहित एकपणा ही था। जो अज्ञान समवायतैं तो अज्ञानी नहीं होसकै जातैं अज्ञानीकै अज्ञान समवाय निष्फल है। अर ज्ञानका समवायविना ज्ञानी था नहीं। तातैं अज्ञानकरिकैं सहित एकपणा अवश्य सिद्ध भया। अर ज्ञानकरि सहित एकपणा सिद्ध भया। तदि तैसैं ही ज्ञानकरि सहितहू आत्माका एकपणा सिद्ध होय है। तदि तुमारा समवायतैं सम्बन्ध मानना वृथा है।

जातैं जैनीनिकै तो जो द्रव्यकै अर गुणनिकै एक अस्तित्वपणा सो ही तथा अनादिनिधनसहवृत्तिपणा सो ही समवाय है। अर जो समवायकूं एकपदार्थ ही भिन्न मानै सो नहीं है। अन्यमती समवायपदार्थकूं न्यारा मानै हैं। जो जगतमैं एक समवाय है सो अग्निमैं उष्णगुणका समवाय करै है। जलमैं शीतगुणका समवाय करै है।

ऐसैं समस्तपदार्थनिमैं गुणका जोड समवाय करै है ताकूं कहै हैं। जो जगतमैं वस्तु तो अनन्त हैं

अनन्तनिमैं गुण जोडनेकूं एकाकी समवाय कैसे समर्थ होय। अर समवाय तो जड है अचेतन है एक है, सो उष्णगुणका समवाय एक हीमैं कैसैं किया, अर शीतगुणका समवाय जलहीमैं अर ज्ञानगुणका समवाय आत्माहीमैं करनेका ज्ञान जड अज्ञानी अचेतन ऐसैं समवायपदार्थकूं कैसैं आया, तातैं समवायतैं गुण-गुणीकी संयुक्तता मानना वृथा है।

जैसैं परमाणुविषै वर्ण रस स्पर्श गन्ध गुण प्ररूपण करिए हैं ते गुण परमाणुतैं अविभक्तप्रदेशपणा-करि भिन्न नहीं है। तैसैं ही ज्ञान दर्शन गुणहू आत्माविषै अविभक्त प्रदेशपणा करि अन्य नहीं आत्मा ही है। नामादिकनिकरि भिन्न हैं तोहू स्वभावतैं द्रव्यतैं अपृथकपणा ही जानना। ऐसैं तो द्रव्यकै अर गुणनिकै अभेदपणा दिखाया। अब जो पर्याय है सोहू द्रव्यतैं भिन्न नहीं है। द्रव्यका स्वभाव ही है। द्रव्य तो पर्यायविना कहूँ देखिए नहीं, अर पर्याय द्रव्यविना नहीं। यद्यपि द्रव्यकै अर पर्यायक संज्ञा संख्या लक्षणादिकरि भेद है तोहू वस्तुपणाकरि भिन्न नहीं है। जैसैं मृत्तिका नाम द्रव्य है तिसके घटादिक पर्याय हैं। सो मृत्तिकाके अर घटादिकके कथंचित् संज्ञाकरि भेद है, वाकूं मृत्तिका कहिए वाकूं घट कहिए। अर संख्याकरि भेद है। मृत्तिकाका पिंड एक था ताके घट पांच वणिगए तातैं संख्या-करिकै भी भेद है।

बहुरि मृत्तिकाका लक्षण तो पिंडादिकरूप अन्य है, अर घटका लक्षण कंबुग्रीवाकारादिपणा भिन्न है। बहुरि मृत्तिकाका प्रयोजन तो लेपन हस्तधोवनादिक अन्य है, अर घटका जलधारणादि प्रयोजन अन्य है। ऐसैं द्रव्यकै अर पर्यायकै संज्ञा संख्या लक्षण प्रयोजनादिककरि कथंचित् भेद होतैहू वस्तुपणाकरि द्र नहीं है, वाही एक मृत्तिका है। ऐसैं गुणपर्यायवान्पणा द्रव्यका लक्षण कह्या ॥

अब कालद्रव्यकूं कहै हैं—

कालश्च ॥ ३९ ॥

अर्थ—काल है सो भी द्रव्य है। इहां द्रव्य है ऐसा वाक्य शेष है इस लोकाकाशकै समस्तप्रदेश-

निविषै एक कालद्रव्य भिन्न भिन्न तिष्ठै है परस्पर मिलै नहीं, एकएक परमाणुमात्र अवगाहनाकूं धारते असंख्यात कालाणुद्रव्य हैं। ते कालद्रव्य अमूर्त हैं, स्पर्श रस गन्ध वर्ण गुणरहित हैं।

बहुरि ज्ञान दर्शनादि चेतनासम्बन्धी गुणरहित हैं तातैं अचेतन हैं। प्रदेशनिका समूह इनिकै नहीं तातैं एकएक प्रदेशमात्र भिन्नभिन्न मिलनेकी शक्तिरहित रत्ननिकी राशिकीज्यों असंख्याते तिष्ठै हैं तातैं अकाय हैं। क्षेत्रतैं क्षेत्रांतरमैं गमनरहित हैं तातैं निष्क्रिय हैं। अर उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त सत्पणा अर गुणपर्यायवान्पणा द्रव्यकै लक्षण तिनकरि संयुक्त हैं तातैं काल भी द्रव्य है।

बहुरि कालद्रव्यकै ध्रौव्यपणा तो स्वाधीनस्वभावकी व्यवस्थातैं है। अर उत्पाद व्यय ए परकै निमित्ततै भी हैं, अर अगुरुलघुगुणकी वृद्धि हानिकी अपेक्षाकरि स्वनिमित्ततैं भी हैं। तथा कालद्रव्यकै गुणहू साधारण असाधारण दोऊरूप हैं। तिनमें वर्तनाहेतुपणा तो असाधारणगुण है। अर अचेतनपणा अमूर्तपणा सूक्ष्मपणा अगुरुलघुपणा ए साधारण गुण हैं। अर उत्पाद व्यय लक्षण पर्याय हैं। समस्तद्रव्यनिकों समयसमय वर्तनापरिणमनका बहिरंगनिमित्त कालद्रव्य है॥

अब व्यवहारकालका प्रमाण निश्चयकै अर्थि सूत्र कहै हैं—

सोऽनंतसमयः ॥ ४० ॥

अर्थ—काल है सो अनंत है समय जाकै ऐसा है। यद्यपि वर्तमानकाल एक समयमात्र है तोहू अतीत अनागत अपेक्षा अनंत समय है। समय है सो अतिसूक्ष्म है। तिनका समूह सो आवली घटिका इत्यादि व्यवहारकाल है। अथवा अनंतपर्यायनिकी वर्तनाका कारण एक कालाणु है, तातैं मुख्यकालकैहू अनन्त समयपणा वर्तै है॥ अब गुणपर्यायवान् द्रव्य कह्या तिनकै गुणका लक्षण कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥ ४१ ॥

अर्थ—जे द्रव्यकै तो आश्रय हैं अर आप अन्यगुणनिकरि रहित हैं ते गुण हैं। जे द्रव्यकूं आश्रय-

करि नित्य ही वर्तें ते गुण हैं, अर पर्याय हैं ते कदाचित् अनन्य होय कदाचित् अन्य होय। अर गुण हैं ते द्रव्यमैं नित्य हैं। गुणविना द्रव्य नहीं है। जीवकै अस्तित्वादिक ज्ञानदर्शनादिक गुण हैं। पुद्गलकै अचेतनत्वादिक तथा रूपादिक गुण हैं। इत्यादि समस्त द्रव्यनिमैं जानना ॥

अब पूछै हैं कि परिणामशब्द बारंबार कह्या सो परिणाम कहा है, यातैं सूत्र कहै हैं—

तद्भावः परिणामः ॥ ४२ ॥

अर्थ—धर्मादिक द्रव्यनिका जिस स्वरूपकरि होना सो तद्भाव है सो ही परिणाम है। सो परिणाम दोय प्रकार है। एक आदिमान् परिणाम है, एक अनादिमान् परिणाम है। तहां धर्मादिकनिकै जो गति हेतुपणा इत्यादिक अनादि परिणाम है सो सामान्यअपेक्षाकरि है। विशेषकी अपेक्षा बाह्यनिमित्तादिकतैं परिणाम होइ तातैं आदिमानहू है। तिनमैं कोऊ ऐसा जानै जो धर्म अधर्म आकाश काल इनिविषै तो अनादि ही परिणाम है, अर जीवपुद्गलनिमैं आदिमान् है सो ऐसैं नहीं मानना। समस्त द्रव्य अनादि हैं तातैं अनादि ही परिणाम मानना अन्यथा नित्यपणाका अभावका प्रसङ्ग आवै। तिनमैं च्यार द्रव्यनिका परिणाम तो आगम गम्य है। अर जीवपुद्गलके परिणाम कथंचित् प्रत्यक्षगम्य भी है।

पर्याय दोय प्रकार हैं—एक व्यंजनपर्याय, एक अर्थपर्याय। तिनमैं व्यंजनपर्याय हैं ते तो मूर्त्त हैं, अर वचनगोचर हैं, चिरस्थायी हैं, अविनाशीक हैं, अर स्थिर हैं। अर अर्थपर्याय हैं सो सूक्ष्म हैं, क्षणक्षणप्रति विध्वंसी वचनकै अगोचर हैं। इहां धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य आकाशद्रव्य कालद्रव्य इनिकै तो अर्थपर्याय है। अर जीवद्रव्य अर पुद्गलद्रव्य इनिकै अर्थपर्याय अर व्यंजनपर्याय दोऊ हैं।

बहुरि इहां कोऊ कहै—द्रव्य गुण पर्याय तीन कहै। अर नय द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दोय कहे। तहां तीसरा गुणार्थिक नय क्यों नहीं कह्या। ताका समाधान–जो पर्याय दोय प्रकार है। एक सहवर्ती एक क्रमवर्ती। तहां सहवर्ती तो गुण है सो सहवर्ती पर्यायमैं गुण जाणलेणैं तातैं गुणार्थिकनय भिन्न नहीं। गुणपर्यायवान ही द्रव्यका निर्दोष लक्षण है।

ऐसैं इस पंचम अध्यायमैं अजीवतत्त्वका प्रधानकरि निरूपण है। तहां धर्मादिक च्यार अजीवास्तिकाय कहा, अर जीवास्तिकाय कह्या। अर तिन पंचनिकौं द्रव्य कहे। तिनमैं च्यार अरूपी एक रूपी अर धर्म अधर्म आकाश इनिकै एक द्रव्यपणा अर क्रियारहितपणा अर धर्म अधर्म एकजीवकै लोकाकाशप्रमाण असंख्यातप्रदेश कहे, अर आकाशद्रव्यकै अनन्तप्रदेश कहे, पुद्गलस्कंधकै संख्यात असंख्यात अनन्त प्रदेश कहे। अणुकै प्रदेश नाहीं ऐसैं कह्या।

बहुरि आकाशका अवकाशदान उपकार, अर धर्मका गति उपकार अधर्मका स्थिति उपकार, पुद्गलका शरीरादि उपकार जीवनिकै परस्पर उपकार कालका वर्त्तना उपकार कह्या। बहुरि पुद्गलकै स्पर्शादिगुण स्कन्धादिक पर्याय कहे, अणु स्कन्ध भेद कहे। बहुरि द्रव्यका सत् सामान्य लक्षण कह्या नित्यताका स्वरूप कह्या, मुख्य गौणकरि नयका लगावना कह्या। बहुरि पुद्गलकै स्कन्ध होनेका विधान कह्या। बहुरि द्रव्यका विशेष लक्षण कह्या। बहुरि कालद्रव्यकूं कह्या अर गुणपर्यायका स्वरूप कह्या।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पंचमोऽध्यायः॥

अर्थ—ऐसे तत्त्वार्थका है ज्ञान जातैं ऐसा दशाध्यायरूप जो मोक्षशास्त्र तामें पांचमा अध्याय समाप्त भया।

दोहा।

है जातैं तत्त्वार्थका, अधिगम शिवसुखदाय। मोक्षशास्त्र मंगलमयी, नमूं पंचमोऽध्याय॥ ५॥



अथ षष्ठोऽध्यायः ।

दोहा ।

आस्रव आठों कर्मका, त्यागि सुभले प्रकार ।
पायो पद अविकार जिन, ध्यावो थुति विस्तार ॥

अजीवपदार्थके अनन्तर आस्रव कहने योग्य है यातैं आस्रवकी प्रकटताके अर्थि सूत्र कहै हैं—

कायवाङ्मनःकर्म योगः ॥ १ ॥

अर्थ—काय वचन मन इनिका कर्म कहिए क्रिया सो योग है। तहां वीर्यांतरायकर्मका क्षयोपशम होतै औदारिकादिक सप्तप्रकार काय वर्गणामैंतैं अन्यतम वर्गणाका अवलम्बनकी अपेक्षाकरि आत्मप्रदेशका सकम्प होना सो काययोग है। बहुरि वीर्यांतराय अर मत्यक्षरादि आवरणका क्षयोपशमकरि प्राप्त भयी वाग्लब्धिकी निकटता होतैं जो वाग्रूप परिणमनकै सन्मुख जो आत्मा ताका प्रदेशनका जो हलनचलन सो वाग्योग है।

बहुरि अभ्यंतर वीर्यांतराय अर नोइंद्रियावरणका क्षयोपशमस्वरूप मनोलब्धिकी निकटता होतै अर बाह्य पूर्वोक्तनिमित्तका आलम्बन होतै मनःपरिणामकै सन्मुख आत्माका प्रदेशनिका चलनहलन सो मनोयोग है। ऐसैं क्षयोपशमलब्धि अभ्यंतर हेतु है। अर केवलीकै क्षयहेतु होतै हू त्रिविध योग है। जातैं क्रियारूप परिणमन करता आत्माकै तीन प्रकार पुद्गल वर्गणाका आलम्बनकी अपेक्षा जो आत्मप्रदेशनिका सकम्प होना सो योग है। सो सयोगीगुणस्थानपर्यंत है, अयोगीकै अर सिद्धनिकै त्रिविध वर्गणाका आलम्बनको अभाव तातैं योग नहीं है॥ ऐसैं मन वचन काय तीन योग हैं ते ही आस्रव हैं। यातैं सूत्र कहै हैं—

स आस्रवः ॥ २ ॥

अर्थ—कह्या जो योग सो आस्रव है। योगके निमित्ततैं आत्माकै कर्मका आगमन होय है तातैं योग है सोही आस्रव है। जैसैं सरोवरके जल आवनेका द्वार होय सो जल आवनेकूं कारण है ताकूं आस्रव कहिए है तैसें इहां हू योगद्वारकरि आत्माकै कर्म आवै हैं यातैं योग भी आस्रव है ऐसैं कहिए हैं। अथवा—जैसैं आला वस्त्र है सो समस्त तरफतैं आया रजकूं ग्रहण करै है तैसैं कषायरूप जलकरि आला आत्मा योगनिकरि ग्रहणकिया कर्मकूं समस्त प्रदेशनिकरि ग्रहण करै है। अथवा जैसैं अग्निकरि तप्तायमान लोहका पिंड जलविषै क्षेप्या हुआ सर्व तरफतैं जलकूं ग्रहण करै है तैसैं योगनिकरि तप्तायमान जीव समस्त तरफतैं कर्मरूप जलकूं ग्रहण करै है॥ सो कर्म दोय प्रकार पुण्यपापरूप है ताका हेतु कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥ ३ ॥

अर्थ—शुभ योग पुण्यका आस्रव करै है। अशुभयोग पापका आस्रव करै है। तहां प्राणीनिका घात करना असत्य बोलना परधनका हरण करना ईर्षापरिणामकूं आदि लेय अशुभ योग हैं, यातैं पापका आस्रव होय है। बहुरि प्राणीनिका उपकार रक्षा करना, सत्यवचन बोलना, परधनका हरण नहीं करना पंचपरमेष्ठीकी भक्ति इत्यादि शुभयोग हैं इनितैं पुण्यका आस्रव होय है। इसका विशेष ऐसा—जो प्राणीनिका घात करना, विना दिया परधन हरण करना, मैथुनप्रयोगादि अशुभ काययोग हैं। अनृतवचन कठोर वचन असत्यवचन इत्यादिक अशुभ वाग्योग हैं। हिंसा ईर्षा स्त्यानिका चिंतवन सो अशुभ मनोयोग है। ऐसैं अशुभयोगके असंख्यात विकल्प हैं।

बहुरि इनतैं उलटा सो शुभयोग है। यद्यपि परिणामके भेद असंख्यात ही हैं तथापि अनंतानंत जीवनिकी अपेक्षा अनंत भेद हैं। अब कहोगे—जैसैं सुवर्णमय सांकलबेडी तथा लोहमय बेडी आत्माकै स्वतंत्रताका अभाव दोऊ तुल्य करै हैं। तैसैं पाप अर पुण्य आत्माकूं पराधीन करनेको दोऊ निमित्त तुल्य हैं, तातैं इनकूं शुभ अशुभ भेद रूप कैसैं कहै ताका समाधान—इष्ट अनिष्ट गति जात्यादिक रचनेतैं

भेद कह्या है। अब इहां कोऊ कहैं–जो आयुकर्मविना सप्तकर्मका आस्रव निरन्तर होय है। तातैं शुभपरिणाम पुण्यहीका कारण अर अशुभ पापहीका कारण कैसैं कहोहो? ताका उत्तर–यद्यपि संसारी जीवनिकै सप्तकर्मका आस्रव निरन्तर होय है तथापि ऐसैं जानना जो संक्लेशपरिणामतैं देव मनुष्य तिर्यंक आयु विना एकसो पैंतालीस कर्मकी प्रकृतिनिकी स्थिति बहुत बढ़िजाय है अर तीन आयुकी स्थिति घटिजाय है, अर मंद कषायके परिणामतैं समस्त कर्मकी स्थिति घटिजाय है अर तीन आयुकी स्थिति बढिजाय है।

बहुरि तीव्रकषायकरि शुभप्रकृतिनिमैं अनुभाग जो रस सो घटिजाय है। अर असातावेदनीय आदिक अशुभप्रकृतिनिमैं अनुभाग बढ़िजाय है। बहुरि मन्दकषायके प्रभावतैं शुभ जे पुण्यप्रकृति तिनमैं रस बढ़िजाय है। अर पापप्रकृतिनिमैं रस घटिजाय है। तातैं स्थिति अनुभागकी अपेक्षाकरि शुभपरिणामनितैं पुण्यास्रव कह्या अर अशुभपरिणामतैं पापास्रव कह्या। जातै स्थिति अनुभाग ही प्रधान हैं। स्थितिविना आस्रव कुछ कार्यकारी नाहीं। अर अनुभाग जो रस तिस विना थोथी प्रकृति कहा कार्य करैं। तातैं शुभपरिणामनितैं अशुभकर्मनिकी स्थिति घटिजाय अर अनुभाग जो रस सो घटिजाय तदि अशुभका आस्रव नहीं आवनेतुल्य ही है। अर अशुभपरिणामनितैं पुण्यप्रकृतिनिकी स्थिति अनुभाग दोऊ घटिजाय अर पापप्रकृतिनिकी स्थिति अनुभाग बढ़िजाय तदि स्थिति अनुभागविना आस्रव निष्फल रह्या। सोही पूर्वाचार्यकृत वार्त्तिकमैं गाथासूत्र लिखा है—

गाथा–सव्वट्ठिदीणमुक्कस्स गोदुउक्कस्स संकिलेसेण। विपरीदे दु जघंणं आयुगतिग वज्ज सेसाणं॥

अर्थ—मनुष्य तिर्यक्‌ देव आयुकूं वर्जिकरिकै समस्तकर्मनिकी उत्कृष्ट स्थिति उत्कृष्ट संक्लेशपरिणामनितैं होय है। विशुद्धपरिणामनितैं जघन्यस्थितिबन्ध होय है। अर इन तीन आयुकी स्थिति संक्लेशपरिणामनितैं घटै है, विशुद्धतातैं बढै है॥

गाथा—सुभपगदीण विसोधिए तिव्वमसुहाण संकिलेसेण। विपरीदे दु जघण्णो अणुभागो सव्वपयडीणं॥

अर्थ—विशुद्धपरिणामनिकरि शुभप्रकृतिनिमैं रस अधिक होजाय है। अशुभप्रकृतिनिमैं मन्द रस होय है। अर संक्लेशपरिणामकरि शुभप्रकृतिनमैं रस मन्द होय। अशुभमैं तीव्र होय। तातैं कषाय ही संसारका कारण है ॥ अब यो आस्रव सर्व संसारीनिकै समानफलका हेतु है कि कुछ विशेष ही है यातैं सूत्र कहै हैं—

सकषायाकषाययोः सांपरायिकेर्यापथयोः ॥ ४ ॥

अर्थ—कषायसहित जीवकै सांपरायिक कहिए संसारका कारण ऐसा आस्रव होय है। अर कषायरहित जीवकै ईर्यापथ कहिए स्थितिरहित आस्रव होय है। इहां स्वामीके भेदतैं आस्रवमैं भेद है। आस्रवके दोय स्वामी हैं—सकषायी जीव अर अकषायी जीव। जे आत्माकूं "कषति" कहिए घातैं ते क्रोधादिक कषाय हैं। तथा जैसैं फिटकडो लोद हरडै ए कषायले द्रव्य वस्त्रकै रंग लगनेकूं कारण हैं। तैसैं क्रोधादिकषाय आत्माकै कर्मरूप रङ्ग लगनेकूं कारण हैं तातैं कषाय कहिए हैं। ऐसैं कषायसहित जीवकै सांपरायिक कहिए संसारका कारण आस्रव होय है। अर कषायरहित जे उपशांतकषाय क्षीणकषाय सयोगीकै योगका वशकरि आस्रव होय है सोही ईर्यापथ आस्रव है। स्थिति एकसमयहूकी नहीं पावै है। जैसैं मार्ग होय गमनकरि जाय ठहरै नहीं। तथा जैसे कोरा घट ऊपरि रज उडकरि चली जाय तैसैं कषायनिकी सचिक्कणता विना कर्मरज ठहरै नहीं ॥

अब बहुत भेदरूप जो सांपरायिक आस्रव ताके भेद कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाः पंचचतुःपंचपंचविंशतिसंख्याः पूर्व्वस्य भेदाः ॥ ५ ॥

अर्थ—इंद्रिय पांच, कषाय च्यार, अव्रत पांच, क्रिया पचीस ए सब हैं ते "पूर्व्वस्य" कहिए पहिले कह्या जो सांपरायिक आस्रव ताके भेद हैं। तहां पांच इंद्रिय तो पहिले कह्या। सोही इंद्रियनिके विषयविषैं रागद्वेषरूप प्रवर्त्तना, बहुरि कषाय क्रोधादिक बहुरि अव्रत हिंसादिक आगैं कहसी।

अब इहां पचीस क्रिया कहै हैं। तहां चैत्य गुरु अर प्रवचन जो आगम इनिकी पूजादिलक्षण

सम्यक्त्वक्रिया है। १। अन्य कुदेवतानिका स्तवनादिरूप मिथ्यात्वक्रिया है ॥ २॥ कायादिक करि गमनागमनादिरूप प्रवर्तन सो प्रयोगक्रिया है ॥ ३॥ बहुरि वीर्यांतराय वा ज्ञानावरणका क्षयोपशम होतै संतै अंगोपांगका अवलंबननैं आत्माकै काय वचन मनके योगकी रचनामैं समर्थ ऐसे पुद्गलनिका ग्रहण सो समादानक्रिया है। अथवा संयमीपुरुषकै असंयमकै सन्मुखपना सो समादानक्रिया है ॥ ४॥ बहुरि ईर्यापथ जो गमनकर्म ताकै निमित्त क्रिया सो ईर्यापथक्रिया है ॥ ५॥ ऐसै पांच क्रिया कहीं।

बहुरि क्रोधके वशतैं जो क्रिया सो प्रादोषिकी क्रिया है। जातैं क्रोध प्रदोषकूं कारण है। कोऊ अपना इष्ट स्त्री वित्तहरणादिक निमित्त विनाही चुगल दुष्ट क्रोध करै हैं जैसैं दृष्टिविषादिक स्वभावतैं ही होय हैं। तथा दुष्टनिकी चेष्टा विनानिमित्तही क्रोधादिरूप है निमित्तवान् प्रदोष है ॥ १॥ दुष्टपनाके अर्थि उद्यम करना सो कायकी क्रिया है ॥ २॥ हिंसाके उपकरण शस्त्रादिक ग्रहण करना सो अधिकरणक्रिया है ॥ ३॥ अपनै वा परकै दुःखकी उत्पत्तिका कारण सो पारितापिकी क्रिया है ॥ ४॥ आयु इंद्रिय बल प्राणका वियोग करनेतैं प्राणातिपातिकी क्रिया है ॥ ५॥ ऐसैं पंच क्रिया कहीं।

बहुरि प्रमादी जीवकै रागार्द्रीकृतपणातैं रमणीक रूपके अवलोकनका अभिप्राय सो दर्शनक्रिया है ॥ १॥ वस्तुके स्पर्शनै विषै परिणामतैं प्रवर्त्तना सो स्पर्शक्रिया है ॥ २॥ विषयके अपूर्व नवीननवीन कारण उपजावना सो प्रात्यायिकी क्रिया है ॥३॥ बहुरि स्त्रीपुरुष पशुनिके बैठने सोवने प्रवर्त्तनेके देशविषै मलमूत्रादिक क्षेपना सो समतानुपातक्रिया है ॥ ४ ॥ विना देखी विना सोधी भूमिविषै कायादिकका निक्षेप करना बैठना सोवना सो अनाभोगक्रिया है ॥ ५ ॥ ऐसैं पांच क्रिया हैं।

बहुरि जो परके करने योग्य क्रियाकूं आप करै सो स्वहस्तक्रिया है ॥ १ ॥ पाप जाकरि ग्रहण होय ऐसी प्रवृत्तिकूं भला जानना सो निसर्गक्रिया वा आलस्यतैं प्रशस्तक्रियाका नाहीं करना सो निसर्गक्रिया है ॥ २॥ परकरि आचारण किया जो पापादिक ताका प्रकाश करना सो विदारणक्रिया है ॥ ३॥ चारित्रमोहके उदयतैं आवश्यकादिकनिविषै परमागमकी आज्ञाप्रमाण प्रवर्त्तन करनेकूं असमर्थ होइ अन्यथा

प्ररूपण करना सो आज्ञाव्यापादिका क्रिया है ॥ ४ ॥ मूर्खतातैं वा आलस्यकरिकै परमागमकरि उपदेश-करिविधिमैं अनादर करना सो अनांकाक्षा क्रिया है ॥ ५ ॥ ऐसैं पांच क्रिया हैं।

बहुरि छेदन भेदन छोलन इत्यादि क्रियामैं तत्परपना अथवा अन्यकरिकै आरम्भ करता सन्ता हर्ष करना सो आरम्भक्रिया है ॥ १ ॥ परिग्रहकी रक्षाकै अर्थि प्रवर्त्तना सो पारिग्राहिकी क्रिया है ॥ २ ॥ ज्ञानदर्शनादिविषै कपटरूप उपाय सो मायाक्रिया है ॥ ३ ॥ कोऊ मिथ्यात्वका कार्य करता होय करावता होय ताकूं प्रशंसादिकरिकै दृढ़ करै जो बहुत भले करी ऐसैं मिथ्यात्वकूं दृढ़ करै सो मिथ्यादर्शन क्रिया है ॥ ४ ॥ संयमका घातक कर्मके उदयके वशतैं निवृत्तिरूप नहीं होना संयमरूप नहीं प्रवर्त्तना सो अप्रत्याख्यानक्रिया है ॥ ५ ॥ ऐसैं सर्व पचीस क्रियाके नाम कहे। ए आस्रवके कारण हैं ॥

अब आस्रवका विशेष जनावनेकूं सूत्र कहै हैं—

तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥ ६ ॥

अर्थ—तीव्रभाव मन्दभाव ज्ञातभाव अज्ञातभाव अधिकरण वीर्य इनिके विशेषतैं तिस आस्रवमैं विशेष है। बाह्य अभ्यंतर कारणनिकी उदीरणाके वशतैं अतिवृद्धिरूप क्रोधादि कषायनिकरि तीव्र परिणाम सो तीव्रभाव है। अर कषायनिकी मन्दतातैं मन्दभाव है। कोऊ प्राणीका घात होतैं ज्ञान भया जो मैं प्राणीका घात किया सो ज्ञातभाव है। अथवा यो प्राणी मारने योग्य है ऐसा जानिकरि मारनेमैं प्रवृत्ति करना सो ज्ञातभाव है।

बहुरि मद्यादिककरि वा इंद्रियनिकै मोहके करनेवाला मद तातैं वा असावधानता है लक्षण जाका ऐसा प्रमादतैं गमनादिकनिमैं विना जाणे प्रवृत्ति करना सो अज्ञात भाव है। जाकै आधार पुरुषनिका प्रयोजन होय सो अधिकरण है। द्रव्यकी शक्तिका विशेष सो वीर्य है। इन छहके तफावततैं आस्रवविषै तफावत होय है। ए जहां जैसा होय तहां तैसा आस्रव होय है। जातैं कारणमैं भेदतैं कार्यमैं भेद है ही ॥

अब कह्या जो अधिकरण तामैं भेद दिखावै हैं—

अधिकरणं जीवाजीवाः ॥ ७ ॥

अर्थ—आस्रवका आधार जीव अर अजीव हैं। इहां बहुवचन कहनेकरि जिस तिस पर्यायकरि सहित जीव अजीव अधिकरण है। अब प्रथम जीवाधिकरणका भेद कहै हैं—

आद्यं संरंभसमारंभारंभयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥ ८ ॥

अर्थ—आदिका जीवाधिकरण है सो संरम्भ समारंग आरंभ ए तीन, अर मन वचन काय ए तीन, अर कृत कारित अनुमोदना ए तीन, क्रोध मान माया लोभ ए कषाय च्यार, इनिकों परस्पर गुणै एकसो आठ भेद रूप है। हिंसादिकविषै उद्यमरूप परिणाम सो संरम्भ है। हिंसादिकका साधन जे कारण तिनमैं अभ्यास करना सामग्री मिलावना सो समारंभ है। हिंसादिकनिमैं प्रवर्त्तन करना सो आरंभ है। ऐसा ए तीन, बहुरि मन वचन कायके भेदतैं योग तीन, बहुरि कृत कहिए आप स्वाधीन होय करै अर परतैं करावै सो कारित है, अर अन्य कोऊ करै ताकूं आप भला जानै सो अनुमत है ऐसै ए तीन, बहुरि क्रोध मान माया लोभ ए च्यार कषाय, एते विशेषनिकरि परस्पर संबन्धरूप करिए तदि एकसो आठ भेद होइ हैं।

सो ऐसैं क्रोधकृतकायसंरंभ, मानकृतकायसंरंभ,[2] मायाकृतकायसंरंभ, लोभकृतकायसंरंभ, क्रोधकारितकायसंरंभ, मानकारितकायसंरंभ, मायाकारितकायसंरंभ, लोभकारितकायसंरंभ, क्रोधानुमतकायसंरंभ, मानानुमतकायसंरंभ, मायानुमतकायसंरंभ, लोभानुमतकायसंरंभ[12]। ऐसैं कायसंरंभके भेद भए। ऐसैं ही वचनसंरंभके बारह भेद हैं अर ऐसैं मनःसंरंभके बारह भेद हैं। सब मिलि संरंभके छत्तीस भेद भए। ऐसैं ही समारंभके अर आरंभके छत्तीस छत्तीस भेद होय हैं। सब मिलि जीवाधिकरणके एकसो आठ भेद हैं।

बहुरि सूत्रमैं 'च' शब्द है सो अंतरंग भेदके समुच्चयकै अर्थि है। ताकरि अनंतानुबन्धी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण संज्वलन जे कषायके च्यार भेद तिनकरि गुणे च्यारसै बत्तीस भेद होय हैं। ऐसैं जीवके परिणामके विशेषतैं आस्रवमैं भेद है ॥

अब अजीवाधिकरणके भेद कहै हैं—

निर्वर्त्तनानिक्षेपसंयोगनिस्सर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परं ॥ ९ ॥

अर्थ—निर्वर्त्तना निक्षेप संयोग निसर्ग्ग ए च्यार हैं। तहां निर्वर्त्तनाके दोय भेद, निक्षेपके च्यार भेद, संयोगके दोय भेद, निसर्गके तीन भेद ऐसैं ये अजीवाधिकरणके भेद हैं। तहां निपजाइए सो निर्वर्त्तना है सो दोय प्रकार है। शरीरतैं कुचेष्टा उपजावना सो देहदुःप्रयुक्त नाम निर्वर्त्तना है। अर हिंसाके उपकरण शस्त्रादिककी रचना करना सो उपकरणनिर्वर्त्तना है। तथा एक मूलगुण निर्वर्त्तना एक उत्तरगुणनिर्वर्त्तना। तहां मूल पंचप्रकार शरीर वचन मन श्वासनिश्वासका निपजावना सो मूलगुणनिर्वर्तना है। अर उत्तर जो काष्ठपुस्त कहिए मूर्त्तिआदिक अर चित्रकर्मादि निपजावना सो उत्तरगुणनिर्वर्त्तना है। ऐसैंहू दोय प्रकार निर्वर्त्तना है।

बहुरि निक्षेप कहिए धरिए सो निक्षेप है। ताके सहसानिक्षेपाधिकरण, अनाभोगनिक्षेपाधिकरण,[२] दुःप्रमृष्टनिक्षेपाधिकरण, अप्रत्यवेक्षितनिक्षेपाधिकरण, ऐसैं निक्षेप च्यार प्रकार है। तहां भयादिककरिकैं वा अन्य कार्य करनेकी शीघ्रताकरिकैं जो पुस्तक कमंडलु शरीर तथा शरीरका मलादिक क्षेपिए सो सहसानिक्षेपाधिकरण है ॥ १ ॥

बहुरि शीघ्रता नहीं होतैहू इहां जीव हैं वा नहीं हैं ऐसा विचार नहीं करै अर अवलोकन विना ही पुस्तक कमण्डलु शरीर अर शरीरसम्बन्धी मलादिक निक्षेपण करिए तथा जहां वस्तु धरी चाहिए तहां नहीं धरना जैसैं तैसैं अनेक जाइगा धरना सो अनाभोगनिक्षेपाधिकरण है ॥ २ ॥ बहुरि जो दुष्टताकरि वा यत्नाचाररहितपणाकरि जो उपकरण शरीरादिकनिका क्षेपना सो दुःप्रमृष्टनिक्षेपाधिकरण है ॥ ३ ॥ बहुरि जो विनादेख्या वस्तुका निक्षेपण करना सो अप्रत्यवेक्षितनिक्षेपाधिकरण है ॥ ४ ॥ ऐसैं च्यार प्रकार निक्षेप कह्या।

बहुरि संयोजना जो संयोग सो दोय प्रकार है। तहां जो शीतस्पर्शरूप जो पुस्तक तथा-कमण्डलु

शरीरादिक तिनकूं तावडाकरि तप्त जो पिच्छिका ताकरि पूछना सोधना इत्यादिक उपकरणसंयोजना है। बहुरि पान जो जलादिक तिनका अन्यपानमैं मिलावना तथा भोजनमैं मिलावना तथा भोजनकूं पानमैं मिलावना तथा अन्यभोजनमैं मिलावना सो भुक्तपानसंयोजना है। निसर्ग्गाधिकरण तीन प्रकार है। दुष्टप्रकार मनका प्रवर्त्तन करना सो मनोनिसर्ग्गाधिकरण है ॥ १ ॥ दुष्टप्रकार वचनका प्रवर्त्तन करना सो वाग्निसर्ग्गाधिकरण है ॥ २ ॥ दुष्टप्रकार कायका प्रवर्त्तन करना सो कायनिसर्ग्गाधिकरण है।

भावार्थ—जीव अजीव दोऊ द्रव्यके आश्रयकरि कर्मका आगमन होय है, तिन भावनिके ए विशेष कहे हैं॥ ऐसैं सामान्य आस्रवका स्वरूप कहि अब ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्मके आस्रवके कारण कहै हैं—

तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यांतरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥ १० ॥

अर्थ—ज्ञानदर्शनकै विषैं तत्प्रदोष निह्नव मात्सर्य अन्तराय आसादना उपघात इनि भावनितैं ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मका आस्रव होय है। तहां कोऊ पुरुष मोक्षका कारण ऐसा तत्वज्ञानकी कथनी करता होइ ताकूं श्रवणकरि ईर्षाभावतैं प्रशंसा नहीं करै मौन राखै ताकूं प्रदोष कहिए। बहुरि आपकूं शास्त्रका ज्ञान होय अर कोऊ जाननेकै अर्थि आपकूं पूछै इस वस्तुका स्वरूप कहा है, तदि आप नटिजाय जो मैं तो नहीं जानूं ऐसा शास्त्रज्ञानका छिपावना सो निह्नव है।

बहुरि आपकै शास्त्रका ज्ञान होइ अर शिक्षायोग्य होइ तोहू परकूं सिखावै नहीं, जो सीखजायगा तो मेरी बराबरी करैगा, ऐसैं अभिप्रायकूं मात्सर्य कहिए। बहुरि ज्ञानाभ्यास कोऊ करता होय तिसमैं विघ्न करिदे, पुस्तकका तथा पढ़ावनेवालाका तथा स्थानका विच्छेद वियोग करदे सो अन्तराय है। बहुरि परकरि प्रकाशन किया ज्ञानको वर्जन करना अवार मती प्रकाशो इत्यादिक है सो आसादना है।

बहुरि प्रशस्तज्ञानकूं दूषण लगावना सो उपघात है। इनिकरि ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मका आस्रव होय है। औरहू आचार्य उपाध्यायतैं प्रतिकूलता अर अकालमैं अध्ययन श्रद्धानका अभाव विद्याके अभ्यासमैं आलस्य तथा अनादरतैं सूत्रका अर्थका श्रवण, धमतीर्थका लोप, बहुश्रुतीपणाका गर्व तथा

मिथ्या उपदेश देना, बहुश्रुतीनिका अपमान करना, असत्यप्रलाप, उत्सूत्रवाद करना, शास्त्रनिका वचना, हिंसादिकमैं प्रवर्त्तना ते समस्त ज्ञानावरण कर्मके आस्रवका कारण है।

बहुरि परके देखनेमैं मात्सर्य तथा अन्तराय करना तथा नेत्रनिका उत्पाटन, दृष्टिका गर्व्व, बहुतनिद्रा, दिवसमैं शयन करना, आलस्यस्वभाव रहना, नास्तिकताका ग्रहण, सम्यग्दृष्टिकूं दूषण लगावना, कुतीर्थनिकी प्रशंसा करना, प्राणीनिका घात करना, यतिजनोंकी निन्दा करना इत्यादिक दर्शनावरण कर्मके आस्रवका कारण है ॥ अब अन्यकर्मके आस्रवकूं कहै हैं—

दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थानान्यसद्वेद्यस्य ॥ ११ ॥

अर्थ—दुःख शोक ताप आक्रन्दन वध परिदेवन एते आपकै करै तथा परकै करै तथा आपकै परकै दोऊनिकै करै सो असातावेदनीय कर्मके आस्रवके कारण हैं। तहां पीड़ारूप परिणाम सो दुःख है। अपने उपकारक द्रव्यका वियोग होतै जो परिणाममैं मलीन होय तिसमैं लीन अभिप्रायरूप होय चिंता खेदरूप निराश होना सो शोक है। बहुरि जो निंद्यकार्य करनेतैं अपना अपवाद होनेतैं अन्तःकरणकी कलुषतातैं तीव्र पश्चात्ताप करना सो ताप है।

कोऊ या कहै जो निंद्यकार्य किया ताका तो पश्चात्ताप चाहिए ही तो निंद्यकार्य करनेतैं अपवादहू भी चाहिए ही। निंद्यकार्यका फल तो नरक तिर्यंचमैं भोगना पडैगा। इहां निंदा अपवाद होनेतैं धर्मात्मा तो हर्ष ही मानैगा जो मैं निंद्यकार्य किया है मेरी निंदा अपवाद तिरस्कार चाहिए ही अब पश्चात्ताप करूँगा तो तीव्रकर्मका बन्ध होयगा ऐसा विचारि क्लेशित नहीं होय है।

बहुरि परितापतैं उपज्या अश्रुपातपूर्वक विलापकरि रोवना सो आक्रन्दन है। बहुरि आयु इन्द्रिय बल प्राणादिकका वियोग करना सो वध है। बहुरि ऐसा विलाप करै जो श्रवण करनेवालेकै करुणा उपजि आवै सो परिदेवन है।

ऐसैं दुःख शोक ताप आक्रंदन वध परिदेवन कहे ये दुःखादिक आप करै तथा परकै करै तथा

आपकै अर परकै दोऊनिकै करै ताकै असातावेदनीयकर्मका आस्रव होय है। तथा औरहू कहै हैं—अशुभप्रयोग, परका अपवाद, परकी चुगली, निर्दयता, परकै आताप करना, अंगोपांगका छेदन, भेदन, ताडन, त्रासन, वर्जन, भर्त्सन इत्यादि तथा परकी निन्दा, अपनी प्रशंसा करना तथा संक्लेश प्रगट करना, महाआरम्भ, महापरिग्रह धारण करना तथा विश्वासघातता, वक्रस्वभावता, पापकर्मकरि जीविका करना, निरर्थक परकूं दण्ड देना, विष मिलावना वा जाल पासी वागुरा पिंजर बनावना, जीवनिकै परके मारनेकूं पकरनेकूं यंत्रनिका उपाय तथा खोटे प्रयोग शस्त्रनिका दान पापतैं मिले भाव इत्यादि असातावेदनीयकर्मके आस्रवके कारण हैं ॥

बहुरि इहां कोऊ प्रश्न करै—जो दुःखादिक आपकै परकै करनेतैं असातावेदनीयका बन्ध होय तो नग्न रहना, अनशनादिक तप करना, आतापनयोगादि धरना इत्यादिकका उपदेश देना वा करना इसमैंहू दुःखादि उत्पन्न होय हैं तातैं अपने कहनेमैं ही धर्मतीर्थमैं विरोध आया। ताका समाधान—जो अन्तरङ्गमैं क्रोधादिक परिणामकै आवेशपूर्वक दुःख आदिक देनेका अभिप्राय होय ते असातावेदनीयकर्मके आस्रवकै निमित्त हैं।

अर जैसैं कोऊ वैद्य परमकरुणाचित्तकरि निःशल्य हुवा यत्नतैं संयमीपुरुषक गूमडाकै चीरा देहै सो वाकै दुःख उपजावै है तोहू निम वैद्यकै बाह्य दुःखके निमित्तमात्रहीतैं पापबन्ध नहीं होय है। वैद्यका अभिप्राय तो रोगीके रोगकूं दूरिकरि निरोगी करनेका है। तातैं संसारके दुःख मेटि मोक्ष प्राप्त होनैका अभिप्रायवालाकै दुःख होनेका अभिप्राय नाहीं। तातैं किंचित् बाह्य दुःख होतैंहू परिपाककालमैं कडवी औषधिज्यों समस्त दुःखका दूरि करनेवाला है तातैं असाताके बन्धका कारण नहीं है ॥ अब सातावेदनीयका आस्रवके कारणनिकूं कहै हैं—

भूतव्रत्यनुकंपादानसरागसंयमादियोगः क्षांतिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥ १२ ॥

अर्थ—आयुनामकर्मके वशतै उत्पन्न होय ते भूत कहिए ते समस्त चतुर्गतिसम्बन्धी प्राणी जानने।

अर जिनकै अहिंसादिव्रतनिका धारण होय ते व्रती जानने। इनकै विषैं पीडा जानि आपमैं जैसैं दुःख आया तैसैं परकी पीडा मेटनेरूप परिणाम होना सो भूतव्रतीनिमैं अनुकम्पा है।

अब इहां कोऊ आशङ्का करै–जो भूत कहनेमैं ही सर्व प्राणीमात्र आगए फिर व्रतीनिका ग्रहण काहेतैं किया? ताका समाधान–जो समस्त प्राणीमात्रमैं अनुकम्पा करना तथा व्रतीनिविषै अनुकम्पा विशेष प्रधानपना जनावैकै अर्थि व्रतीनिका भिन्नग्रहण किया है।

बहुरि दुःखित बुभुक्षित जीवनिका उपकारकै अर्थि धनादिक औषधि आहारादिक देना तथा व्रती सम्यग्दृष्टि सुपात्र तिनमैं भक्तिपूर्व्वक दान देना सो दान है। जिनके चित्तमैं दुष्टकर्म करनेमैं राग सो सराग कहिए ऐसैं रागीनिका संयम सो सरागसंयम है। अथवा रागसहित संयम सो सरागसंयम है। आदिशब्दतैं संयमासंयम अकामनिर्जरा बालतप इनिका ग्रहण करना। तहां एकदेशत्याग करना विषयनिमैं विना प्रयोजनका त्याग होय ताकूं संयमासंयम कहिए है।

बहुरि जो आपका अभिप्रायतैं तो त्याग नहीं किया अर पराधीनपणातैं भोग उपभोगका निरोध होना सो अकामनिर्जरा है। तत्त्वका यथार्थ ग्रहणका अभावतैं अज्ञानी है तिनको बाल कहिए मिथ्यादृष्टि कहिए तिनका जो तप सो बालतप है। निर्दोष क्रियाविशेषका जो आचरण सो योग है ताहि समाधि कहिए।

बहुरि शुभपरिणामनिकी भावनातैं क्रोधादिकषायका अभाव होना सो क्षमा है। बहुरि लोभके प्रकारनिका त्याग सो शौच है। बहुरि "इति" शब्दकरि अरहन्तका पूजन तथा बाल वृद्ध तपस्वी मुनीनिका वैयावृत्य करनेमैं उद्यमी रहना, योगनिकी सरलता, विनयादिक समस्त सातावेदनीयकर्मके आस्रवके कारण हैं॥ अब अनन्तसंसारका कारण दर्शनमोह ताके आस्रवके कारणनिकूं कहै हैं—

केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥ १३ ॥

अर्थ—केवली श्रुत संघ धर्म अर च्यारनिकायके देवनिकै नहीं होते झूठे दोष प्रगट करना अपनी

बुद्धिकी मलिनतातैं सो दर्शनमोहका आस्रव करै है। जाकै समस्त ज्ञानावरणका अत्यन्तक्षयतैं इंद्रियनिविना क्रम रहित त्रिकालवर्त्ती समस्तगुणपर्यायनिसहित लोक अलोकका जानना प्रगट हुवा ऐसे भगवान अरहन्तकूं केवली कहिए है। तिस केवलीकै ग्रासादिककरि आहार करनेतैं जीवना कहैं अर केवलीके क्षुधा तृषा आहार निहार कहैं। कम्बलादि वस्त्र पात्र कहैं। कालभेदतैं ज्ञानदर्शन प्रवर्त्तना कहैं इत्यादिक केवलीका अवर्णवाद है।

बहुरि श्रुतकै ऐसा दोष लगावै जो श्रुतविषैं मांस भक्षण मदिरापान अर वेदनाकरि पीडितकै मैथुनसेवन, रात्रिभोजन इत्यादिक निर्दोष कह्या है। ऐसैं जिनेन्द्रका आगमका झूठा दोष प्रगट करना सो श्रुतका अवर्णवाद है। बहुरि देहमैं निर्ममत्व निर्ग्रंथ वीतरागमुनीश्वरनिके संघकूं अपवित्र कहना निर्लज्ज कहना तथा इहां ही दुःख भोगवैं है तो परलोकमैं कैसैं सुखी होइगें, ऐसैं कहना सो संघका अवर्णवाद है। बहुरि जिनेन्द्रधर्मसेवनका फल असुरादि होना कहना सो धर्मका अवर्णवाद है।

बहुरि देवनिकै मांस भक्षण मद्यपान कहना तथा देवनिकै भोजनादिकका भक्षण कहना वा मनुष्यणीनिमैं कामसेवनादि कहना सो देवनिका अवर्णवाद है। इनकरि दर्शनमोहनीयका आस्रव होय है॥

अब चारित्रमोहके आस्रवका कारण कहै हैं—

कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥ १४ ॥

अर्थ—द्रव्य क्षेत्र काल भावके निमित्तका वशतैं कषायनिका तीव्र उदयतैं तीव्रपरिणाम होय तातैं चारित्रमोहनीय कर्मका आस्रव होय है। तथा जगतके उपकार करनेमैं समर्थ जे शीलव्रत तिनकी निन्दा करना, आत्मज्ञानी तपस्विनिकी निन्दा करना, धर्मविध्वंस करना, धर्मके साधनमैं अन्तराय करना, शीलवाननिकूं शीलतैं चिगावना, देशव्रती महाव्रतीनिकूं व्रतनितैं चलायमान करना, मद्यमांसमधुके त्यागीनिकै चित्तमैं भ्रम उपजावना, चारित्रमैं दूषण लगावना, क्लेशरूप लिंग भेष धरना, क्लेशरूप व्रत धरना, आपकै अर परकै कषाय उपजावना इत्यादि कषायवेदनीयके आस्रवके कारण हैं।

बहुरि उत्कट हँसना, दीन दुःखित अनाथनिका हास्य करना, कामकथा कामचेष्टाकरि हास्य करना, बहुत वृथाप्रलाप करना, इन परिणामनितैं हास्यवेदनीयकर्मका आस्रव होय है। बहुरि परपुरुष कोऊ विचित्रक्रीडा करै तिसमैं तत्परता, उचितक्रियाकूं नहीं वर्जन करना, परक पीडाका अभाव करना, दर्शनादिकनिमैं उत्सुकपणाका अभाव सो रतिवेदनीयकर्मका आस्रवका कारण है। बहुरि अन्य जीवनिकै अरति प्रगट करना, परकीर्त्तिका विनाश करना, पापीनिकी सङ्गति करना, खोटी क्रियामें उत्साह करना इत्यादि अरतिवेदनीयका आस्रवका कारण है।

बहुरि आपकै शोक होइ तामैं विषादी होय चिन्ता करना, परकै दुःख प्रगट करना, अन्यकूं शोकमैं देखि आनन्द धारना सो शोकवेदनीयकर्मका आस्रवका कारण है। बहुरि अपना भयरूप परिणाम करना, परकै भय उपजावना, निर्दयपरिणामकरि परकूं त्रास देना सो भयवेदनीयका आस्रवका कारण है। बहुरि सत्यधर्मकूं प्राप्त भए जो च्यार वर्णके धारक ब्राह्मण क्षत्रिय शूद्र तिनके कुलकी क्रिया, आचारनिकी ग्लानि करना, परका अपवाद करनेका स्वभाव सो जुगुप्सावेदनीयके आस्रवका कारण है।

बहुरि अतिक्रोधके परिणाम, अतिमानीपणा, ईर्षाका व्यवहार, असत्यवचनमैं प्रवृत्ति, अतिमायाचारमैं तत्परपना, अतिरागभावका करना, परस्त्री सेवन करना, परस्त्रीका रागभावतैं आदर करना, स्त्रीकेसे भाव आलिंगनादि करना, इन भावनितैं स्त्रीवेदका आस्रव होय है। बहुरि अल्पक्रोध, कुटिलताका अभाव, विषयनिमैं उत्सुकताका अभाव, निर्लोभता, स्त्रीके सम्बन्धमैं अल्पराग, अपनी स्त्रीमें सन्तोष, ईर्षाका अभाव अर स्नान गन्ध पुष्पमाला आभरणादिकनिमैं अनादरपणा इत्यादि पुरुषवेदके आस्रवका कारण है।

बहुरि प्रबल क्रोध मान माया लोभके परिणाम तथा गुह्य इंद्रियका छेदना, स्त्रीपुरुषनिके कामके अंग छांडि अनंगमैं व्यसनीपणा करना तथा शीलव्रतनिकूं उपसर्ग करना, व्रतीनिकूं दुःख करना, गुणवंतनिका मथन करना, दीक्षाग्रहण करनेवालेनिकूं दुःख देना, परस्त्रीका संगकै निमित्त तीव्रराग धरना, आचाररहित निराचारी होना सो नपुंसकवेदके आस्रवका कारण है। ऐसै मोहनीयकर्मके आस्रवका कारण कह्या॥

अब आयुकर्मके आस्रवके कारणनिमैं नरकायुका आस्रवके कारणनिकूं कहै हैं—

बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥ १५ ॥

अर्थ—बहुत आरम्भ अर बहुत परिग्रह नरक आयुके आस्रवके कारण हैं। तहां प्राणीनिकै पीडाका कारण व्यापारका प्रवर्तन करना सो आरम्भ है। बहुत जो आरम्भ सो बह्वारम्भ है। अर परद्रव्यनिमैं मेरी ये वस्तु है मैं इसका स्वामी हूं ऐसैं परवस्तुमैं आपा अर आपकापणाका संकल्प सो परिग्रह है। बहुत जो परिग्रह सो बहुपरिग्रह है। सो बहुआरंभ अर बहुपरिग्रह नरकायुके आस्रवके कारण हैं।

बहुरि मिथ्यादर्शनमैं मिथ्या आचरण, उत्कृष्ट मानीपणा, शिलाभेदसमान तीव्रलोभके परिणाम, निर्दयपणा, परजीवनिकै संताप उपजावनेके परिणाम, परके घातकरनेके परिणाम, परके बन्धन होनेका अभिप्राय, प्राणीनिका घातकरनेवाला असत्यवचन, परद्रव्यके हरनेकै परिणाममैं, मैथुनमैं अतिराग, अभक्ष्य भक्षण, दृढवैर, साधुनिकी निंदा, तीर्थंकरनिकी आज्ञाभङ्ग, कृष्णलेश्याके परिणाम, रौद्रध्यानकरि मरण इत्यादिकहू नरकआयुके आस्रवके कारण हैं॥

अब तिर्यगायुके आस्रवका कारण कहै हैं—

माया तैर्यग्योनस्य ॥ १६ ॥

अर्थ—चारित्रमोहके उदयतैं प्रगट भया जो आत्माका कुटिलस्वभाव सो मायाचारतैं तिर्यग्योनिका आस्रव होय है। बहुरि मिथ्याधर्मका उपदेश देना, बहुआरम्भ बहुपरिग्रहमैं परिणाम, कपट कूटकर्ममैं तत्परपना, पृथ्वी भेदसमान क्रोधीपणा, शीलरहितपणा, शब्दकरि चेष्टाकरि तीव्र मायाचार करना, परके परिणामनिमैं भेद उपजावना, अति अनर्थ प्रगट करना, गन्ध रस स्पर्शनिका विपरीतपणाका करना, जाति कुल शीलमैं दूषण लगावना, विसंवादमैं प्रीति रखना, परके उत्तम गुणनिकूं छिपावना, विनाहोतेहू गुण प्रगट करना, नील कपोत लेश्याके परिणाम, आर्त्तध्यानतैं मरण करना इत्यादि तिर्यंच आयुके आस्रवका कारण है॥ अब मनुष्य आयुका आस्रवका कारण कहै हैं—

अल्पारंभपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥ १७ ॥

अर्थ—अल्प आरंभ अल्प परिग्रहपणातैं मनुष्य आयुका आस्रव होय है। बहुरि मिथ्यादर्शनसहित बुद्धि, विनयवान स्वभाव, सरलप्रकृति, सांचे आचरणमैं सुख मानना, अपना सुख जनावना, अल्पक्रोध, व्यवहारमैं सरलप्रकृति, सन्तोषमैं रति, प्राणीनिका घातमैं विरक्तता, कुकर्मतैं निवृत्त होना, समस्तमैं मिष्ट-वचन, स्वभावहीतैं मधुरता, लौकिक व्यवहारतैं उदासीनता, ईर्षारहितपणा, अल्पसंक्लेशपणा, देव गुरु अतिथिनिका दान, पूजाकै अर्थि अपने द्रव्यमैतैं विभाग करना, कपोतलेश्याके परिणाम, मरणकालमैं धर्म-ध्यानिपणा, ए मनुष्यायुके आस्रवके कारण हैं।

इहां कोऊ आशंका करै। जो मिथ्यादर्शनसहित जाकी बुद्धि होय ताकै मनुष्यायुका आस्रव कैसैं कह्या ताका उत्तर—मनुष्य तिर्यंचनिकै सम्यक्त्वपरिणाम होतै तो कल्पवासीदेवका ही आयु बंधै है, मनुष्यायुका बंध नहीं करै हैं॥

अब औरहू मनुष्यायुका आस्रवपणाका कारण कहै हैं—

स्वभावमार्दवं च ॥ १८ ॥

अर्थ—विनासिखाया स्वभावतैं ही कोमलपणा सोहू मनुष्यायुके आस्रवका कारण है॥

अब अन्यहू विशेष कहै हैं—

निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषां ॥ १९ ॥

अर्थ—शीलरहितपणा अर व्रतरहितपणातैं समस्त च्यारू ही आयुका आस्रव होय है। इहां कोऊ कहै हैं जो व्रतशीलरहित होय ताकै देवआयुका आस्रव कैसैं होय ताका समाधान—जो भोगभूमिके जीवनिकै शीलव्रतादिक नहीं है तोहू देवआयुहीका आस्रव होय है॥

अब देवआयुके आस्रवके कारणनिकूं कहै हैं—

सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥ २० ॥

अर्थ—सरागसंयम अर संयमासंयम अकामनिर्जरा बालतप ए देवायुके आस्रवके कारण हैं। कर्मके नाशकरनेमैं राग तथा व्रतादिक शुभ आचरणमैं रागसहित संयमभाव सो रागसंयम है। अर त्रसहिंसाका त्याग सो संयम अर थावरकी विराधनाका त्याग नहीं सो असंयम, ऐसैं संयम असंयम दोऊ रूप परिणाम सो संयमासंयम है। अर पराधीन बंदीग्रहादिकनिमैं क्षुधातृषादिककी पीडाका भोगना मारना ताडनादिक त्रास भोगना मलधारन करना भूमिशय्या ब्रह्मचर्य रखना परितापादिक दुःख भोगना इत्यादिक मंदकषायके भाव होय सो अकामनिर्जरा है।

बहुरि आत्मज्ञानरहित तप करना सो बालतप है। सो सरागसंयमतैं अकामनिर्जरातैं बालतपतैं देवायुका आस्रव होय है। तथा आपके कल्याणके कारण ऐसैं मित्रनिका संबंध करना तथा धर्मायतन जे धर्मके स्थानका सेवन करना सत्यार्थधर्मका श्रवण तथा प्रशंसा करना धर्मकी महिमा दिखाना निर्दोष उपवासादि करना तपमैं भावना रखना इनतैं देव आयुका आस्रव होय है।

बहुरि बंदिगृहमैं बंधनादिककरि बंध्या होय तथा दीर्घ कालका रोगी होय तथा संक्लेशरहित हुआ वृक्षतैं पड्या होइ तथा पर्वततैं पड्या होइ तथा अनशनमैं अग्निप्रवेशमैं, जलप्रवेशमैं, विषभक्षणमैं धर्म होनेकी बुद्धिकरि मरणकीया होइ, ते व्यंतरनिमैं, मनुष्यनिमैं, तिर्यंचनिमैं उपजै हैं। तथा जो शीलव्रत-रहित होइ परन्तु अनुकंपासहित जिनका हृदय होय अर जलरेखा समान ज्याकै रोष अतिमंद होइ ते व्यंतरादिक देवनिमैं उपजै हैं। तथा भोगभूमिके उपजे मनुष्य तिर्यंच तेहू व्यंतरादिक देवनिमैं उपजै हैं तथा आत्मज्ञानरहित अज्ञानसंयमी अर संक्लेशभावरहित होइ ते भवनवासी व्यंतरादि बारमा स्वर्गपर्यंत देवनिमैं उपजै हैं। तथा मनुष्य-तिर्यंचनिमैंहू उपजै हैं॥

अब औरहू देवायुके आस्रवका कारण कहै हैं—

सम्यक्त्वं च ॥ २१ ॥

अर्थ—सम्यक्त्वतैं देवआयुहीका अस्रव होय है। इहां न्यारा सूत्र कहनेतैं कल्पवासी देवहीका नियम है। भवन व्यंतर ज्योतिषीनिमैं नहि उपजै हैं। कल्पवासीनिमैंहू महर्द्धिकदेव होय हैं। नीचदेव नहीं उपजै हैं। ऐसैं मनुष्य तिर्यंचनिकी अपेक्षा नियम है। अर देवलोकमैंतैं वा नरकमैंतैं आया सम्यग्दृष्टि कर्मभूमिका मनुष्य ही होय है, जातैं देवपर्यायतैं आयाहुवा देव होय नहीं, अर नरकका निकस्याहू देव होय नहीं। ऐसैं आयुकर्मके आस्रवका कारण कह्या ॥

अब नामकर्ममें अशुभनामकर्मके आस्रवकूं कहै हैं—

योगवक्रताविसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥ २ ॥

अर्थ—मन वचन कायके योगनिकी वक्रता अर अन्य जीवनिकूं अन्यथा प्रवर्त्तावना धर्मके मार्गकूं छुडाय उनमार्गमैं प्रवृत्त करावनेसै अशुभनामकर्मका आस्रव होय है। मिथ्यादर्शन धरना, पीठ पाछैं खोटा कहना, चित्तका अस्थिरपना, ताखडी वाट कूडा रखना, सुवर्ण मणि रत्नादिक खोटेकूं सांचेमैं मिलावना, झूठी खोटी साक्षी भरना, अर उपांगका काटना, वर्ण रस गंध स्पर्श इनिकी विपरीतता करना, अनेक जीवनिकूं दुःख देनेवाले यंत्र पिंजरे बनावना, कपटकी अधिकता रखना, परकी निंदा करना, अपनी प्रशंसा करना, झूठ वचन बोलना, परका द्रव्य ग्रहण करना, महारंभ महापरिग्रह उज्ज्वलवेषका मद करना, आभरण रूपादिकका मद करना, कठोर निंद्य वचन असत्य प्रलाप करना, क्रोधके वचन धीठताके वचन कहना, अपना सौभाग्य चाहना, वशीकरणके प्रयोग करना, परजीवनिकै कौतूहल उपजावना, आभरण पहरनेमैं आदरतैं अनुराग करना, जिनमंदिरके चन्दनादिक गन्ध अर पुष्पमाल्यादिक धूपादिकनिका चोरना, हास्य करना, ईंटनके पकावनेके प्रयोग करना, दवाग्नि लगावनेका प्रयोग करना, प्रतिमाका विनाश करना, तथा प्रतिमाका स्थान जो मंदिर ताका विनाश करना, मनुष्य तिर्यंचनिकै वैठने सोवनेके मकानकूं मलमूत्रादिकरि विगाडना, बाग बगीचा वनका विनाश करना, तथा क्रोध मान माया लोभका तीव्रपणा, पापकर्मतैं जीविका करना इत्यादिकनितैं अशुभनामकर्मका आस्रव होय है।

अब शुभनामकर्मके आस्रवकूं कहै हैं—

तद्विपरीतं शुभस्य ॥ २३ ॥

अथ—अशुभनामकर्मका जो आस्रव कह्या तातैं विपरीत कहिए उलटा भावतैं शुभनामकर्मका आस्रव होय है। मन वचन कायकी सरलता अर विसंवादका अभाव, अर धर्मात्माकूं देखि हर्ष करना, सम्यग्भाव रखना, संसारभ्रमणतैं भयभीत रहना, प्रमाद वर्जना, इत्यादि शुभनामकर्मके आस्रवका कारण है॥

अब अनन्त अर उपमारहित है प्रभाव जाका अर अचिंत्यविभूतिविशेषका कारण अर त्रैलोक्यमैं विजय करनेवाला ऐसा तीर्थंकरनामा नामकर्मके आस्रवके कारण षोडशभावना तिनकौं कहै हैं—

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिवय्यावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिमार्ग-प्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य ॥ २४ ॥

अर्थ—दर्शनविशुद्धता[1], विनयसम्पन्नता[2], शीलव्रतेष्वनतीचारता[3], अभीक्ष्णज्ञानोपयोग[4], संवेग[5], शक्तितस्त्याग[6], शक्तितस्तप[7], साधुसमाधि[8], वैयावृत्यकरण[9], अरहन्तभक्ति[10], आचार्यभक्ति[11], बहुश्रुतभक्ति[12], प्रवचनभक्ति[13], आवश्यकापरिहाणि[14], मार्गप्रभावना[15], प्रवचनवत्सलत्व[16], इन षोडशभावनाकरि तीर्थंकरनामकर्मको आस्रव होय है। तहां जो सत्यार्थ आप्त आगम गुरुका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। तिनमैं जो अठारह दोषनिकरि रहित होय अर सर्वज्ञ होय अर परमहितोपदेशक होय इनि तीन विशेषणनिकरि सहित होइ सो आप्त होय है।

तिनमैं क्षुधा[1], तृषा[2], जन्म[3], जरा[4], मरण[5], रोग[6], शोक[7], भय[8], विस्मय[9], अरति[10], चिन्ता[11], राग[12], द्वेष[13], स्वेद[14], खेद[15], निद्रा[16], मद[17], मोह[18] ए अठारह दोष करि रहित होइ सो ही आप्त है। अर दूजा विशेषण जो सर्वज्ञपणा जामैं पाइए जो लोक अलोकरूप समस्त पदार्थ तिनकूं त्रिकालवर्ती समस्तगुणपर्यायनिसहित

युगपत् एकसमयमैं जानता होइ सो सर्वज्ञपणा आप्तका दूसरा विशेषण है। अर तीजा परमहितोपदेशक होइ ऐसैं निर्दोषपणा अर सर्वज्ञपणा अर वीतरागपणा जामैं तीनों गुण असाधारण पाइए सो ही आप्त है। जो आप्तका लक्षण एक निर्दोष ही कहिए तो क्षुधादि अठारह दोषकरि रहित तो घटपटादिक भी हैं, धर्म अधर्म आकाश काल पुद्गल भी हैं, इनिकै आप्तपणाका प्रसंग आवै, तातैं सर्वज्ञताविना आप्तत्व नहीं।

अर जो निर्दोषत्व अर सर्वज्ञत्व दोय विशेषणरूपहीकूं आप्त कहिए तो भगवान् सिद्ध परमेष्ठी निर्दोष भी हैं, अर सर्वज्ञ भी हैं। यातैं सिद्धनिकै आप्तपणाका प्रसंग आवै तातैं तीजा विशेष परमहितोपदेशकपणा कह्या। तातैं निर्दोषत्व अर सर्वज्ञत्व अर परमहितोपदेशकत्व इनि तीन विशेषणनिकरि सहित भगवान् अरहन्तकै ही आप्तपणा सम्भवै है अन्यकै नहीं सम्भवै है। यातैं निर्दोष सर्वज्ञ परमहितोपदेशक अरहन्तकूं ही आप्त जाणि श्रद्धान करना उचित है।

बहुरि जो शास्त्र भगवान् आप्तका कह्या हुआ होइ अर वादी प्रतिवादीकरि उल्लंघन नहीं किया जाय अर जाकी कथनी प्रत्यक्ष अनुमानकरि विरुद्ध नहीं होय अर सारभूत वस्तुकूं कहनेवाला होइ अर समस्त छह कायके जीवनिका हितरूप होई अर कुमार्गका दूरि करनेवाला होय ऐसा आगमका श्रद्धान करना उचित है। बहुरि जाकै विषयनिमैं वांछा नहीं होय अर समस्त आरम्भ अर परिग्रह रहित होय अर निरन्तर ज्ञानाभ्यासमैं ध्यानमैं तपमैं आसक्त होय सोही वीतरागी मोक्षमार्गी गुरु श्रद्धान करनेयोग्य हैं। ऐसैं सत्यार्थ आप्तमैं आगममैं गुरुमैं जाकै दृढश्रद्धान होइ, अर इन लक्षणरहितकूं आप्त आगम गुरुपणाकरि श्रद्धान नहीं करै सो श्रद्धारूप परिणाम सम्यग्दर्शन है।

सो इस श्रद्धानपरिणाममैं पचीस दोष नहीं होय, अर अपने गुण अंगनिकरि सहित होय सोही दर्शनविशुद्धि है। तिन दोषनिमैं तीन मूढता हैं, अष्ट मद हैं, शंकादि अष्ट दोष हैं, छह अनायतन हैं, ए पचीस दोष हैं। तिनमैं जो नदीस्नानमैं धर्म मानै समुद्रकी लहरि लेनेमैं धर्म मानै तथा पर्वततैं पड़नेमैं अग्निमैं प्रवेश करनेमैं धर्म मानै तथा स्नानतैं अपना शौच मानै तथा श्राद्धतर्पणादिकनिकूं धर्म मानै

तथा संक्रांतिजानि दान करना, ग्रहणजानि सूतक मानना स्नान करना इत्यादिक बहुतप्रकार लोकमूढ़ता है।

तैसैं ही ग्रह भूत पिशाच योगिनी यक्ष यक्षिणी क्षेत्रपाल सूर्य चन्द्रमा शनैश्चरादिकनिकूं वांछितकी सिद्धिकै अर्थि सेवना पूजना वन्दना दान देना सो देवमूढता है। अर जो देवपणाकरि रहित, जिनमैं च्यारि निकायका देवपणा नहीं अर देवाधिदेव सर्वज्ञपणाकरि रहित अर जिनके तिर्यंचनिकेसे मुख हस्तीकासा मुख वानरकासा मुख सिंहकासा मुख गर्दभकासामुख सूवरकासा रूप जिनकै पूंछ सींग इत्यादि विपरीत आकारकूं धरैं तथा चतुर्मुख पञ्चमुख षणमुख चतुर्भुजादि रूपके धारकनिकूं देव मानना तथा लिंग योनि विपरीत रूपनिमैं देवबुद्धि करना तथा जलकूं अग्निकूं वृक्षकूं पहाडकूं अन्नकूं देव मानि पूजना तथा सर्पादिकनिकूं गौकूं देव मानना तथा देवतानिकै बकरा भैंसा इत्यादिक मारि चढाना तथा देवतानिकूं मद्यमांसके भक्षक तथा रोट लापसी बडा पुवा इत्यादिककी देवता वासना लेहैं तथा भोजन करै हैं ऐसैं विपरीतश्रद्धान करै है सो समस्त मिथ्यात्वका तीव्र उदयतैं देवमूढता कहिए है।

जातैं चारनिकायके देव हैं ते मनुष्य तिर्यंचनिकीज्यों मुखमैं ग्रास लेय आहार नहीं करै हैं। देवनिकै तो मानसिक आहार है। मनमैं विचार होतप्रमाण तृप्त होय हैं। देवनिकै आहार निहार मानै सो सर्वज्ञकी आज्ञातैं पराङ्मुख मिथ्यादृष्टि है। बहुरि जो आरम्भपरिग्रहके धारक हिंसादि पापनिमैं प्रवर्त्तनेवाले विषयानुरागी अभिमानी अज्ञानी अपना पूजा सत्कारके इच्छुक कुलिंगी सूत्रविरुद्ध आचरणके धारकनिकूं गुरु जानना पूज्य जानना सो गुरुमूढ़ता वा पाखण्डिमूढ़ता कही है।

बहुरि जो ज्ञानका मद जातिकुलका बलका तपका ऐश्वर्यका रूपका हस्तकी कलाका मद करना सो समस्त मिथ्यादर्शनका प्रभाव है। जातैं पराधीन विनाशसहित इंद्रियजनित ज्ञानका मद करना सो मिथ्यादर्शन है। तथा कुल जाति ऐश्वर्यरूप बलादिक ए समस्त कर्मका उदयजनित पौद्गलिक इनमैं जो आपा मानि अहंकार करना सो समस्त मिथ्यादर्शनका प्रभाव है। बहुरि जो रागी द्वेषी मोही देवपणारहित सो कुदेव हैं, अर हिंसासहित यज्ञादिक ये कुधर्म हैं। विषय कषायकै आधीन प्रवर्त्तनेवाले परिग्रह-

धारी, आरंभधारी सो कुगुरु हैं, अर इन कुगुरु, कुदेव, कुधर्मके सेवनेवाले ए छह अनायतन हैं। इनिमैं धर्म नहीं तातैं ये अनायतन हैं। इनिकूं भला जानै धर्मरूप मानै सो मिथ्यादर्शनके उदयतैं हैं।

तथा—शंका, कांक्षा, ग्लानि, मूढ़ता, अनुपगूहन, अस्थितिकरण, अवात्सल्य, अप्रभावना ए आठ दोष हैं। इनिके त्यागतैं निःशंकितादिक अष्टगुण प्रगट होय हैं। तिनकूं कहै हैं—जो इस लोकका भय, परलोकभय, मरणभय, वेदनाभय, अनारक्षकभय, अगुप्तिभय, अकस्माद्भय, इनि सप्तभयनिकरि रहित अपना स्वरूपकूं अवलोकन करना सो निःशंकित अंग है। जातैं जो भवितव्य है सो अंतरंग बहिरंग दोऊ कारणनिका परिपूर्णसंयोग मिलनेतैं है तातैं भवितव्यता दुर्लंघ्य है, ऐसैं निश्चयकरि भयका अभावरूप रहना तथा अरहंत भगवानकरि उपदेश्या प्रवचनमैं शंकाका अभाव सो निशंकित है। जो सर्वज्ञ वीतराग अन्यथावादी नहीं है अन्यथा तो रागी द्वेषी कहै हैं ऐसा निश्चयकरि सर्वज्ञ वीतरागकी आज्ञामें जाकै अचलप्रीति होय सो निःशंकित है।

बहुरि इहलोक परलोकसम्बन्धी भोगनिकी वांछाका अभावरूप परिणाम सो निःकांक्षित है। इहां कोऊ पूछै—जो, अविरतसम्यग्दृष्टिकै भी भोगनिमैं धनमैं वांछा है ताकै निर्वांछकपणा कैसैं? ताका समाधान—जो सम्यग्दृष्टिकै भोगनेकी वांछा है सो भोगनिकूं भला जानि नहीं वांछा करै है। इंद्रलोकका भी भोग महान् दुःख दीखै है परन्तु चारित्रमोहका प्रबल उदयतैं कषायराग मन्द भई नहीं यातैं इंद्रियजनित दाह सहनेकूँ समर्थ नहीं तातैं वर्तमानकालका दुःख उपशम होजाय, तावन्मात्र चाहै हैं। जैसैं रोगी कटुक औषधिको बहुत चाहनाकरि पीवै है। वर्त्तमान दुःख नहीं सह्या जाय यातैं परन्तु अन्तरंगमैं ऐसा चिंतवन है जो कदि इस औषधितैं मेरा छूटना होय। अन्तरंगमैं औषधितैं अति अरुचि है। तैसैं जानना।

तथा मिथ्यादृष्टीनिका ज्ञान आचरण तपमैं वांछाको अभाव सो निःकांक्षित गुण है। बहुरि शरीरादिकनिका अशुचिस्वभाव जानिकरि शुचिपणाका मिथ्यासंकल्पका अभाव करना तथा अरहंतके

प्रवचनमैं साधुका समस्त आचरण योग्य है परन्तु स्नान नहीं करना घोर तप करना, कष्ट सहना ये अयोग्य हैं ऐसैं ग्लानि नहीं करना सो निर्विचिकित्सता अंग है।

बहुरि बहुत प्रकार एकांतरूप दुर्नयनिके मार्ग हैं ते सत्यसे दीखैं अर सत्य नहीं तिनमैं परीक्षा-रहित होय मूढनिका बताया हुवा विपरीत मार्गमैं नहीं प्रवर्त्तना तथा लौकिकमैं मणि मंत्र औषधनिका संयोगजनित अनेक क्रिया तथा व्यन्तरादिकनिकरि विपरीत चेष्टाकूं देखि भगवत्सूत्रकी आज्ञातैं विपरीत श्रद्धानका अभाव सो अमूढदृष्टि अंग है।

बहुरि जैसैं पुत्रकृत दोषकू माता गोपन करै तैसैं परके दोष देखि प्रगट नहीं करै। जो मोहनीय ज्ञानावरणादि कर्मके आधीन जगत् नष्ट होय रह्या है जो गुण होना दुर्लभ है। हमारै मांहीही अनेक दोष हैं ऐसैं विचारि परका दोष प्रगट नहीं करै अर अपना सुकृत्य होइ ताहि प्रशंसाकै अर्थि प्रगट नहीं करै तथा धर्मात्मामैं दोष देखि विचारै जो इसकै अज्ञानतातैं अशक्ततातैं दोष लगिगया है, जो प्रगट होइगा तो धर्मकी निंदा होयगी ऐसा विचारि दोषकूं गोपन करै सो उपगूहन गुण है। अथवा उत्तमक्षमादिभावना-करि आत्माके धर्मकी वृद्धिका करना सो उपबृंहण है, सोभी याहीकूं कहिए हैं।

बहुरि कर्मका उदयजनित रागद्वेष वा रोगपीडा तथा उपसर्गपरीषह इनितैं परिणाम बिगडि जो धर्मसूं छूटना होइ ताकू धर्मके उपदेशकरि ज्ञान वैराग्य बधाय चिगने नहीं देना तथा औषध आहारपानका संयोगतैं शरीरकी टहलतैं तथा हम आपके हैं आपकी सेवातैं कदाचित् नहीं चिगैंगे आपके ही हैं ऐसैं आत्म समर्पणतैं जैसैं बनै तैसैं चिगने नहीं देवै धर्ममैं स्थापन करे सो स्थितिकरण अंग है।

बहुरि जिनेन्द्रका कह्या धर्ममैं तथा धर्मके धारकनिमैं नित्य अनुराग रखना सो वात्सल्य अंग है॥ बहुरि जो रत्नत्रयधर्मको धारणकरि आत्माका प्रभाव प्रगट करना तथा दान शील तप जिनपूजन इत्यादि-करि जिनधर्मका प्रभाव प्रगट करै तथा अन्य मिथ्यादृष्टिहू जाकी प्रशंसा करै जो जैनीका बड़ा सन्तोष बड़ा दयावानपणा निर्लोभीपणा दातारपणा क्षमावानपणा जो प्राण जातैहू विकारी नहीं होइ अनेक

लोभके वशतैंहू असत्य वचन नहीं कहैं। परघनहरण स्वप्नमैंहू नहीं करै, जैनीनिका साहश्य और कोऊ-निका नाहीं ऐसैं मनवचनकायकी प्रवृत्तिकरि धर्मको निन्दा नहीं करावै अर अनेकांतके प्रभावकरि एकांत-रूप मिथ्याश्रद्धानकूं दूरकरि लोकनिके हृदयमैं अनेकांतरूप सत्यार्थवस्तुका स्वरूपका प्रकाश करै तथा सप्तक्षेत्रनिमैं धन लगायकरि वा सकलत्यागी होइ धर्मका प्रभाव प्रगट करै सो प्रभावनांग है। ऐसैं पचीस दोषनिकरि रहित अष्ट अंगनिकरि सहित होइ सो दर्शनविशुद्धि है ॥ १ ॥

बहुरि दर्शन ज्ञान चारित्रकै विषै आदर–सत्कार भक्ति करना, तथा देव गुरु धर्मका प्रत्यक्ष परोक्ष विनय करना, सो विनयसम्पन्नता गुण है। तथा कपायका अभावकरि आत्माकूं मार्दवरूप करना सो विनयसम्पन्नता अंग है ॥ २ ॥

अहिंसादिक व्रतनिके पालनेके अर्थि क्रोध मान माया लोभ कषायका अभावरूप आत्मस्वभावका करना सो शील है। तथा स्पर्शइन्द्रियजनित समस्तविषयनितैं राग छूटि वीतरागभावरूप होना सो शील है। शीलव्रतविषै मन वचन कायकी निर्दोषता करि अतिचाररहित प्रवर्त्तना सो शीलव्रतेष्वनतिचार भावना है ॥ ३ ॥

बहुरि निर्दोषग्रन्थनिकूं पढ़ना, पढ़ावना, उपदेश करना, श्रुतज्ञानके अर्थमैं निरन्तर उपयोग रखना सो अभीक्ष्णज्ञानोपयोग है ॥ ४ ॥

बहुरि शरीरसम्बन्धी क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण रोगादिजनित अर मनसम्बन्धी दुःख अर इष्ट-वियोग, अनिष्टसंयोग, वांछितका अलाभ इत्यादिक संसारके दुःखनितैं भयभीत होइ परमवीतरागताका चिंतवन सो संवेग भावना है ॥ ५ ॥

बहुरि अपना अर अन्यका उपकारकै अर्थि आहार औषध शास्त्र अभयदानका सम्यग्भावनितैं भक्तिपूर्वक देना, जातैं त्यागमैं अर तपमैं शक्ति छिपावनाहू नहीं, अर शक्तितै अधिकहू नहीं जातैं शरीरादिक बिगडि भ्रष्ट होजाय सो नाहीं करना सो शक्तितस्त्यागभावना है ॥ ६ ॥

बहुरि अपना वीर्यकूं छिपायकरिकै जिनेन्द्रका मार्गकै अनुकूल अनशनादिक तप करना तथा ऐसैं विचारना जो यो शरीर दुःखका कारण है, अशुचि है, कृतघ्न है, इस देहकूं यथेष्ट भोजन देय पुष्ट करना अयोग्य है तोहू चारित्र ज्ञानादिक रत्ननिका संचय करनेकूं उपकारी है यातैं विषयनितैं विरक्त होइकरिकै अपना प्रयोजनकै अर्थि परिमित शुद्ध आहार देय यथाशक्ति मार्गतैं अविरोधी कायक्लेशादि तप करना श्रेष्ठ है ऐसी शक्तितैं तपोभावना है ॥ ७ ॥

बहुरि अनेक व्रत शीलनिकरि सहित जो मुनि तिनकै कोऊ कारणकरि विघ्न आवै तो ताका दूरि करना, जैसैं अनेक वस्तुनिकरि भर्या भंडारविषै अग्नि लागी होइ ताका जैसैं बुझावना तैसैं साधुनिकै विघ्न दुःख दूरिकरि व्रत शील संयमकी रक्षा करना सो साधुसमाधि है ॥ ८ ॥

गुणवंत जे साधुजन तिनकै कोऊ कारणकरि दुःख रोग आजाय ताका निर्दोष विधानकरि दूरि करना, सेवा टहल करना सो वैयावृत्य है ॥ ९ ॥

इहां उपदेश देकरि तथा शरीरका टहलकरिकै आहारादिक दान करिकै तो वैयावृत्ति होय है अर उनके व्रतसंयमादिकनिमैं विघ्नके कारणनिकूं दूरि करना सो साधुसमाधि है। बहुरि केवलज्ञान ही है दिव्य नेत्र जाके ऐसा अरहंत भगवानके गुणनिमैं अनुराग सो अर्हद्भक्ति है ॥ १० ॥

बहुरि समस्तसंघकै अधिपति दीक्षाशिक्षाकै देनेवाले आचार्यनिकै गुणनिमैं अनुराग सो आचार्य भक्ति है ॥ ११ ॥

बहुरि परके हित करनेमैं है प्रवृत्ति जिनकी अर स्वमतपरमतके विस्तारका निश्चयका जाननेवाले बहुश्रुत जे उपाध्याय तिनकै गुणनिमैं अनुराग सो बहुश्रुतभक्ति है ॥ १२ ॥

बहुरि श्रुतज्ञानके गुणनिमैं अनुराग सो प्रवचनभक्ति है ॥ १३ ॥

बहुरि सामायिक स्तव वेदना प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान कायोत्सर्ग ए षट् आवश्यक क्रियानिकी हानि नहीं करना, यथाकाल प्रवर्त्तन करना सो आवश्यकापरिहाणि भावना है ॥ १४ ॥

बहुरि परमरूप अज्ञानके उद्योतका तिरस्कार करनेवाली स्याद्वादरूप सम्यग्ज्ञान सूर्यकी प्रभाकरि जिनधर्मका सत्यार्थ प्रभाव दिखावना तथा जातैं देवनिकेहू आसन कम्पायमान होजाय ऐसा महान् तपकरि तथा भव्यरूप कमलनिके वनकूं प्रफुल्लित करनेवाला जिनेन्द्रका पूजनकरि सम्यग्धर्मका प्रभाव प्रगट करना सो मार्गप्रभावनांग है ॥ १५ ॥

बहुरि जैसैं गऊ वत्सविषैं प्रीति करै तैसैं सधर्मीकूं अवलोकन करि स्नेहतैं चित्तका आर्द्रपणा होजाना सो प्रवचनवत्सलत्व भावना है ॥ १६ ॥

ऐसैं ए षोडशभावना समस्त तथा ऊन दर्शनविशुद्धिकरि सहित चिंतवन करी हुई तीर्थंकरनाम कर्मका आस्रवका कारण है ॥ १७ ॥

बहुरि इहां विशेष ऐसा जो तीर्थंकरनाम प्रकृतिका वंध होइ सो अविरतनाम चतुर्थगुणस्थानमैं तथा पंचमामैं, छठेमैं, सातमामैं तथा आठमामैं अपूर्वकरणगुणस्थानका छठा भागपर्यंत वंध होय है। अर प्रथमोपशमसम्यक्त्वमैं तथा द्वितीयोपशममैं क्षयोपशममैं क्षायिकमैं च्यारो सम्यक्त्वमैं तीर्थंकरप्रकृतिका वंध होइ परंतु मनुष्यपर्यायहीमैं आस्रवका आरंभ केवली भगवान् तथा श्रुतकेवलीके चरणनिके निकट ही होय और तरह नहीं होय। बहुरि तीर्थंकरप्रकृतिकूं वांधि देवआयुका ही वंध करै सो कल्पवासीनिमैं महर्द्धिकदेव वा इंद्र होइ तथा सर्वार्थसिद्धिपर्यंत अहमिंद्रनिमैं जाय उपजै है तहां देवपर्यायमैंहू निरन्तर आस्रव आस्रवै है।

अर जाकै पूर्वै मिथ्यात्वगुणस्थानमैं तिर्यंचगतिका वा मनुष्यगतिका आयु बंधिगया होइ ताकै नियमतैं तीर्थंकरप्रकृतिका वंध नहीं होइ। अर जो पूर्वै मिथ्यात्वपरिणामनिमैं प्रथम नरकका वा द्वितीय नरकका आयुवंध करिलीया होइ अर पाछै केवली श्रुतकेवलीका निकट पाय क्षयोपशम वा क्षायिकसम्यक्त्वकूं प्राप्त होइ अविरतनाम चतुर्थगुणस्थानी होइ जातैं नरक आयु वंधनकीया होइ ताकै देशव्रत महाव्रत ग्रहण नहीं, तातैं अविरतगुणस्थानधारी रहे हैं पाछै केवलीका निकटकूं पाय षोडशकारण भावना भाय

तीर्थंकरप्रकृतिका बंध करै सो सम्यक्त्व अव्रतसहित मरणकरि प्रथमनरक जाय तहां भी तीर्थंकरप्रकृतिका आस्रव हुवा करै तहांसे आयु पूर्ण करि पंचकल्याणके धारक तीर्थंकर होइ निर्वाण प्राप्त होइ हैं।

अर कोऊ मिथ्यादृष्टि जीव द्वितीय तृतीय नरकका आयु बंध किया होइ अर पीछैं क्षयोपशमसम्यक्त्व ग्रहण करि केवली तथा श्रुतकेवलीका निकट पाय षोडशकारणभावना भाय तीर्थंकरप्रकृतिके बंधकूं करै फिर मनुष्यआयुमैं अंतर्मुहूर्त बाकी रहे तहां ताईं सम्यक्त्व रहै अर समयसमय तीर्थंकरप्रकृतिका आस्रव हुवा करै फिर द्वितीय अर तृतीय नरकमैं सम्यक्त्व लिएजाय नहीं। यातैं अंतर्मुहूर्त आयुमैं बाकी रहि जाय तदि सम्यक्त्व छूटि मिथ्यादृष्टि होइ द्वितीय तृतीय नरकमैं जाय हैं। तहां अंतर्मुहूर्त पर्यंत तो मिथ्यात्व रहै फिर पर्याप्त पूरा हुवा सम्यग्दर्शनकूं प्राप्त होइ तदि तीर्थंकरप्रकृतिका फिर आस्रव होनेलगिजाय सो तीनसागर वा सप्तसागर पूर्णकरि वहांतैं मनुष्यजन्ममैं पंचकल्याणपाय निर्वाण जाय है।

इहां भरतक्षेत्रमैं वा ऐरावतक्षेत्रमैं तो दोय जन्म पहली तीर्थंकरप्रकृतिबंध किया होइ ऐसा जीव तीन नरकका आया वा षोडश स्वर्ग वा अहमिंद्र लोकका आया ही तीर्थंकर होइ पंचकल्याणक पाय निर्वाण जाय है। बहुरि विदेहक्षेत्रमैं पूर्वभवमैं तीर्थंकरप्रकृति बांधि तीसरातांई नरकका आया वा कल्पवासी देवका आया वा अहमिंद्रलोकका आया तो पंचकल्याणकूं प्राप्त होय है। अर कोऊ मनुष्यपर्यायमैं गृहस्थावस्थामैं तीर्थंकरप्रकृतिबंध करै सो तप ज्ञान निर्वाण तीन कल्याण प्राप्त होय है। जातैं याकै गर्भ जन्म तो तीर्थंकरप्रकृति बंधकिया पहिली होगए। तदि दोय कल्याण कैसैं होइ।

बहुरि कोऊ मुनिपणामैं तीर्थंकरप्रकृतिका बंध किया ऐसा चरमशरीरी उसी भवहीमैं ज्ञाननिर्वाण दोऊ कल्याण पायकरि ही निर्वाण जाय है। ऐसैं तीर्थंकरप्रकृतिका आस्रव कहि नामकर्मके आस्रवके कारण कहै ॥ अब नीच गोत्रके आस्रवके कारण कहै हैं—

परात्मनिंदाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचर्गोत्रस्य ॥ २५ ॥

अर्थ—परकी निंदा अपनी प्रशंसा करनी, परके विद्यमानहू गुणका आच्छादन करना, अर आपके

जो गुण नहीं होइ तिनकूहू प्रगट करना, इन भावनितैं नीचगोत्रका आस्रव होय है। परजीवनके होते दोष वा अनहोते दोष प्रगट करनेकी इच्छा सो परनिन्दा है। अर आपविषैं विद्यमान गुणनिकी प्रगट करनेकी इच्छा सो आत्मप्रशंसा है। परके सत्यगुणनिकूं आच्छादन करना अर अपने झूठेहू गुण प्रगट करना सो परनिन्दा आत्मप्रशंसा है। अर परके गुण होइ तिनकूं ढांकणा आपके अनहोते गुण प्रगट करना ते नीच गोत्रके आस्रवके कारण हैं।

विशेष ऐसा—जो जाति कुल बल रूप श्रुत आज्ञा ऐश्वर्य तपका मद करना, परकी अवज्ञा करना, परका हास्य करना, परके अपवाद करनेका स्वभाव रखना, धर्मात्मा पुरुषनिकी निन्दा करना, अपनी उच्चता दिखाना, परके यशकूं बिगाडि देना, अपनी असत्यकीर्ति प्रगट करना, गुरुनिका तिरस्कार करना, गुरुनिका दोष विख्यात करना, गुरुनिका स्थान बिगाडना, अपमान करना, गुरुनिकूं पीडा उपजावना, अवज्ञा करना, गुणनिकूं लोपना, गुरुनिको अंजलि नहीं जोडना, गुरुनिकी स्तुति नहीं करना, गुरुनिके गुण नहीं प्रकाशना, गुरुनिकूं देखि नहीं खडा होना, तीर्थंकरादिककी आज्ञाका लोप करना ए समस्त नीच गोत्रके आस्रवके कारण हैं॥

अब उच्च गोत्रके आस्रवके कारण कहै हैं—

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥ २६ ॥

अर्थ—नीच गोत्रके आस्रवतैं विपर्ययपणातैं अर नीचप्रवृत्ति अर उत्सुकताका अभावतैं उच्चगोत्रका आस्रव होय है। परकी प्रशंसा करना, अपनी निंदा करना, परके भले गुणनिकूं प्रगट करना, अपने गुणकी कथनी नहीं करना, गुणवन्तनिविषैं विनयकरि नम्रीभूत रहना सो नीचवृत्ति है। आपमैं विज्ञानादिक अधिक होइ तोहू तिनकृत मद नहीं करना, सो अनुत्सेक है। सो ए उच्चगोत्रके आस्रवके कारण हैं। अन्यहू जानना—जाति कुल रूप बल वीर्य विज्ञान ऐश्वर्य तप इनिकरि अधिक होइ तातैं आपकी उच्चता नहीं चिंतवन करना।

अन्यजीवनिकी अवज्ञा नहीं करना, अन्यजीवनितैं उद्धतपणा छांडना, परकी निंदा ग्लानि हास्य अपवादका त्याग करना, अभिमानरहित रहना, धर्मात्मा जनका पूजा-सत्कार करना, देखतैं ही उठि खडा होना, अंजुली जोडना, नम्रीभूत रहना, वन्दना करना। बहुरि इस अवसरमैं अन्यपुरुषनिकै ऐसे गुण दुर्लभ तिनकूं आपमैं होतैंहू उद्धतपणा नहीं करना। जैसैं भस्ममैं ढक्या अग्निकीज्यों अपना महत्त्व नहीं प्रगट करना, धर्मके कारणनिमैं परमहर्ष करना सो समस्त उच्चगोत्रके आस्रवके कारण हैं॥

अब अन्तरायकर्मके आस्रवनिकूं कहै हैं—

विघ्नकरणमंतरायस्य ॥ २७ ॥

अर्थ—दान देनेमैं विघ्न करनेतैं दानांतरायकर्मका आस्रव होय है। जो कोऊके लाभ होता होइ तिन लाभके कारणनिकूं बिगाडनेतैं लाभांतरायकर्मका आस्रव होय है। परके वीर्य बिगाडनेतैं वीर्यांतराय कर्मका आस्रव होय है।

बहुरि विशेष ऐसा—जो कोऊ ज्ञानाभ्यास करता होइ ताके निषेध करनेतैं तथा कोऊका सत्कार होता होइ तिसके विनाशनेतैं तथा दान लाभ भोगोपभोग वीर्य स्नान विलेपन अत्तर फुलेल सुगन्ध पुष्पमाल्यादिक वस्त्र आभरण शय्या आसन भक्षण करने योग्य पेय आस्वादने योग्य लेह्य इत्यादिकनिमैं दुष्टभावनतैं विघ्न करनेतैं तथा विभवसमृद्धि देखि आश्चर्य करनेतैं तथा अपने धन होतैंहू नहीं खरच करनेतैं, द्रव्यकी अतिवांछातैं, देवताकै चढ़ी वस्तुकै ग्रहणकरनेतैं, निर्दोष उपकरणके त्यागनेतैं, परकी शक्ति वीर्य विनाशनेतैं, धर्मका छेद करनेतैं, सुन्दर आचारके धारक तपस्वी गुरुका घात करनेतैं, धर्मका आयतन तथा जिनप्रतिमाकी पूजाके बिगाडनेतैं तथा दीक्षितनिकूं वा दरिद्रीनिकूं दीन अनाथनिकूं कोऊ वस्त्र पात्र स्थान देता होइ तिनका निषेध करनेतैं, परकूं बन्दिगृहमैं रोकनेतैं बांधनेतैं गुह्य अंगके छेदनेतैं कर्ण नासिका ओष्ठके काटनेतैं जीवनिके मारनेतैं अन्तरायनाम कर्मका आस्रव होय है।

इहां कोऊ ऐसी आशंका करै-जो कोऊ पुरुष अभक्ष्यभक्षण करै ताकूं वर्जन करै तो ताकै अन्तराय

कर्मका आस्रव कैसैं नहीं कह्या ? ताका समाधान—जो कोऊ अभक्ष्यभक्षण करता देखि ऐसा विचार करै जो अभक्ष्यभक्षणतैं नरक जायगा, अर हिंसातैं महान् पापका बन्ध होयगा, किसी तरह याकै यालना नहीं होइ ऐसी करुणा भावनाकरि वर्जन करै ताके तो अन्तरायकर्मका बन्ध नहीं होय। अर जाका केवल भोग बिगाडनेका अभिप्रायतैं ही वर्जन करै ताकै अन्तरायका आस्रव होयगा।

इहां ऐसा विशेष—जैसैं कोऊ मद्यपानी अपनी ही रुचिके विशेषतैं मोह मद विभ्रमके करनेवाली मदिरा पीय करिकै अर ताके परिपाकके वशतैं अनेक विकारकूं प्राप्त होय है। तथा जैसैं रोगी अपथ्य भोजन करि अपने वातपित्तकफादि जनित विकारनिकूं प्राप्त होय है तैसैं यह जीव आस्रवविधिकरि ग्रहणकीया अष्ट प्रकारका ज्ञानावरणादिकमैं तथा एकसो अडतीस प्रमाण उत्तरकर्म तथा असंख्यात लोक-प्रमाण उत्तरोत्तर कर्मका प्रकृतितैं उपज्या विकारकूं प्राप्त होय है।

अब इहां कोऊ प्रश्न करै—जो आयुकर्मविना सप्तप्रकृतिनिका आस्रव समय समयप्रति निरन्तर अनादिकालतैं होय है तदि तत्प्रदोषादिकनिकरि ज्ञानावरणादिकनिका ही नियम कैसैं रह्या। ताका उत्तर—एककालमैं जो समयप्रबद्ध आवै है तिसके परमाणु आयुविना ज्ञानावरणादि सप्तकर्मनिकूं वटै हैं तथा अपने अपने बांटमैं यथायोग्य अपनी उत्तरप्रकृतिनिकूं वटै है।

तातैं समस्त कर्मप्रकृतिके प्रदेशबन्धप्रति नियम नहीं कह्या है। जो ए तत्प्रदोषादिक भाव कहे ते अनुभागप्रति कारणका नियम है। इन भावनितैं जो कर्म आवैं सो अनुभागप्रति नियम जणावै हैं। जैसैं कोऊ पुरुषका भाव दानके देनेमैं अन्तराय करनेवाला होइ तदि उस समयमैं जो कर्मका आस्रव भया सो सप्तकर्मनिकूं वटिगया परंतु दानांतरायकर्ममैं तो रस प्रचुर पडा अर अन्यप्रकृतिनिमैं रस मंद पडा थोथी रही गई जातैं कर्मनिका प्रकृति प्रदेश बंध तो योगनिकै आधीन होय है। अर स्थिति अनुभाग कषायरूप भावनिकै आधीन कोऊमैं मंद पडै है ऐसैं जानना।

बहुरि आयु कर्मका आस्रवकी विधि ऐसै जाननी। जो कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यंचनिका वर्तमान

आयुका जेता काल होइ ताके तीन भाग करने। जब दोय भाग व्यतीत होइ तब तृतीय भागका आदिमैं अन्तर्मुहूर्त मात्र आयुबन्धका काल है। ऐसैं अष्ट त्रिभाग हैं। इस कालमैं ही आयुकर्मके आस्रव होनेकी योग्यता है। जैसैं किसी मनुष्य तिर्यंचका भुज्यमान आयु इक्यासी वर्षका होइ ताकै दोय त्रिभाग जो चौवन वर्ष तिन पर्यंत तो परभव सम्बन्धी आयुके बन्ध करनेकी योग्यता ही नहीं।

अर बाकी जो सत्ताईस वर्षकी आयु रही तिसकी आदिविषै अंतर्मुहूर्तपर्यंत आयुकर्मके आस्रव होनेकी योग्यता है, वहां नहीं बंधै तो दोय त्रिभागके अठारह वर्ष भए तिनमैं आयुबंधै नहीं अर नव वर्ष रह्या तिसका आदिका अंतर्मुहूर्तपर्यंत आयुकर्मका आस्रवका अवसर है।

अर इहां नहीं बन्धे तो छह वर्षपर्यंत योग्यता नहीं, तीन वर्षकी आदिका अन्तर्मुहूर्तमैं योग्यता है। अर इहां नहीं बन्धै तो दोयवर्षपर्यंत नहीं बन्धै एक वर्षकी आदिका अन्तर्मुहूर्त्तमैं बन्ध करै। अर इहांहू जो बन्ध नहीं होइ तो आठ महीनापर्यंत योग्यता नहीं, पीछैं आयुका महिना चारकी आदिका अंतर्मुहूर्तमैं आयुबन्ध होनेकी योग्यता है। इहांहू नहीं बंधै तो अस्सी दिनपर्यंत योग्यता नहीं, च्यालीस दिनकी आदिके अंतर्मुहूर्त्तमैं बंधकी योग्यता है। अर इहांहू बन्ध नहीं होइ तो चालीस दिनका दोय त्रिभाग जो छवीस दिन अर चालीस घडीपर्यंत आयुबन्धकी योग्यता नहीं है। पाछैं तेरा दिन वीस-घडीकी आयु रहे आदिका अंतमुहूर्त्तमैं आयुबन्धकी योग्यता है। इहांहू नहीं बन्धै तो आठ दिन बावन घडी अस्सी पलपर्यंत बंधकी योग्यता नहीं है। चार दिन छवीस घडी चालीस पलकी आदिके अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत बंधकी योग्यता है।

ऐसैं आठ आकर्षण आयुके बंधकै योग्य हैं। अर इन आठ अपकर्षका भी यह नियम नहीं जो इहां आयुका बंध होय ही। अर नवमा अपकर्ष है नहीं, तदि कहां बंधै? सो कहै हैं। भुज्यमान आयुके कालमैं एक आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण अवशेष रह्या परभवसंबंधी आयुका बंध होय ही ऐसा नियम है। बहुरि केई अष्टवार केई सप्तवार केई छवार केई पांचवार केई च्यारवार केई तीनवार केई दोयवार केई

एकवार ही परभवसंबंधी आयुका आस्रवनें प्राप्त होइ हैं। इहां अपकर्षनिमें आयु बंध करनेवाले सर्वतें अल्प हैं यातैं सात अपकर्षमें बांधनेवाले संख्यातगुणे, यातैं पांचवार, यातैं च्यारवार, यातैं तीनवार, यातैं दोयवार यातैं एकवार अपकर्षणमें आयुबन्ध करनेवाले संख्यात असंख्यात गुणे हैं।

बहुरि जो एक अपकर्षणमें एकवार जसी आयु बंधिजाय सो अन्य अपकर्षणमें भी वाही आयु बंधे अन्य आयुका आस्रव नहीं होइ, स्थिति हीन अधिक बन्ध करेही। बहुरि देव नारकीनिकै समस्त आयुका त्रिभागमें परभवका आयु नाहीं बन्धै है, भुज्यमान आयुका छःमहीना अवशेष रहैं छै महीनाकै त्रिभागमें बन्धै है सोहू अष्ट अपकर्षणरूप जानना। बहुरि एकसमयकरि अधिक कोटीपूर्वकूं आदिसे तीन पल्यपर्यंत संख्यात असंख्यात वर्षकी आयुके धारक भोगभूमिके मनुष्यके तिर्यंचनिकै भुज्यमान आयुका नव महीना अवशेष रहे, त्रिभागमें आयुबंध होय है ऐसें आस्रव कह्या।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः।

अर्थ—तत्त्वार्थका है अधिगम जामें ऐसा दशाध्यायरूप मोक्षशास्त्र ताके विषे छठा अध्याय पूर्ण भया।

दोहा।

है जातैं तत्त्वार्थका, अधिगम शिवसुखदाय। मोक्षशास्त्र मंगलमयी, नमूं छठा अध्याय ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

पापपुन्यको भेद जिन, कह्यो सुज्ञानविवेक ।
मोहभाव निर्मूलतै, आस्रव टिकै न एक ॥

आस्रवका विशेषविधानकै अर्थि व्रत कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतं ॥ १ ॥

अर्थ—हिंसा अनृत स्तेय अब्रह्म परिग्रह इनतैं जो विरत कहिए निवृत्त होना सो व्रत है। हिंसादिकनिका स्वरूप आगैं कहसी। चारित्रमोहके उपशम क्षयोपशमतैं जो हिंसादिक पञ्चपापनितैं विरतिरूप होना सो व्रत है। वुद्धिपूर्वक पापनिका त्यागरूप नियम सो विरति है। व्रतनिमैं हिंसाका त्याग प्रधान है तातैं अहिंसाव्रतकूं आदिमैं कह्या है। ऐसैं अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्याग ये पञ्च व्रतनिके नाम हैं ॥ अब व्रतनिकै द्विविधपणा जनावनेकूं सूत्र कहै हैं—

देशसर्वतोऽणुमहती ॥ २ ॥

अर्थ—एही पञ्चव्रत एकदेश होय तब अणुव्रत होय हैं, अर सकल होय सो महाव्रत हैं। जातैं इन पांचों पापनिका जो एकदेशत्यागी होइ सो अणुव्रती कहावै है। अर पांचों पापनिका समस्तपणाकरि त्याग करै सो महाव्रती कहिए है। तिनका ऐसा विशेष है, जो मन वचन काय कृतकारित अनुमोदनाकरि समस्त त्रसस्थावरनिकी विराधनाकरि रहित समस्त आरंभ परिग्रहका त्यागी देहादिक समस्त परद्रव्यनिमैं रागकरि रहित ज्ञानी वीतरागी हैं तिनकै तो परमागममैं महाव्रत कहा है।

अर गृहमैं जो आरंभादिकमैं प्रवर्तै तोहू मनवचनकायतैं मारनेका संकल्पकरि त्रसजीवनिकी हिंसा आप करै नहीं अन्यतैं करावै नहीं अर अन्य कोऊ करै ताकूं भला जानै नहीं, अर जो गृहमैं तिष्ठता

गृहस्थावस्थाहीमैं अणुव्रतरूप श्रावकका व्रत धारण करै है तिसकै आरंभजनित हिंसाका तो त्याग बणि-सकै नहीं अर अपनै मन वचन कायके संकल्पकरि द्वींद्रियादि त्रसजीवनिकी हिंसा करै नहीं करावै नहीं करतेकूं भला जानै नहीं अर थावरकी हिंसाका त्याग नहीं, परंतु प्रयोजनविना स्थावरकी विराधना करै नहीं, अर प्रयोजनके वशतैं पृथ्वी जलादिककी विराधना होइ ताकूं भला जाणे नहीं तातैं गृहस्थकै एक-देशहिंसाका त्याग है ॥

ऐसैं ही स्थूल असत्यका चोरीका कुशीलका परिग्रहका त्याग करै सो अणुव्रती है। अर याहीकूं देशव्रती कहिए है।

अब इन व्रतनिकूं धारणकरनेवाला ज्ञानी इन व्रतनिकी रक्षाके अर्थि जे भावना भावै तिनकै अर्थि सूत्र कहै हैं—

तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पंच पंच ॥ ३ ॥

अर्थ—इन व्रतनिके स्थिर करनेकै अर्थि एकएक व्रतकी पांचपांच भावना हैं। वारंवार चिंतवन करना सो भावना है। इनितैं व्रत दृढ होय है ॥ अब प्रथम अहिंसा व्रतकी भावना कहै हैं—

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पंच ॥ ४ ॥

अर्थ—वचनगुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्यासमिति, आदाननिक्षेपणसमिति, आलोकितपानभोजन ए पांच अहिंसाव्रतकी भावना हैं। वचनकी प्रवृत्तिकूं भलैप्रकार रोकना सो वचनगुप्ति है। मनकी प्रवृत्तिकूं भलै प्रकार रोकना सो मनोगुप्ति है। भूमिकूं अवलोकनकरि यत्नाचारतैं चलना सो ईर्यासमिति है। यत्नाचारतैं जीवनिकी विराधना रहित वस्तुकूं उठावना धरना सो आदाननिक्षेपणसमिति है। आहारपान दिवस-विषै अन्तरंगज्ञानदृष्टितैं अर नेत्रनितैं देखि सोधि भक्षण करना सो आलोकितपानभोजन है। ए पांच भावना अहिंसाव्रतकी निरन्तर चिन्तवन करना ॥

अब सत्यव्रतकी पञ्च भावना कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पंच ॥ ५ ॥

अर्थ—क्रोधका प्रत्याख्यान कहिए त्याग, अर लोभका त्याग, भयका त्याग, हास्यका त्याग, अर पापरहित सूत्रकै अनुसार बोलना सो अनुवीचिभाषण ए पांच भावना सत्यव्रतकी हैं। जातैं क्रोध लोभ भय हास्य इनिके निमित्ततैं असत्यवचन बोलिए तातैं इनिका त्यागरूप भावना राखणी अर अपना परका अहित हितकूं विचारि बोलना ऐसैं सत्यकी पंचभावना कहीं ॥

अब—अचौर्यव्रतकी पंचभावना कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माविसंवादाः पंच ॥ ६ ॥

अर्थ—शून्यागारमैं वसना, विमोचितावासमैं वसना, परका वर्जन नहीं करना, भिक्षाकी शुद्धता करना, सधर्मनिसों विसम्वाद नहीं करना, ए पंच भावना अदत्तादानवर्जव्रतकी हैं। शून्यगृह जो पर्वत गुफा वन वृक्ष कोटरादिकनिमैं वसना, अर परकरि छोडा हुआ ऊजडस्थानमैं वसना, तथा आप जठै जावै अन्य कोऊ आवै ताकूं वर्जन नहीं करना, तथा पहली कोऊ वासकरि राख्या होइ ताकूं काढि नहीं वसना, अर आचारांगके मार्गकरि भिक्षाकी शुद्धता करना, सधर्म्मनितैं विसम्वाद नहीं करना, ए अचौर्यव्रतकी पंच भावना हैं।

अब—ब्रह्मचर्यव्रतकी पंच भावना कहै हैं—

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पंच ॥ ७ ॥

अर्थ—स्त्रीनिकै विषै राग उत्पन्न करनेवाली कथाका त्याग करना, स्त्रीनिके सुन्दरमनोहर अंगनिकूं रागसहित अवलोकनका त्याग करना, त्याग नहीं किए पहली भोगकीए थे तिनम स्मरण करनेका त्याग करना, वृष्येष्टरस कहिए पुष्ट इष्ट रस जो कामोद्दीपन करनेवाला इंद्रियनिके लालसा उपजावनेवाला रसका त्याग करना, अर अपने शरीरकूं कज्जल कुंकुम पुष्प तैलादिकरि संस्कार करनेका त्याग ए पांच भावना ब्रह्मचर्यव्रतकी जानना ॥

अब—परिग्रहत्यागव्रतकी पंच भावना कहै हैं—

मनोज्ञामनोज्ञेंद्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पंच ॥ ८ ॥

अर्थ—पांच इंद्रियनिके जे स्पर्श रसादिक इष्ट अनिष्टविषय तिन विषै रागद्वेष छांडना सो परिग्रहत्यागव्रतकी पंच भावना हैं। ऐसैं पंच व्रतनिकी पांच पांच भावना निरंतर भावनेतैं व्रत शिथिल नहीं होय हैं। जैसैं व्रतनिकी दृढता करनेकूं भावना कहीं तैसैं व्रतनिकूं विरोधी हिंसादिकनितैं परांगमुख होनेकूं भावना कहै हैं—

हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनं ॥ ९ ॥

हिंसादिक पंच पाप होतै संते इस लोकमैं तथा परलोकमैं अपाय कहिए नाश तथा भय अर अवद्य कहिए निंदनीकपणा देखिए है। ऐसैं भावना करवो योग्य है। कैसैं सो कहिए हैं—हिंसक है सो नित्यही उद्वेगरूप होय है, अर निरन्तर अनेक जीवनितैं वैरका बांधनेवाला होय है, अर इस लोकमैं वध बंध क्लेशादिकनिकूं प्राप्त होय है। अर परलोकमैं अशुभगति अर निंदनीय होय है। तातैं हिंसातैं विरक्तता श्रेष्ठ है, कल्याणकारिणी है। तैसैंही असत्यवादी समस्तके श्रद्धानयोग्य नहीं होय है। इस लोकहीमैं जिह्वाका छेद तथा तीव्रदंडादिक तथा जिनकूं असत्यवचनतैं दुःखित किए ते वैरी भए तिनतैं महान् कष्टनिकूं प्राप्त होय है। अर परलोकमैं अशुभगति होय है अर निंदनीक होय है। तातैं अनृतवचनतैं विरक्त होना कल्याणकारी है।

तैसैं ही परधनहरणमैं आसक्त है बुद्धि जाकी ऐसा चोर है सो सर्वकै भय उपजावनेवाला होय है। अर इस लोकहीमैं मारन ताड़न वध बंधन अर हस्त पाव कर्ण नासिका ओष्ठ इत्यादिकनिका छेदन भेदन सर्वस्वहरणादिकनिकूं प्राप्त होय है। अर परलोकमैं अशुभगति अर निंदनीक होय है। तातैं चोरीतैं विरक्त होना कल्याणकारी है। तथा कुशीलपुरुष हैं सो मदका विभ्रमकरि उन्मत्तचित्त रहै हैं। अर स्त्रीनिकरि ठग्याहुवा विवश हुआ वनका हस्तीकीज्यों वध बंध परिक्लेशादिकनिकूं भोगै है। मोहकरि तिरस्कृत

हुवा कार्य अकार्यकूं नहीं जाणैहै। अर किंचितहू कुशलकूं नहीं आचरण करैहै। अर जो परकी स्त्रीका आलिंगनमैं रति करै है सो इसही लोकमैं वैरका बंधाणकरि लिंगछेदन वध बन्धन सर्वस्वहरणादिक नाशकूं प्राप्त होय है। परलोकमैं अशुभगतिकूं प्राप्त होय है अर निंद्य होय है। यातैं कुशीलतैं विरक्त होना आत्माका हित है।

बहुरि तैसैंही परिग्रहधारी है सो अनेकधनका अर्थि तो राजा चोर होइ या दारादिक तिनकरि तिरस्कारादिकनिकूं प्राप्त होय है। जैसैं कोऊ पक्षीके मांसका खंड ग्रहणहुवा तिसकूं अनेकपक्षी चोगिरद फिरि मारैहैं, मांस खोसिलेहैं, दुःखित करैहैं। तैसैं धनवानकै चोगिरद धनके ग्राहक अनेक दुष्ट फिर रहै हैं। अर धनके उपार्जनमैं रक्षणमैं तथा नाशमैं बहुत क्लेशकूं प्राप्त होय है।

अर जैसैं इंधनकरि अग्नि तृप्ति नहीं होय है तैसैं धनकरि तृप्ति नहीं होय है। अर जिसका मन लोभकरि तिरस्कृत है सो कार्य अकार्यकूं नहीं देखै है अर परलोकमैं अशुभगति होय है। अर यो लोभी है ऐसैं निंद्य होय है। तातैं परिग्रहतैं विरक्त होना श्रेष्ठ है ऐसैं हिंसादिक पापनितैं इस लोकमैं नाश तथा भय, परलोकमैं नरकादिक दुर्गतिस्वरूप अपाय अवद्य अवलोकन करना ॥

औरहू हिंसादिकनिमैं भावना करनेकूं सूत्र कहै हैं—

दुःखमेव वा ॥ १० ॥

अर्थ—हिंसादिक पंच पाप हैं ते दुःखरूपही हैं ऐसी भावना राखना। हिंसादिक दुःखका कारण हैं तातैं हिसादिक दुःखही हैं। इहां कारणमैं कार्यका उपचारकरि कह्या है। हिंसादिक पाप हैं ते असातावेद-नीयादि अशुभकर्मका कारण है। अशुभकर्म दुःखका कारण है। ऐसैं दुःखका कारणका कारण भी है तातैं दुःख ही है।

जैसैं वध बन्धन पीडन मोकूं अप्रिय हैं तैसैं ही अन्य समस्त प्राणीनिकूं अप्रिय हैं। जैसैं कटुक कठोरवचन मोकूं कोऊ कहैं ताकै श्रवण करनेतैं हमारैं अति तीव्र दुःख उपजै है तैसैं अन्य जीवनिकैहू

दुःख उपजावै हैं। जैसैं मेरा इष्टद्रव्यकूं चोरनिकरि चोरते हमारैं महादुःख होय है तैसैं अन्य जीवनिकैहू होय है। जैसैं हमारी स्त्रीका कोऊ तिरस्कार करै तिस करि हमारे तीव्र मानसिक पीडा होय तैसैं अन्य जीवनिकेह्न अतिदुःख होय है। जैसैं आपके धनादिक परिग्रह नहीं प्राप्त होते वा प्राप्तहुवा ताकूं नष्ट होते वांछा रक्षा शोक इत्यादि करि उपजा दुःखकूं प्राप्त होय है, तैसैं ही परिग्रहकी वांछातैं तथा परिग्रहके नष्ट होनेतैं समस्त जीवनिकै दुःख होय है। तातैं हिंसादिक पापनितैं विरक्त होना ही जीवका कल्याण है।

इहां कोऊ प्रश्न करै—जो सुन्दर स्त्रीका कोमल सुन्दर शरीरका स्पर्शनतैं रतिसुख उपजता देखिए है सो दुःखरूप कैसैं कह्या? ताका उत्तर—जो यो सुख नहीं है, भ्रांतितैं सुखरूप दीखै है। वेदनाका इलाज है। जैसैं चाम मांस रुधिर हैं ते जय विकारतैं कलुषपणानैं प्राप्तहोइ खाजिकी उत्कटताकरि बाधा करै हैं तदि नखनतैं ठीकरी पत्थर इत्यादिकनितै अपना शरीरकूं खुजावै हैं। गात्रकूं छेदने रगडनेतैं रुधिरकरि लिप्त हुवाहू अत्यन्त खुजायकरि दुःखहीको सुख मानै है। तैसैं मैथुन सेवनेवाराहू मोहतैं दुःखहीकूं सुख मानै है।

तथा मनुष्य असुर तथा सुरेंद्रादिक समस्त ही अपने साथि उपजी जो इंद्रियां तिनकरि उपजा दुःखकूं सहनेकूं असमर्थ भए रमणीकविषयनिमैं रमैहैं जातैं समस्त संसारी जीवनिकै इंद्रियनिकरि उपज्या परोक्ष इंद्रियोंकै आधीन ज्ञान है तातैं इंद्रियनिविषैंही मित्रता वर्तैहै अर इंद्रियानिकै अपने अपने विषयनिमैं अतिलालसाकरि झंपापात प्रवर्तै है।

जैसैं अग्निकरि तप्तायमान लोहका गोला तैसैं इंद्रियनिकी तापकरि तप्तायमान जो आत्मा ताकै विषयनिमैं अतितृष्णातैं उपज्या अतिदुःखका वेगकूं सहनेकूं असमर्थ भया विषयनिमैं पडे है। जैसैं कोऊ पुरुष च्यारोंतरफ अग्निकी ज्वालातैं बलता अग्निके आतापकूं नहीं सहि सकता विष्ठाका भर्या महादुर्गंध कुण्डमैं जाय पडै है तिस विष्ठामैं मस्तकपर्यंत डूबि ताकूं ही आतापरहित सुख मानि मरण करै है।

तैसैं स्पर्शनइंद्रियकी आताप सहनेकूं असमर्थ हुवा संसारी जीव स्त्रीयांनिका दुर्गंधदेहमैं कामकी

आतापरहित सुख मानता अतितृष्णातैं उपज्या तीव्रदुःखकूं भोगता मरणकरि संसारमैं नष्ट होजाय है। तथा इस जीवकै इंद्रिय तो महाव्याधि है अर विषय है सो किंचित्काल व्याधिका उपहास ताका कारण औषध है। जिनकै इंद्रियां जीवती तिष्ठे हैं तिनकै स्वाभाविकही दुःख है। दुःख नहीं होइ तो विषयनिमैं उछलिउछलि कैसैं पडै। सो देखिएही है। कपटकी हथनीका शरीरका स्पर्शकै अर्थि वनका हस्ती स्पर्शनेंद्रियकी आतापकरि बन्धनमैं पडै है। धीवरके पसारे कांटेविषै रसनाइंद्रियका विषयका लोलुपी मत्स्य फसि मरै है। घ्राणेंद्रियकी आतापका मारा भ्रमर है सो संकोचके सन्मुख कमलकी गन्धकूं ग्रहण करता मरण करै है। नेत्रेंद्रियजनित सन्तापकूं नहीं सहि सकता रूपका लोभी पतंग दीपककी ज्वालामैं भस्म होय है। कर्णेंद्रियजनित तृष्णाकी आतापकूं नहीं सहि सकता हरिण शिकारीकरि गाया रागमैं अचेत होइ माऱ्या जाय है।

इनि दुर्निवार इंद्रियनिकी वेदनाकै वसि पडै जीवनिका निकट ही है मरण जिनमैं ऐसे विषयनिविषैं पतन होय ही है इंद्रियजनित आतापतुल्य त्रैलोक्यमैं आताप नहीं है। जैसा इंद्रियनिका आताप है तैसा अग्निका नहीं शस्त्रका नहीं विषका नहीं। इंद्रियनिकी आताप सहनेकूं असमर्थ भए विषयनिकै अर्थि अग्निमैं बलैहैं शस्त्रनिकै सन्मुख होइहैं, विषभक्षणकरैहैं, धर्म लोपैहैं, माता पिता गुरु उपाध्यायकूं विषयनिका रोकनेवाला जानि मारि डारै हैं।

इस संसारमैं दुःखही केवल इंद्रियजनित है। जिनकै इंद्रियरहित अतींद्रिय केवलज्ञान है तिनहीकै निराकुलता लिए ज्ञानानंदसुख है यातैं इंद्रियोंके आधीन है त्यांके स्वाभाविक दुख ही है जो स्वाभाविक दुःख नही होइ तो विषयनिमैं प्रवृत्ति कैसैं करैं। जाकै शीतज्वर मिटगया सो अग्नितैं तापना नाही चाहैगा। जाकै दाहज्वर मिटिगया सो कांज्याका सींचना नहीं चाहैगा। जाकै नेत्ररोग मिटिगया सो खपरया अंजनादिक नहीं चाहै हैं। जाकै कर्णका शूल मिटिगया सो कर्णमैं बकराका मूत्र नहीं डारैगा। जाकै व्रण घाव मिटिगया सो मलमपट्टो नहीं करैगा। तैसैं जाकै इंद्रियजनित वेदना नहीं ताकै विषयनिमैं प्रवृत्ति

कदाचित् नहीं होयगी। क्षुधा वेदनाविना भोजन कौन करै? तृषा वेदनाविना जल कौन पीवै? गरम-विना शीतपवन कौन चाहै? शीतविना रूईका भरया तथा रोमका वस्त्र कौन ओढै? तातैं ए समस्त विषयवेदनाके इलाज हैं। वेदना घटिजाय ताकूं अज्ञानी सुख मानै हैं।

सुख तो जो है जहां वेदना नहीं उपजै, अनाकुलतालक्षण स्वाधीन अतींद्रिय अनंतज्ञान है सो ही सुख है अन्य नहीं ऐसा निश्चय जानहू। ऐसैं हिंसादिकनिकूं दुःखरूप ही चिंतवन करना।

अब औरहू व्रतनिकै अर्थि भावना कहै हैं—

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु ॥ ११ ॥

अर्थ—सत्त्व जे प्राणी तिनविषैं मैत्री भावना, गुणनिकरि जे अधिक होइ तिनविषैं प्रमोद भावना, क्लेशयुक्तनिविषैं कारुण्य भावना, अविनयीनिविषैं माध्यस्थभावना भावनी। अनादिकालतैं अष्टप्रकार कर्मसन्तानकरि दुःखरूप चतुर्गतिमैं "सीदन्ति" कहिए क्लेश भोगैं ते एकेंद्रियादिक समस्तप्राणी तिनकूं सत्त्व कहिए हैं।

समस्तप्राणीनिविषैं दुःखकी उत्पत्तिका अभाव चाहना जो कोऊ प्राणीकै दुःख मति होहू सो मैत्रीभावना है। समस्तप्राणीनिमैं मैत्रीभावना करना योग्य है। अर जो सम्यग्दर्शनादिगुणनिकरि अधिक होइ तिनकूं गुणाधिक कहिए तिनमैं प्रमोदभावना करनी। प्रमोद नाम हर्षका है। सो गुणनिकरि अधिक पुरुषनिकूं देखतप्रमाण मुखकी प्रसन्नताकरि नेत्रनिका आह्लादनकरि रोमांच होनेकरि स्तुति भाषण नाम-कीर्तनादिकरि अंतर्गत भक्ति प्रगट करना सो प्रमोदभावना है।

बहुरि असातावेदनीयका उदयकरि रोग दारिद्र्यादिककरि पीडित जे क्लिश्यमान मनुष्य तिनमैं उपकार करनेका दुःख मेटनेका अभिप्राय सो कारुण्यभावना है। बहुरि जे तत्त्वार्थ उपदेशका श्रवण ग्रहणकै योग्य नहीं ऐसे अविनेयनिविषै रागद्वेषका अभावरूप माध्यस्थभावना करना।

भावार्थ—मैं सर्वजीवनिमैं क्षमा कराऊंहू अर समस्तजीवनिमैं मैं क्षमा करूंहूं, मैं समस्तजीवनिमैं

मैत्रीभाव जो प्रीतिभाव ताकूं धारूहूं, मेरा किसी जीवतैं वैर नहीं ऐसैं समस्तप्राणीनिमैं मैत्रीभावना भावै। अर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकरि अधिक पुरुषनिमैं वन्दना स्तुति वैय्यावृत्यकरणादिकरि प्रमोद भावना भावै, अर नानाप्रकारके शारीरिक मानसिक दुःखकरि संतापित दीन अनाथ कृपण बाल वृद्ध मनुष्यनिमैं करुणाभावना भावै। अर जे ग्रहण धारण विज्ञानादिरहित मोही मिथ्यादृष्टि अभिमानी दुष्ट हठग्राही तिनमैं रागद्वेषरहित माध्यस्थभावना भावै ॥

अब—व्रतीनिकी औरहू भावना हैं ताही कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थं ॥ १२ ॥

अर्थ—संवेग अर वैराग्यके अर्थि जगतका अर कायका स्वभाव चिन्तवन करना। यो जगत् कहिए लोक सो अनादिनिधन है। अर्द्धमृदङ्ग ऊपरि एक मृदङ्ग धरिए ऐसा ज्येढ मृदङ्गकासा संस्थान धरै है। इस जगतविषैं जीव हैं ते नानाभेदरूप चतुर्गतिमैं भ्रमण करता निरंतर दुःख भोगै हैं। कोऊहू निश्चल नहीं है। जलका बुद्बुदातुल्य जीवित अथिर है। अर भोगसंपदा मेघपटलज्यों तथा विजुलीके चमत्कारज्यों क्षणभंगुर है।

इहां संसारीप्राणी अनंतपरिवर्तन किए हैं इत्यादिक जगतका स्वभावका चिंतवन करनेतैं संसार-परिभ्रमणतैं संवेग कहिए भय उपजै है। बहुरि यो काय है, सो अनित्य है, दुःखको कारण है, अपवित्र है, निःसार है, कोटियत्न करते करते नष्ट होइगा।

बहुरि यो मनुष्यशरीर है सो रोगरूप सर्पनिका बिल है। अर धोवते धोवते निरंतर मैल उगलै है। सुगंध अत्तर फुलेल लगावता लगावता दुर्गंध वमै है। पोषते पोषते नहीं धारै है। सुखित राखतै राखतै अपना नहीं होय है। भूषित करते करते विडरूप दिनदिन होय है। सुधारता सुधारता दिनदिन भयानकता धारै है। सुख देतादेता दुःख उपजावै है। मंत्रते मंत्रते मरणतैं भयभीत रहै है। दीक्षारूप होता होताहू दूषित करै है। शिक्षा देते देतेहू गुणनिमैं नहीं रमै है। दुःख भोगते भोगतेहू उपशमभावकूं नहीं प्राप्त

होय है। रोकते रोकतेहू पापहीमैं प्रवर्तन करै है। प्रेरणा करते करतेहू धर्मकूं नाहीं धारण करै है। मर्दन करते करते कठोर होय है। रूक्ष करते करते आमकूं धारै है। तैलादिकतैं मलतै मलतैहू वायुकूं प्राप्त होय है। सिंचता सिंचता पित्तकरि जलै है। शोषण करते करते कफकरि गलै है। पूछते पूछते कोढादिरोगतैं मिलै है। चमडाकरि वन्ध्या है तोहू कालकरि क्षीण होय है। रक्षा करते करतेहू यमका मुखमैं पडै है।

ऐसा निद्य चिन्तवन करिके वैराग्यभाव प्रगट होय है। यातैं संवेग वैराग्यताकै अर्थि जगतका स्वभाव अर कायका स्वभाव चिन्तवन करना ॥

अब—हिंसादिक पंचपापनिका अनुक्रमतैं लक्षण कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥ १३ ॥

अर्थ—प्रमत्तयोगनितैं प्राणनिका व्यपरोपण कहिए वियोग करना सो हिंसा है। कषायसहित आत्माका परिणाम सो प्रमत्त है। अथवा करनेयोग्य, नहीं करनेयोग्य, कहनेयोग्य, नहीं कहनेयोग्यनिकूं नहीं जानता संता जीवनिके उत्पत्तिस्थान आश्रय जीवसमासादिकनिकूं नहीं जानता संता कषाय मदसहित हुवा जीवनिकी दयामैं नहीं प्रवर्तै सो प्रमत्त है। प्रमत्तपणाका योग जो संबंध तातैं प्राणीनिका वियोग करना सो हिंसा है। जातैं जीवकै रागादिकनिकी उत्पत्ति सो हिंसा है। अर रागादिकनिकी अनुत्पत्ति सो अहिंसा है।

जातैं हिंसाके दोयभेद—एक स्वहिंसा, एक परहिंसा। तहां राग द्वेष मोहादिकनिकरि आत्माका ज्ञानदर्शनादिक भावप्राणनिको जो घात तो स्वहिंसा है। अर अन्य देहादिकनिको प्राणीनिको घात सो परहिंसा है। अर जहां अपना ज्ञानादिकनिका घातभया तहां हिंसा निश्चित भई। जातैं त्रैलोक्य जीवनिकरि भस्या है। प्रमत्तयोगविना केवल प्राणीकै प्राणनिका वियोगहीतैं प्राणीकी हिंसा नहीं है।

जातैं समितिके पालनेवाले मुनि यत्नाचारी तिनकै बाह्यहिंसाहीतैं बन्ध नहीं होय है। समितिसहित च्यार हाथप्रमाण भूमिकूं अवलोकनकरि गमन करते साधुका तो पग उठाय अर मेलना अर तहां जीवका

उछलिकरि पगतलै दबि मरजाना होतैंहू साधुकै तिसके निमित्ततैं सूक्ष्महू बन्ध नहीं होय है। ऐसा आगममैं कह्या है।

बहुरि जीवका मरण होहु वा मतिहोहु, अयत्नाचारीकै निश्चयतैं हिंसा होय है। अर यत्नाचारीकै हिंसामात्र ही करि बन्ध नहीं होयहै। बहुरि जे एकांतवादी जीवको सर्वथा नित्य अविनाशी ही मानै हैं तथा सर्वथा क्षणभंगुर ही मानै हैं तिनके मतमैं हिंस्य हिंसक हिंसा हिंसाफल इत्यादि कछू नहीं बनिसकै है। तिनके मतमैं बहुत बाधा आवै है तातैं तिनका मत प्रमाण नाहीं ॥ अब अनृतका लक्षण कहै हैं—

असदभिधानमनृतं ॥ १४ ॥

अर्थ—प्राणीनिकूं पीडाका कारण अप्रशस्तवचन कहना सो अनृत है। इहां अप्रशस्तकूं अनृत कहनेतैं जो आपकै परकै इस लोकमैं वा परलोकमैं दुखका कारण असत्य कहना वा झूठ कहना सो समस्त अनृत है। जिस वचनतैं आत्माका अभावरूप श्रद्धान होजाय, जिस वचनतैं हिंसाके कारण आरंभमैं प्रवृत्ति होजाय, जिस वचनतैं कामकी उत्कटता होजाय, रागभाव बधिजाय, कलह प्रगट होजाय, मूर्छा परिग्रह बधिजाय, धर्मतैं पराङ्मुख होजाय, इंद्रियनिके विषयमैं लीनता होजाय सो अनृत वचन हैं। तथा जिस वचनतैं परका मर्म भेद्याजाय, परका अपवाद दूषण जगत्‌मैं प्रगट होजाय, अपमान होजाय, तिरस्कार होजाय, सो अनृतवचन है। जिस वचनतैं देव गुरु धर्मतैं पराङ्मुख होजाय, तथा कुदेव कुगुरु कुधर्ममैं लीनता होजाय, लोकनिंद्य होजाय, लोकापवाद होजाय, सो समस्त अनृतवचन जानहु ॥

अब चोरीका लक्षण कहै हैं—

अदत्तादानं स्तेयं ॥ १५ ॥

अथ—अदत्त कहिये विना दिया अन्नका धन धान्यादिकका ग्रहण सो स्तेय है। इहां भी प्रमत्तयोगकी अनुवृत्ति है। जहां लोभक्लेषादिककरि परवस्तु ग्रहण करनेकी इच्छा ताकूं स्तेय कहिए। परका

इत्यादिकहू कोऊ दिए नाही तथापि ए अदत्तग्रहण नाही हैं। जातैं देने लेनेका व्यवहार जहां संभवै तहां अदत्तग्रहण जानना ॥

अब–अब्रह्मका लक्षण कहै हैं—

मैथुनमब्रह्म ॥ १६ ॥

अर्थ—मैथुन कहिए कामसेवन सो अब्रह्म है। चारित्रमोहनीयका तीव्र उदयकरि रागभावकी उत्कटतातैं जो स्त्रीपुरुषनिकै परस्पर शरीरका स्पर्श करनेमैं सुखकूं इच्छा करता पुरुषका जो रागपरिणाम सो मैथुन है। कदाचित् चारित्रमोहका उदयसहित दोय पुरुषनिकै वा दोयस्त्रीनिकैहू कामका उदयकरि जो रागपरिणाम सो मैथुन है। बहुरि जो एक ही जन हस्तादिकनितैं कुचेष्टा करै है सोहू तीव्रकामके सम्बन्धतैं मैथुन है सो अब्रह्म है ॥

अब–परिग्रहकूं कहै हैं—

मूर्छा परिग्रहः ॥ १७ ॥

अर्थ—बाह्य अभ्यंतर जे चेतन अचेतन परिग्रह तिनमैं जो ममत्व परिणाम सो मूर्छा है सो ही परिग्रह है। बाह्य अभ्यंतर स्त्री पुत्र दासी दास सेवक परिवार गाय भैंसी हस्ती घोडा धन धान्यादिक तथा सुवर्ण रूप्य मणि मोती शय्या आसन गृह आभरण वस्त्रादिक चेतन अचेतन बाह्य परिग्रह अर रागादिक अभ्यंतर परिग्रहका रक्षण उपार्जन संस्कारादिकमैं जो व्यापार सो मूर्छा है। मूर्छा है सो ही परिग्रह है।

इहां कोऊ कहै–जो "मेरा यह" ऐसा संकल्प ही परिग्रह है, तो ज्ञानदर्शनादिकमैं भी 'मेरा' ऐसा संकल्प है तिनकै भी परिग्रहका प्रसंग आया, सो यह दोष नहीं। इनिमैं मोहका अभाव है। ज्ञान-दर्शनादिक परद्रव्य नहीं, आत्माका स्वभाव है। इनिमैं मूर्छा कैसैं होय। रागादिक होय हैं ते परके निमित्ततैं होय हैं यातैं परिग्रह हैं। समस्त दोषनिका मूल एक परिग्रह है।

जातैं परिग्रहधारी ही हिंसामैं तथा आरम्भादिकमैं प्रवर्त्तै तथा उपार्जनकै अर्थि हिंसा करै, असत्य बोलै, परधन हरण करै, कामसेवनमैं प्रवर्तै इसहीकरि नरकादिकनिमैं दुःखका प्रकार प्रगट होय है। बहुरि मिथ्यात्व अर च्यार कषाय तीन वेद हास्यादिक छह ऐसैं चौदह प्रकार परिग्रह है ॥

अब—जाकै व्रत होइ सो शल्य रहित हुवा व्रती होय है। याके कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

निःशल्यो व्रती ॥ १८ ॥

अर्थ—जो शल्यरहित होय सो व्रती होय है। अनेकप्रकार वेदनारूप शलाकाकरि प्राणीनिका समूहकूं "शृणाति" कहिए घातकरै तातैं शल्य ऐसा नाम कहिए। जैसै शरीरमैं प्रवेश किया बाणादिक आयुध प्राणीनिकै बाधा करै है तैसैं कर्मका उदयजनित शल्यहू प्राणीनिकै बाधा करै, तातैं शल्य ऐसा उपचार करि कहिए है। ते शल्य तीन प्रकार हैं–मायाशल्य, मिथ्यात्वशल्य, निदानशल्य। तिनमैं मायाचार कपटकूं धारना सो तो मायाशल्य है। विषयभोगनिकी वांछा करना सो निदानशल्य है।

अर तत्त्वार्थनिका श्रद्धानका अभाव सो मिथ्यादर्शनशल्य है। जातैं मिथ्यादृष्टीकै व्रत होय तोहू द्रव्यलिंगी रह्या तातैं व्रती नहीं। अर मायावी कपटीका व्रत सारा झूठा अर जाकै इंद्रियजनित विषयभोगनिकी वांछा सो तो आत्मज्ञानरहित रागी है, तिसके रागसहितकै व्रत होइ सो परमार्थकूं विनासमझ्या होइ सो अज्ञानीका व्रत निष्फल है तातैं शल्यरहित ही परमार्थतैं व्रती होय है अन्य नहीं ॥

अब–जो व्रती होय ताके दोय भेद कहै हैं—

अगार्य्यनगारश्च ॥ १९ ॥

अर्थ—व्रतीके दोय भेद हैं-एक अगारी कहिए गृहस्थ व्रती होय है। एक अनगारी कहिए गृहका त्यागी साधु संयमी। ऐसैं व्रतीके दोय भेद हैं। जो गृहमैं तिष्ठता ही एकदेश व्रत धारै सो भी व्रती अर जो गृहकूं छांडि समस्त पापनिका मन वचन कायतैं त्यागकरि मूलगुण उत्तरगुणनिका धारक मुनि होय सोहू व्रती है।

इहां कोऊ प्रश्न करै—जो गृहस्थके अणुव्रत है, परिपूर्ण व्रतविना व्रती कैसैं कह्या? ताका समाधान—जो नैगमादिक नयकी अपेक्षा कह्या है। जैसैं नगरके मध्य एक छोटासा मकानमैं झूंपडीमैं रहतेकूं नगरनिवासी कहिए तैसैं अणुव्रतीकूंहू व्रती कहिए है। तथा जैसैं बत्तीस हजार देशनिका अधिपति सार्वभौमकूंहू राजा कहिए अर एकदेशका पतिकूंहू राजा कहिए ऐसैं अणुव्रतीकूंहू व्रती कहिए अर अष्टादश सहस्र शील चोरासी लाख उत्तरगुणके धारक महामुनिकूं व्रती कहिए ॥

अब–अगारीकूं कहै हैं—

अणुव्रतोऽगारी ॥ २० ॥

अर्थ—जाके अणुमात्र व्रत कहिए एकदेश पञ्चपापनिका त्याग होय सो अणुव्रती है सो अगारी कहिए गृहस्थ है। द्वींद्रियादिक जंगम प्राणीनिकी हिंसा करनेका त्याग सो प्रथम अणुव्रत है। बहुरि स्नेहके वशतैं वैरके वशतैं मोहके वशतैं असत्य कहनेका त्याग सो द्वितीय अणुव्रत है।

बहुरि जो परजीवनिकै पीडाको कारण अर राजादिकनिके भयतैंहू त्यागनेयोग्य ऐसा विनादीया परधनका त्याग सो तृतीय अणुव्रत है। बहुरि परकरि ग्रहणकरी वा नहींकरी ऐसी परकी स्त्रीका संगतैं विरक्त होना सो चतुर्थ अणुव्रत है। बहुरि स्त्री पुत्र दासी दास गाय भैंसी धनधान्य इत्यादि परिग्रहकी इच्छाका वशतैं प्रमाण करना सो परिग्रहप्रमाण नाम पंचम अणुव्रत है। ऐसैं पंचव्रतनिका धारणकरनेवाला अगारी व्रती है। जिनेन्द्रकी उपदेशी नीतिकूं नहीं विगाडना हो व्रत है ॥

अब–गृहस्थकै योग्य अन्यहू व्रत हैं तिनकूं कहै हैं—

दिग्देशानर्थदंडविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोग–
परिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसम्पन्नश्च ॥ २१ ॥

अर्थ—दिग्विरत[१], देशविरत[२], अनर्थदंडविरत[३], सामायिक[४], प्रोषधोपवास[५], उपभोग परिभोग परिमाण[६],

अतिथिसंविभागँ इनि सात व्रतनिकरि सहितहू गृहस्थ व्रती होय है। इहां विरतिशब्द प्रत्येककै लगावना। लोभका आरंभका त्यागके अर्थि पूर्वादिक दिशानिका योजन नदी ग्राम नगर पर्वतादिक प्रसिद्धचिह्ननि करि प्रमाण करना, जो इतना क्षेत्रका प्रमाण है इतना क्षेत्रबाहिर गमनादि करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, करतेकूं भला जाणूं नहीं, सेवकादिक भेजूं नहीं, किंचित् वस्तु मंगाऊँ नहीं, भेजूं नहीं, ऐसी यावज्जीव मर्यादाकरि अधिक क्षेत्रमैं वणिजव्यवहारादिकका त्याग करै तिसकै दिग्विरति नाम व्रत है।

बहुरि यावज्जीव जो दिशाका प्रमाण दिग्व्रतमैं किया तिसके अभ्यंतर ग्राम नगर गृह पाटकादिकका मास पक्ष दिवसादिक कालकी मर्यादाकरि गमनागमनादिकका प्रमाण करै ताकै देशविरति नाम व्रत होय है। बहुरि जातैं अपना कार्यहू कछु सिद्ध नहीं होइ अर पापका जातैं ग्रहण होइ सो अनर्थदण्ड है। सो अनर्थदण्ड पंचप्रकार है। पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति, प्रमादचर्या। तहां जो आरम्भका, तिर्यंचनिकै क्लेश होनेका, वनस्पति छेदनेका, पृथ्वीके खोदनेका, स्त्रीपुरुषनिके विषयका, तिर्यंचनिके बन्धनादिकका जो उपदेश देना सो पापोपदेश नामा अनर्थदण्ड है।

याका विशेष ऐसा–जो इस देशमैं दासी दास सुलभ हैं, इहांसे लेय उस देशमैं बेचैं तो बहुत लाभ होय सो तो क्लेशवाणिज्य है। अर इस देशतैं गाय, भैंसि, बलद, ऊँट लेय उस देशमैं ले जाय तो महालाभ है ऐसैं तिर्यग्वाणिज्य है।

बहुरि वागुरया शिकारी शाकुनिकनिकूं कहै उस देशमैं मृग, शूकर, पक्षी बहुत हैं ऐसैं कहना सो वधकोपदेश है। बहुरि खेतीकूं आदि लेय आरम्भ करनेवालेनिकूं कहै पृथ्वीका, जलका, अग्निका, पवनका, वनस्पतिका आरम्भ इस उपायकरि करना सो आरम्भकोपदेश है। ऐसैं याके भेद हैं। बहुरि जो हिंसाके उपकरण जे शस्त्र, फावडा, खुरपा, कुदाल, वेड़ी, शांकल, चाबुक, विष, अग्नि, मार्जारादिक, दुष्ट जीवनिका पालना, लोहादिक आयुध तथा लाक्षा, खली, लवण, सावग, सोरा, नील, तैल, घृत इत्यादिक हिंसाका कारण वाणिज करना सो हिंसादान नामा अनर्थदण्ड है।

बहुरि जो परजीवनके दोष ग्रहण करनेका भाव, तथा अन्यकी लक्ष्मीके ग्रहण करनेकी इच्छा, अन्यकी स्त्रीके देखनेकी इच्छा, तथा अन्य मनुष्य तिर्यंचनिकी कलह देखना, तथा पर जीवनिके स्त्री, पुत्र, धन, आजीविकाका वियोग चाहना, परका अपमान अपवाद अवज्ञा चाहना, परकै हानि होतैं हर्ष करना, आपकी उच्चता चाहना, परकी जीति हारि चिंतवन करना, शिकारमैं हर्ष मानना, इत्यादि अनेक दुष्टचिंतवनकूं अपध्यान नाम अनर्थदण्ड कह्या है।

बहुरि रागद्वेष काम क्रोध अभिमानका वधावनेवाला, हिंसाका पोषण करनेवाला, मिथ्यात्वकूं कहनेवाला, भण्डकथा युद्धकथाके धारक महाभारतादिक वेद स्मृत्यादिकका श्रवण करना सो दुःश्रुति नामा अनर्थदण्ड कहा है।

बहुरि जो प्रयोजनविना जलका, अग्निका, वनस्पति छेदनेका, भूमि खोदनेका अभिप्राय रखना, तथा घात करना, अतिसंग्रह करना सो सव प्रमादचर्या नाम अनर्थदण्ड है। ऐसैं पंचभेद वा अनेकभेदरूप अनर्थदण्डका त्याग करना योग्य है। बहुरि तीनौ सन्ध्याविषै सर्वपापयोगक्रियासों रहित होइ समस्त रागद्वेष तजि साम्यभावकूं प्राप्त होइ शुद्ध आत्मस्वरूपविषै लीन होना सो सामायिक है।

बहुरि एकएक मास प्रति दोय अष्टमी, दोय चतुर्दशी इन पर्वनिमैं सफल आरम्भ तजि विषय कषाय आहारका त्याग करि धर्मकथाका श्रवण कर्त्ता करावता धर्मकथाके चिंतवनमैं अन्तःकरण लगाय सोलह पहर व्यतीत करै ताकै प्रोषधोपवास है। एकांत पवित्र क्षेत्रमैं साधुनिका निवास करनेयोग्य निर्जन स्थानमैं तथा चैत्यालयमैं तथा अपने रहनेकी जायगामैं निराला स्थानमैं प्राप्तहोइ शास्त्राभ्यास आदि आत्मकल्याणके कार्यमैं प्रवर्त्तै, ताकै प्रोषधोपवास होय है। बहुरि जो एकवार ही भोगनेमैं आवै ऐसै तांबूल भोजनपान पुष्प गन्धादिक तिनकूं उपभोग कहिए। अर जो वस्तु अनेकवार भोगनेमैं आवै ऐसै आभरण वस्त्र गृह वाहन शय्या आसनादिक ते परिभोग हैं।

इनि भोगपरिभोगकी मर्यादा करै। तहां त्रसघात प्रमाद बहुवध अनिष्ट अनुपसेव्य जे पञ्चविषय

तिनके भेदतैं भोग पञ्चप्रकार हैं। तिन पञ्चप्रकारके भोगनिका तो यावज्जीव त्याग करना। ए तो महापापरूप हैं, इनिमैं मर्यादा नहीं है। ए तो महाअनर्थ हैं, उत्तमकुलके योग्य ही नहीं, व्रती कैसैं ग्रहण करै। तिनमैं मधु और मांस इनिमैं तो अप्रमाण त्रसजीवनिका घात है। तातैं शुष्कमांसमैं तथा आलामैं कच्चामैं अग्निका पचायामैं तथा अग्निउपरि पकतेमैं निरन्तर असंख्यात त्रसजीव उपजै हैं, तातैं त्याग ही श्रेष्ठ है।

बहुरि कार्य अकार्यमैं विवेकका नाश करनेवाला महामोह करनेवाला मद्य है। सो प्रमादका नाश करनेकै अर्थि त्याग ही करना योग्य है। इहां मद्यकूं मदिरा ही नहीं जानना। जो परिणाममैं उन्मत्तता उपजावै सो समस्त भंगपानादिक मद्य ही है। यातैं आत्माके ज्ञानादिक गुणनिका घात होय है। अर मदिरामैं तो असंख्यात त्रसजीवका घात है, अनुपसेव्यादि लौकिक दोष भी बहुत हैं, यामैं हिंसा भी अपरिमित है।

बहुरि केतकी केवडा निंबका पुष्पकूं आदि लेय बहुत जीवनिका योनिस्थान है। तथा नवनीत जो माखन तथा आर्द्र श्रृङ्गवेर कन्दमूल हलदी इत्यादिक अनन्तकाय हैं। इनिके सेवनेमैं अनन्तजीवनिका घात होइ अर किंचित् जिह्वाका आस्वादनमात्र फल है। तातैं बहुत जीवनिका वध जाणि त्याग करना श्रेष्ठ है। बहुरि जो अपने शरीरमैं रोग वेदनादिक उत्पन्न करनेवाला अनिष्ट है। जातैं किंचित् आस्वादनके अर्थि महावेदना रोगकी वृद्धि मरणादिककूं नहीं गिणता जिह्वा इंद्रियका लम्पटी होइ अनिष्टकूं भक्षण करै ताकै महापाप होय तातैं अनिष्टका त्याग करना योग्य है।

बहुरि शंखचूर्ण गोमूत्रादिक कफ मलमूत्र ऊँटडीका दुग्ध तथा अशुद्धस्पर्शसहित तथा अस्पर्शशूद्र म्लेच्छादिकनिकरि स्पर्शनकीया भोजन अनुपसेव्य हैं, त्यागनेयोग्य हैं तथा चित्रविचित्र विकाररूप वस्त्र आभरणादि कहू अनुपसेव्य हैं ते त्यागनेयोग्य है। तातैं त्रसजीवका स्थान अर प्रमाद करनेके कारण अर बहुवध अर अनिष्ट अर अनुपसेव्य होनेकूं त्यागि अन्य भोगनिमैं तथा न्यायरूप परिभोगनिमैं कालकी मर्यादाकरि त्याग करै सो भोगपरिभोगपरिमाण व्रत है।

बहुरि अतिथि जे मोक्षकै अर्थि उद्यमी अर संयममैं लीन अर अन्तरंग बहिरंग शुद्ध ऐसे व्रतीनिकै अर्थि शुद्ध मनकरि निर्दोषभिक्षा देना योग्य है। जात जिनधर्ममैं लीन यती हैं ते याचनारहित उद्गमादि बियालीस दोष बत्तीस अन्तरायरहित चौदहमल टालि भक्तिपूर्वक ग्रहस्थनिकरि दीया भोजन ग्रहण करै हैं, तातैं गृहस्थ भक्तिपूर्वक संयमकी वृद्धि करनेवाला भोजन देवै तथा दर्शन ज्ञान चारित्रकी वृद्धिका कारण धर्मोपकरण देवै है। तथा संयमकै अर्थि रोगका नाश करनेवाला प्रासुक औषध देना तथा ध्यानाध्ययनका कारण शुद्ध वस्तुका देना। ऐसैं चार प्रकार दानमैं अपना भोजन धनादिकका विभाग करना सो अतिथिसंविभाग नाम व्रत है। ऐसैं पंचव्रत अर सप्तशील ए बारह व्रत श्रावककै होय हैं ॥

अब–सल्लेखनाकूं कहै हैं—

मारणांतिकीं सलेखनां जोषिता ॥ २२ ॥

अर्थ—मरणके अन्तमैं सल्लेखना जो है ताहि जोषिता कहिए प्रीतिकरै सेवन करै। आयु इंद्रिय बल श्वासोच्छ्वास इन दशप्राणनिका वियोगकूं मरण कहिए हैं। मरणरूप अन्तविषै सल्लेखनाकूं प्रीतिकरि सेवन करना। सो सल्लेखना दोय प्रकार हैं–एक कायसल्लेखना, दूजी कषायसल्लेखना है। तहां कायकूं जो सम्यक् कहिए आत्महितकै अर्थि लेखना कहिए कृश करना सो सल्लेखना है। अर कषायनिकूं आत्महितकै अर्थि कृश करना सो कषायसल्लेखना है।

जैसैं वातपित्त कफादिकके प्रकोपकरि मरणके अवसरमैं परिणाम आकुल होइ आराधनातैं नहीं चलायमान होइ तैसैं कायसल्लेखना करै। अर मोह राग द्वेषादिककरि अपना ज्ञानदर्शन परिणाम मरणसमयमैं मलिन नहीं होइ तैसैं कषायसल्लेखना करै। ऐसैं अनशन रसपरित्यागादिकका क्रमकरि तो जो देहका त्यागकरै अर शुभध्यान स्वाध्यायादिक करि परमात्मस्वरूपमैं एकाग्रता करता संसारसम्बन्धी समस्तविकल्प छांडि च्यार आराधनाका आराधक हुवा प्राणत्याग करै ताकै सल्लेखनामरण होय है, संसारके नाश करनेकूं समर्थ है।

कोऊ प्रश्न करै—जो समाधिमरणपूर्वक देहका त्याग करै तिसकै आत्मघातका प्रसंग आया। ताकूं कहै हैं-जो राग द्वेष मोहकरि लिप्त हुवा विष शस्त्रादिक कारणनिकरि अपना घात करै तिसकै आत्मघात होय है। अर सल्लेखनामरण करै ताकै रागादिक नहीं है। जैसैं कोऊ वणिज करनेवाला वणिककै नानाप्रकारके क्रयविक्रयकै योग्य जे रत्न सुवर्ण वस्त्र केसरि कपूरादिककरि भर्या हुवा गृह होइ तिस गृहका विनाश होना वडा अनिष्ट है। अर जो विनाशके कारण निकट होइ प्रवर्त्तैं तो अपनी शक्ति प्रमाण विनाशके कारणनिकूं दूरि करै अर जो दूरि नहीं होते दीखें तो जैसैं बहुमूल्यवस्तुनिका नाश नहीं होइ तैसैं गृहमैंसूं भिन्न होइ तिष्ठै तैसैं व्रत शील संयमादिक पुण्य परिणामनिके संचयसंयुक्त जो शरीर तिसका विनाश नाहीं चाहै हैं। तथापि जो दुर्भिक्ष जरा रोग उपसर्गादिक शरीरके नाशके कारण आय प्राप्त होइ तो जैसैं अपना सम्यग्दर्शनादि गुण नहीं मलिन होइ तैसैं यत्न करै। अर जो यत्नतैंहू देहका मरण नहीं दूरि होत जाणैं तो जैसैं अपना व्रत संयमादिक नहीं विनसैं तैसैं आहारादिकका त्यागकरि सल्लेखना मरण करै तिसकै आत्मघात कैसैं होय।

बहुरि जैसैं तपमैं तिष्ठते साधुकै शीत उष्णादिजनित सुखदुःख होतैंहू सुखदुःखरूप अभिप्रायके अभावतैं सुखदुःखमैं रागद्वेष नहीं होनेतैं सुखदुःखकृत कर्मबन्ध नहीं होय है। तैसैं अरहन्तप्रणीत सल्लेखना करनेवाले पुरुषकै जीवनेमरणेके अभिप्रायरहित पुरुषकै अपने मरणमैं रागद्वेषके अभावतैं सल्लेखना मरणमैं आत्मघात कदाचित् नहीं होय है। ऐसैं व्रतनिका तथा सल्लखनाका स्वरूप कह्या। अर जो प्रमत्तयोगविना आत्मज्ञानसहित देहसूं भिन्न कलेवरकूं अवश्यविनाशीक जाणि त्याग करै ताकै हिंसा नहीं ॥

अब-सम्यक्त्वके पंच अतिचार कहै हैं—

शंकाकांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतिचाराः ॥ २३ ॥

अर्थ—शङ्का, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशंसा, अन्यदृष्टिसंस्तव ए सम्यग्दर्शनके पांच अतिचार हैं। तहां जो अरहन्तके परमागमतैं प्ररूपण किए अर्थमैं संशय सो शङ्का है। तथा अपने आत्माकूं

ज्ञाता द्रष्टा अखण्ड अविनाशी परपुद्गलनिके सम्बन्धतैं भिन्न जाणिकरिकैहू जो सप्त भयकूं प्राप्त होना सो शंकानाम अतिचार है।

इस लोक परलोकसम्बन्धी भोगनिमैं वांछा सो कांक्षा नाम अतिचार है। तथा दुःखित दरिद्री रोगी इत्यादिक क्लेशितमनुष्य तिर्यंचनिकूं देखि ग्लानि करना तथा अशुभकर्मका उदयमैं ग्लानि करना तथा अरहन्तके परमागमतैं जो अनशनादिक तप अर यावज्जीव स्नानका त्याग, त्रिकाल परिषहका सहना इत्यादिक आचरणमैं ग्लानि करना सो विचिकित्सा नाम अतिचार है। मिथ्यादृष्टीनिका ज्ञान तप शील दानादि देखि अपना मनविषैं भला जानना सो अन्यदृष्टिप्रशंसा नाम अतिचार है। अर मिथ्यादृष्टीके ज्ञान चारित्र शील तपादिकनिका वचनकरि प्रशंसा करना सो संस्तव नाम अतिचार है। ऐसैं सम्यग्दर्शनके पांच अतिचार कहे।

अब–ऐसैं ही व्रतादिकनिके अतिचार हैं—

व्रतशीलेषु पंच पंच यथाक्रमं ॥ २४ ॥

अर्थ—अहिंसादिक अणुव्रत अर दिग्विरत्यादिक शील इनके भी पांच पांच अतिचार यथाक्रमतैं कहिए हैं सो जानना। जातैं जाणेविना त्यागपूर्वक व्रत शुद्ध कैसैं होय॥

अब–अहिंसा अणुव्रतके अतिचार कहे हैं—

बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥ २५ ॥

अर्थ—बन्ध, वध, छेद, अतिभारारोपण, अन्नपाननिरोध ए पांच अहिंसा अणुव्रतके अतिचार हैं। तहां जो प्राणीनिका वांछितदेशमैं गमनकूं रोकना, खोडा बेड़ी शांकल पींजरा कोठा रस्सा जेवडानिकरि बांधना सो बन्ध अतिचार है। बहुरि लाठी चाबुक बेंतादिककरि प्राणीनिका घात करना सो वध नाम अतिचार है। बहुरि कर्ण नासिका लिंगादि अंग उपांगनिका छेदना सो छेद नाम अतिचार है।

बहुरि बलध ऊँट घोडा भैंसा इत्यादिक ऊपरि जो भार बोझ लादनेकी जो न्यायरूप मर्यादा

तातैं अधिक भारका लाधना तथा मर्यादातैं अधिक दूरिचलावना सो अतिभारारोपण नाम अतिचार है। बहुरि मनुष्य तिर्यंचादिकनिकूं खानपानादिकका निरोधकरि भूखा तिसाया राखना तथा काल उलँघनकरि भोजनपान देना सो अन्नपाननिरोध नाम अतिचार है। ऐसैं अहिंसा अणुव्रतके पञ्च अतिचार कहे ॥

अब—सत्य अणुव्रतके कहै हैं—

मिथ्योपदेशरहोऽभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारम[illegible]ः ॥ २६ ॥

अर्थ—मिथ्याउपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहार, साकारमंत्रभेद ए पांच सत्य अणुव्रतके अतिचार हैं। तहां जो स्वर्गमोक्षके साधक क्रियाविशेषविषैं अन्यजीवनिकूं अन्यथा प्रवर्त्तन करावना, झूठा उपदेश देना सो मिथ्योपदेश नाम अतिचार है। तथा स्त्रीपुरुषनिकरि एकांतमैं जो क्रिया आचरण किया, ताका प्रकाश करना सो रहोभ्याख्यान नाम अतिचार है।

बहुरि परकरि कह्या नहीं अर परका अभिप्रायतैं किंचित् जानिकरि लिख देना जो तिनने ऐसैं कह्या है ऐसा आचरण कीया है, परकूं ठगनेके अर्थि कूडा लिख देना सो कूटलेखक्रिया नाम अतिचार है। बहुरि कोऊ रुपैया मोहर वा आभरणादिक आपकै धारण करगया सोंपिगया, अर फेरि गिणती भूलि अल्पप्रमाण मांगनेलगा वाकूं कहै जो ठीक है अपने है सो लेजावो, ऐसैं विस्मरणहुवाकूं कहना सो न्यासापहार अतिचार है।

बहुरि कोऊ प्रकरणकरि वा अंगविकार भृकुटीक्षेपादिककरि अन्यकै अभिप्रायकूं जाणि ईर्षाभावतैं लोकनिकूं प्रगटकरना सो साकारमंत्रभेद नाम अतिचार है। ऐसैं सत्यअणुव्रतके धारककै त्यागनेयोग्य पञ्चअतिचार कहै हैं ॥

अब—अचौर्यव्रतके कहै हैं—

[illegible]नप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधि[illegible]मानोन्मानप्र[illegible]तिरूपकव्यवहाराः ॥ २७ ॥

अर्थ—स्तेनप्रयोग तदाहृतादान विरुद्धराज्यातिक्रम हीनाधिकमानोन्मान प्रतिरूपकव्यवहार ए पञ्च अचौर्य अणुव्रतके अतिचार हैं। चोरी करतेकूं चोरणके अर्थि आप युक्त करै तथा अन्यतैं प्रेरणा करावै तथा करतेकूं भला मानै सो स्तेनप्रयोग अतिचार है।

बहुरि जो चोरकूं प्रेरणा भी नहीं करी अर अनुमोदनाहू नहीं करी परन्तु चोरका ल्याया वस्तुकूं ग्रहणकरै सो तदाहृतादाननाम अतिचार है। बहुरि जो उचित न्यायकूं छांडि जो देना ग्रहणकरना सो विरुद्ध है, राज्यके न्यायतैं विरुद्ध सो विरुद्धराज्यातिक्रम है। ज्यों बहुत मोलकी वस्तु अल्पमोलकरि लेना इत्यादिक विरुद्धराज्यातिक्रम दोष है।

अर जो तोलाबाट तो मान है, अर तोलनेकी ताखडी उन्मान है, तहां न्यूनकरिकै अन्यकै अर्थि देना अर अधिककरी लेना ऐसा कपटका प्रयोग रखना सो हीनाधिकमानोन्मान नाम अतिचार है। बहुरि जो सुवर्णादिक धातु तथा वस्त्र तथा कुंकुम कपूरादिक तिनमैं खोटी मिलाय खरीमैं वेचना सो मायाचार-पूर्वक व्यवहार सो प्रतिरूपकव्यवहार नाम अतिचार है। ऐसैं अदत्तादानत्याग नाम अणुव्रतके पांच अतिचार त्यागनेयोग्य हैं॥

अब-ब्रह्मचर्यव्रतके पांच अतिचार कहै हैं—

परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीतापरिगृहीतागमनानंगक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥ २८ ॥

अर्थ—परविवाहकरण अपरिगृहीतेत्वरिकागमन परिगृहीतेत्वरिकागमन अनंगक्रीडा कामतीव्रता ए ब्रह्मचर्यव्रतके पांच अतिचार हैं॥ सातावेदनीय अर चारित्रमोहनीय कर्मके उदयतैं जो कन्याका वरण सो विवाह है। परका जो विवाह करना सो परविवाहकरण नाम अतिचार है।

बहुरि ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमतैं प्राप्त भई जो कलागुणप्रवीणता ताकरिकै तथा स्त्रीवेद नाम-कर्मके तीव्रउदयकरिकै तथा अंगोपांग नाम कर्मका उदयतैं परपुरुषतैं रमनेका जाका स्वभाव होइ सो व्यभिचारिणी इत्वरिका है। तहां इत्वरिकाके दोय भेद, एक तो-जाका कोउ स्वामी नहीं होइ ऐसी जो

परपुरुषगामिनी कुलटा सो अपरिगृहीत इत्वरिका है। अर जाकै स्वामी होइ एक पुरुषका परिणीतहोइकरि-जो परपुरुषनिमैं गमन करनेवाली कुलटा सो परिगृहीतइत्वरिका है।

इनि दोऊ प्रकारकी व्यभिचारिणीकै जावना बोलावना लेना देना वचनालाप करना ते दोऊ शील खण्डनेके कारण अतिचार हैं। बहुरि कामसेवनयोग्य अंगनिकूं छांडि अन्य अंगनिमैं क्रीडा सो अनंगक्रीडा नाम अतिचार है। बहुरि काममैं अधिक परिणाम तथा कामसेवनमैं निरन्तर परिणाम सो कामतीव्राभिनिवेश नाम अतिचार है। ऐसैं ए ब्रह्मचर्य नाम अणुव्रतके धारणकरनेवाले श्रावककै ए पांच अतिचार त्यागनेयोग्य हैं।

बहुरि दीक्षित स्त्री अतिबाला स्त्री तिर्यंचणी इनका त्याग कामतीव्रताकरि कह्या ही। जिस पापीकै लोकापवादका भय तथा राजाका भय तथा परलोकभय नहीं होयगा तिसकै ऐसैं अन्यायमैं प्रवृत्ति होय है तातैं लौकिकजन ही इनिका परिहारकरै हैं तदि श्रावक कैसैं ग्रहण करै॥

अब-परिग्रहप्रमाणके अतिचार कहै हैं—

क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यभांडप्रमाणातिक्रमाः॥ २९॥

अर्थ—क्षेत्रवास्तु हिरण्यसुवर्ण धनधान्य दासीदास कुप्यभांड इनिका प्रमाणकरि उलंघना सो परिग्रहत्याग अणुव्रतके पांच अतिचार हैं। धान्यादिक उपजनेका स्थान क्षेत्र है। रहनेका गृहादिक मकान सो वास्तु है। रुपया ह्मोर इत्यादि हिरण्य है। सुवर्ण प्रसिद्ध है।

इहां हिरण्यशब्दकरि तो व्यवहारमैं प्रवृत्तिका कारण रुपये ह्मोर इत्यादि लेना। अर सुवर्णशब्दकरि आभरण पात्र अन्य सुवर्णका संचयादि लेना। गौ बलध इत्यादिक धन है। शालि गेहूं इत्यादिक धान्य हैं। शरीरकी गृहकी सेवा करनेके अधिकारी स्त्रीपुरुष दासदासी हैं। वस्त्र कपास चंदनादि कुप्य हैं। इस परिग्रहमैं मेरैं इतनाही ग्रहण है। अधिक त्यागीहूं ऐसैं प्रमाणकरि फिर अतिलोभके वशतैं प्रमाणतैं अधिक ग्रहण करना सो प्रमाणातिक्रम है ते परिग्रहपरिणाम व्रतीकै त्यागनेयोग्य पंच अतिचार हैं॥

अब दिग्विरतके पंच अतिचार कहै हैं—

ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यंतराधानानि ॥ ३० ॥

अर्थ—ऊर्ध्वातिक्रम अधोतिक्रम तिर्यगतिक्रम क्षेत्रवृद्धि स्मृत्यंतराधान ए दिग्विरतके पंच अतिचार हैं। तहां पर्वत वृक्ष भूम्यादिकनिकै ऊपरि चढना सो ऊर्ध्वातिक्रम है। कूप बावडी इत्यादिकनिकै मध्य अवतरणतैं अधोतिक्रम है। भूमिकै मध्य बिल तथा पर्वतादिकनिकी गुफादिकनिमैं प्रवेश करना सो तिर्यगतिक्रम है। पूर्वैं जो दिशानिका योजनादिककरि प्रमाण किया तातैं अधिक क्षेत्रमैं गमनकी वांछा सो क्षेत्रवृद्धि नाम अतिचार है। मर्यादाकरी ताका विस्मरण होना सो स्मृत्यंतराधान नाम अतिचार है।

इहां ऐसा जानना। जो दिशाका प्रमाण किया तिसमैं जो समस्तलोकनके जावनेयोग्य मार्ग है तिसमैं व्रतीकूं गमन करना उचित है। अर मार्ग छांडि पर्वत वृक्ष टीबा इत्यादिकऊपरी चढना तथा कूपादिकमैं नीचै उतरना तथा गुफादिकमैं प्रवेश करना सो अतिचार है। ऐसैं दिग्विरतिव्रतके पंच अतिचार त्यागनेयोग्य हैं ॥

अब-देशव्रत कहै हैं—

आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ॥ ३१ ॥

अर्थ—आनयन, प्रेष्यप्रयोग, शब्दानुपात, रूपानुपात, पुद्गलक्षेप ए पंच देशविरतिव्रतके अतिचार हैं। तहां जो मर्यादारूप क्षेत्रकरि तिष्ठते पुरुषके प्रयोजनके वशतैं मर्यादाबाह्य क्षेत्रकी वस्तु परकरि मंगावना तथा परकूं बुलावना सो आनयन नाम अतिचार है। मर्यादाकरि तिस क्षेत्रकै बाह्य आप तो नहीं गमन करै परन्तु सेवककूं वा पुत्रादिकनिकूं कहै जो हमारे तो इस मकानतैं बाहिर गमनका त्याग है। तुमकूं ऐसा कार्य करना ऐसैं अपने अभिप्रायका कार्यकी प्रेरणा करना सो प्रेष्यप्रयोग नाम अतिचार है। मर्यादाबाह्य क्षेत्रमैं तिष्ठते पुरुषनिकूं काश खंखारादि समस्याकरि समझावना सो शब्दानुपात अतिचार है।

बहुरि मर्यादाबाहिर क्षेत्रमैं तिष्ठतेनिकूं अपना रूप दिखाय कार्यमैं प्रवर्त्तन करावना सो रूपानु-

पात अतिचार है। बहुरि मर्यादाबाह्य क्षेत्रमैं पाषाण कांकरी इत्यादिक क्षेपि कार्यके करनेवालेनिकूं समस्या करना सो पुद्गलक्षेप नाम अतिचार है। ऐसैं देशव्रतीकूं त्यागनेयोग्य पञ्च अतिचार कहे ॥

अब-अनर्थदंडत्यागका अतिचार कहै हैं—

कंदर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥ ३२ ॥

अर्थ—कंदर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, असमीक्ष्याधिकरण, भोगपरिभोगका, अनर्थपणा ए पांच अतिचार अनर्थदंडके हैं सो त्यागनेयोग्य हैं। तहां रागभावकी उत्कटतातैं हास्यतैं मिल्याहुवा गाली भण्डवचन बोलना सो कदर्पअतिचार है। बहुरि रागका उदयकी तीव्रतातैं हास्यवचन भी अर अशिष्ट भण्डवचन बोलना अर कायतैंहू निंदनीक क्रिया करना सो कौत्कुच्य नाम अतिचार है।

बहुरि धीटताकरि अनर्थक बहुतप्रलाप करना सो मौखर्य अतिचार है। बहुरि प्रयोजनकूं विचारे विना अधिकपणाकरि प्रवर्त्तन करना सो अधिकरण है। सो काय मन वचनकरि तीन प्रकार है। तहां अनर्थकूं करनेवाला खोटा काव्य श्लोकादिक चिन्तवन करना सो मन अधिकरण है। अर निःप्रयोजन कथा करना, विकथा करना, तथा परकै पीडा करनेवाला वचन सो वचन अधिकरण है। अर प्रयोजनविना गमन करना, बैठना, खडा रहना, सचित्त अचित्त तृण वृक्ष पत्र पुष्प फलादि छेदन भेदन कुट्टन क्षेपणादि करना, अग्निका विषका क्षारादिकका देना ए समस्त असमीक्ष्याधिकरण हैं।

बहुरि जेता अर्थकरि अपना भोग उपभोगकी कल्पना होइ तितना तो अर्थ है। अर प्रयोजनविना अधिकका संग्रह करना सो भोगोपभोगानर्थक नाम अतिचार है। ऐसैं अनर्थदंडविरतिव्रतके धारनेवालेकै त्यागनेयोग्य पंच अतिचार हैं ॥

अब-सामायिक व्रतके अतिचार कहै हैं—

योगदुःप्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३३ ॥

अर्थ—मन वचन कायके योगनिका दुष्प्रणिधान, अनादर, स्मृत्यनुपस्थान ए सामायिकके पंच अतिचार

हैं। सामायिक करनेका अवसरमैं शरीरकै अंगोपांगादिकनिका निश्चलतारहित रखना सो कायदुःप्रणिधान है। अर अक्षरनिका उच्चारणमैं शुद्ध संस्कारका अभाव, अर्थ जामैं नहीं जान्या जाय ऐसैं पाठका पढना सो वचन दुष्प्रणिधान है। अर सामायिकके भावमैं अर्थमैं मनका नहीं लगावना सो मनोदुष्प्रणिधान है।

इहां प्रणिधान नाम दुष्टपरिणामनिका वा अन्यथा प्रवर्त्तनका है। बहुरि उत्साहरहित अनादरतैं सामायिक करना सो अनादर नाम अतिचार है। बहुरि सामायिकमैं एकाग्रताविना चित्तकी व्यग्रतातैं पाठका भूलि जाना सो स्मृत्यनुपस्थापन नाम अतिचार है। ऐसैं सामायिकव्रतके त्यागनेयोग्य पंच अतिचार कहैं॥

अब प्रोषधोपवासके पंच अतिचार कहै हैं—

अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३४ ॥

अर्थ—अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित ऐसी भूमिमैं मलमोचन तथा उपकरणग्रहण तथा संस्तरोपक्रमण अर अनादर, अर स्मृत्यनुपस्थान ए पंच प्रोषधोपवासके अतिचार हैं। इस भूमिमैं जीव है कि नहीं है ऐसैं नेत्रनिमैं देखना सो प्रत्यवेक्षण है। बहुरि कोमल उपकरणकरिकैं सोधना भुवारना सो प्रमार्जन है। तहां जो नेत्रनितैं देखेविना तथा कोमल उपकरणतैं सोधन कीएविना भूमिमैं मल मूत्र कफादिकका क्षेपना सो अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जितोत्सर्गनाम अतिचार है। बहुरि देखे शोधे विना अरहंत आचार्यादिकनिकी पूजनके उपकरण तथा गंध माल्य धूपादिकनिका ग्रहण तथा अपने पहरनेके वस्त्र वा पात्रादिकनिका ग्रहण सो अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादान नाम अतिचार है।

बहुरि विनादेखी विनासोधी भूमिविषै वस्त्रादिकनिकूं शयनासनके अर्थि बिछावना सो अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितसंस्तरोपक्रमण नाम अतिचार है। बहुरि क्षुधा तृषादिककी बाधाकरि आवश्यक क्रियानिविषै अनादर सो अनादर नाम अतिचार है। करनेयोग्य आवश्यकादिकनिकूं विस्मरण होजाना सो स्मृत्यनुपस्थापन अतिचार है। ऐसैं प्रोषधोपवासके धारक पुरुषकैं ए पांच अतिचार त्यागनेयोग्य हैं।

अब भोगोपभोगप्रमाणव्रतके अतिचार कहै हैं—

सचित्तसम्बन्धसम्मिश्राभिषवदुःपकाहाराः ॥ ३५ ॥

अर्थ—सचित्त सचित्तसम्बन्ध सचित्तसंमिश्र अभिषव दुःपक्व ऐसैं आहारका भक्षणतैं भोगोपभोगप्रमाणव्रतके पञ्च अतिचार हैं। चेतनासहित द्रव्य पुष्पपत्रफलादिकका आहार सो सचित्त आहार नाम अतिचार है। सचित्ततैं भिड्या सम्बन्धतैं प्राप्त भया संसर्ग मात्रतैं प्राप्त भया वस्तुका जो आहार सो सचित्तसम्बन्धाहार नाम अतिचार है। सचित्ततैं मिलगया सामिलभया जो भिन्न नहीं किया जाय ऐसा वस्तुका आहार सो सचित्त संमिश्राहार नाम अतिचार है।

बहुरि पुष्टवस्तु द्रव्यादिकका आहार करना सो अभिषव नाम अतिचार है। बहुरि जो अन्न सम्यक् नहीं पक्या होइ सो दुःपकाहार है। जैसैं भातके पकनेमैं अभ्यन्तर तन्दुल रहिगया होइ तथा अति सीजिगया होइ सो दुःपक्व है जातैं दुःपक्व आहार करनेतैं इंद्रियनिमैं मदकी वृद्धि होइ वा सचित्तपणाका प्रसंग होइ वातादिक रोग होइ फिर रोगका इलाज करनेमैं पापका बन्ध होइ, तातैं दुःपकाहार त्यागनेयोग्य है। ऐसैं भोगोपभोग व्रतकै त्यागनेयोग्य पञ्च अतिचार हैं ॥

अब—अतिथिसंविभागव्रतके अतिचार कहै हैं—

सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः ॥ ३६ ॥

अर्थ—सचित्तनिक्षेप, सचित्तापिधान, परव्यपदेश, मात्सर्य, कालातिक्रम ए दानके पंच अतिचार हैं। सचित्त जो कमलपत्रादिकमैं स्थापनकरि दान देवै सो सचित्तनिक्षेप नाम अतिचार है। बहुरि जो अन्यथा नामकरि दान देना सो परव्यपदेश नाम अतिचार है।

बहुरि देतासन्ता आदरविना देना सो मात्सर्य है अथवा अन्यदातारतैं ईर्षाभावतैं तथा अदेखसकाभावतैं देना सो मात्सर्यनाम अतिचार है। कालके उल्लंघनकरि अकालमैं भोजन देना सो कालातिक्रम नाम अतिचार है। ऐसैं अतिथिसंविभागके पांच अतिचार हैं।

अब—सल्लेखनाके अतिचार कहै हैं—

जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्धनिदानानि ॥ ३७ ॥

अर्थ—जीविताशंसा, मरणाशंसा, मित्रानुराग, सुखानुबन्ध, निदान ए पांच अतिचार सल्लेखनामरणके हैं। सल्लेखनाकरिकै जीवनेकी इच्छा करना सो जीविताशंसा नाम अतिचार है। रोगादिक उपद्रवतैं आकुल होइ मरणकी वांछा करना सो मरणाशंसा नाम अतिचार है। पूर्वैं जिनकै जिनकै सामिलरहि अनेक क्रीडादिकमैं रच्या तिन मित्रनिकूं स्मरण करना सो मित्रानुराग नाम अतिचार है।

बहुरि पूर्वैं भोगे भोगनिकूं शयनकूं क्रीडनिकू चिंतवन करना सो सुखानुबन्ध नाम अतिचार है। बहुरि जो विषयसुखनिकी अभिलाषा भोगनिमैं आगामीकालमैं वांछा सो निदान नाम अतिचार है। ऐसैं सल्लेखनामरण करनेवाला व्रतीका पंच अतिचार कह्या ॥

अब—दानका लक्षण कहै हैं—

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानं ॥ ३८ ॥

अर्थ—आपका अर परका उपकारके अर्थि धनादिकका त्याग करना देना सो दान है। जिसतैं आपके पुण्यबन्ध होइ वा धर्मात्मा पात्रका लाभ होय सो अपना उपकार है। अर अन्य जीवकैं सम्यग्ज्ञानादिककी वृद्धि होइ सो परका उपकार है। अपना अर परका उपकारकै अर्थि आहारादिक देना सो दान है ॥

अब-दानके फलमैं विशेषके दिखावनेकूं सूत्र कहै हैं—

विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥ ३९ ॥

अर्थ—विधिविशेषतैं, द्रव्यविशेषतैं, दातारके विशेषतैं, पात्रके विशेषतैं दानमैं विशेष है। तहां प्रतिग्रह उच्चस्थान पादोदक प्रणमन इत्यादिक विधि हैं। इनमें तफावततैं फलमैं विशेष है, तफावत है।

बहुरि आहार उपकरणादिक कोऊ तो तप स्वाध्यायकी वृद्धिका कारण होइ तथा कोऊ नहीं होइ इत्यादिक द्रव्यके तफावततैं फलमैं तफावत है। बहुरि ईर्षारहितता तथा विषादरहितता तथा देनेके इच्छुकमैं देतेमैं दिया तिसमैं प्रीति होइ तथा कल्याणका अभिप्राय होइ तथा दृष्टफलकी चाहना नहीं होइ तथा निदान नहीं होइ इत्यादिक दातारके गुण हैं तिनके तफावततैं फलमैं तफावत होय है।

बहुरि सम्यग्दर्शनादिक गुणनिकरि युक्त पात्र होइ, पात्रके तफावततैं फलमैं तफावत होय है। ऐसैं विधि द्रव्य दातार पात्र इनके विशेषतैं दानमैं विशेष जानना। जहां जैसा होय तहां तैसा फल होय। ऐसैं सप्तम अध्यायके विषैं हिंसादिक पंच पापके त्यागकूं व्रत कहिकै तिस व्रतके एकदेशतैं अणुव्रती सर्वदेशतैं महाव्रती ऐसैं कह्या।

बहुरि तिन व्रतनिके दृढ करनेकूं पांच पांच भावना कहीं। बहुरि पांच पापनिकूं इस लोक परलोकमैं दुःखदाई तथा दुःखरूप कहै।

बहुरि मैत्री आदि च्यारि भावना कहीं। बहुरि संसार देहका स्वभावकी भावना कहीं। बहुरि पंचपापनिका जुदा जुदा लक्षण कह्या। तथा शल्यरहितकूं व्रती कह्या। बहुरि गृहस्थके अणुव्रत सप्त शील कहे। अन्तसल्लेखना कहीं। बहुरि एक सम्यक्त्व, पंच अणुव्रत, सप्त शील, एक सल्लेखना इन चोदहनिके पांच पांच अतिचार कहैं। बहुरि दानका लक्षण अर दानके मध्य विशेषपणा कह्या॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः।

अर्थ—ऐसैं तत्त्वार्थका है अधिगम जातैं ऐसा मोक्षशास्त्र तिस विषै सप्तम अध्याय पूर्ण भया।

दोहा।

है जातैं तत्त्वार्थका, अधिगम शिवसुखदाय।
मोक्षशास्त्र मंगलमयी, नमूं सप्तमोऽध्याय॥

अथाष्टमोऽध्यायः ।

दोहा ।

श्रीजिनेन्द्रपद नमनतैं, होई सवसुखसंच ।
करम मरम सम्बंधका, कारन रहै न रंच ॥

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बंधहेतवः ॥ १ ॥

अर्थ—इस सूत्रमैं बन्धपदार्थका वर्णन करिए है परन्तु गुणस्थाननिके अर मार्गणास्थाननिके तथा मार्गणा है मध्य जाकै ऐसी वीसप्ररूपणानिका स्वरूप जाणेविना बन्धका उदयका सत्वका स्वरूप स्पष्ट समझनेमैं नहीं आवै तथा प्रसंगपाय प्रयोजन स्वरूप समझि पहली संक्षेपकरि गुणस्थाननिका स्वरूप लिखिए है । तिनमैं प्रथम ही गुणस्थाननिका नांम जाननेयोग्य है ।

गुणस्थान—मिच्छा सासण मिस्सो, अविरदसम्मो य देसविरदो य ।
विरदप्पमत्त इदरो, अपुव्व अणियट्टि सुहुमो य ॥ १ ॥
उवसन्त खीणमोहो, सजोगकेवलिजिणो अजोगी य ।
चोद्दसगुणठाणेहि य, कमेण सिद्धा य णादव्वा ॥ २ ॥

मिथ्यात्वं[1], सासादन[2], मिश्रं[3], अविरतसम्यग्दृष्टि[4], देशविरतं[5], प्रमत्तसंयतं[6], अप्रमत्तसंयतं[7], अपूर्वकरणं[8], अनिवृत्तिकरणं[9], सूक्ष्मसांपरायं[10], उपशांतमोहं[11], क्षीणमोहं[12], सयोगकेवलीजिनं[13], अयोगकेवलीजिनं[14], इस प्रकार गुणस्थाननिके चौदह नाम कहैं ।

अब इनके नामनिकै अर्थसहितपणा दिखावै हैं—मिथ्यात्व कहिए असत्यार्थ है दृष्टि कहिए श्रद्धान जाकै सो मिथ्यादृष्टि है ॥ १ ॥

आसादना नाम विराधनाका है जो सम्यक्त्वकी विराधनासहित प्रवर्त्तै सो सासादनसम्यग्दृष्टि कहावै। जातैं सम्यक्त्वतैं छूटि मिथ्यात्वकै सन्मुख होइ तदि सासादन नाम पावै ॥ २ ॥

बहुरि सम्यक्त्व अर मिथ्यात्व दोऊ मिले हुए परिणाम होइ सो मिश्र नाम पावै ॥ ३ ॥

बहुरि जाकै व्रत नहीं होइ अर सम्यग्दर्शन होय सो अविरतसम्यग्दृष्टि नाम पावै ॥ ४ ॥

बहुरि जाकै एकदेशविरत कहिए व्रत होइ सो देशविरत नाम पावै ॥ ५ ॥

बहुरि जो संयत कहिए संयमी होइ अर प्रमादसहित होइ सो प्रमत्तसयंत है ॥ ६ ॥

बहुरि प्रमादरहित ध्यानमैं लीन जो संयमी सो अप्रमत्त संयत है ॥ ७ ॥

बहुरि जाकै समयसमय अपूर्व कहिए पूर्वके समयमैं नहीं भए ऐसै करण कहिए विशुद्धपरिणाम होंय सो अपूर्वकरण है ॥ ८ ॥

बहुरि निवृत्ति नाम विशेषताका है भिन्नताका है। जिसमैं नानाजीवनिकी अपेक्षाहू एकसमयमैं एकसदृश परिणाम ही होइ, निवृत्ति कहिए भिन्नरूप नहीं होइ सो अनिवृत्तिकरण है ॥ ९ ॥

बहुरि जामै सूक्ष्म कहिए अतिमन्दतारूप सांपराय कहिए कषाय होइ सो सूक्ष्मसांपराय है ॥१०॥

बहुरि जहां मोहका अत्यन्त उपशम होइ सो उपशांतमोह नाम है ॥ ११ ॥

बहुरि जहां मोहका सत्तामैंतैं अत्यन्त नाश होइ सो क्षीणमोह नाम है ॥ १२ ॥

बहुरि च्यारि घातियाकर्मकूं जीति लिया तातैं जिन है। अर केवल कहिए असहाय इंद्रियादिकनिकी अपेक्षारहित ज्ञान होइ सो केवली है। अर मन वचन कायके योगनिसहित जे केवली जिन सो सयोगकेवली जिन है ॥ १३ ॥

बहुरि योगरहित जो केवलीजिन सो अयोगकेवलीजिन नाम है ॥ १४ ॥

ऐसैं गुणस्थाननिका अक्षरार्थ कह्या। ये गुणस्थान हैं ते आत्माका स्वभाव नहीं है। मोहकर्मका उदयादिक वा योगनिकी अपेक्षातैं होइ हैं। अब मिथ्यात्वगुणस्थानका स्वरूप कहै हैं। दर्शनमोहका भेद

जो मिथ्यात्वप्रकृति ताका उदयकरि जो जीवकै तत्त्वार्थका श्रद्धान नहीं होना, अतत्त्वकूं तत्त्व समझना, सत्यार्थ आप्त आगम गुरुका स्वरूपकूं नहीं श्रद्धान करना, कुदेवमैं देवबुद्धि करना, कुगुरुमैं गुरुबुद्धि करना, कुआगममैं आगमबुद्धि करना, कुधर्ममैं धर्मबुद्धि करना तथा सत्यार्थ देव गुरु धर्मकूं असत्यार्थ देव गुरु धर्मकूं समान जानना, तथा देव गुरु धर्म स्वतत्त्व परतत्त्वकूं जानना ही नहीं, देहादिक परद्रव्यमैं ही आपा धारण करना, देहके रूप जाति कुलकूं ही आत्मा जानना सो समस्त मिथ्यात्वके उदयतैं है।

बहुरि मिथ्यात्वके उदयकूं अनुभव करता जीव विपरीतश्रद्धानी होय है। अर अहिंसालक्षण धर्म तथा समस्त जीवनिमैं मैत्रीभाव तथा समस्तद्रव्यनिमैं साम्यभाव तथा क्षमादिकपरिणाम ताकूं नहीं रुचै है। अहंकारादिक मदकरि सहित जगतकी अवस्थाकूं नहीं जानता धर्ममैं रुचि नहीं करै। जैसैं पित्तज्वरके धारककूं मधुररस नहीं रुचै है। अर जो कदाचित् धर्मका श्रवणहू करै तो जैसैं सर्प्प दुग्ध मिश्री पान-करिकैहू विषमविषकूं उगलै है। तैसैं धर्मश्रवणकरिकै धर्मके धारक पुरुषनितैं वा धर्मकी कथनीतैं तथा धर्मा-यतनतैं बडा वैर करै है। इस मिथ्यात्वके एकांत[1], विपरीत[2], विनय[3], संशय[4], अज्ञान[5] ऐसैं पांच भेद हैं। इनमैं अनेक विपरीतता गर्भित है। सो जहां तहां वर्णन किया ही है। इस मिथ्यात्वगुणस्थानका काल अनादि अनन्त है, अर अनादि सांतहू है, अर सादि सांतहू है, ऐसैं मिथ्यात्व गुणस्थानका स्वरूप कह्या।

अब सासादनगुणस्थानका स्वरूप कहै हैं। जो कोऊ जीवकै प्रथमोपशमसम्यक्त्व था सो उपशम-सम्यक्त्वका काल अंतर्मुहूर्त्तका है। तिस उपशमसम्यक्त्वकालमैं जघन्यकरि तो एक समय बाकी रहिगया होय, उत्कृष्ट छह आवलीप्रमाण रहिगया होय, तदि अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ इन च्यार कषायमैंतैं कोऊ एक कषायका उदय होय तदि सम्यक्त्व तो नष्ट होगया, अर अनन्तानुबन्धी च्यार कषायमैंतैं एक कोऊ कषाय अनुभव करता जीवकै सासादन सम्यक्त्व होइ क्योंकि सम्यक्त्वकी विरा-धनासहित परिणाम भया तातैं सासादनसम्यक्त्व नाम भया।

भावार्थ—उपशमसम्यत्वका काल अन्तर्मुहूर्त्तका है, अन्तर्मुहूर्त्त पाछैं नियमतैं छूटै है। जो तहां

मिथ्यात्वकर्मका उदय आजाय तो उपशमसम्यक्त्व छूटि मिथ्यात्वगुणस्थानी होजाय। अर तहां जो अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभमैंतैं कोऊ एकका उदय होजाय तो सासादनगुणस्थानी होजाय। अर सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होजाय तो उपशमसम्यक्त्व छूटि क्षयोपशम सम्यक्त्व होजाय। जो जीव उपशमसम्यक्त्वरूप रत्नपर्वततैं छूटि मिथ्यात्वरूपभूमिकै सन्मुख भया, जैसैं अन्तरालमैं जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवलीपर्यंत अन्तरालमैं वर्तै तेतैं सासादनगुणस्थानी कहावै है।

जैसैं वृक्षतैं फल टूट्या अर भूमिमैं नहीं पड्या तेतैं वृक्षका अर भूमिका सम्बन्धरहित अन्तरालमैं है तैसैं कोऊ जीव अनन्तानुबन्धीका उदय होतै सम्यक्त्वी नहीं रह्या, अर मिथ्यात्वका उदयविना मिथ्यात्वी नहीं कहाया, बीचमैं जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली कालप्रमाण सासादनगुणस्थानी कहावै है। याका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट छह आवलीप्रमाण ही काल है, पीछैं नियमतैं मिथ्यात्वी होय है, ऐसैं द्वितीय सासादनगुणस्थानका स्वरूप कह्या॥

अब तृतीय मिश्रगुणस्थानका स्वरूप कहै हैं। दर्शनमोहनीयका भेद एक जात्यंतरसर्वघाति सम्यग्मिथ्यात्व है। द्वितीय नाम जाका ऐसी मिश्रप्रकृतिका उदयकरि जीवकै सम्यक्त्व अर मिथ्यात्वरूप मिले हुए कर्बुरित परिणाम होय है। इस मिश्रप्रकृतिका उदयकरि केवल सम्यक्त्वपरिणाम भी नहीं होइ, अर केवल मिथ्यात्वपरिणामहू नहीं होइ। जैसैं दधि जो दही अर खांड दोऊ मिलजाय तदि एक अन्यजातिका स्वाद अनुभव करावै है जुदाजुदा स्वाद नहीं देवै है, तैसैं मिश्रप्रकृतिका उदयकरि सम्यक्त्व मिथ्यात्व दोऊनिका मिलनरूप अनुभव होय है।

बहुरि मिश्रगुणस्थानी जीव देशसंयम तथा सकलसंयमकूं नहीं ग्रहण करै है। क्योंकि मिश्रगुणस्थानीकै देशसंयम सकलसंयमके होनेयोग्य करणरूप परिणामनिका असंभव है। मिश्रगुणस्थानीकै देशसंयम सकलसंयम भावनिप्रति चढ़नेकी योग्यता नहीं है। अर चतुर्गतिका कारण चार आयुका बन्ध भी नहीं करै है। अर मिश्रगुणस्थानमैं मरण भी नहीं होय है। मिश्रगुणस्थानकूं छांडि असंयतसम्यक्त्वमैं

वा मिथ्यात्वमैं जाय मरण करै है ऐसा नियम है। बहुरि मिश्रगुणस्थानी पूर्वैं सम्यत्तवपरिणाममैं वा मिथ्यात्वपरिणाममैं जहां आयुबन्ध कीयाहोय तिस सम्यक्त्व वा मिथ्यात्व परिणाममैं प्राप्त होयकरिकै ही मरण करै है ऐसा भी नियम केई आचार्यनिके अभिप्रायतैं जानना। बहुरि मिश्रगुणस्थानमैं मारणांतिकसमुद्घातहू नहीं करै है। ऐसैं मिश्रगुणस्थानका स्वरूप कह्या।

अब चौथा असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानका स्वरूप कहै हैं। सम्यत्तव जो तत्त्वार्थनिका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन एक प्रकार है। तथापि कारणके वशतैं तीन प्रकार है। जातैं दर्शन मोहनीयकी तीन प्रकृति अर ४ अनन्तानुबन्धी कषाय इनि सातप्रकृनिका उपशमतैं उपशमसम्यत्तव होय है। अर इन सातप्रकृतिनिका अत्यन्तक्षयतैं क्षायिकसम्यत्तव होय है। अर इनि सातप्रकृतिनिका क्षयोपशमतैं क्षायोपशमिक सम्यत्तव होय है।

तिन तीन प्रकार सम्यत्तवमैं क्षायोपशमसम्यक्त्वका स्वरूप कहिए है। जहां अनन्तानुबन्धी कषायनिका प्रशस्त उपशम तो नहीं होइ अर अप्रशस्त उपशम होय, अथवा अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन भया होय। अन्य द्वादशकषाय नवनोकषायरूप परिणमिजाय ताकूं विसंयोजन कहिए हैं। अर मिथ्यात्व अर सम्यग्मिथ्यात्व इन दोऊ दर्शनमोहकी प्रकृतिनिका प्रशस्त उपशम होय, अथवा क्षयकूं प्राप्त होइ। अर सम्यक्त्वप्रकृतिका देशघातिस्पर्द्धकनिका उदय होतैं जो तत्त्वार्थनिका श्रद्धान होइ सो क्षयोपशमसम्यक्त्व है।

भावार्थ—जिसकै अनन्तानुबन्धी च्यार कषायनिका उपशम होइ अथवा विसंयोजन होइ अर मिथ्यात्व अर सम्यग्मिथ्यात्व दोऊनिका उपशम होइ, अर सम्यक्त्व प्रकृतिके देशघातिस्पर्द्धकनिका उदय होय तदि क्षायोपशमिकसम्यक्त्व होय है। इहां ऐसा जानना। जो प्रकृति उदययोग्य तो नहीं होइ तोभी स्थिति अनुभागकी वृद्धिहानिकै योग्य होय वा संक्रमणयोग्य होय सो अप्रशस्तोपशम कहिए है। अर जो प्रकृति उदययोग्य भी नहीं होइ अर स्थिति अनुभागकी वृद्धिहानि योग्य भी नहीं होइ, अर संक्रमण योग्यहू नहीं होइ तहां प्रशस्तोपशम कहिए हैं।

'इस क्षयोपशमसम्यक्त्वविषे छहप्रकृतिनका तो उपशम वा क्षय है ही। एक सम्यक्त्वप्रकृतिका देशघातिस्पर्द्धकनिका उदय है। सो देशघातीनिका उदयकै तत्त्वार्थनिका श्रद्धान विगाडदेनेका सामर्थ्य नहीं तातैं सम्यक्त्व वण्यार है तोहू चल मल अगाढ इन तीन दोषनिकरि सहित सम्यक्त्व होय है। क्योंकि सम्यक्त्वप्रकृतिकै उदयमैं तत्त्वार्थका श्रद्धान विगाडनेका सामर्थ्य तो है नाहीं केवल सम्यक्त्वकै मल दोष लगावनेमात्र ही सामर्थ्य है। तातैं इस प्रकृतिकूं देशघाति कहिए है। सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयकूं अनुभवै याहीतैं याकूं वेदकसम्यक्त्व कहिए है।

अब चलादिक दोषनिका स्वरूप कहै हैं। अपने ही जे आप्त आगम पदार्थ तिनविषे ही जो चलायमान होय सो चलदोष है। जैसैं आपकरि कराया जो अरहन्तका मंदिरादिकविषैं यो हमारो मन्दिर है यो हमारो देव है ऐसा अभिप्राय करै है। अर परकरि कराया ताको ये परका है ऐसा परपणाका अभिप्राय सो चलदोष है। क्योंकि अरहन्तका मंदिरादिक ते तो महान् आनन्दकरि समस्तभव्यनिकै आराधनेयोग्य है। तथापि ए मंदिर ए प्रतिमा हमारा, ये अन्यका ऐसा अभिप्राय सो चलदोष है।

जैसैं नानाप्रकार कल्लोलनविषे जल एक ही है तोहू नानारूपकरि चलै है तैसैं दर्शनमोहनीयका भेद जो सम्यक्त्वप्रकृति ताका उदयकरि अपने ही आप्त आगम पदार्थनिविषैं श्रद्धान चलायमान रहै है परकेमैं नाहीं जाय है। ऐसा चलदोष है। बहुरि सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयतैं श्रद्धानकै अतिचार मल लागै। जैसैं शुद्धसुवर्ण है सो परसंगकरि मलिन होइ तैसैं सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयकरि श्रद्धान मलिन होय सो मलदोष है। बहुरि जैसैं वृद्धपुरुषका हस्तविषै लाठी स्थानऊपरि ही रहै स्थानसूं चलै नहीं अर हस्ततैंहू नहीं छूटै तोहू सकम्प रहे है। ताकू अगाढ़ कहिए हैं। तैसैं आप्त आगम पदार्थका श्रद्धानमैं अवस्थित दृढ़पुरुषहूकै सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयतैं श्रद्धान कम्पायमान रहै है। सो ही दिखावै हैं। समस्त अरहन्तदेवनिकै समान ही अनन्तशक्ति है। तोहू इस शांतिकर्मकै विषैं श्रीशांतिनाथस्वामी ही समर्थ हैं, इस विघ्नविनाशनकर्मविषै पार्श्वनाथदेव ही समर्थ हैं। इत्यादि प्रकारकरिकै श्रद्धानके शिथिलपणाका संभवतैं

अगाढ़ दोप है। अब औपशमिक क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका कारण अर इनिका स्वरूपकूं कहै हैं। अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ अर मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व अर सम्यक्त्वप्रकृति ए तीन दर्शन-मोहकी इनि सातप्रकृतिनिका करणपरिणामनिकरि अत्यन्त उपशमकरिकै उपशमसम्यक्त्व उपजै है। अर इन ही सप्तप्रकृतिनिका क्षयतैं क्षायिक सम्यक्त्व होय है। ए दोऊ ही सम्यक्त्व निर्मल हैं। इनमैं शङ्कादिक मलदोषका लेशहू नहीं है। तथा ए निश्चल हैं। आप्त आगम पदार्थ है विषय जाका ऐसा श्रद्धानका विकल्पनिविषैं कहांहू शिथिल नहीं हैं। बहुरि दृढ़ हैं, गाढ़रूप हैं, आप्तादिकनिमैं तीव्ररुचिका संभवतैं दृढ़ होय ही।

ऐसैं कह्या जो तीन प्रकार सम्यग्दर्शन तिनकरि परिणत सम्यग्दृष्टि हैं। अर अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ इनमैंतैं कोई एकका उदयकरि संयमभाव नहीं होसकै तातैं याकूं असंयतसम्यग्दृष्टि कहिए है। यो असंयतसम्यग्दृष्टि भगवान् अरहन्तका उपदेश्या सत्यार्थ आप्त आगम पदार्थका श्रद्धान करै है। अर जो आपकै विशेषज्ञान नहीं होय अर केवल उपदेशदाताके सम्बन्धतैं भगवान् अरहन्तका उपदेश्या जाणि असत्यार्थहू श्रद्धान करै जो भगवान्का आगममैं ऐसैं ही कह्या होयगा, सोहू सम्यग्दृष्टि है भगवानकी आज्ञा नहीं उल्लंघनतैं। बहुरि कोऊ बहुज्ञानीका सम्बन्ध होइ अर गणधरादिकनिका उपदेश्या आगम दिखावै जो तुमने श्रद्धान जो किया सो नहीं है। भगवानका आगममैं ऐसैं उपदेश है। तुम जो समझि रख्या है सो नहीं है। ऐसैं समझावतैंहू जो खोटे आग्रहतैं तथा हम हजारनि मनुष्यनिमैं कह्या अब कैसैं फिरैं ऐसैं वचनकै पक्षपाततैं जो असत्यार्थके हटकूं नहीं छांडै सो जीव उस ही कालतैं मिथ्यादृष्टि होय है।

बहुरि यो असंयतसम्यग्दृष्टि है सो इंद्रियनिके विषयनिमैं विरक्त नहीं, विषयनिका याकैं त्याग नहीं। तथा त्रस स्थावरनिकी हिंसाका त्यागहू नहीं है। तथापि जिनेन्द्रके वचनका दृढ़श्रद्धानतैं विषय-कषायनिकूं विषसमान जानता विषयनिमैं अतिविरक्त है अर प्रयोजनविना स्थावर त्रसनकी विराधनामैंहू

नहीं प्रवर्त्तै है, हिंसाकूं महान् अधर्म जानै है। याका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त्त है। उत्कृष्ट तेतीससागर कुछ अधिक जानना। ऐसैं अविरतसम्यग्दृष्टि नाम चतुर्थगुणस्थानका स्वरूप कह्या।

अब देशसंयम नाम पञ्चमगुणस्थानका स्वरूप कहै हैं। अनन्तानुबन्धी अर अप्रत्याख्यानावरण इन अष्टकषायनिका उपशमतैं अर प्रत्याख्यानावरण च्यार कषायनिका देशघातिस्पर्द्धकनिका उदय होतैं-संतै अर सर्वघातिस्पर्द्धनिका उदयाभावलक्षण क्षय होतै सकलसंयमके भाव नहीं होय हैं, देशसंयम होय है। एकदेश थोरे व्रत होय हैं। देशसंयमकूं धारण करनेतैं देशसंयम नाम पञ्चमगुणस्थान प्राप्त होय है। जाकै त्रसनिकी हिंसाका त्याग अर स्थावरनिकी हिंसाका त्याग नहीं। एककालविषै त्रसकी हिंसातैं विरत अर स्थावरहिंसातैं विरत नहीं तातैं याकूं विरताविरतहू कहिए हैं। परन्तु प्रयोजनविना स्थावर-हिंसाकूं नहीं करै है।

इस देशसंयम गुणस्थानमैं ही श्रावकव्रतके ग्यारह स्थान वर्णन हैं। जाकी जैसी शक्ति होइ तिस प्रमाण धारण करै हैं। इन ग्यारह स्थानका वर्णन लिखैं तो ग्रन्थ बहुत होजाय यातैं नहीं लिख्या है। रत्नकरंडश्रावकाचारादि अन्य ग्रन्थनितैं जानना। याका काल जघन्य तो अन्तर्मुहूर्त है अर उत्कृष्टकाल अष्टवर्ष अन्तर्मुहूर्त घाटि कोटिपूर्वका है। ऐसैं देशसंयम नाम पञ्चमगुणस्थानका स्वरूप कह्या।

अब प्रमत्तसंयत नाम छठा गुणस्थानका स्वरूप कहै हैं। इहां संज्वलन क्रोध मान माया लोभरूप च्यार कषाय अर हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्री पुरुष नपुंसकवेद इनका तीव्र उदयतैं संयमहू होइ। अर संयमके मल लगावनेवाला प्रमादहू होय यातैं याकूं प्रमत्त संयत कहिए हैं।

इहांहू संज्वलन कषाय अर नव नोकषाय इनिका सर्वघातस्पर्द्धकनिका उदयाभावलक्षण क्षय होतै अर द्वादश कषायनिका अर उदयकूं नहीं प्राप्त भए ऐसैं संज्वलन कषाय अर नवनोकषायका निषेकनिका सत्तामैं अवस्थितलक्षण उपशम होतै अर संज्वलनका अर नोकषायनिका देशघातिस्पर्द्धकनिका तीव्र उदयतैं संयम होय अर मलका उपजावनेवाला प्रमादहू उत्पन्न होय है तातैं छठा गुणस्थानवर्ती जीवकूं

प्रमत्तसंयत कहिए हैं, ऐसा जानना। जो केते प्रमाद तो अपने अनुभवमैं आवैं तातैं व्यक्त कहिए। अर केतेक प्रमाद हैं ते प्रत्यक्षज्ञानके धारकनिकै जाननेमैं आवैं ते अव्यक्त हैं।

ऐसैं व्यक्त अर अव्यक्त प्रमाद होतैहू जो संयम वर्त्तै है सो चारित्रमोहनीयका क्षयोपशमका माहात्म्यकरिकै सकल गुणशीलकरि सहित महाव्रती होय है। देशसंयमीकी अपेक्षा याकूं सकल संयमी कहिए हैं। याका आचरण प्रमादसहित है तातैं कर्बुरित आचरण हैं।

अब-प्रमादनिका नाम संख्या कहै हैं—

गाथा—विकहा तहा कसाया, इंदियणिद्दा तहेव पणयो य।
चतु चदु पण एगेगं, होंति प्रमादा हु पञ्चदस॥

विकथा चार, कषाय च्यार, इंद्रिय पांच, एक निद्रा, एक स्नेह ऐसैं तो ए पंचदश प्रमाद हैं। इहां इनका ऐसा अर्थ है। जो संयमतैं विरुद्धकथा सो विकथा है अर जे संयमगुणका घात करैं ते कषाय हैं। अर संयमतैं विरोध करनेवाली इंद्रियनिकी प्रवृत्ति ते इंद्रिय हैं। अर निद्रा नामकर्मके उदयतैं अपने अर्थको सामान्यग्रहणकूं रोकनेवाली जड अवस्था सो निद्रा है। अर बाह्य अर्थनिमैं ममत्वरूप परिणाम सो प्रणय है, स्नेह है।

इनि पन्द्रह प्रमादनिके सामान्य भेदनिकूं परस्पर गुणे अस्सी भेद होय अर विकथा पचीस अर कषाय पचीस अर मनसहित इंद्रिय छह अर निद्रा पांच अर स्नेह मोह दोय इनकूं परस्पर गुणे साढासैतीस हजार भेद प्रमादनिके भिन्नभिन्न होय हैं सो इनका आलापादि लिखें ग्रन्थ बहुत बधिजाय इस भयतैं विशेष नहीं लिख्या है। इस प्रमत्तगुणस्थानका जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल है। ऐसैं छठा प्रमत्त संयतगुणस्थानका स्वरूप कह्या।

अब अप्रमत्तसंयत नाम सप्तम गुणस्थानका स्वरूप कहै हैं–जिस कालमैं संज्वलन क्रोध मान माया लोभ इन च्यार कषायनिका अर हास्यादिक नव नोकषायनिका यथासम्भव मन्द उदय होय, प्रमाद

उपजावनेका सामर्थ्यरहित होय तिस कालमैं जीवकै अन्तर्मुहूर्तपर्यंत अप्रमत्तगुणस्थान होय है। इहां समस्त प्रमादरहित अर व्रत गुण शील इनिका पंक्तिकरि मण्डित होय अर सम्यग्ज्ञानोपयोगयुक्त होय अर धर्मध्यानमैं लीन जाका मन होय सो अप्रमत्तसंयत है। सो यो अप्रमत्तसंयत जितनैं उपशमश्रेणीके वा क्षपकश्रेणीके चढनेकूं सन्मुख नहीं प्रवर्त्तै तितने स्वस्थान अप्रमत्त कहिए है। अर जिस अवसरमैं इकवीस प्रकृति मोहनीयकी उपशम करनेकूं वा क्षपावनेकूं सन्मुख होय सो सातिशय अप्रमत्त कहिए हैं। याका संक्षेप ऐसा कहै हैं—

जो समयसमय अनन्तगुण विशुद्धताकरि वर्द्धमान ऐसा वेदकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयमी प्रथम ही अनंतानुबंधी कषायचतुष्टयकूं करणत्रयपूर्वक संक्रमणविधानकरि द्वादश कषाय नव नोकषायरूप विसयोजन करै परिणमन करावै। ताकै अनन्तर अंतर्मुहूर्त काल विश्राम करि, बहुरि करणत्रयकरिकै दर्शनमोहत्रयकूं उपशमनकरि द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि होय है। अथवा करणत्रयपरिणामकरि दर्शनमोहका त्रयकूं क्षयकरि क्षायिकसम्यग्दृष्टि होय है। ताकै अनन्तर अंतर्मुहूर्त कालपर्यंत प्रमत्त अप्रमत्त दोऊ गुणस्थाननिमैं हजाराबार पलटापलटी करै है। तहां पाछै समयसमयप्रति अनन्तगुण विशुद्धताकरि बधतो एकविंशति चारित्र मोहनीयकी प्रकृतिके उपशम करनेकूं उद्यमी होय है। अथवा इकवीस प्रकृतिके क्षपावनेविषै उद्यमी होय है। परन्तु क्षपावनेके सन्मुख क्षायिकसम्यग्दृष्टि ही होय, उपशमदृष्टि नहीं होय। अर उपशम करनेमैं दोऊही सम्यक्त्वी उद्यम करै हैं। सो सातिशय अप्रमत्त होय है सोही चारित्रमोहके उपशम वा क्षपण करनेके निमित्त जे तीन करण तिनमैं प्रथम अधःप्रवृत्तिकरण करै है। इहां अधःप्रवृत्तिकरण होइ ताका स्वरूप अर प्रवृत्ति वर्णन करिए तो कथनी बहोत होजाय तातैं ग्रन्थ बधनेके भयतैं नहीं लिख्या। ज्ञानीजन श्रीगोमट्टसार वा लब्धिसारतैं जानहु।

इस अधःकरणके प्रभावतैं समयसमय अनन्तगुण विशुद्धताकी वृद्धि अर स्थितिबन्धापसरण अर सातादिक प्रशस्तप्रकृतिनका समयसमय अनन्तगुणवृद्धिकरि गुड़खण्ड शर्करा अमृतसदृश चतुःस्थानरूप

अनुभाग बन्ध अर असातादिक अप्रशस्तप्रकृतिनका समयसमय अनन्तगुणी हानिकरि निंब काजी सदृश द्विःस्थानरूप अनुभागबन्ध होय है। ऐसैं चार आवश्यक सम्भवै हैं। इहां नानाजीवनिकी अपेक्षा नीचले समयके अर ऊपरले समयके परिणामनिकी विविधता मिलिजाय है। जैसैं कोई जीवकूं अधकरणकूं प्राप्त भए वीस समय भए जो विशुद्धिताकूं प्राप्त भया होइ सो विशुद्धिता कोई जीव पांचसमयमैं ही प्राप्त होजाय।

ऐसैं नानाजीवनिकी अपेक्षा नीचले ऊपरिले समयकी विशुद्धता किसी जीवकी मिलिजाय किसीकी नहीं मिलैं तातैं याकूं अधःकरण कह्या। याका काल असंख्यानसमयरूप अन्तर्मुहूर्तका है। अर असंख्यात-लोकप्रमाण परिणाम नानाजीवनिकी अपेक्षा त्रिकालगोचर है। समयसमय विशुद्धता अनन्तगुणी है सो याका दृष्टांत दार्ष्टांत विस्ताररूप है तातैं लिख्या नहीं है॥ अब अपूर्वकरण अष्टमगुणस्थानकूं कहै हैं। ऐसैं अन्तर्मुहूर्त कालपर्यंत पूर्वै कह्या अधःप्रवृत्तिकरणकूं व्यतीतकरि विशुद्धसंयमी होई समयसमयप्रति अनन्त-गुणी विशुद्धताकी वृद्धिकरि बधतो अपूर्वकरणगुणस्थानकूं आश्रय करै है। जातैं इस अपूर्वकरणगुणस्थानविषैं असदृश जे ऊपरि ऊपरिके समयनिमैं स्थित जे जीव ते पूर्वपूर्वसमयमैं नहीं प्राप्त भए ऐसैं विशुद्धपरि-णामनिकूं प्राप्त होय हैं। तातैं इसकूं अपूर्वकरण कहिए है।

जैसै अधःप्रवृत्तिकरणके भिन्न भिन्न समयनिमैं तिष्ठते जीवनिके परिणामनिकी संख्या अर विशुद्धिता सदृश संभवै है तैसैं अपूर्वकरणगुणस्थानमैं समस्तकालमैं कोऊ जीवकैहू सदृशपणा भिन्न समयमैं नहीं सम्भवै है। अर एक समयमैं तिष्ठते कोऊके सदृशपणा भी सम्भवै है। कोऊके सदृशपणा नहीं होय है। याका काल अधःप्रवृत्तिकरणके कालकै असंख्यातवें भागरूप अंतर्मुहूर्तका है तोहू असंख्यातसमयमात्र है। अर त्रिलोकगोचर नानाजीवनिकी अपेक्षा अधःप्रवृत्तिकरणका जे असंख्यात लोकमात्र परिणाम तिनतैं असंख्यातगुणे अपूर्वकरणका परिणाम है। अर समयसमय अनन्तगुणी विशुद्धतारूप है। इन परिणाम-निका समयसमयप्रति संख्या विशुद्धिताके दृष्टांतदार्ष्टांत ग्रन्थ बधनेतैं नहीं लिख्या है। तिस अपूर्वकरण-परिणामरूपपरिणत समस्तजीव हैं। ते प्रथमसमयकूं आदि लेय चारित्रमोहनीयकर्मका क्षपणमैं वा उप-

शमनेमैं उद्यमी होय हैं। अर गुणश्रेणीनिर्जरा, गुणसंक्रमण[२], स्थितिखंण्डन, अनुभागखंण्डन, ए है लक्षण जिनका ऐसैं च्यार आवश्यक करै हैं।

इस अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथमभागमैं निद्रा प्रचला दोयकी बन्धमैं व्युच्छिति होतै जे उपशमश्रणीकूं आरोहण करै हैं तिसका प्रथम भागमैं मरण नहीं होइ ऐसी आगमकी आज्ञा है। जे अपूर्वकरणगुणस्थानी जीव उपशमश्रेणी चढ़ै हैं, तिनकै चारित्रमोहनीयका नियमकरि उपशम होय है। अर जे क्षपकश्रेणी चढै हैं ते नियमकरि चारित्रमोहनीयकूं क्षपावै हैं। क्षपकश्रेणीमैं सर्वत्र मरण नहीं है। जातैं मिश्रगुणस्थानमैं नवम अपूर्वकरणका प्रथमभागमैं अर सर्वत्र क्षपकश्रेणीमैं क्षीणमोहमैं सयोगकेवलीमैं इनि गुणस्थाननिमैं मरण नहीं ऐसा आगममैं है।

अब अनिवृत्तिकरण नवमा गुणस्थानका स्वरूप कहै हैं। अनिवृत्तिकरण गुणस्थानका काल अपूर्वकरणकै कालतैं असंख्यातवें भाग है। एक समयमैं वर्त्तमानत्रिकालगोचर नानाजीव जैसैं संस्थान आयु शरीरका वर्ण अवगाहनाकरि परस्पर भेदरूप हैं, तैसें विशुद्धपरिणामनिकरि भेदरूप नहीं हैं। नहीं विद्यमान है विशुद्धपरिणामनमैं भेद जिनकै ते अनिवृत्तिकरण जीव हैं। प्रथमसमयतैं लगाय समयसमयप्रति अनन्तगुण विशुद्धताकी वृद्धिकरि बधता हीनादिकभावरहित त्रिकालवृत्ति नानाजीवनिकै परिणामनिमैं भेद नहीं। जेता समयका याका काल है तितने ही याके परिणाम हैं। निर्मल अन्तर्ध्यानरूप अग्निकी शिखाकरि कर्मरूप वनकूं दग्ध करै हैं।

इस अनिवृत्तिकरणकरि समस्त चारित्रमोहनीयका उपशम वा क्षपण नियमतैं होय है ऐसैं अनिवृत्तिकरणगुणस्थानका स्वरूप कह्या॥

अब सूक्ष्मसांपरायनाम दशमगुणस्थानकूं कहै हैं। जैसैं धोयाहुवा कुसूमल वस्त्र सूक्ष्मरागसंयुक्त होय है। धोए पीछैंहू सूक्ष्मरंगका अंशाकी झलक रहै हैं, तैसैं पूर्वै अनिवृत्तिकरणस्थानविषैं सम्भवता कर्मनिकी शक्तिसमूहरूप स्पर्द्धक तिनकूं अनिवृत्तिकरणपरिणामकरि किया तिसकै अनन्तैकभागमात्र

अपूर्वस्पर्द्धक तिनकों अनिवृत्तिकरणपरिणामकरि किया बादरकृष्टि तिनकौ तिनकरि किया कर्मनिका शक्ति सूक्ष्मखण्डरूप सूक्ष्मकृष्टि तिनका यथाक्रम अनुभाग अपने उत्कृष्टतैं अपना जघन्य उपरितन जघन्यतैं अधस्तन उत्कृष्ट अनन्तगण हीन क्रमतैं होय हैं ऐसैं अनिवृत्तिकरणका अन्तका समयके लगती ही सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानकूं प्राप्त होइ सूक्ष्मकृष्टिकूं प्राप्त भया लोभकूं अनुभव करता उपशम वा क्षपकताकूं सूक्ष्मसांपराय कहिए हैं। सामायिक छेदोपस्थापन संयमकी विशुद्धतातैं अतिविशुद्ध सूक्ष्मसांपराय संयमसहित यथाख्यात चारित्रतैं किंचित् हीन होय है।

भावार्थ—अनिवृत्तिकरणपरिणामनिकरि लोभ सूक्ष्मकृष्टिकूं प्राप्त होय है, सो सूक्ष्म कहिए सूक्ष्म है। सांपराय कहिए लोभकषाय जाकै सो सूक्ष्मसांपराय कहिए। याका अन्तर्मुहूर्त काल है।

अब उपशांतकषायगुणस्थानका स्वरूप कहै हैं। जैसैं कतकफलचूर्णसंयुक्त जल मलरहित उज्जल होइ हैं। कर्दम नीचैं दबिजाय है तैसैं समस्तपणाकरि जाकै मोहनीय उपशांत भया होइ उदययोग्य नहीं होय सो उपशांतकषाय कहिए ऐसैं उपशांतकषायगुणस्थानका स्वरूप कह्या। अब क्षीणकषायनाम गुणस्थानका स्वरूप कहै है। जाकै क्षीण कहिए प्रकृति स्थिति अनुभागप्रदेशरहित मोहनीयकी प्रकृति जाकै भई होइ सो क्षीणमोहगुणस्थान है। स्फटिकका पात्रमैं तिष्ठता निर्मल जलकीज्यों उज्ज्वल परिणामसहित है सो ही परमार्थकरि निर्ग्रंथ है। ऐसैं क्षीणकषायगुणस्थानका स्वरूप कह्या॥

अब सयोगकेवली नाम तेरमा गुणस्थानका स्वरूप कहै हैं। जाके समस्त घातिकर्म नष्ट भया यातैं केवलज्ञानकरि समस्त त्रिकालवर्ती गुणपर्यायसहित समस्त द्रव्यनिकूं जाणै। अर दिव्यध्वनिकरि अनेक भव्यजीवनिका अज्ञान अन्धकार दूरि किया।

अर क्षायिक ज्ञान दर्शन दान लाभ भोग उपभोग वीर्य सम्यक्त्व चारित्ररूप नव लब्धिनिकूं प्राप्त होइ परमेष्ठी अरहन्त जिन नामकूं प्राप्त भया। अर योगकरि सहित तातैं सयोगी कहिए। अर परके सहायरहित ज्ञानदर्शनसहित तातैं केवली कहिए। अर घातियाकर्म निर्मूल कीया तातैं जिन कहिए। ऐसैं सयोगकेवली जिन कहिये॥

अब अयोगकेवली चौदमा गुणस्थानकूं कहै हैं। जो अठारह हजार शीलका अधिपतिपणानैं प्राप्त भया। अर समस्त आस्रव अर बन्धकरि रहित होय मन वचन कायके योगरहित होय ऐसा केवली जिन सो अयोगकेवली जिन कहिए सो ही अयोगी कहिए। ऐसैं चौदमा गुणस्थानका स्वरूप कह्या। ए गुणस्थान आत्माका स्वभाव नहीं हैं। मोहकर्म अर योगकरि उत्पन्न भया है। इन गुणस्थानके धारी कर्मसहित संसारीजीव कहै। जिनके अष्टकर्मनिका नाश भया ऐसैं गुणस्थानरहित भगवान् सिद्धपरमेष्ठी मुक्तजीव हैं। ऐसैं संक्षेपकरि गुणस्थाननिका वर्णन किया॥ अब-गुणस्थाननिके चढनेउतरनेका क्रम कहै हैं—

मिथ्यात्वगुणस्थानतैं तो चढनेके च्यार मार्ग हैं। कोऊ जीव तो मिथ्यात्वमैं तीन करणकरि दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृति अर अनन्तानुबन्धी च्यार कषाय इन सात प्रकृतिनिका उपशमकरि चतुर्थगुणस्थानकूं प्राप्त होय है। कोऊ मिश्रप्रकृतिका उदयतैं तीजै गुणस्थान जाय हैं। कोऊ सात प्रकृतिनिका अर अप्रत्याख्यानकाहू क्षयोपशमतैं पञ्चमगुणस्थान चढै है। कोऊ दर्शनमोहनीय अर अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरणका क्षयोपशमादिकरि संज्वलन अर नव नोकषायका देशघातिस्पर्द्धकनिका अतिमन्द उदयतैं सप्तमगुणस्थानकूं प्राप्त होय हैं।

ऐसैं मिथ्यात्वतैं तो चौथे तीजै पांचमे सातमे इन च्यार गुणस्थानमैं ही गमन होय है। अर सासादनतैं एक मिथ्यात्वमैं ही पडै है चढै नहीं। अर मिश्रगुणस्थानतैं चढै तो चौथे, पडै तो पहले मिथ्यात्वमैं ये दोयहीमैं गमन है। अर अव्रत नाम चतुर्थगुणस्थानी चढै तो सातमे तथा पांचमे दो स्थानमैं जाय। अर पडै तो प्रथममैं तथा द्वितीयमैं तृतीयमैं ऐसैं चढनेउतरनेके पांच मार्ग हैं। अर देशसंयम नाम पञ्चम गुणस्थानी चढै तो एक सप्तममैं जाय, पडै तो मिथ्यात्वादिक च्यारमैं ऐसैं पांच मार्ग हैं। अर छठे गुणस्थानतैं चढै तो एक सप्तममैं, अर पडै तो प्रथममैं तथा द्वितीय तृतीय चतुर्थ पञ्चममैं ऐसैं छह मार्ग हैं। अर सप्तमगुणस्थानतैं पडै तो एक छठे अर चढै तो अष्टममैं अर मरण करै तो चतुर्थगुणस्थानमैं आवै ऐसैं तीन मार्ग हैं।

अर अष्टम गुणस्थानतैं चढै तो नवममैं, पडे तो सातमेमैं मरण कीए पाछे चौथेमें ऐसैं तीन मार्ग हैं। अर नवमा गुणस्थानतैं चढै तो दशमे सूक्ष्मसांपरायमैं जाय अर पडै तो आठमै अर मरण करै तो चोथै अव्रतमैं ऐसैं तीन मार्ग हैं। अर दशम गुणस्थानतैं क्षपकश्रणीवाला मोहकी क्षपणाकरि चढे तो बारमै जाय अन्य मार्ग नहीं। अर मोहनीयका उपशम करनेवाला चढै तो एक ग्यारमै अर पडै तो नवमै अर मरण करै तो चौथे ए तीन मार्ग हैं। अर ग्यारमा गुणस्थानधारी पडै तो दशमै अर मरै तो चौथे दोयगुणस्थान ही मार्ग हैं, चढै नहीं पडै ही। अर बारमा क्षीणकषाय नामा चढै सो तेरमै ही जाय, पडै नहीं। अर मरणहूं नहीं करै। अर तेरमा गुणस्थानी केवली चौदमैही जाय, पडै नहीं। अर यामै मरणहूं नहीं। अर चौदमा गुणस्थानी सिद्धालयमैं हो जाय है। ऐसैं गुणस्थानके उतरने चढनेका स्वरूप कह्या। इहां ऐसा जानना।

मिश्रगुणस्थानमैं अर क्षीणकषाय नाम बारमा गुणस्थानमैं अर तेरमामैं अर क्षपकश्रेणीमैं तो नियमकरि मरण नहीं हैं। अन्य गुणस्थानमैं मरण करै हैं। परन्तु मरणकरि परलोक जाय है तदि मार्गमें विग्रहगति कहिए तहां विग्रहगतिमैं मिथ्यात्व और सासादन अर अविरत ए तीन ही गुणस्थान हैं। पंचमादि अन्यगुणस्थानमैं मरण तो करै परन्तु मरण करते ही दूजे समयमैं ही अविरत गुणस्थान होजाय है, संयमभाव रहै नहीं। अर मिथ्यात्वका मरया मार्गमैं मिथ्यात्वी सासादनका मरयाकै मार्गमैं सासादन रहैहैं। अपर्याप्त अवस्थातांई पाछै मिथ्यात्व होय है। अविरतका मरयाकै अव्रत रहै। ऐसैं संक्षेपमैं गुणस्थाननिका स्वरूप कह्या ॥

अब—वीस प्ररूपणाविषैं जीवसमासप्ररूपणा कहैहैं। जीव अनेक हैं, बहुतप्रकार तिनकी जाति है तोहू सामान्यताकरि एकपणानैं प्राप्तिकरिए सो जीवसमास है। जीव जामैं संग्रहरूप ग्रहणकरिए नानारूप जाका ग्रहणमैं आजाय सो जीवसमास है। जीव है सो उपयोगलक्षण एकप्रकार है। इसमैं समस्त जीव आयगए। द्रव्यार्थिकनयका विषयकरि जीव एकप्रकार ही है। संग्रहनयकरि ग्रहण किया तिनमैं भेद करनेवाला व्यवहारनयकरि संसारी जीवका त्रस स्थावर भेदकरि जीव समास दोयप्रकार है। एकेंद्रिय,

विकलेंद्रिय, सकलेंद्रिय करि तीन प्रकार है। एकेंद्रिय, विकलेंद्रिय, सकलेंद्रियके संज्ञी, असंज्ञी भेद करि च्यार प्रकार हैं। एकेंद्रिय, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय भेदकरि पंचप्रकार हैं। पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति त्रसकायके भेदकरि छह प्रकार हैं।

बहुरि पंच स्थावर विकलेंद्रिय अर सकलेंद्रियके भेदकरि जीवसमास सप्तप्रकार हैं। पंच स्थावर अर विकलेंद्रिय अर संज्ञी असंज्ञी भेदकरि अष्टप्रकार हैं। बहुरि स्थावर द्वींतींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय भेदकरि नवप्रकार हैं। बहुरि पंच स्थावर तीन विकलेंद्रिय अर संज्ञी असंज्ञी भेदकरि दशप्रकार हैं तथा पंचस्थावरकाय बादरसूक्ष्मकरि दश अर त्रसकाय ऐसैं ग्यारह प्रकार हैं। बहुरि बादरसूक्ष्मकरि स्थावर दशप्रकार अर विकलेंद्रिय सकलेंद्रियके भेदकरि द्वादशप्रकार हैं।

बहुरि स्थावरकाय दश अर विकलेंद्रिय अर संज्ञी असंज्ञी ऐसैं त्रयोदशप्रकार हैं। तथा स्थावरकाय दश अर विकलेंद्रिय तीन अर पंचेंद्रिय ऐसैं चतुर्दश प्रकार हैं। तथा स्थावरकाय दश विकलेंद्रिय तीन असंज्ञी संज्ञी ऐसैं पंचदश प्रकार हैं। तथा पृथ्वी, अप्, तेज, वायुकायिक अर वनस्पतिका नित्यनिगोद इतरनिगोद ऐसैं स्थावरनिके षड्भेद बादरसूक्ष्मकरि बारह अर प्रत्येकवनस्पति ऐसैं स्थावर तेरह अर विकलेंद्रिय अर संज्ञी असंज्ञी भेदकरि षोडश प्रकार हैं।

बहुरि स्थावरकाय तेरह प्रकार, विकलत्रय तीन, पंचेंद्रिय एक ऐसैं सतरह प्रकार हैं। तथा स्थावरकाय तेरह विकलत्रय संज्ञी असंज्ञी ऐसैं अष्टादशप्रकार जीवसमास है। तथा पृथ्वीकाय, अप्, तेज, वायु, वनस्पति, नित्यनिगोद, चतुर्गतिनिगोद इनका बादरसूक्ष्मकरि बारहभेद अर सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठितकरि प्रत्येक वनस्पति दोय भेद, द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय संज्ञी असंज्ञी पंचेंद्रिय ऐसैं उगणीस प्रकार हैं। बहुरि पर्याप्त अपर्याप्त करि गुणोए तो अडतीस प्रकार अर पर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्त करि गुणे सत्तावन भेदरूप है। तथा अठ्याणवै जीवसमास समझनेयोग्य है। पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, नित्यनिगोद, चतुर्गतिनिगोद इनि छहके बादरसूक्ष्मकरि बारह भेद भए। अर प्रत्येकवनस्पति सप्रतिष्ठित

अप्रतिष्ठित ऐसैं दोय भेद सब मिलि एकेन्द्रियके चौदह भेद अर विकलत्रय ऐसैं सतरह भेद इनिके पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त इन तीन भेदनिकरि गुणे इक्यावनभेद एकेन्द्रिय विकलत्रयके भए।

बहुरि तिर्यंचनिमैं कर्मभूमिके गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच जलचर, स्थलचर, नभश्चर, तीन भेद ते प्रत्येक संज्ञी असंज्ञी भेदकरि छह प्रकार तिनके पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्तकरि कर्मभूमिके गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंचके बारह भेद भए। बहुरि कर्मभूमिके सम्मूर्छन पंचेन्द्रिय तिर्यंच जलचर, स्थलचर, नभश्चर इनिके संज्ञी असंज्ञी भेदकरि छह प्रकार। इनिके पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्तकरि अठारह प्रकार ऐसैं कर्मभूमिके पंचेन्द्रिय तिर्यंचके तीस भेद भए। भोगभूमिमैं संज्ञी ही उपजै हैं अर असंज्ञी नहीं उपजे।

यातैं स्थलचर नभश्चर इनके पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्तकरि चार भेद भए। ऐसैं तिर्यंचनिके पच्यासी भेद भए। अर मनुष्यनिमैं आर्यखंडके अर म्लेच्छखंडके अर भोगभूमिके अर कुभोगभूमिके च्यार प्रकारके गर्भज मनुष्य पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्त भेदकरि अष्टप्रकार भए।

बहुरि संमूर्छन मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त ही होइ यातैं नव भेद भए। अर देव नारकी पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्तकरि च्यार भेदरूप भए। ऐसैं अठ्याणवै जीवसमास जानने। इन भेदनिके जाननेतैं संसारीजीवनिके प्रकारनिका जान्या जाय है। मुक्तजीव विशुद्धज्ञानदर्शनमय एकरूप ही है। ऐसैं दूजी जीवसमासप्ररूपणा वर्णन करी।

अथ—तीसरी पर्याप्तप्ररूपणा वर्णनकरीए हैं। जैसैं घट पट गृह इत्यादिक बणाइए हैं, तहां जो समस्त शक्तिसहित परिपूर्ण होजाय तदि पूर्ण कहिए। अर समस्तशक्तिसहित पूर्ण नहीं होइ सो अपूर्ण कहिए हैं। तैसैं ही संसारी जीवहू एक शरीर छांडि अन्य शरीरके ग्रहण करनेविषैंहू अपनेयोग्य पर्याप्ति पूर्ण करै सो पूर्ण कहावै तथा पर्याप्त कहावैं। पूर्ण नहीं करै सो अपर्याप्त कहावै। आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति[2], इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, भाषापर्याप्ति, मनःपर्याप्ति ऐसैं छह पर्याप्तिनिके नाम जानने। तिनमैं एकेन्द्रिय जिवनिकै भाषा अर मन नहीं तातैं च्यारि ही पर्याप्ति हैं। अर विकलत्रय

जीवनिकै तथा असंज्ञी पंचेन्द्रियकै मनबिना पंच पर्याप्ति हैं। संज्ञी पंचेन्द्रियकै छह पर्याप्ति हैं। इहां ऐसा जानना।

जो मनुष्य तिर्यंचनिकै तो औदारिक शरीर होय है। अर देवनारकीनिकै वैक्रियक शरीर होय है। छठा गुणस्थानवाले आहारक ऋद्धिधारक मुनिके संशयादि दूरि करनेकै अर्थि एक हाथ प्रमाण इंद्रियनिकै अगोचर मस्तकमैंतैं निकसि अंतमुहूर्त्तप्रमाण कालमैं केवली श्रुतकेवलीका दर्शनमात्रतैं संशयादि दूरि करि मुनीश्वराँका अंगमैं पाछा प्रवेश करै सो आहारकशरीर है।

ऐसैं तीन शरीरकै मध्य जैसा शरीर नामकर्मका उदयकरि जो शरीर धारण करना होय तिस शरीरकै योग्य तथा छह पर्याप्तिनिकै योग्य पुद्गलस्कंधनिकूं खलरसभागकरि परिणमावनेकूं पर्याप्तिनाम-कर्मका उदयतैं आत्माके शक्तिका उपजना सो आहारकपर्याप्ति है।

भावार्थ—कर्मके उदयतैं जैसा शरीर धारण करना होइ ताके योग्य जो प्रथम समयमैं ग्रहण कीये पुद्गलस्कंध तिनकूं खलरसभागरूप परिणमायवेकी पर्याप्तिनाम कर्मके उदयतैं आत्मामैं शक्ति प्रगट हो-जाना, तिस आत्मशक्तिकूं आहारपर्याप्ति कहिए है। बहुरि तीन शरीर षट्पर्याप्तिकै योग्य जे पुद्गलस्कंध तिनकै खलभाग तो हाड इत्यादिक स्थिर अवयवरूप अर रसभाग जो रुधिरादिक द्रव्य अवयवरूप करिकै परिणमयवेकी शक्तिका उपजावना सो शरीरपर्याप्ति है। बहुरि आवरण अर वीर्यांतरायके क्षयो-पशमत विस्तरी जो आत्माके योग्यदेशमैं तिष्ठते रूपादिक विषयनिका ग्रहण करनेके व्यापारमैं शक्ति प्रगट होना सो जातिनाम कर्मके उदयतैं उपज्या सो इंद्रियपर्याप्ति है।

बहुरि आहार वर्गणारूप आए जे पुद्गलस्कंधनिकूं उच्छ्वासनिश्वासरूप करिकै परिणमायवेकूं उच्छ्वासनिश्वासनाम कर्मका उदयतैं शक्तिका उपजना सो उच्छ्वासनिश्वासपर्याप्ति है। बहुरि स्वरनाम कर्मका उदयके वशतैं भाषावर्गणारूप आए जे पुद्गलस्कन्ध तिनमैं सत्य असत्य उभय अनुभय भाषारूप करिकै परिणमायवेकूं शक्तिका प्रगट होना सो भाषापर्याप्ति है। बहुरि मनोवर्गणारूप आए पुद्गलस्कंधनिमैं

अंगोपांगनामकर्मका उदयका बलकरिकै द्रव्यमनरूप परिणमन करावनेकूं द्रव्यमनका बलाधानकरि नोइंद्रियावरण वीर्यांतरायके क्षयोपशमविशेषकरि गुणदोषनका विचार तथा स्मरण चिंतवन है लक्षण जाका ऐसा भावमनरूप परिणमनकी शक्तिकी उत्पत्ति होना सो मनःपर्याप्ति है।

भावार्थ—जन्म पालेतै ही शरीर इंद्रियादिक तो प्रगट होय नहीं। परन्तु शरीरादिकनिकै योग्य पुद्गलवर्गणा ग्रहणकरि तिनमैं आहार शरीर इंद्रियादिक उपजनेकी शक्ति प्रगट होजाना सो पर्याप्ति है। शरीर इंद्रियादिक तो परिपूर्ण अवसरपाय होय हैं परन्तु पुद्गलनिमैं होनेकी शक्ति प्रगट होजाय है। जैसैं आम्र नामा वृक्षकी उत्पत्ति होतैं तो अंकुर प्रगट होय है परन्तु उस अंकुरमैं पान फूल फल डाहला इत्यादिक होनेकी शक्ति प्रगट होजाय हैं तैसैं अन्य देहयोग्य पुद्गल ग्रहण करतै ही अन्तर्मुहूर्त्तमैं शक्तिका प्रगट होना सो पर्याप्ति नाम है। इहां इतना जानना।

जो एकेंद्रिय च्यार पर्याप्तियोग्य द्रव्यग्रहण करै हैं सो एकसमयमैं ग्रहण करै हैं। विकलचतुष्क पांच पर्याप्तियोग्य अर संज्ञी पंचेन्द्रिय छहकै योग्य एक समयमैं ग्रहण करै हैं। अर पर्याप्ति एक अन्तर्मुहूर्त्तमैं पूर्ण करै हैं। इन छहू पर्याप्तिका काल एकएकका भी अंतर्मुहूर्त्त अर समस्तका मिलाइए तोहू अन्तर्मुहूर्त्ततैं अधिक नहीं होइ क्योंकि अन्तर्मुहूर्त्त भी जघन्य तो एक आवली एक समयका है। अर उत्कृष्ट दोयघडी एक समय घाटिका है। मध्यका असंख्यात भेद है। दोय घडी पूर्ण होय सो एक मुहूर्त्त है। इहां अन्य विशेष जानना।

जो पर्याप्तनाम कर्मके उदयतैं एकेन्द्रिय तो चारि पर्याप्ति पूर्ण करै हैं। विकलचतुष्क पांच पूर्ण करै हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय छह पूर्ण करै तदि पर्याप्त नाम कहिए वा पूर्ण कहिए। परन्तु जेतैं अन्तर्मुहूर्त पर्यंत शरीरपर्याप्ति पूर्ण न करै तेतैं निवृत्यपर्याप्त कहिए है। इसका अर्थ ऐसा—जो निवृत्ति कहिए शरीरपर्याप्तिकी उत्पत्ति तिस करि अपर्याप्त कहिए पूर्णता नहीं होइ तिनतैं निवृत्यपर्याप्त कहिए। अर शरीरपर्याप्ति अन्तर्मुहूर्तमैं पूर्ण होजाय तदि पर्याप्त कहिए है।

बहुरि जो अपर्याप्त नामकर्मका उदयतैं एकेन्द्रियादिक जीव अपने अपने चार पांच छह पर्याप्ति पूर्ण नहीं करैं। स्वासका अठारमा भाग ही मात्र अन्तर्मुहूर्तमैं ही मरण करै सो लब्ध्यपर्याप्त कहिए है।

भावार्थ—पर्याप्त अपर्याप्त दोय जीवके भेद हैं। तिनमैं जो अन्तर्मुहूर्त्तमैं पर्याप्ति पूर्ण करै सो पर्याप्त कहिए। अर अपर्याप्तके दोय भेद हैं-एक निवृत्यपर्याप्त, एक लब्ध्यपर्याप्त। जाकै पर्याप्तनाम कर्मके उदयतैं अन्तर्मुहूर्त्तमैं पर्याप्ति नियमतैं पूर्ण होयगी। जेतैं पूर्ण नहीं होइ तेतैं अन्तर्मुहूर्त्तप्रमाण निवृत्यपर्याप्ति कहावै हैं। अर जाके अपर्याप्तनाम कर्मके उदयतैं एकहू पर्याप्ति पूर्ण नहीं होय श्वांसका अठारवां भागमैं ही मरण करै सो लब्ध्यपर्याप्त कहावै है। सो लब्ध्यपर्याप्त सन्मूर्छन तिर्यंचनिमैं ही होय है। अर सन्मूर्छन मनुष्यनिमैंहू होय है। अर गर्भज तिर्यंच मनुष्य समस्त भोगभूमिके कुभोगभूमिके म्लेच्छ खण्डके अर समस्त देवनारकी इनमैं लब्ध्यपर्याप्तक जीव नहीं उपजै हैं। पर्याप्त अर निर्वृत्यपर्याप्त दोय प्रकार ही होय हैं। ऐसैं पर्याप्त नामा तीजी प्ररूपणा समाप्त करी ॥

अब प्राणप्ररूपणा संक्षेपकरि कहै हैं—स्पर्शनादिक पांच इन्द्रिय प्राण अर मनोबल, वचनबल, कायबल, श्वासोच्छ्वास अर आयु ए दशप्राण हैं सो पर्याप्तावस्थामैं संज्ञी पचेन्द्रियके दश प्राण हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रियकै मनविना नव प्राण हैं। अर चतुरिंद्रियकै मन अर कर्ण इंद्रियविना आठ प्राण हैं। अर त्रींद्रियकै नेत्रहू नहीं तातैं सात प्राण हैं। अर द्वींद्रियकै नासिकाहू नहीं तातैं छह प्राण हैं। एकेंद्रियके रसना इंद्रिय अर वचनबलहू नहीं तातैं च्यार प्राण ही हैं। अर पर्याप्त अवस्थामैं एकेंद्रियकै स्पर्शनेन्द्रिय अर कायबल अर आयु ऐसैं तीन प्राण ही हैं।

जातैं अपर्याप्त अवस्थामैं वचनबल अर श्वासोच्छ्वास अर मनोबल ए नहीं होइ हैं। द्वीन्द्रिय अपर्याप्तकै च्यार प्राण, त्रीन्द्रियकै पांच प्राण, चतुरिन्द्रियकै छह प्राण, असंज्ञीपंचेन्द्रियकै सप्त प्राण, अर संज्ञीपंचेन्द्रियकेहू सप्त प्राण हैं। मन वचनबल उच्छ्वास तीन प्राण अपर्याप्तके नहीं होय हैं। ऐसैं चौथी प्राणप्ररूपणा समाप्त करी ॥

अब संज्ञीप्ररूपणावर्णन करैं हैं। संज्ञा नाम इहां वांछाका है। सो संज्ञा च्यार प्रकार है—आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा। ए जे संज्ञा कहिए वांछा इनकरि पीडाकूं प्राप्त भए जीव इस भवविषै विषयनिकूं सेवनकरते तथा विषयनकी प्राप्ति होतै वा नहीं प्राप्ति होतै दोऊ लोकमैं महान् दुःखकूं प्राप्त होइ है। इहां ऐसा जानना।

जो सुन्दर च्यार प्रकारके आहारके देखनेतैं तथा आहारकूं यादि करनेतैं, आहारकी कथाके श्रवण करनेतैं, आहारमैं उपयोग लगावनेतैं तथा उदरकारितापणातैं अर असातावेदनीयकी उदीरणातैं तथा तीव्र उदयतैं आहार जो विशिष्ट अन्नादिकका भोजन करनेमैं वांछा सो आहारसंज्ञा है।

बहुरि भयसंज्ञाकी उत्पत्तिका कारणकूं कहै हैं। अतिभयंकर व्याघ्रादिक क्रूर मृग सर्पादिकका देखना तथा इनकी कथाका श्रवण करना, यादि करना तथा आपका शक्तिरहितपणा इत्यादि बाह्य कारणकरिकै अर भयनोकषायका तीव्र उदयरूप अन्तरंग कारणकरि भागनेकी वांछा तथा छिपजानेकी इच्छा सो भयसंज्ञा है। अब मैथुनसंज्ञाके कारणनिकूं कहै हैं। पुष्टरसका भोजन करना, कामकी कथाका श्रवण करना, पूर्वकालमैं सेवनकीया कामादिकका यादि करना, कुशील पुरुषनिकी सङ्गति करना तथा कामकी गोष्ठी शृँगारादिक कथा, स्त्रीनिका हावभाव रूपादिका देखना इत्यादिक बहिरङ्गकारण अर स्त्रीवेद पुरुषवेद नपुंसकवेद इनिमैं कोऊएक वेदनाम नोकषायकी उदीरणारूप अन्तरंगकारणकरि सुरतव्यापाररूप मैथुनमैं इच्छा सो मैथुनसंज्ञा है।

अब परिग्रहसंज्ञाकी उत्पत्तिके कारणनिकूं कहै हैं। बाह्यपरिग्रह धनधान्य आभरणवस्त्रादि अनेक उपकरणनिका देखना तथा परिग्रहकी कथाका श्रवण करना तथा धनका सम्बन्ध होना तथा नानाप्रकारके परिग्रहधारीनिकूं देखना इत्यादिक बहिरंगकारण अर लोभकषायकी उदीरणारूप अन्तरंगकारणनिकरि जो परिग्रहका संचयमैं परिग्रहका उपार्जनमैं वांछाका उपजना सो परिग्रहसंज्ञा है।

ऐसैं ए च्यार संज्ञा कही। तिनमैं आहारसंज्ञा तो छठा गुणस्थानपर्यंत ही है। जातैं अप्रमत्तादि

गुणस्थाननिमैं असातावेदनीयकी उदीरणा नहीं होय है। अर भयसंज्ञा मैथुनसंज्ञा यद्यपि नवमा गुणस्थान-तांई तथा परिग्रहसंज्ञा दशमातांई उपचारकरि कही क्योंकि इनका कारण कर्मका मन्दसद्भावतैं कहिए हैं। अर निश्चयतैं तो अप्रमत्तादिगुणस्थाननिमैं ध्यानमैं लीन रहै। परिणामनिकी विशुद्धताकूं शुक्लध्यानके प्रभावतैं समयसमय चढै हैं तिनकै भय मैथुन परिग्रहका लेशरूप भी परिणाम नहीं है परन्तु सत्तामैंतैं कर्मका नाश मूलतैं नहीं भया यातैं उपचारतैं करणानुयोगमैं संज्ञा कही है। भावनिमैं संज्ञा नहीं। ऐसैं संज्ञाप्ररूपणा पांचमी वर्णनकरी।

अब गतिमार्गणाका स्वरूप कहै हैं। गतिनाम कर्मका उदयतैं उत्पन्नहुवा जो जीवकै पर्याय सो गति है। एकभवकूं त्यागि अन्यभवकूं प्राप्त होय तहिं जो प्राप्तहोनेयोग्य होय सो गति है। सो गति–नारक[1], तिर्यक्[2], मनुष्य[3], देव[4]के भेदकरि च्यार प्रकार है। उक्तं च गाथासूत्रं—

ण रमंति जदो णिच्चं, दव्वे खित्ते य कालभावे य।
अण्णोण्णेहिं जह्मा ते णारया भणिया॥ १॥

अर्थ—जो जीव नरकगतिसम्बन्धी आहारादिकद्रव्यमैं तथा नरकका भूमिरूपक्षेत्रमैं तथा एकसमयकूं आदि लेय अपना आयुका अन्तपर्यंत कालमैं तथा चैतन्यकी पर्यायरूप भावमैं नहीं रमै हैं रह्यानहीं चाहै है अति बुरा लागै है। तथा भवांतरमैं उत्पन्नहुवा बैर, तातैं उपज्या परस्पर नारकीनिकै क्रोध, तिनकरिकैं पुरातन अर नवीन नारकी रत कहिए रागी नहीं होइ तातैं इनकूं नरक कहिए। अथवा नरक जे बिल इनिमैं उपजैं तातैं नारक कहिए। अथवा नर जे प्राणी तिनमैं कम्यति कहिए बाधा करैं दुष्ट करैं ते नारक हैं, नारकीनिकी गति सो नरकगति कहिए है॥ उक्तं च गाथा—

तिरयन्ति कुटिलभावं सुविउलसण्णा णिगिट्ठमण्णा।
अच्चंत पावबहुला तह्मा तिरीछिया भणिया॥ २॥

अर्थ—जा कारणतैं जे जीव सुविवृत संज्ञा कहिए आहारादिसंज्ञा जिनके गूढ नहीं आहार भय

मैथुन परिग्रहादिक जिनके प्रगट होइ। अर प्रभाव सुख द्युति लेश्याकी विशुद्धताकरि अत्यन्त घाटि होइ तातैं निकृष्ट हैं। बहुरि हेय उपादेयका ज्ञानादिककरि हीनपणातैं अज्ञानी हैं।

बहुरि नित्यनिगोदादिकी अपेक्षाकरि अत्यन्त पापकी बाहुल्यतासहित हैं। तिस कारणतैं तिरोभाव जो कुटिलपरिणाम मायाचारके परिणामनिकूं अंचंति कहिए प्राप्तहोय ते तिर्यंच कहिए हैं॥ उक्तं च गाथासूत्रं—

मण्णंति जदो णिच्चं, मणेण णिउणा मणुक्कडा जह्मा।
मणुब्भवा य सव्वे, तह्मा ते माणुसा भणिदा ॥ ३ ॥

अर्थ—जातैं जे जीव हेयोपादेय कहिए त्यागनेयोग्य ग्रहण करनेयोग्यकूं नित्य ही जाणै अर मनकरि निपुण कहिए अनेक शिल्पादिक तामैं प्रवीण होय वा मनसोत्कण्ठा कहिए ज्याका चितवनादिकमैं दृढ़ उपयोग होय अर मनु जे कुलकर तिनके सन्तान हैं तातैं मनुष्य कहिए हैं॥ उक्तं च गाथासूत्रं—

दिव्वंति जदो णिच्चं, गुणेहि अट्ठेहि दिव्वभावेहिं।
भासन्ते दिव्वकाया, तह्मा ते वण्णिया देवा ॥ ४ ॥

अर्थ—जातैं जे जीव मनुष्यनिके नहीं पाइए ऐसैं अणिमा महिमादिक अष्ट ऋद्धिके प्रभावकरि सासते मेरु कुलाचल द्वीप समुद्रनिविषैं "दीव्यंति" कहिए क्रीडा करैं तथा मोद द्युति स्तुति कांति विजिगीषा गमनादिकनै प्राप्त होय तथा गुणकरि प्रकाशमान होय तथा सप्तधातु मल वातपित्तादि दोषरहित प्रभासहित जिनका शरीर होय ते जीव परमागममैं देव कहे हैं। ऐसैं तो च्यार गतिका स्वरूप कह्या। अर जे जन्म मरण भय सम्भोग वियोग दुःख रोग क्षुधादि अनेक वेदना रहित भए समस्तकर्मबन्धतैं छूटिगए सिद्धत्वपर्यायलक्षण सिद्ध भए तिनके चतुर्गति नहीं है। संसारीनिकी अपेक्षा च्यारि गति हैं ऐसैं छठी गतिप्ररूपणा समाप्त करी॥

अथ इंद्रियप्ररूपणा सप्तमी कहै हैं। जैसैं अहमिन्द्रदेव हैं ते स्वामी सेवकादिरहित स्वयं स्वाधीन हैं।

तेसैं स्पर्शनादि इन्द्रिय हैं तेहू अपनेअपने स्पर्शनादि विषयनिके जाननेविषैं परकी अपेक्षा नहीं चाहै हैं तातैं इनिकूं इन्द्रिय कहिये हैं। ते इन्द्रिय द्रव्येन्द्रिय अर भावेन्द्रियकरि दोय प्रकार हैं। तिनमैं लब्धि अर उपयोगरूप भावेन्द्रिय हैं। मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमतैं उपजी जो जीवके अपने विषयके जाननेकी शक्तिरूप विशुद्धिता सो लब्धि है। अर मतिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमतैं ही अर्थ जो अपना विषय ग्रहण करनेके व्यापारमैं प्रवृत्ति सो उपयोग है। ऐसैं लब्धि अर उपयोगरूप तो भावेन्द्रिय है। भाव नाम चैतन्यका परणति जाननेरूप भई ताका है।

भावार्थ—पदार्थके ग्रहणकरनेकी शक्ति सो लब्धि है। अर पदार्थके ग्रहणकरनेमैं व्यापार सो उपभोग है। बहुरि जातिनाम कर्मका उदय है सहकारी जाकै ऐसा देहनाम कर्मका उदयतैं उपज्या निर्वृत्ति अर उपकरण दोयप्रकार द्रव्येंद्रिय है। इन इंद्रियनिमैं अपनेअपने आवरणके क्षयोपशमसहित आत्माके प्रदेश इन्द्रियनिकै आकार होय तिष्ठै हैं सो तो अभ्यंतरनिर्वृत्ति है। अर आत्मप्रदेशनिकरि सहित शरीरके प्रदेशनिका संस्थान सो बाह्यानिर्वृत्ति है। अर इन्द्रियपर्याप्तकरि आये नोकर्मवर्गणाका स्कंधरूप जे स्पर्शादिक अर्थके ज्ञानके सहकारी सो अभ्यंतर उपकरण हैं। अर ताकै आश्रय त्वचादिक ते बाह्य उपकरण हैं। ऐसैं द्रव्येंन्द्रियभावेंन्द्रियका स्वरूप कह्या।

जिनकै स्पर्शविषैं ज्ञान सोही चिह्न सो ऐकेंन्द्रियजीव हैं। जिनके स्पर्श अर रस दोयविषैं ज्ञान जो चिह्न ते द्वींद्रियजीव हैं। जिनके स्पर्श रस गन्धविषैं ज्ञान जो चिह्न ते त्रींद्रियजीव हैं। जिनकै स्पर्श रस गन्ध रूपविषैं ज्ञानचिह्न होइ ते चतुरिंद्रीयजीव हैं। जिनकै स्पर्श रस गन्ध रूप शब्दविषैं ज्ञानचिह्न ते पंचेन्द्रिय जीव हैं। ते सर्व जीव अपने अपने भेदकरि भिन्न भिन्न हैं। येकेंद्रिय जीवकै येक स्पर्शही इंद्रिय है। द्वींद्रियादिक जीवनिकै जिह्वा घ्राण नेत्र कर्ण इंद्रिय क्रमत बधती बधती होय हैं। पृथ्वी अप् तेज वायु वनस्पतीनिकै येक ही इंद्रिय है। शंखादिक द्वींद्रिय है। पिपीलिकादि त्रींद्रिय हैं। भ्रमरादि चतुरिंद्रिय हैं। मनुष्यादि पंचेन्द्रिय हैं। स्पर्शनेंद्रियका अनेक प्रकार संस्थान है। रसनेंद्रियका खुरपाके आकार है।

घ्राणेंद्रिय तिलका पुष्पकै आकार है। नेत्रेंद्रिय मसूरकै आकार है। कर्णेन्द्रिय यवकी नालीके आकार है। ऐसैं इंद्रियप्ररूपणा सप्तमी कही ॥

अब कायप्ररूपणा अष्टमी कहैं हैं। जे पुद्गलस्कंधनिकरि संचयरूप होय ते काय हैं। औदारिकादि शरीरमैं तिष्ठता आत्माका पर्यायहूकूं उपचारकरि काय कहिये हैं। पुद्गलविपाकी शरीरनाम कर्मके उदयकरि शरीरकूं भी काय कहिये हैं। जातैं जातिनाम कर्मका उदयतैं अविनाभावी जो त्रस स्थावरनाम कर्मका उदयतैं उपज्या आत्माकै त्रस तथा स्थावरत्व पर्याय सो काय कहिये हैं। सो पृथ्वी अप् तेज वायु वनस्पति त्रसकायके भेदतैं छह प्रकार भगवान् कह्या है। पृथिवी अप् तेज वायु नामकर्मका उत्तरोत्तर प्रकृतिका उदयकरिकै पृथ्वी अप् तेज वायुरूप जे पुद्गलस्कंध तिनमैंतैं सो ही वर्ण गन्ध रस स्पर्शयुक्त जीवनिकै देह नियमकरिकै होय है तातैं पृथ्वी ही है। काय कहिये शरीर जिनकै ते जीव पृथ्वीकाय कहिए। जलरूप ही है काय जिनकै ते अप्कायिक हैं। अग्नि ही है काय जिनकै ते जीव अग्निकायिक है। पवन ही है काय जिनकै ते जीव पवनकायिक है। कोऊ जीव पूर्वदेहकूं छांडि पृथ्वीकायपणाकी पर्यायकै सन्मुख हुवा विग्रहगतिविषैं वर्तै है सो पृथ्वीजीव कहिए।

अर जो पृथ्वीरूप शरीरकूं ग्रहणकर रख्या है सो पृथ्वीकायिक कहिए। अर पृथ्वीका शरीरकूं छांडि गया अर पृथ्वीमय देह रह्या तिस देहकूं पृथ्वीकाय कहिये। ऐसैं ही अप्जीव अप्कायिक अप्काय, तेजोजीव तेजकायिक तेजस्काय, वायुजीव वायुकायिक वायुकाय। ऐसैं इन च्यारनिका तीनतीन प्रकार जानना। इन च्यार प्रकारके स्थावरनिकै जीवविपाकी बादरनाम कर्मके उदयतैं बादर कहिए स्थूलशरीर होय है। अर जीवविपाकी सूक्ष्मनाम कर्मके उदयतैं सूक्ष्मशरीर होय है। इहां बादरसूक्ष्मका ऐसा लक्षण जानना—अपना शरीरकरि परका घात होय परकरि अपना घात होय सो बादरशरीर है। अर बादरजीव आधारतैं तिष्ठै हैं। कोऊ पृथ्वी, पर्वत, जल, स्थलादिककै आधार होय है।

अर सूक्ष्मशरीरकरि परका घात नहीं होइ। जलमैं स्थलमैं पृथ्वीमैं वज्रमैं कहांहू रुकै नहीं, निकलि-

करि चलेजाय हैं, मास्या मरै नहीं, छेद्या छिदै नहीं, अग्निमैं बलै नहीं, पवनकरि रुकै नहीं, उडै नहीं, ऐसा सूक्ष्मदेहधारी सर्वत्र त्रैलोक्यमैं जलमैं स्थलमैं आकाशमैं निरन्तर अन्तररहित भरे हैं। आधारकी अपेक्षा नहीं करै हैं। समस्त पर्वत भींत वज्रादिक शरीरादिकमैं गमनागमन करै हैं।

इन च्यार प्रकारके बादरसूक्ष्म जीवनिके शरीरका प्रमाण घनांगुलकै असंख्यातवैं भाग है। यद्यपि चोसठि भेद अवगाहनाके कीए तिनमैं केतेक बादरशरीरतैं केतेक सूक्ष्मशरीरकी अवगाहना बड़ी है तोहू जिनकै बादरपणाका स्वभाव है ते परकरि रुकै हैं। अर जिनशरीरनिका सूक्ष्म परिणमन है ते बादरदेहतैं अवगाहनकरि अधिक हैं तोहू त्रैलोक्यमैं कहांहू नहीं रुकै हैं। अर बादरजीव अल्प शरीर होतैहू बादर-नाम कर्मके उदयतैं परकरि रुकै हैं। जैसैं महीन वस्त्रमैं जल नहीं रुकै अर सरस्यूं रुकै हैं। यद्यपि ऋद्धि-धारिनिका स्थूलशरीरहू वज्रमय शिला पर्वत जल पृथ्वीमैं नहीं रुकै है। सो तपका अतिशयका महात्म्य है। जातैं तप विद्या मणि मंत्र औषधिनिकी बड़ी अचित्य शक्ति है, अतिशयरूप माहात्म्य है। स्वभाव देखनेमैं आवै है, स्वभावमैं तर्क नहीं है ॥

अब वनस्पतिकाय जीवनिका ऐसा स्वरूप जानना—वनस्पति या नामक स्थावर नामकर्मके उदयतैं वनस्पतिकायिक जीव होय हैं। ते दोय प्रकार हैं—एक प्रत्येकशरीर, एक साधारणशरीर। एक जीवका एक शरीर होय सो प्रत्येक वनस्पति है। अर एक शरीरकूं अनन्तजीव धारण करैं, देह एक अर जीव अनन्त ते साधारणशरीर ताकूं साधारणवनस्पति कहिए हैं। तिनमैं प्रत्येक शरीरहू दोय प्रकार है। जिनकै आधार बादरनिगोदशरीर तिष्ठै ते प्रतिष्ठिनप्रत्येक कहिए। अर जिनकै आधार बादरनिगोद नहीं सो अप्रतिष्ठितप्रत्येक हैं।

अब प्रतिष्ठिन प्रत्येक वनस्पतिकी पहिचानि कहै हैं। जिस वनस्पतिमैं तांतू प्रगट नहीं भए होय अर लीकधारवा प्रगट नहीं भया तथा सन्धी प्रगट नहीं भई होय अर तोडितै समभंग होजाय तथा तांतू लग्या नहीं रहै वा बांकी टेडी नहीं टूटै तदि छेद्याहूवा फिर ऊगी आवै सो वनस्पति साधारणशरीरसहित

है तातैं प्रतिष्ठित प्रत्येक कहिए। सोहू साधारणकै आश्रयतैं उपचारतैं साधारण कहिए हैं।

अर जिस वनस्पतिमैं नसां कली धारवा तथा पेली तांतू प्रगट होजाय वा समभंग नहीं होय सो अप्रतिष्ठित प्रत्येक है, साधारणशरीररहित है। मूल कन्द छालि वक्कल कूंपल पत्र छोटी डाहाली वा डाहला पेड फूल फल जिनका बरोबरी समभंग होजाय सो ही निगोदशरीरसहित प्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पति हैं। अर वाही वनस्पति केते काल गए पाछै समभङ्ग नहीं होइ तांतू प्रगट होजाय तथा पेली संधी प्रगट हो जाय सो निगोदरहित अप्रतिष्ठित प्रत्येक होय है। बहुरि जिनकै कन्दकै वा मूलकै डाहलाकै डांहलीकै वक्कल अतिस्थूल होय सोहू निगोदसहित प्रतिष्ठित प्रत्येक होय है। अर जिनकै कन्दादिकमैं छाली पतली होय ते अप्रतिष्ठित प्रत्येक हैं, निगोदरहित हैं।

अब साधारण वनस्पतिका स्वरूप कहै हैं। साधारण नामकर्मका उदयतैं निगोदशरीर होय है। इनकूं साधारणशरीर कहिए हैं। सो ए साधारणवनस्पतिशरीर पूर्वै कह्या लक्षणसहित बादर सूक्ष्म दोय प्रकार हैं। जिनकै आहार श्वासोच्छ्वास जन्म मरण समानकालमैं होय ते साधारणजीव हैं। इहां ऐसा जानना। जो साधारण नाम कर्मका उदयकै वशवर्ती अनन्तजीवनिकै उत्पन्न होनेके प्रथमसमयमैं आहार-वर्गणारूप आए पुद्गलस्कंधनिकूं खलरसभाग परिणमावनेकी शक्ति समस्त अनन्तजीवकै सदृश समानकालमैं प्रगट होय सोही आहारकी पूर्णता है। और कवलाहार ग्रास लेना सो नहीं जानना। आहारपर्याप्ति अन्तर्मुहूर्तमैं पूर्ण भए पाछैं बहुरि आहारवर्गणारूप आए पुद्गलस्कंधनिकूं शरीराकार परिणमनका शक्ति समस्त अनन्तजीवनिकै समानकालमैं होय है।

बहुरि स्पर्शनेंद्रियकै आहार परिणमनशक्ति तथा श्वासोच्छ्वास होनेकी शक्ति अनन्तजीवनिकै समानकालमैं होय है। तातैं साधारण कहिए हैं।

बहुरि प्रथमसमयमैं उत्पन्न भए जीवनिकीज्यों तिस ही शरीरमैं द्वितीयादि समयमैं उत्पन्न भए अनन्तानन्त जीवनिकै पूर्वसमयमैं उपजे अनन्तानन्त जीवनिकरि सहित आहारपर्याप्ति सदृशकालमैं पूर्ण

करैं तातैंहू साधारण कहिए हैं। जिस निगोदशरीरमैं जिस कालमैं अपनी स्थितिके क्षयके वशातैं एकजीव मरण करै है तिस कालमैं तिस ही निगोदशरीरमैं समानस्थितिवाले अनन्तानन्त जीव साथी ही मरण करै हैं। अर जिस निगोदशरीरमैं जिसकालमैं एकजीव उत्पन्न होय तिस निगोदशरीरमैं सामान्यस्थितिवाले अनन्तानन्त जीव साथिही उत्पन्न होय हैं ऐसैंहू साधारणपणा जानना। अर द्वितीयादिसमयमैं उपजे अनन्तानन्त जीवनिको अपनी स्थितिका क्षय होतै साथिही मरण जानना। एक निगोदशरीरमैं अनन्तानन्त जीव समयसमय प्रति साथिही मरैहैं, साथिही उपजैहैं। जितने असंख्यात कोटीकोटिसागर प्रमाण निगोदशरीरकी उत्कृष्टस्थिति पूर्ण होय।

भावार्थ—निगोदजीवनिकी आयु तो अन्तर्मुहूर्त्तकी है। अर निगोदशरीरकी स्थिति असंख्यातवर्षनिकी, यातैं शरीर तो वण्यारहै अर समयसमय अनन्तजीव उपजा करैं, अर समानस्थितिवाले अनन्त मरण किया करैं ऐसा जानना॥ बहुरि एक इहां विशेष जानना। एक बादरनिगोदशरीरमैं वा सूक्ष्मनिगोदशरीरमैं अनन्तानन्त साधारणजीव केवल पर्याप्त ही उपजैं तथा एकशरीरमैं केवल अपर्याप्त उपजैं। एकशरीरमैं पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ नहीं उपजैं क्योंकि तिनकै समान कर्मका उदय है यातैं। अब बादरनिगोदजीवनिके शरीरनिकी संख्या कहै हैं।

इस लोकमैं असंख्यात लोकप्रमाण प्रतिष्ठितप्रत्येक जीवनिके शरीरनिके स्कंध हैं। अर एक एक स्कंधविषैं असंख्यात लोकप्रमाण अंडर हैं। अर एकएक अंडरविषैं असंख्यातलोकप्रमाण आवास हैं। एकएक आवासमैं असंख्यात लोकप्रमाण पुलवी हैं। एकएक पुलवीविषै असंख्यात लोकप्रमाण बादरनिगोद जीवनिका शरीर है। एकएक शरीरविषै अतीत कालके सिद्धनितैं अनन्तगुणा जीव हैं।

बहुरि साधारणके दोय भेद हैं—एक नित्यनिगोद, एक चतुर्गतिनिगोद। तहां जे अनन्तानन्तजीव अनादिकालतैं त्रसनिकी पर्याय नहीं पाई निगोदका भवकूं ही अनुभवै हैं ते नित्यनिगोद हैं। बहुरि च्यार गतिमैं परिभ्रमणकरि फेरि निगोदकूं ही प्राप्त होय ते अनित्यनिगोद हैं।

अब त्रसजीवनिकूं कहै हैं। जे द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय जीवनिकै त्रसकाय हैं ते त्रसजीव त्रसनालीमांहि ही हैं। उपपादसमुद्घात अर मारणांतिकसमुद्घात अर केवलसमुद्घातविना अन्य त्रसनालीबाह्य नहीं है ॥

बहुरि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुकायिक च्यार प्रकारके शरीर अर केवलीका शरीर अर आहारक शरीर अर देव नारकीनिके शरीर इन आठ शरीरनिकै आश्रय बादरनिगोद नहीं हैं। अन्य जे अप्रतिष्ठित वनस्पतिकायके शरीर अर द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय तिर्यंचनिके शरीर अर समस्त मनुष्यनिके शरीर ए समस्त ही बादरनिगोदके शरीरनिकरि आश्रित हैं, सहित हैं। अर सूक्ष्मनिगोद समस्त त्रैलोक्यमैं हैं, आधारकी अपेक्षा नहीं है।

बहुरि पृथ्वीकाय जलकाय अग्निकाय पवनकाय इनि च्यारनिका शरीर जघन्य उत्कृष्ट अवगाहना घनांगुलकै असंख्यातवै भाग है। बहुरि पृथ्वीकायिकनिका शरीर मसूरकै आकार है गोल है, अप्कायिकनिका जलकी बूंदके आकार है। अग्निकायिक जीवनिका शरीर सूईनिका समूहसमान है तैसा ऊँचा बहुमुख है। वातकायिकनिका शरीर ध्वजासमान आयत चतुरस्र है, लम्ब चौकोर है। इनका शरीरका आकार कह्या परन्तु अंगुलकै असंख्यातवैं भाग है, तातैं नेत्रनिकै गोचर नहीं। अर जो ए दीखै हैं ते असंख्यातशरीरनिका समूह है।

बहुरि वृक्षादिवनस्पतिनिका शरीर अर द्वींद्रियादिक त्रसनिके शरीरनिका आकार अनेकप्रकार है। अर अवगाहनाका प्रमाण घनांगुलकै असंख्यातवै भाग तो जघन्य है। अर उत्कृष्ट वृक्षनिमैं तो कमल हजार योजनतैं अधिक ऊँचा है। बेंद्रियमैं शंख द्वादश योजन है। त्रींद्रियनिमैं कानखिजूराका तीन कोशका शरीर है। चोइंद्रिनिमैं भ्रमरका देह एक योजनप्रमाण है। पंचेंद्रियनिमैं मत्स्यका शरीर हजार योजनका है। अर मध्य अवगाहनाकै अनेक भेद हैं। ए उत्कृष्ट अवगाहनाके धारक एकेंद्रियादिक जीव स्वयंभूरमणद्वीप समुद्रमैं हैं ऐसैं कायप्ररूपणा अष्टमी संक्षेपकरि वर्णन करी।

अब नवमी योगप्ररूपणा कहै हैं। अंगोपांग नाम कर्म अर शरीर नाम कर्मका उदयकरिकै मन वचनकाय पर्याप्तिरूप परिणमनमैं प्राप्तभया जो संसारी जीव ताकै लोकमात्र जो अपने समस्त प्रदेशनिमैं प्राप्त जो पुद्गलस्कंधनिके कर्म नोकर्मरूप परिणमनको कारणरूप जो शक्ति सो भावयोग है।

बहुरि भावयोगसहित आत्मप्रदेशनिमैं किंचित् चलनरूप सकंप होना सो द्रव्ययोग है। जैसैं अग्निके संयोगकरि लोहाकै जलावनेकी दग्ध करनेकी शक्ति होय है। तैसैं अंगोपांग नाम अर शरीर नामकर्मका उदयकरि मनोवर्गणा वा भाषावर्गणारूप आए पुद्गलस्कंधनिका तथा आहारवर्गणारूप आए नोकर्मपुद्गलस्कंधनिका सम्बन्धकरि जीवकै प्रदेशनिकै कर्म नोकर्म ग्रहण करनेका सामर्थ्य उपजै सो योग है।

अब योगका विशेष कहै हैं। सत्य असत्य उभय अनुभयरूप वस्तुविषैं जाननेको वा कहनेको मन वचनकी प्रवृत्ति होय सो सत्यादिक पदार्थका संबंधतैं सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग, अनुभयमनोयोग, सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग, उभयवचनयोग, अनुभयवचनयोग होय है। सम्यग्ज्ञानका विषय जो पदार्थ सो सत्य है। जैसैं जलके ज्ञानका विषय जल है जातैं स्नानपानरूप जलकी अर्थक्रिया ताका सद्भाव है। बहुरि मिथ्याज्ञानका विषय अर्थ सो असत्य है। जैसैं जलज्ञानका विषय मरीचिका समूहमैं जलका जानना। जिसमैं स्नानपानादिरूप जलकी अर्थक्रियाका अभाव है।

बहुरि सत्य अर असत्य दोय प्रकारका ज्ञानका विषय जो अर्थ सो उभय है। इहां उभयनाम सत्य असत्य दोऊनिका है। जैसैं कमण्डलुमैं जलका घटका ज्ञान होना। इहां कमण्डलुमैं जलका धारणरूप अर्थक्रियाका सद्भाव है यातैं सत्यताकी प्रतीति है। अर घटका आकार नामादिककी प्रतीतिका अभाव है तातैं कमंडलुमैं घटका जानना सो उभय है।

बहुरि सत्य असत्य दोऊ अर्थ जाका विषय नहीं सो अनुभय है। जाकूं सत्यहू नहीं कह्या जाय अर असत्यहू नहीं कह्या जाय सो अनुभय है। जैसैं यह क्यों प्रतिभासै जाननेमैं आवै है। इहां ऐसैं सामान्यकरिकैं प्रतिभासमैं आया अर्थ सो अर्थक्रियाकरि विशेषनिर्णयका अभावतैं सत्य ऐसैं कह्या नहीं

जाय अर सामान्यग्रहणमैं आया तातैं असत्यहू कह्या नहीं जाय, यातैं सत्य असत्य दोऊरूपके अभावतैं अन्यजातिका अनुभयका अर्थ जानना। सत्यपदार्थका संकल्प सो सत्यमनोयोग है। असत्यपदार्थका संकल्प सो असत्यमनोयोग है। सत्य असत्य दोऊरूप अर्थका संकल्प सो उभयमनोयोग है। अनुभयरूप मनका संकल्प जामैं सत्य असत्य दोऊ नहीं सो अनुभयमनोयोग है।

ऐसैं ही वचनयोगहू च्यार प्रकार है। सत्यमनोयोगका अर सत्यवचनयोगका अर अनुभयमनोयोगका अर अनुभयवचनयोगका इनि च्यार योगनिका मूलकारण पर्याप्तनाम कर्मका उदय अर शरीर नामकर्मका उदय है। अर असत्य मन वचनके योगनिका अर उभयमनवचनके योगनिका मूलकारण आवरणका तीव्र अनुभागका उदय है। कोऊ कहै जो दर्शनचारित्रमोह कर्मका उदयकारण कैसैं नहीं कह्या सो मोहकर्म कारण नहीं है। जातैं असत्य उभयमनवचनयोग तो मिथ्यादृष्टिकीज्यौं असंयतसम्यग्दृष्टिकै तथा देशसंयमीकैहू होय है तातैं असत्य अर उभयमनवचनयोगका कारण आवरणका तीव्र उदय ही है।

अब सत्यवचनका भेद कहै हैं—जनपदसत्य, संमतसत्य,[२] स्थापनासत्य, नामसत्य, रूपसत्य, प्रतीतिसत्य, व्यवहारसत्य, संभावनासत्य, भावसत्य, उपमासत्य, ऐसैं दशप्रकार सत्यका उदाहरण कहै हैं। जनपद नाम देशका है। जिसजिस देशमैं उपजे जे व्यवहारी जन तिनकै प्रसिद्ध जो वचन सो जनपदसत्य है। जैसैं रांध्याहुवा चावलनिकूं महाराष्ट्रदेशविषैं भातु कहै हैं भेदु कहै हैं। आंध्रदेशमैं घट कमु तथा कुड कहिए हैं। कनार्टकदेशमैं कुलु कहिए, द्राविडदेशमैं चोरु, मालवदेशमैं चोखा कहै हैं। इत्यादिक देशसत्य कहिए हैं। बहुरि सम्मति जो कल्पनाकरिकै बहुतलोकनिमैं मान्य होय सो संमतसत्य है जैसें—राजाकी पट्टराणीकूं देवी कहिए तथा पट्टराणीविनाहू कोऊकूं देवी कहैं। बहुरि अन्यका अन्यमैं स्थापन करना सो स्थापनासत्य है। जैसैं काष्ठपाषाणादिककी मूर्तिकूं जिनेन्द्र तथा इन्द्र ऐसा स्थापनकरना जो यह जिनेन्द्र है तथा इन्द्र है। बहुरि गुणजात्यादि अपेक्षाविना व्यवहारका प्रवर्त्तनकै अर्थि कोऊ मनुष्यका जिनदत्त देवदत्त इन्द्रराज ऐसा नाम कहना सो नामसत्य है।

बहुरि जैसैं कोऊ पुरुषकूं स्वेत कहना जो केशादिक श्याम है। ओष्ठ नखादिक रक्त होतेकूं प्रधानगुणकरि कहना सो रूपसत्य है। बहुरि दीर्घकी अपेक्षा ह्रस्व कहना, ह्रस्वकी अपेक्षा दीर्घ कहना सो प्रतीतिसत्य है। बहुरि नैगमनयकूं प्रधानकरि जो वचन प्रवर्त्तै सो व्यवहारसत्य है। जैसैं कोऊ जल भरै था ईंधन ल्यावैथा ताकू कोऊ पूछा, काहा करो हो तदि कहै भात रांधूंहूं, इहां भात तो पक्या तयार होयगा परन्तु प्रारंभके संकल्पकूं ही भात कहना सो सब व्यवहारसत्य है।

बहुरि असम्भवका परिहारपूर्वक प्रवृत्या वचन सो संभावनासत्य है। जैसैं इंद्र है सो जंबूद्वीपकूं पलट देनेकूं समर्थ है। यद्यपि कोऊ जंबूद्वीपकूं पलटानहीं अर पलटैगा नहीं तोहू इंद्रमैं जंबूद्वीप पलटनेका सामर्थ्यका असंभव नहीं है। यातैं संभावना सत्य है।

बहुरि अतींद्रिय अर्थविषै शास्त्रोक्तविधिनिषेधका संकल्परूप परिणाम सो भावसत्य है जैसैं सूकगया तथा अग्निकरि पकाया तथा चाकीमैं सिला वटी लोडोतैं पीस्या तथा जंत्रमैं पील्या तथा आमली लवणकरि मिल्या द्रव्य प्रासुक है। प्रासुक सेवनेमैं पापबंध नहीं है। ऐसैं प्रासुकमैं दृष्टिकै अगोचर सूक्ष्मप्राणका पतन होजाय तो कौन जाने परंतु भावमैं प्रासुक होगया सो याकूं प्रासुक कहना सो भावसत्य है। बहुरि प्रसिद्ध अर्थकै सदृश होना सो उपमासत्य है। जैसैं चंद्रमुखी कन्या इत्यादिक जानना ऐसैं सत्यके दश भेद कहे। बहुरि अनुभयवचनके नव भेद कहै हैं। आमंत्रणी, आज्ञापिनी,[२] याचिनी, आपृच्छिनी, प्रज्ञापनी,प्रत्याख्यानी, संशयवचन, इच्छानुलोमवचनी, अनक्षरी, ऐसैं नव प्रकार अनुभय वचन है। भो देवदत्त इत्यादि आमन्त्रणी अनुभयभाषा है। इसमैं सत्यहू नहीं असत्यहू नहीं।

बहुरि एक आज्ञा करूंहूं ऐसी आज्ञापिनी भाषा है। एक याचना करूंहूं ऐसी याचिनी भाषा है। एक मैं प्रश्न करूंहूं सो आपृच्छिनी भाषा है। एक मैं जणाऊंहूं सो प्रज्ञापनी भाषा है। एक त्याग करूंहूं सो प्रत्याख्यानी भाषा है। संशयरूप कहना संशयवचनी भाषा है। आपकी इच्छाकै अनुकूल करूंहूं सो इच्छानुलोम भाषा है। द्वींद्रियादिक जीवनीकी अनक्षरात्मक भाषा है। सो अनक्षरी है। ए नवप्रकार

अनुभय भाषा हैं। जातैं इनमैं श्रवणकरनेवालेनिकै सामान्य अर्थ तो प्रगट हुवा तातैं असत्य नहीं। अर विशेष अर्थ प्रगट नहीं भया जो कहा कहै हैं, कहा आज्ञा करैगा, कहा याचना करैगा, कहा पृच्छा करैगा, कहा जणावैगा, कौन वस्तु हैं, कहा इच्छा है, अब कहा कहै है, तातैं सत्यहू नहीं क्योंकि विशेष अर्थ प्रगट हुवा विना सत्यहू कह्या जाय नहीं, अर सामान्य अर्थ प्रगट भयाही यातैं असत्यहू नहीं कह्या जाय तातैं अनुभय जानना। औरहू अनुभयभाषा इसहीमैं गर्भित जाननी।

अब सप्तप्रकार काययोगकूं कहै हैं—औदारिक, औदारिकमिश्र[2], वैक्रियिक[3], वैक्रियिकमिश्र[4], आहारक[5], आहारकमिश्र[6], कार्मण[7] ॥ उदार नाम स्थूलका है। यह शरीर वैक्रियकादिककी अपेक्षा स्थूल है यातैं औदारिककाय कहिए हैं। औदारिककायके अर्थि जो आत्माके प्रदेशनिकै कर्म नोकर्मरूप पुद्गलनिके खेंचनेकी ग्रहण करनेकी शक्ति सो औदारिककाययोग है। अथवा औदारिकवर्गणारूप पुद्गलस्कंधनिकूं औदारिककायरूप परिणमनका कारण जो आत्मप्रदेशनिके सकंपपना सो औदारिककाययोग है।

सो यो औदारिकशरीर एकेंद्रियादिक समस्त तिर्यंचनिकै अर समस्त मनुष्यनिकै होय है। यद्यपि केतेक एकेंद्रियनिकै सूक्ष्मशरीरहू होय है तथापि वैक्रियिक आहारादिकनिकी अपेक्षा स्थूल ही है। तातैं उदारपुद्गलनितैं उपजा सो औदारिकशरीर है।

अब औदारिकमिश्रकाययोगकूं कहैहैं। पूर्वै कह्या है लक्षण जाका ऐसा औदारिक शरीर जितनै अन्तर्मुहूर्त्तपर्यंत पूर्ण नहीं होइ अपर्याप्त अवस्थामैं रहै तितनै काल औदारिकमिश्रशरीर कहिए है। यो आत्मा पूर्वपर्याय छांडि अन्यपर्यायकू जाय है, तदि मार्गमैं एक समय तथा दोय समय तथा तीन समय लगे, तहां मार्गमैं याके अष्टकर्ममय कार्मणशरीर है। फिर अन्यपर्यायमैं गया तहां औदारिकादिशरीरकै योग्य जे पुद्गलस्कंधनिकूं ग्रहण करना सो आहार है। तहां अन्तर्मुहूर्त्तपर्यंत पर्याप्ति पूर्ण नहीं करै तितनै काल औदारिकमिश्रशरीर कहिए है। पर्याप्ति पूर्ण होजाय तदि औदारिकशरीर कहिए है। याकूं मिश्रसंज्ञा ऐसैं जाननी—

जो विग्रहगतिकै तीन समयमैं कार्मणकाययोगकरि खैंच्या कार्मणवर्गणा ताका संयोगकरि औदारिकमिश्र कहा है। अथवा पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ अवस्था मिलनेतैं अथवा परमागममैं ऐसो रूढि है तातैं मिश्र कहिए हैं। औदारिकमिश्रकायकरिकै आत्माकै कर्मनोकर्मके ग्रहणकरनेकी शक्तिरूप प्रदेशनिका सकंपपना सो औदारिकमिश्रकाय योग है, सो अपर्याप्त अवस्थाहीमैं होय है।

अब वैक्रियिककाययोगकूं कहै हैं। जे पुद्गलस्कंध नानाप्रकार शुभअशुभ क्रिया करनेकूं अणिमा महिमादिक शक्तिकूं प्राप्त होने योग्य होय सो वैक्रियिकशरीर है। जो विक्रियाकै अर्थि तिस रूप परिणमनयोग्य शरीरवर्गणाके स्कंधनिके खैंचनेकी शक्तिसहित आत्माका प्रदेशनिका कंपायमान होना चलना सो वैक्रियक काययोग है। सो वैक्रियक काययोग देवनिकै अर नारकीनिकै होय है।

बहुरि इतना विशेष जानना—जो बादरतेजस्कायिक बादरवायुकायिक तथा पंचेंद्रिय पर्याप्त तिर्यंच मनुष्यनिकै अपने अपने औदारिकशरीरही विक्रियाकूं प्राप्त होय हैं। ते जीव अपृथग्विक्रिया करै हैं। अपना एकशरीर ही विकाररूप छोटा बड़ा इत्यादिक होय है। भिन्न देह नहीं करिसकै हैं। अर देव तथा भोगभूमिमैं उपजे तिनकै तथा चक्रवर्तीकै पृथग्विक्रियाहू होय है, अपना एकशरीरका अनेकरूपहू करैहैं। तिन बादर तेजस्कायिक अर वातकायिक समस्तजीवनिकै विक्रिया नहीं है। अपनी संख्याकै असंख्यातवै भाग जीवनिकैही विक्रिया है।

अब वैक्रियिकमिश्रकाययोग ऐसा जानना—जो वैक्रियिकशरीर अन्तर्मुहूर्त्तमैं जेतै पूर्ण नहीं होय तितनै अपर्याप्त अवस्थामैं वैक्रियिकमिश्रकाययोग है। औदारिकमिश्र जो अपर्याप्तकालमैं आत्मप्रदेशनिका सकंप होना सो वैक्रियिकमिश्रकाययोग है। प्रमत्तसंयतगुणस्थानधारीकै आहारकशरीर नाम कर्मका उदयकरि आहारवर्गणारूप आए पुद्गलस्कंधनिका आहारशरीररूप परिणमनकरि आहारकशरीर होय है।

सो याकै होनेका प्रयोजन ऐसा—जो ढाईद्वीपमैं वर्तते तीर्थयात्रादिककै अर्थि विहारमैं असंयमके दूरि करनेकै अर्थि ऋद्धिसहितहू प्रमत्तसंयमी मुनीकै श्रुतज्ञानावरण वीर्यांतरायका क्षयोपशमको मन्दता

होतै जो धर्मध्यानका निरोध करनेवाला एसा श्रुतका अर्थमैं सन्देह उपजावै तो तिस सन्देहका नाशकै अर्थि आहारकशरीर प्रगट होय है सो शरीर रसादि सप्तधातु रहित है, अर प्रशस्त है। अर संहनन जो हाडनका बन्धन ताकरि रहित है। शुभ समचतुरस्रसंस्थान शुभ अंगोपांगसहित है धवल वर्ण ऐसा मानूं च द्रकांतिकरि रच्या है। एक हस्तप्रमाण है। प्रशस्त आहारकशरीर आहार बन्धन संघात अंगोपांगसहित है। अपना शरीरकरि परका घात नहीं, परकरि आपका घातरहित वज्रशिलादिकका भेदवामैं समर्थ वज्रादिकमैं प्रवेशकरनेकूं समर्थ है। जघन्य उत्कृष्ट अंतमुहूर्त्तकालकी स्थितियुक्त है। तिस पर्याप्ति पूर्ण होतै सन्तै कदाचित् आहारकशरीरकी ऋद्धियुक्त प्रमत्तसंयतकै आहारकका काययोगका कालविषै अपना आयु कर्मका क्षयका वशकरि मरणहू होय है।

आहारक ऋद्धियुक्त प्रमत्तसंयमीमुनी प्रवचनपदार्थमैं संशय होतै संतै संशयकै दूरि करनैके अर्थि श्रीकेवलीके चरणनिकै निकट जाय सूक्ष्म अर्थनिकूं आहारति कहिए ग्रहण करै है, तातैं याकूं आहारक कहिए हैं। आहारकशरीर पर्याप्ति पूर्ण होतै आहारकवर्गणाकरि आहारकशरीरकै योग्य पुद्गलस्कंधनिके आकर्षणरूप शक्तिसहित आत्मप्रदेशनिका सकंप होना सो आहारककाययोग है।

बहुरि आहारकशरीर अंतर्मुहूर्त्त पर्यंत पूर्ण नहीं होय तितनै आहारकमिश्रकाययोग है। पूर्वला औदारिकशरीर वर्गणाकरि मिल्या है तातैं मिश्र कहिए है।

अब कार्मणयोगकूं कहै हैं—अष्टविधकर्मनिका स्कंध सो ही कार्मण है। कार्मणशरीर नाम कर्मका उदयकरि उपज्या सो कार्मण है। तिस कार्मणस्कंधकरि सहित आत्माकै कर्मग्रहण करनेकी शक्तिसहित आत्माके प्रदेशनिका सकंपपना सो कार्मणकाययोग है। सो विग्रहगतिकालविषैं एकसमय दोयसमय वा तीनसमयमैं है वा केवलीकै समुद्घातसंबंधी प्रतरद्वय लोकपूर्ण इन तीन समयमैं ही होय है। अन्यकालमैं कार्मणकाययोग नहीं होय है। इन समस्तयोगनिका परके निरोधविना अंतर्मुहूर्त्तकाल है। अर निरोध होय तो एकसमयकूं आदि लेय यथासंभव अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत जानना। बहुरि आहारकऋद्धि अर वैक्रियिकऋद्धि

युगपत् नहीं होय हैं। बहुरि औदारिक वैक्रियिक आहारक तैजस शरीर नामकर्मका उदयकरि यथासंख्य औदारिक वैक्रियक आहारक तैजस नाम च्यार शरीर होयते ए नोकर्मशरीर होय हैं। इहां 'नो' शब्द किंचित् वा तुच्छ अर्थमैं प्रवर्त्तै है। इनि नोकर्मशरीरनिकै कर्म जो आत्माका गुणका घातपणा तथा गत्यादिकनिमैं आत्माकूं पराधीन करनेकी सामर्थ्यका अभाव है। अर कर्मका सहकारीपणाकरि ईषत्कर्मकूं नोकर्म कहिए हैं। ज्ञानावरणादि अष्टविधकर्मस्कन्धका समूह सो कार्मणशरीर है। सिद्धराशिकै अनन्तवै भाग अर अभव्यराशितैं अनन्तगुणा ऐसा जो मध्यम अनन्तानन्तपरिमाण पुद्गलपरमाणुनिका स्कंध ताकूं वर्गणा कहिए हैं।

बहुरि अनन्तानन्तवर्गणानिका समूह सो समयप्रबद्ध है। एकसमयमैं जीवकै कर्म अर नोकर्मका समयप्रबद्ध ग्रहणमैं प्राप्तहोय बन्धै है। इतना विशेष है। इन पञ्चशरीरकै योग्य नोकर्मका समयप्रबद्ध प्रमाण समान नहीं है। औदारिकका समयप्रबद्धमैं परमाणुनिका प्रमाण सर्वतैं अल्प है, यातैं असंख्यातगुणा आहारकका समयप्रबद्ध है। यातैं अनन्तगुणा तैजसका समयप्रबद्ध है। यातैं अनन्तगुणा परमाणुप्रमाण कार्मणका समयप्रबद्ध है।

बहुरि औदारिकका समयप्रबद्धका अवगाहनाक्षेत्र घनांगुलकै असंख्यातवै भाग है। तथापि उत्तर-उत्तर शरीरनिका समयप्रबद्धके अवगाहनाका क्षेत्र असंख्यातगुणा क्रमतैं घाटि जानना। इनिमैं परमाणु तो अधिक अधिक हैं। अवगाहना सूक्ष्मपरिणमनतैं घाटिघाटि है। ऐसैं योगप्ररूपणा संक्षेपकरि कही। याका विशेष अर कर्मनिका सत्तामैं रहना सो, अर समयप्रबद्धनिका बटवारा सो समस्त कथन गोम्मटसारतैं जानना ॥

अब दशमी वेदप्ररूपणा वर्णन करै हैं। चारित्रमोहका भेद जो पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद नामकर्मका उदयकरि चैतन्यपरिणामविषैं पुरुष स्त्री नपुंसक रूप जीव होय हैं। अर निर्माण नामकर्मका उदयकरि पुद्गलका पर्यायविशेषविषैं पुरुष स्त्री नपुंसक होय हैं सो ही दिखावै हैं। पुरुषवेदका उदयकरि

स्त्रीमैं अभिलाषारूप मैथुनसंज्ञाकरि व्याप्त जीव भावपुरुष होय हैं। स्त्रीवेदका उदयकरि पुरुषमैं रमनेकी इच्छारूप मैथुनसंज्ञाकरि व्याप्त जीव भावस्त्री होय हैं। नपुंसकवेदका उदयकरि दोऊनिका अभिलाषरूप मैथुनसंज्ञाकरि व्याप्त जीव भाव नपुंसक होय हैं।

बहुरि पुरुषवेदका उदयकरि निर्माण नामकर्मका उदयकरि युक्त अंगोपांग नामकर्मका उदयके वशकरि डाढ़ो मूंछ शिश्नादि लिंगकरि चिह्नित शरीरसहित जीव भवका प्रथमसमयकूं आदिकरि तिस भवका अन्तसमयपर्यंत द्रव्यपुरुष होय है। बहुरि स्त्रीवेदका उदयकरि निर्माण नामकर्मका उदययुक्त अंगोपांग नामकर्मका उदयकरि रोमरहित मुख अर कुचयोन्यादि लिंगकरि चिह्नित शरीरयुक्त जीव भवका प्रथमसमयकूं आदि लेय तिस भवका अंतसमयपर्यंत द्रव्यस्त्री होय है।

बहुरि नपुंसकवेदका उदयकरि युक्त अङ्गोपांग नामकर्मका उदयकरि स्त्रीपुरुष दोऊनिका चिह्नतैं रहित देहसहित भवका प्रथमसमयकूं आदि लेय तिस भवका अंतसमयपर्यंत द्रव्यनपुंसकजीव होय है।

ये द्रव्यभावके भेद बाहुल्यताकरि देवनारकीनिमैं भोगभूमिके तिर्यंच मनुष्यनिमैं समान होय हैं। जैसा भाववेद तैसाही द्रव्यवेद होय है। अर कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यंचनिमैं विषम भी होय है। द्रव्यपुरुष होय अर भावपुरुष तथा स्त्री तथा नपुंसकहू होय हैं। अर द्रव्यस्त्री अर भावपुरुष तथा स्त्री तथा नपुंसक हू होय हैं। अर द्रव्यतैं नपुंसक होय अर भावतैं पुरुष तथा स्त्रीहू होय हैं। चारित्रमोहका भेद जो वेद ताकी उदीरणाकरिकै वा तीव्र उदयकरिकै परिणामविषैं संमोह जो विक्षेप सो उपजै है। तिस संमोहकरिकै यो जीव गुणकूं अर दोषकूं नाहीं जानै है योही बडो अनर्थ है। तातैं परमागमके भावनीका बलकरिकै ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण करनेयोग्य है।

अब पुरुषका लक्षण कहैहैं। उक्तं च गाथासूत्रं—पुरुगुण भोगे सेदे, करदे लोयम्मि पुरुगुण कम्मं। पुरुउत्तमेहि जम्हा, तम्हा सो वण्णिओ पुरिसो॥ १॥

अथ—लोककैविषैं जो जीव पुरुपगुण जो सम्यग्ज्ञानादिक अधिकगुणनिकै समूहविषै शेते कहिए

स्वामीपणाकरि प्रवर्त्तै, अर पुरुषभोग कहिए नरेंद्र, नागेंद्र, देवेंद्रादिक अधिक भोगनके समूहविषै भोक्तापणाकरि प्रवर्त्तै तथा पुरुगुणकर्म कहिए धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष लक्षण जे पुरुषार्थका धारणरूप द्रव्य आचरण करै तथा पुरूत्तमे कहिए परमेष्ठीपदविषै शेते कहिए तिष्ठै तिस कारणतैं द्रव्यभावसंयुक्त जीव है सो पुरुष वर्णन करिये हैं ॥ स्त्री शब्दका अर्थ कहै हैं। उक्तं च गाथासूत्रं—छादयति सयं दोसे, णयदा छाददि परंपि दोसेण। छादणसीला जह्मा, तह्मा सा बण्णिया इत्थी ॥ २ ॥

अथ—जातैं स्वयं अपने आत्माकूं दोष जो मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयम, क्रोध, मान, माया, लोभकरिकै आच्छादन करै। अर युक्तितैं कोमलवचन स्नेहसहित अवलोकन अनुकूलप्रवर्तनादिक अर कुशलव्यापारकरिकै पर जो आपतैं अन्य पुरुष ताहिकूं अपने वशकरिकै दोष जे हिंसा अनृत चौर्य अब्रह्म परिग्रहादिक पापकरिकै आच्छादन करै सो कारणतैं आच्छादनस्वभावरूप द्रव्यभावकरिकै स्त्री या नामकरि वर्णनकरि परमागमविषैं कही। यद्यपि तीर्थंकरनिकी माता वा अन्य सम्यग्दर्शनकी धारक स्त्रीनिकै ये कहे दोष नहीं हैं तोहू ते स्त्री अतिविरली हैं। सर्वठौर आधिक्यताका व्यवहारकरि स्त्रीका लक्षण कह्या है।

बहुरि जे जीव पूर्वैं कहे गुण तिनकरि सहित पुरुष नहीं अर स्त्रीहू नहीं, दोऊनिके डाढी मूंछ तथा कुचादि चिह्नरहित ईंट पकावनेकी अग्निसमान तीव्र कामाग्निकरि सहित होय तथा कलुषितचित्त होय सर्वकाल कामवेदनाकरि कलंकित जाका हृदय होय सो जीव परमागममैं नपुंसक कह्या है। एकेंद्रियादिक चोइंद्रियपर्यंत अर समस्त सन्मूर्च्छन अर नरकके नारकी ए तो नियमतैं नपुंसक ही होय हैं। च्यार प्रकारके देवनिमैं स्त्री अर पुरुष दोय ही वेद हैं। अर गर्भज तिर्यक् मनुष्यनिमैं तीनों वेद हैं। ऐसैं वेदप्ररूपणाका संक्षेप कह्या ॥

अब ग्यारमी कषायप्ररूपणा वर्णन करै हैं। अब कषायशब्दकी निरूक्ति जो है ताका अर्थ कहिए हैं। संसारी जीवके शुभ अशुभ ज्ञानावरणादि मूल उत्तर प्रकृतिरूप क्षेत्र ताहि कृषति कहिए हलादिकतैं

खेतज्यों संवारैं फलनिपजावनेयोग्य करैं तिस कारणकरि क्रोधादिक जीवके परिणाम कषाय हैं। ऐसैं भगवान् जिनेंद्रने कह्या है ॥

कर्मरूप क्षेत्र कैसा कहै। इन्द्रियनिका विषयसम्बन्धतैं उत्पन्न भय हर्ष अर शारीरिक मानसिक दुःख सोही धान्य सो जहां उपजै हैं। बहुरि कर्मरूप क्षेत्र कैसा कहै। अनादिके पंचपरावर्त्तन जाकी सिव है मर्यादा है। मिथ्यादर्शनादि जीवका संक्लेशपरिणामरूप याका बीज है। अर क्रोधादिकषाय नाम भृत्य हैं। सो प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेश भेदरूप कर्मबन्धलक्षण क्षेत्रमैं बोयाहुवा कालादि सामग्री पाय सुखदुःखलक्षण बहुतप्रकारके धान्यरूप फल अनाद्यनन्तसंसारसीममैं प्रगट करै हैं। अथवा—सम्यक्त्वकूं देशचारित्रकूं तथा सकलसंयमकूं यथाख्यातचारित्रकूं इस प्रकारकरि विशुद्धपरिणामनिकूं "कषंति" कहिए हिंसा करै घातैं इनिकं कषाय कहिए हैं। अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ आत्माका सम्यक्त्वपरिणामकूं "कषंति" कहिए घात करै हैं।

अनन्तसंसारका कारणपणातैं मिथ्यात्वकूं अनन्तानुबन्धी कहिए हैं। अनन्त जो मिथ्यात्वकूं "अनुबध्नन्ति" कहिए बांधै यातैं अनन्तानुबन्धी कहिए हैं। अप्रत्याख्यानावरणकषाय है सो अणुव्रतपरिणामकूं घातैं हैं। अप्रत्याख्यान नाम ईषत् त्यागका है। सो किंचित् अणुव्रतमात्रकूंहू "आवृण्वन्ति" कहिए घातैं सो अप्रत्याख्यानावरणकषाय है। बहुरि जो प्रत्याख्यान जो सकलसंयम ताकूं "आवृण्वन्ति" कहिए घातैं सो प्रत्याख्यानावरण है। बहुरि 'सं' कहिए संयम जो यथाख्यातचारित्र ताहि "ज्वलन्ति" कहिए दग्धकरैं सो संज्वलनकषाय है।

ऐसैं निरुक्तिका बलकरि कषायनिका अर्थ जानना। अनन्तानुबन्धी तो तत्त्वार्थश्रद्धान तो नहीं होनेदे है। अर अप्रत्याख्यानावरण अणुमात्रव्रतकाहू घात करैं हैं तातैं देशसंयमकूंहू घातैं हैं। अर प्रत्याख्यानावरण सकलसंयमकूं, नहीं होनेदे हैं। संज्वलनकषाय यथाख्यात संयमकूं घातैं हैं, नहीं होनेदे हैं। इनके क्रोध मान माया लोभकरि च्यारच्यार भेद हैं। ऐसैं सोलह कषाय कहें।

ये कषाय उदयका स्थानका विशेषकरि असंख्यातलोकप्रमाण हैं। पाषाणकी लीखसमान उत्कृष्ट शक्तियुक्त क्रोध जीवनैं नरकगतिमैं उत्पन्न करै है। पृथ्वीका भेदसमान अनुत्कृष्ट शक्तियुक्त क्रोध जीवकूं तिर्यंचगतिविषैं उपजावै है। धूलीमैं लीखसमान अजघन्यशक्तियुक्त क्रोध जीवकूं देवगतिविषैं उपजावै है। जलमैं लीखसमान जघन्यशक्तियुक्त क्रोध जीवकूं देवगतिविषै उपजावै है।

बहुरि शिलास्तम्भसमान उत्कृष्टशक्तियुक्त मान जीवकूं नरकगतिविषै उपजावै है। हाडसमान अनुत्कृष्टशक्तियुक्त मान जीवकूं तिर्यंचगतिविषै उपजावै है। बहुरि काष्ठसमान अजघन्यशक्तियुक्त मान जीवकूं मनुष्यगतिविषैं उपजावै है।

बहुरि वेत्रसमान अजघन्यशक्तियुक्त मान जीवनकूं देवगतिविषैं उपजावै है। जैसैं पाषाण हाड काष्ठ वेत्र हैं ते चिरतरादि कालविना नमावनेकूं समर्थ नहीं होय है। तैसैं उत्कृष्टादिशक्तियुक्त मानकषाययुक्त जीवहू चिरतरादि बहुतकालविना नमनकीया नहीं जाय है।

बहुरि बांसकी जडसमान उत्कृष्टशक्तियुक्त मायाकषाय जीवकूं नरकगतिमैं उपजावै है। मींढाका सींगसमान अनुत्कृष्ट शक्तियुक्त माया जीवकूं तिर्यंचगतिविषैं उपजावै है। गोमूत्रसमान अजघन्यशक्तियुक्त माया जीवकूं मनुष्यगतिविषै उपजावै है। खुरपासमान जघन्यशक्तियुक्त माया जीवकूं देवगतिविषैं उपजावै है। जैसैं बांसकी जडादिक बहुतकालविना अपनी अपनी वक्रताकूं छांडि सरलपणाकूं नहीं प्राप्त होय हैं तैसैं जीवहू उत्कृष्टादिशक्तियुक्त मायाकषायरूप परणया बहुतकालविना सरल नहीं होय है। बहुरि कृमिरंग अर रथके पहैयावागांवाका मल अर शरीरका मल अर हलदका रंगसमान उत्कृष्टादिशक्तियुक्त लोभकषाय विषयाभिलाषरूप अनुक्रमतैं नरक तिर्यंच मनुष्यदेवगतिमैं जीवकूं उपजावै है।

भावार्थ—नारकादिभवमैं उत्पत्तिका कारण सो सो आयुगति आनुपूर्व्यादिक कर्मका बन्ध करै है। ऐसैं कषायप्ररूपणा संक्षेपकरि वर्णन करी।

अब ज्ञानमार्गणा नाम बारमी प्ररूपणा वर्णन करै हैं। ज्ञानके पांच भेद हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान[२]

अवधिज्ञानै, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान ए सम्यग्ज्ञान हैं। जैसा पदार्थका स्वरूप होय तातैं न्यून नहीं जानै अर अधिक नहीं जानै, जैसा है तैसा जानै। सामान्यसंग्रहरूप द्रव्यार्थिकनयकरि ज्ञान एकरूप ही है। तोहू विशेष अपेक्षाकरि ज्ञानके पांच भेद हैं। तिनमैं मतिश्रुत अवधि मनःपर्यय ए च्यार ज्ञान तो क्षायोपशमिक हैं। जातैं मतिज्ञानावरणादि तथा वीर्यांतरायका क्षयोपशमतैं उपजै है।

इहां क्षयोपशमका अर्थ ऐसा जानना। जो घातिकर्मकी प्रकृतिनिका स्पर्द्धक दोय प्रकार हैं—एक सर्वघातिरूप, एक देशघातिरूप है। तहां जो मतिज्ञानावरण अर वीर्यांतरायकर्मका सर्वघातिस्पर्द्धकनिका तो उदयाभावी क्षय होय उदय जो रस नहीं देना सो ही क्षय है। अर जो उदयावलीमैं नहीं आए ऐसे उपरितन जे सर्वघातिस्पर्द्धक तिनका सत्तामैं अवस्थितिरूप रहना सोही उपशम। ऐसैं सर्वघातिस्पर्द्धकनिका तो क्षय अर उपशम अर देशघातिस्पर्द्धकनिका उदय होय तब मतिज्ञान होय है।

जातैं देशघातिस्पर्द्धकनिमैं अपने प्रतिपक्षीगुणका घातनेका सामर्थ्य नहीं होय है। ऐसैं ही श्रुतज्ञानावरण वीर्यांतरायका क्षयोपशमतैं श्रुतज्ञान होय है। ऐसैं ही अवधि मनःपर्ययज्ञानहू अपने आवरण अर वीर्यांतरायके क्षयोपशमतैं होई। तातैं च्यार ज्ञान क्षायोपशमिक हैं। अर समस्त ज्ञानावरणका अर अंतराय कर्मका अत्यंत क्षयतैं उपज्या केवलज्ञान क्षायिक है।

अब मिथ्याज्ञानकी उत्पत्ति तथा कारण अर स्वरूप अर स्वामी अर भेदकूं कहै हैं। मिथ्यात्वकर्मका उदय तथा अनन्तानुबन्धी च्यार कषायमैं कोऊ एकका उदय होतै जीवकै कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, विभंगज्ञान ए विपरीतज्ञान होय हैं। जैसैं दुग्ध मिष्ट है तोहू कडवी तुंबीमैं प्राप्तहुवा विष होय परिणमै है। तैसैं मिथ्यादृष्टिजीवकै मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञानहू कुमति, कुश्रुत, कुअवधिरूप परिणमनतैं प्राप्त होय हैं।

इन तीन कुज्ञानका विशेषरूप ऐसा जानना। जो परका उपदेशविना ही अनेकवस्तु मिलाय जीवनिकै मारनेकूं विष उपजाय लेनेकी जाकै बुद्धि उपजै तथा सिंह व्याघ्रादिकनिकूं पकडनेके मारनेके काष्ठमय

जंत्र बणावनेकी बुद्धि उपजै तथा जलके जीव पकडनेकी तथा तीतर सूवा इत्यादिक पक्षीनिके पकडनेकी, जाल पींजरा बनावनेकी तथा वनका मृग पकड़ने मारनेकी जो विनासिखाये बुद्धि उपजै सो सब कुमतिज्ञान है। और हू जो परजीवनिका धन ठगनेकूं तथा परधन सोंप्याहुवा राखनेकूं तथा परकी स्त्रीके हरनेकूं तथा परके मारनेकूं, धनके चोरनेकूं तथा निर्बलजीवनिकी आजीविका जमी जायगां स्त्री धन खोसि लेनेमैं तथा अन्यका अपमान करादेनेमैं तथा न्यायमैं सांचा होय ताकूं झूठा करदेनेमैं तथा झूठाकूं सांचा करनेमैं तथा परके दूषण लगावनेमैं तथा धर्मात्मापुरुषनिकै चोरीका कुशीलका दोष लगावनेमैं, परका अपवाद निंदा करानेमैं जाकै प्रबलबुद्धि होइ तथा कुदेवनिमैं जीवाकैं देवत्वबुद्धि करादेनेमैं तथा पाखण्डी कुलिंगनिमैं गुरुपणाकी बुद्धि कराय पुजादेनेमैं तथा आप व्यसनी पापी होय आपकी प्रशंसा कराय देनेमैं तथा अधर्मकूं धर्म, धर्मकूं अधर्म जणाय देनेमैं इत्यादि हिंसा झूठ कुशील परधनहरण परिग्रहवधावनरूप महापापनिमैं जाकै प्रवीणता होय तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, वनस्पति, त्रस इनि छहकायके जीवनिका घातकरि सांसारिक अनेक यन्त्र अनेक क्रिया अनेक जगतके राग उपजावनेवाली रागकारी वस्तु उपजावनेमैं जाकै प्रबलबुद्धि उपदेशविना शास्त्रविना जाकै उपजै सो समस्त कुमतिज्ञान है।

तथा ग्राम नगरादिककूं दग्ध करनेका तथा समस्त देश ग्रामनिवासी जीवनिका तथा परकी सेनाके विध्वंस करनेका उपायभूत शास्त्र विष अग्नि उपजाय देनेकी बुद्धि विनासिखायां उपजै सो समस्त कुमतिज्ञान है।

बहुरि जो परके उपदेशतैं दुष्ट विपरीत बुद्धिका उपजना सो कुश्रुतज्ञान है। बहुरि चोरनिके शास्त्र तथा कोटपालपणाका शास्त्र तथा जिनमैं हिंसाकी प्रधानता जिनमैं उत्तमपुरुषनिकै व्यभिचार बतावना, उत्तमपुरुषनिकै माता अन्य, पिता अन्यतैं उपज्या कहना तथा शिकार करना, मांसभक्षण करना, राजानिका सनातनमार्ग बतावना, शिकारमैं धर्म बतावना, देवोनिकै बकरा भैंसा मारि चढावनेका महाफल कहना, देवतानिकूं मांसभक्षी कहना, पितृ ईश्वरनिकूं मांसपिंड देना, सनातनतैं क्षत्रीकुलकूं मांसभक्षी

कहना, यज्ञका उपदेश देना, व्यभिचारकूं पुष्टकरना, देवनिके मनुष्यिणीसूं संगम कहना, कामी क्रोधी शस्त्रधारीनिकूं परमेश्वर कहना तथा कामशास्त्र युद्धशास्त्र मायाचार प्रधानशास्त्र रचना, नाना भण्डकाव्य बनावना, स्त्री-पुरुषनिके कामादिक चरित्र कहना, परजीवनिका अपवाद रचना इत्यादिक विपरीत मार्गको पुष्ट करनेवाले ते कुश्रुत हैं।

तथा जिनमैं एकांतरूप पदार्थका स्वरूप कहना तथा देवगुरुकै अर्थि हिंसा करनेमैं धर्म कहना, महाआरंभ हिंसाकूं धर्म कहना, पञ्चभर्त्तारीकूं सती कहना, हनुमानादिकनिकूं वानर, रावणकूं राक्षस तथा देवतानिका तिर्यंचरूपादिक जामैं वर्णन किया ते समस्त कुश्रुत हैं। इनके पठन श्रवणका ज्ञान सो कुश्रुत ज्ञान है। बहुरि मिथ्यादर्शनकरि कलंकित जीवकै अवधिज्ञानावरण अर वीर्यांतरायका क्षयोपशमतैं जो अवधिज्ञान उपजै सो कुअवधि है। वा याहीकूं विभंगज्ञान कहिए है। सो यो द्रव्य क्षेत्र काल भावकी मर्यादातैं रूपीद्रव्यकूं प्रत्यक्ष जानै है।

सो यो विभंगज्ञान मनुष्यपर्यायमैं तथा तिर्यंचमैं तो तीव्र कायक्लेश तप अर द्रव्यसंयमकरिकै उपजे है तातैं गुणप्रत्यय है। अर देवनारकीनिकै तप, व्रत, संयम नाहीं तातैं उनका भव ही कारण है। जो देवका भव तथा नारकीका भव पावैगा ताकै नियमतैं अवधि ज्ञान होयगा। तातैं देवनारकीनिकै भव ही प्रत्यय कहिए कारण है। तातै देव नारकीनिकै भवप्रत्यय अवधि आगममैं कही है। सो मिथ्यादृष्टि देव नारकीनिकै विभंग अवधि कहावै वा कुअवधि कहावै। सो या विभंगज्ञान मिथ्यात्वादिक कर्मबन्धका बीज है कारण है। तथा कोउकै नरकादिकगतिमैं पूर्वजन्मका उपजाया पापकर्म ताका फल तीव्रदुःख वेदना ताकरिकै ऐसा चिंतवनहू होय है। जो मैं पूर्वजन्ममैं हिंसादिक पंचपाप कीये, सप्तव्यसन सेये, अभक्ष्यभक्षण निर्माल्यग्रहण अन्यायप्रवृत्ति बहुत आरम्भ बहुत परिग्रह ग्रहण कीया ताका फल नरकमैं प्रत्यक्ष पाया, ऐसा आत्मनिंदा करता पापतैं विमुख होय ताकै सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानकूंहू उपजावैहै। ऐसैं कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये तीन ज्ञान तिनका स्वरूप संक्षेपकरि कह्या।

अब मतिज्ञानका स्वरूप अर भेद कहै हैं। यो मतिज्ञान है सो इन्द्रियद्वारै जानै है। इन्द्रियनिके विना स्वयं जाननेकूं समर्थ नहीं। अर इन्द्रिय हैं ते स्थूलपदार्थकूं जानै, सूक्ष्मकूं नहीं जानै। अर वर्तमान-कालवर्त्तीकूं जानै। वर्तमान नहीं ताकूं नहीं जानै। अर अपने योग्य क्षेत्रमैं तिष्ठताकू जानै, दूर क्षेत्रमैं तिष्ठताकूं नहीं जानै। अन्य इन्द्रियनिके विषयकूं अन्य इन्द्रिय नहीं जानै। जैसैं शब्दकूं नेत्रेंद्रिय नहीं जानै। इन इंद्रियनिकै स्पर्शादिक स्थूलविषयनिके जाननेका ही सामर्थ्य है। सूक्ष्म जे परमाणु इत्यादिक अर अन्तरित जे पूर्वैं भए रामरावणादिक अर दूरवर्ती जो स्वर्ग नरक मेरु इत्यादिकके जाननेकूं असमर्थ हैं। यो मतिज्ञान जो है सो पांच इंद्रिय छठा मन इनहीतैं उपजै है।

याका विशेष ऐसैं—जो इंद्रिय अर इंद्रियकै ग्रहणयोग्य विषयनिकै संयोग होतै ही जो वस्तुका सत्तामात्र ग्रहण होय सो दर्शन है। जैसैं दृष्टि पडतां ही वस्तुका प्रकाश होनेमात्र निर्विकल्पग्रहणमैं आया सो चक्षुदर्शन है। ऐसैं ही कर्णादिक च्यार इंद्रियद्वारै सामान्य विकल्परहित ग्रहण होय सो अचक्षुदर्शन है। अर ताकै लगता ही जो देख्याहुवा पदार्थका वर्ण संस्थानादिक विशेष ग्रहणमैं आवै सो अवग्रह नामा मतिज्ञान है।

भावार्थ—इंद्रिय अर पदार्थ इनका सम्बन्ध होतां ही जो सामान्यग्रहण होइ जो कुछ देखनेमैं आया तथा कुछ श्रवणमैं आया तथा स्पर्शनमैं आया परन्तु कुछ विशेष जाननेमैं नहीं आया जो कौनका रूप है वा कहा शब्द है, कैसा स्पर्श गन्धादिक हैं ऐसैं विशेष तो जाननेमैं नहीं आवै अर सामान्य सत्तामा-त्रका ग्रहण होय सो दर्शन है। अर पाछैं लगता ही पदार्थका रंग आकारादिकका ग्रहण होय सो अवग्रह नामा मतिज्ञान है। जैसैं प्रथम ही ग्रहणमैं आया जो यो श्वेत है।

ऐसैं श्वेतरूप जाण्या पदार्थमैं विशेष जाननेकी इच्छा जो यो श्वेत है सो बुगलांकी पंक्ति जाननेकी इच्छा अथवा ध्वजा देखी थी तिसमैं ध्वजा जाननेकी इच्छा सो ईहा नामा मतिज्ञानका दूसरा भेद है। अथवा जो यो श्वेत दीखै है सो ध्वजनिकी पंक्ति होसी ऐसैं जो वस्तु होय तामैं ताहीका ज्ञान होना सो

ईहा नाम मतिज्ञान है। ऐसैं ही शब्दादिकमैंहू अन्य इंद्रियद्वारेहू ईहा होय है। सो यो ईहाज्ञान तो प्रमाणरूप है परन्तु ढीला ज्ञान है।

बहुरि जामैं ईहा उपजी थी ताहीका निर्णय होय दृढ़ होना याका नाम अवाय है। जैसैं बगुलांकी पंक्तिमैं ईहा नामा ज्ञान हुवो थो। बहुरि पांखनिकै ऊँचा नीचा हलावनेकरि निश्चय भया जो या बुगलांकी पंक्ति ही है। ऐसैं निर्णयरूप अवाय नामा तीसरा मतिज्ञानका भेद है। बहुरि जाका निर्णय होगया तामैं वारंवार प्रवृत्तिकरिकै ऐसा निर्णय हुवा जो कालांतरमैं विस्मरण नहीं होय सो धारणा नामा मतिज्ञानका चौथा भेद है।

सो ये अवग्रहादिक बारह प्रकार होय हैं। जहां बहोतका अवग्रह होय। जैसैं बहुत गायनिमैं कोऊ धोली, कोऊ काली, कोऊ काबरी, कोऊ खांडी, कोऊ मुंडी ऐसैं बहुत गायनिका ग्रहण सो बहुअवग्रह है। अर सेनाकूं देख्या जाय तहां बहुत जातिका हस्ती, घोडा, ऊँट, बलध, मनुष्य इत्यादि अनेक जातिका अवग्रहादिक होय सो बहुविधका है। शीघ्रतातैं पडता जो जलका प्रवाहादिक ताका ग्रहण सो क्षिप्रग्रहण है।

बहुरि जलमैं मग्न जो हस्ती इत्यादिकका ग्रहण सो अनिःसृतग्रहण है। बहुरि वचनतैं कह्या विना अभिप्रायतैं जानि लेना सो अनुक्तग्रहण है। बहुरि बहुतकालमैं जैसाका तैसा निश्चल ग्रहण करना सो ध्रुवग्रहण है। बहुरि अल्पका तथा एकका ग्रहण सो अल्पग्रहण है। बहुरि घोडा, हस्ती, ऊँट, बलध, मनुष्यादिकनिमैं एकजातिहीका ग्रहण सो एकविधग्रहण है। बहुरि मन्दगमन करता अश्वादिकनिका ग्रहण सो अक्षिप्रग्रहण है।

बहुरि प्रगट बाह्य निकल्या वा प्रगट हुवा ताका ग्रहण सो निःसृतग्रहण है। बहुरि यो घट है ऐसैं कह्या हुवाका ग्रहण सो उक्तग्रहण है। बहुरि क्षणमात्रस्थित रहता जो वीजली इत्यादिकका ग्रहण सो अध्रुवग्रहण है। ऐसैं अवग्रह बारह प्रकार कह्या। तैसैं ही बारह प्रकार ईहा अवाय धारणा होय हैं। ते सब मिलि एकइंद्रियद्वारै अडतालीस भेद भए। तब पांचूं इंद्रिय छठा मन इन छहूंनिसूं गुणें २८८ भेद

अर्थावग्रहके जानने। जातैं नेत्रादिक इंद्रियनिका विषय है सो तो अर्थ है। ताके बहु आदिक विशेषण हैं। इन बहु इत्यादिक विशेषणकरि सहित सो अर्थ कहिए वस्तु ताके अवग्रह ईहा अवाय धारणा ऐसा सम्बंध जोडि दोयसै अठ्यासी भेद जानिए। बहुरि व्यंजन कहिए अव्यक्त जो शब्दादिक ताका अवग्रह ही होय है। ईहादिक नहीं होय हैं। ऐसा नियम है। जसा नवा माटीका सरावाविषै जलका कणा क्षेपिए तहां दोय तीन आदि कणाकरि सींच्या जेतै आला नहीं होय तेतै तो अव्यक्त है सो व्यंजन है।

बहुरि सोही सरावा फेरि सींच्याहुआ मन्दमन्द आला होय तब व्यक्त है। तैसैं ही श्रोत्रादिक इन्द्रियनिका अवग्रहविषै ग्रहणयोग्य जे शब्दादि स्वरूप परणया पुद्गलस्कंध ते दोय तीन आदिसमयमैं ग्रह्याहुवा जेतैं व्यक्त ग्रहण नहीं होय तेतैं तो व्यंजनावग्रह है। बहुरि फेरिफेरि तिनका ग्रहण होय तब अर्थावग्रह होय है। ऐसैं व्यक्तग्रहणतैं पहलै तो व्यंजनावग्रह कहिए। बहुरि व्यक्तग्रहणकूं अर्थावग्रह कहिए। यातैं अव्यक्तग्रहणरूप जो व्यंजनावग्रह तातैं ईहादिक नहीं होय है। ऐसैं जानना।

बहुरि नेत्रइन्द्रिय अर मनइन्द्रिय दोऊनिकरि व्यंजनावग्रह नहीं होय है। जातैं नेत्रइंद्रिय अर मन-इंद्रिय दोऊ अप्राप्यकारी हैं। ये पदार्थतैं भिडिकरि स्पर्शनकरि नहीं जानै है, दूरिहीतैं जानै हैं। जातैं नेत्रइंद्रिय है सो विनास्पर्श्या सन्मुख आया अर निकट प्राप्त हुवा अर बाह्य सूर्य चन्द्रमा दीपकादिककरि प्रगटकीया ऐसा पदार्थकूं जाणै है। अर मन है सोहू विनास्पर्श्या दूरि तिष्ठता पदार्थकूं विचारमैं लेहै। यातैं इन दोऊ इंद्रियनिकै व्यंजनावग्रह नहीं होय है। ऐसैं व्यंजनका अवग्रह ही होय, अर च्यार इंद्रियनिकरि होय। तातैं च्यार इन्द्रियनिकरि बहु बहुविधादिक बारह भेदकरि गुणिए तब अडतालीस भेद होय हैं।

बहुरि पूर्वें कहे अर्थावग्रहके दोयसै अठ्यासी भेद अर व्यंजनावग्रहके अडतालीस भेद दोऊ मिलि करि तीनसैं छत्तीस भेद मतिज्ञानके होय हैं। बहुरि जलकै बारैं हस्तीका सूंडिकूं देखि करि जलमैं मग्न जो हस्ती ताका जानना सो अनिःसृत नामा मतिज्ञान है। अथवा साध्यतैं अविनाभावका नियमका निश्चयरूप जो साधन तातैं साध्यका विज्ञान होना सो अनुमान है। सो अनुमानहू अनिःसृत नामा

मतिज्ञानहीमैं गर्भित है। जातैं साध्य जो हस्ती ताबिना सूंडि नहीं होनेका नियमरूप है निश्चय जाका ऐसा साधन जो सूंडि तातैं साध्य जो हस्ती ताका जानना सो अनुमानप्रमाण मतिज्ञान ही है।

बहुरि कोऊकै स्त्रीका मुखका ग्रहणके कालहीमैं अन्यवस्तुरूप जो चंद्रमा ताका ग्रहण होना, जातै मुखका सदृशपणातैं चंद्रमाका स्मरण होना जो चंद्रमासमान मुख है ऐसा प्रत्यभिज्ञान होय है। अथवा वनमैं गोसदृश गवयकूं ग्रहणकरि गौका स्मरण होना जो गोसदृश गवय है, ऐसा प्रत्यभिज्ञान होय है। तथा जैसैं रसोईमैं अग्नि होतै ही धूम उपज्या देख्या अर जलका हृदमैं अग्निका अभाव है तातैं धूम भी नहीं देख्या तैसैं सर्वदेश सर्वकाल संबंधपणाकरि अग्निकै अर धूमकै अन्यथा अनुपपत्ति कहिए, अग्नि विना धूम नहीं ही होय, ऐसा अविनाभावसंबंधका ज्ञान सो तर्क नाम मतिज्ञान है।

ऐसैं अनुमान, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क ये च्यार मतिज्ञानके भेद जो अनिःसृत ताके विषय हैं। केवल परोक्ष हैं। जातैं अनिःसृतमतिज्ञानके भेद जे अनुमान, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क ए च्यार एकदेशहू विशदता जो निर्मलता ताके अभावतैं परोक्ष ही हैं।

बहुरि शेष जे स्पर्शनादि इन्द्रिय अर मन इनका व्यापारतैं उपजे जे बहु इत्यादिक हैं विषय जिनका ऐसे मतिज्ञान ते एकदेश निर्मलतातैं सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहिए हैं। ते सब मतिज्ञान सम्यक् हैं। अर प्रमाण हैं।

अब श्रुतज्ञानका स्वरूप कहै हैं-प्रथम तो मतिज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमतैं मतिज्ञान उपजै है, पाछैं मतिज्ञानकरि ग्रहणकीया पदार्थका अवलंबनकरिकै अर वामैं श्रुतज्ञानावरणके क्षयोपशमतैं अधिक अन्य अर्थ जानना सो श्रुतज्ञान है। जहां मतिज्ञानकी प्रवृत्तिका अभाव है तहां श्रुतज्ञानकी प्रवृत्तिकाहू अभाव है। ऐसा नियम है।

अब इहां श्रुतज्ञानका प्रकरणविषैं श्रुतज्ञान दोय प्रकार हैं—एक अक्षररूप, दूजा अक्षररहित। तिनमैं ककारादिक तो अक्षर हैं अर विभक्त्यंत पद हैं। अर परस्पर अपेक्षासहित पदनिका निरपेक्षसमुदाय

सो वाक्य है। सो अक्षर पद वाक्य इनतैं उपज्या अक्षरात्मक श्रुतज्ञान सो तो प्रधान है, मुख्य है। जातैं देना ग्रहण करना शास्त्रनिका अध्ययन इत्यादिक संपूर्ण व्यवहारका कारण तो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान ही है। अर अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान लिंग चिह्नतैं उपज्या एकेंद्रियादिक पंचेंद्रियादिक पंचेंद्रियपर्यंत जीवनिविषै होय है। तोहू व्यवहारके प्रवर्तावनेमैं प्रधान नाहीं तातैं अप्रधान हैं। जैसैं जीव विद्यमान है ऐसा शब्दका ज्ञान तो कर्णइन्द्रियकरी उपज्या मतिज्ञान है।

इस मतिज्ञानतैं जीवका अस्तित्वकूं होतां जो वाच्यवाचकका सम्बन्धका संकेतका जोडपूर्वक जो ज्ञान उपजै है सो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। अथवा कोऊ घट ए दोय अक्षर कह्या सो घट ए दोय अक्षरनिका कर्णद्वारा जानना सो मतिज्ञान है। अर घटशब्दरूप मतिज्ञानतैं जलका धारण करनेवाला घटका आकार ज्ञानमैं प्रगट होजाना सो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है।

बहुरि जैसैं पवन देहकै लाग्या तदि पवनका शीतस्पर्शका जानना सो तो स्पर्शइंद्रियद्वारै अनक्षरात्मक मतिज्ञान है। अर पवनका शीतस्पर्शरूप ज्ञानतैं जो वातप्रकृतिवालाकै यह अमनोज्ञ है विकारकारी है तथा यो पवन फल फूल उपजावैगा तथा फलफूल बिगाडि देगा, मेघ बरसावैगा तथा अभाव करैगा ऐसा ज्ञान प्रगट होना सो अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है।

इहां श्रुतज्ञान अक्षरात्मक अनक्षरात्मक कह्या। तिनमैं अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। इहां श्रुतज्ञान अक्षरात्मक अनक्षरात्मक कह्या। तिनमैं अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके भेदमैं पर्याय समास है लक्षण जाका सो सर्व जघन्यकूं आदि लेय आपका उत्कृष्टपर्यंत असंख्यात लोकमात्र भेद है। असंख्यातवार षट्स्थानवृद्धिकरि वर्द्धित है। अर अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है सो एक घाटि एकट्टीप्रमाण जे अपुनरुक्त अक्षर त्यानैं आश्रयकरि संख्यातभेदरूप है। सो एक घाटि एकट्टीप्रमाण जे अपुनरुक्त जे अक्षर त्यानैं आश्रयकरि संख्यातभेदरूप है। सो एकघाटि एकट्टीके अक्षरनिका प्रमाण ऐसा वीस अक्षर रूप जानना॥ १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५॥

अब श्रुतज्ञानके वीस भेद जानना—पर्याय[1], पर्यायसमास[2], अक्षर[3] अक्षरसमास[4], पद[5], पदसमास[6], संघात[7], संघातसमास[8], प्रतिपत्तिक[9], प्रतिपत्तिकसमास[10], अनुयोग[11], अनुयोगसमास[12], प्राभृतप्राभृतक[13], प्राभृतप्राभृतकसमास[14], प्राभृत[15], प्राभृतसमास[16], वस्तु[17], वस्तुसमास[18], पूर्व[19], पूर्वसमास[20] ऐसैं श्रुतज्ञानका वीस भेद जानना। तिनमैं सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तककै उत्पन्न होनेके प्रथमसमयमैं आवरणरहित सर्व जघन्यशक्तिरूप पर्यायनामा श्रुतज्ञान है। सो पर्यायज्ञान समस्तज्ञाननिमैं जघन्यज्ञान है। याकैहू फिर आवरण नाहीं। याकै जो आवरण होय तो ज्ञानका अभाव होय। ज्ञानका अभाव भया तब समस्त आत्मकाहू अभाव होय। तातैं पर्यायज्ञानसे अधिक घटि घनै ठिकाना नहीं तातैं पर्यायज्ञान आवरणरहित है। सो सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तककै जन्मका प्रथमसमयमैं सर्व जघन्यस्पर्शनेंद्रियजनित मतिज्ञानपूर्वक लब्ध्यक्षर है दूजा नाम जाका ऐसा जघन्यपर्याय नामा श्रुतज्ञान होय है।

लब्धि नाम श्रुतज्ञानावरण क्षयोपशमका है अथवा अर्थ जो पदार्थ ताके ग्रहणकी शक्तिकूं लब्धि कहिए। लब्धिकरि जो अक्षर कहिए विनाशरहित सो लब्ध्यक्षर जानना, सो इस पर्यायज्ञानके जाननेकी शक्तिरूप अविभागपरिच्छेदनिका प्रमाण इतना जानना। द्विरूपवर्गधाराविषै दोयका वर्ग ४ अर दूसरा स्थान च्यारका वर्ग १६, तीजा वर्गस्थान २५६ चौथा वर्गस्थान पणाट्टी ६५५३६, पांचमा वर्गस्थान बादाला। ४२९४९६७२९६ ॥ छठा वर्गस्थान एकट्टी ॥ १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६ ॥

ऐसैं परस्परगुणनरूप अनन्तानन्तवर्गस्थान गए जीवराशिका प्रमाम उपजै है। बहुरि ताकै ऊपरि अनन्तानन्तवर्गस्थान गए पुद्गलराशिका प्रमाण उपजै है। बहुरि ताके ऊपरि अनन्तानन्तवर्गस्थान गये कालका समयकी राशि उपजै है। बहुरि ताकै ऊपरि अनन्तानन्तवर्गस्थान गए आकाशका प्रदेशांकी श्रेणीका प्रमाण उपजै है। बहुरि ताकैं ऊपरि अनन्तानन्त वर्गस्थान गए धर्म अधर्म द्रव्यके अगुरुलघु-नाम गुणका अविभागप्रतिच्छेद उपजै है।

बहुरि ताकैं ऊपरि अनन्तानन्त वर्गस्थान गए जीवका अगुरुलघुगुणका अविभागप्रतिच्छेद उपजै

है। बहुरि ताकै ऊपरि अनन्तानन्तवर्गस्थान गए सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यज्ञान जो पर्यायज्ञान ताके अविभाग प्रतिच्छेद उपजै है। यातैं सूक्ष्म निगोदियालब्ध्यपर्याप्तका सर्वतैं जघन्यज्ञानकै जाननेकी शक्तिरूप अनन्तानन्त अविभागप्रतिच्छेद है। तिनकै ऊपरि द्वितीयादिक भेद षड्गुणी वृद्धिकर वर्द्धित हैं। अनन्त भागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि[२], संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुण-वृद्धि, अनन्तगुणवृद्धि। ऐसैं असंख्यातलोकप्रमाण षट्स्थानवृद्धिरूप असंख्यातलोकप्रमाण पर्यायसमास ज्ञानके भेद होय हैं, सो इन षटस्थाननिकी वृद्धिका स्वरूप गोमटसार नाम ग्रन्थतैं जानना।

अर या पर्यायसमासज्ञानतैं अनन्तपणा अर्थाक्षरज्ञान है। अक्षर तीन प्रकार हैं—लब्ध्यक्षर[१], निर्वृत्यक्षर[२], स्थापनाक्षर[३], तिनमैं पर्यायज्ञानावरणतैं आदि लेय श्रुतकेवलज्ञानावरण पर्यंत क्षयोपशमतैं उपजी जो आत्माके अर्थग्रहणकरनेकी शक्ति सो लब्धि कहिए भावेन्द्रिय है। तिसरूप जो अक्षर सो लब्ध्यक्षर है। तातैं लब्ध्यक्षरकै अक्षरज्ञानकी उत्पत्तिका हेतुपणा है।

बहुरि कण्ठ ओष्ठ तालवादिक जे स्थान तिनका स्पर्शनादिक जे करणरूप प्रयत्न तिनकरी निर्वृत्ति-नाम कहिए उत्पन्नभया है स्वरूप जाका ऐसा अकारादिक तो स्वर अर ककारादिक व्यंजनरूप मूलवर्ण-निका संयोगादिकका संस्थान सो निर्वृत्यक्षर हैं। बहुरिपुस्तकनिमैं अनेकदेशनिका अनुकूलपणाकरि लिख्या जो संस्थान सो स्थापनाक्षर ऐसैं एक अक्षरका श्रवणतैं उपज्या सो अर्थज्ञान सो एकाक्षर श्रुतज्ञान है। ऐसैं जिनेन्द्रभगवान् कह्या है।

अब शास्त्रका विषयका प्रमाण कहै हैं। जो वचनकरि कह्या नहीं जाय तैसा केवलज्ञानकै गोचर जे भाव कहिए जीवादिक पदार्थ तिनकै अनंतवैं भाग तो तीर्थंकरका सातिशय दिव्यध्वनिकरि कहनेमैं आवै है। अर दिव्यध्वनिमैं कह्या जाय तिसकै अनंतवैं भागमात्र द्वादशांगश्रुतविषै व्याख्यान कीजिए है। सो श्रुत केवलीकै भी गोचर नाहीं ऐसा पदार्थ कहनेकी शक्ति दिव्यध्वनिविषै पाइए है।

अर जो दिव्यध्वनि करिभी नहीं कह्या जाय तिस अर्थका जाननेकी शक्ति केवलज्ञानकी है। अर

आगैं अक्षररूप श्रुतज्ञानका कथनविषय प्रथमसूत्रमैं कह्या है तहांतैं जानना। विशेषकथन जाननेके इच्छुक श्रीगोमट्टसारतैं जानना। तथा संक्षेप भगवतीआराद्नामैंहू लिख्या है तहांतैं जानना। बहुरि अवधिज्ञान मन:पर्यज्ञानका स्वरूप संक्षेप प्रथमअध्यायमैं लिख्या है तातैं फेरि इहां नहीं लिख्या।

अथ केवलज्ञानका स्वरूप कहै हैं। जीवद्रव्यकी शक्तिकूं प्राप्त जे ज्ञानका अविभाग प्रतिच्छेद जेते हैं तेते सर्व व्यक्तिकूं प्राप्त भए इस ही कारणतैं समस्त मोहनीयकर्म अर वीर्यांतरायकर्मका समस्तक्षयतैं अरोकशक्तिपणा युक्तिपणाकरि अर निश्चलपणाकरि तो यो ज्ञान सम्पूर्ण है। अर इन्द्रियनिका सहायकी अपेक्षारहितपणातैं केवल है। अर प्रतिपक्षी च्यारि घातियाकर्मनिका क्षयतैं क्रमरहित इंद्रियरहित अन्तरालरहितणाकरि समस्तपदार्थनिमैं प्रापणातैं प्रतिपक्षीरहित लोक अलोककूं जाणै सो केवलज्ञान है। ऐसैं ज्ञानप्ररूपणा संक्षेपकरि कही।

अथ संयमप्ररूपणा तेरहमी वर्णन करै हैं। जो पंचव्रतको धारण अर पंचसमितिको पालन अर कषायनिको निग्रह अर अशुभ मनवचनकायको त्याग अर पंच इंद्रियनिको विजय याकूं परमागममैं संयम कह्या है। बादर संज्वलनका उदय होतैं सूक्ष्म लोभका उदय होतै मोहनीयकर्मका उपशम होतै अथवा क्षय होतै नियमकरि संयमभाव होय हैं। सो संयम सात प्रकार है–सामायिक, छेदोपस्थापन,[२] परिहारविशुद्धि,[३] सूक्ष्मसांपराय,[४] यथाख्यात,[५] संयमासयंम,[६] असंयम[७] तिनमैं बादरसंज्वलनका संयमतैं अविरोधी देशघातिस्पर्द्धकनिका उदय होतै बादरसामायिक, छेदोपस्थापन, परिहारविशुद्धि ए तीन संयम होय हैं। तहां परिहारविशुद्धि संयम है सो प्रमत्त अप्रमत्त दोऊ गुणस्थानमैं ही होय है। अर सामायिक छेदोपस्थापन ए दोय संयम प्रमत्तादि च्यार गुणस्थाननिमैं होय है।

बहुरि सूक्ष्मकृष्टिकूं प्राप्त भया ऐसा संज्वलनलोभका उदय होतै सूक्ष्मसांपरायचारित्र होय है। बहुरि समस्त मोहनीयका उपशमतैं अथवा क्षयतैं यथाख्यात चारित्र होय है। सो ग्यारमा गुणस्थानमैं तो मोहका उपशमतैं ही होय। अर बारमै तेरमै चौदमै मोहनीयका क्षयतैं होय। बहुरि प्रत्याख्यानावरण

जो तृतीय कषायका उदयकरि संयतासंयत वा देशसंयत नाम पंचमगुणस्थानी होय है। अर द्वितीय कषाय जो अप्रत्याख्यानावरणकषायका उदयकरि असंयमभाव नियमकरि होय है। इहां ऐसा जानना। मैं सर्व सावद्ययोगका त्यागी हूं ऐसा भावकरि भेदरहित समस्तपापका त्यागस्वरूप एकसंयमरूप होना सो सामायिक है। सो सर्वोत्कृष्ट है, असदृश है, संपूर्ण है, दुःखकरि बडा कष्टकरि प्राप्त होनेयोग्य है। ऐसा सामायिकसंयम होय है।

बहुरि जो पूर्वैं ग्रहण किया सामायिकसंयमी होय फेरि संयमतैं छूटिकरि सावद्य जो पापसहित प्रवृत्तिमैं लीन होजाय फिर सावद्यव्यापारकूं प्रायश्चित्तादिककरि छेदि जो आत्माकूं पंच महाव्रतादि धर्म-संयममैं आपकूं स्थानपर करै सो छेदोपस्थापन संयम होय है। छेद जो प्रायश्चित्तरूप आचरणकरिकै फेरि आपकू संयममैं स्थापन करै सो छेदोपस्थापक होय है। अथवा सामायिक संयममैं तो समस्त सावद्य-योगका त्यागरूप भेदरहित संयम ग्रहणकीया था फेरि छेद जो पंचमहाव्रत पंचसमिति तीन गुप्ति रूप भेदसहित जो संयम सो छेदोपस्थापन है।

जो पंचसमिति त्रिगुप्तिरूप हुवा सर्वकाल प्राणीनिकी हिंसाका परिहार करै सो परिहारविशुद्धि-संयम होय है। सो जन्मतैं तीस वर्षका सर्वकाल सुखी रह्यो होय सो दीक्षाग्रहणकरिकै पृथक्त्ववर्षपर्यंत श्रीतीर्थंकरका चरणाकै निकट प्रत्याख्यान नाम नवमां पूर्व पढ्या होय सो परिहारविशुद्धिनाम ऋद्धिकूं अंगीकार करि तीन सन्ध्याविना सर्वकालमैं दोय कोश प्रमाण नित्य विहार करै, रात्रिविषै विहार नहीं करै। वर्षाकालका नियमरहित है, वर्षाकालहूमैं विहार करै है। परिहरण कहिए प्राणीनिकी हिंसातैं रहित है। तातैं परिहारविशुद्धिसंयम कहिए है। याका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त्त है।

जातैं परिहारविशुद्धिसंयमकूं छांडि अन्यगुणस्थानकूं प्राप्त होजाना सम्भवै है। अर उत्कृष्ट अड-तीस वर्षरहित कोटिपूर्वप्रमाण याका काल है। जातैं तीस वर्षपर्यंत सदासुखरूपकालकूं व्यतीतकरि पाछैं संयमी होय श्रीतीर्थंकरके चरणारविंदकै निकट पृथक्त्ववर्षपर्यंत रहै। अर प्रत्याख्यान नाम नवमी पूर्व

पढिकरि पाछैं परिहारविशुद्धसंयमी होय। इहां पृथक्त्वनाम तीनकै ऊपरि अर नवकै माही च्यार पांच छह सात आठकी आगममैं संख्या कही है। परिहारविशुद्धसंयमी है सो छहकायके जीवनिकरि व्याप्तमैं विहार करताहू जैसैं जलकरि कमल नहीं लिपै तैसैं पापसमूहकरि नहीं लिपे है।

बहुरि सूक्ष्मकृष्टिगत लोभकूं अनुभव करता उपशमश्रेणीका धारक उपशमक वा क्षपक सूक्ष्मसांपराय संयमी यथाख्यात चारित्रतैं किंचित् न्यून होय है। यामैं सूक्ष्मसांपराय एक ही गुणस्थान होय है। बहुरि समस्त मोहनीय कर्मकूं उपशम होतै वा क्षय होनेतैं आत्मस्वभावमैं अवस्थितिरूप यथाख्यात चारित्र है। सो उपशांतकषायछद्मस्थ तथा क्षीणकषायछद्मस्थ सयोगकेवलीजिन अयोकेवलीजिन ए यथाख्यात संयमी है।

बहुरि जे सम्यग्दृष्टि पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, च्यार शिक्षाव्रतनिकरि संयुक्त हुवा निर्जरा करै हैं ते देशसंयमी हैं। तिनका दार्शनिक, व्रती[2], सामायिक[3], प्रोषधोपवास, सचित्तविरत, रात्रिभुक्तिविरत, ब्रह्मचारी, आरंभविरत, परिग्रहत्यागी, अनुमतिविरत, उद्दिष्टाहारत्यागी[11] ए ग्यारह देशसंयमके भेद हैं। जो पंच उदुम्बर जो अभक्ष्यफल तिनकरि सहित सप्तव्यसनका त्याग करै अर सम्यग्दर्शनकरि विशुद्ध जाकी बुद्धि होय सो दार्शनिकश्रावक होय है। इत्यादि विशेष ग्यारह स्थाननिका कथन श्रावकधर्मका व्याख्यानतैं जानना। इहां ग्रन्थ बधनेके भयतैं विशेष नहीं लिख्या है।

बहुरि चौदह प्रकार जीवनिविषै अठाईस प्रकार इंद्रियनिकै विषयनिविषै जाके विरति नहीं सो असंयत है। सो मिथ्यात्व सासादन मिश्र अविरत च्यारि गुणस्थाननिमैं असंयमी है। ऐसैं संयममार्गणा नाम तेरमी प्ररूपणा समाप्त करी॥

अथ दर्शनप्ररूपणा चौदमी वर्णन करिए है। सामान्य विशेषात्मक जे पदार्थ तिनका आकार ग्रहण नहीं करिकै वा भेदका ग्रहण नहीं करिकै जो सामान्यग्रहण होय स्वरूपमात्रका प्रकाश होय सो दर्शन है, ऐसैं परमागममैं कह्या है। बाह्य पदार्थनिका जाति क्रिया गुणनिके प्रकारकरि विकल्प भेद नहीं

करिकै अर पदार्थका सत्तामात्र यामैं भासनेमैं आवै है, सो दर्शन च्यार प्रकार है—चक्षुर्दर्शन १, अचक्षुदर्शन २, अवधिदर्शन ३, केवलदर्शन ४, तिनमैं जो नेत्रनिकरि सामान्य सत्तामात्र ग्रहण होय सो चक्षुदर्शन है। अन्य च्यारि इंद्रियनिकरि जो सामान्य सत्तामात्रका ग्रहण होय सो अचक्षुदर्शन है। बहुरि परमाणुकूं आदिकरि महास्कन्धपर्यंत मूर्त्तद्रव्य जितने हैं तितने प्रत्यक्ष देखै सो अवधिदर्शन है। बहुरि समस्त सूर्यादिकनिका प्रकाश जाकूं उपमा नहीं ऐसा लोक अलोककूं तिमिररहित क्रमरहित इंद्रियरहित व्यवधानरहित प्रकाशै सो केवलदर्शन है। ऐसैं दर्शनमार्गणा नाम चौदमी प्ररूपणा वर्णन करी।

अब लेश्या नाम पन्द्रमी प्ररूपणा वर्णन करै हैं—द्रव्यभावकरि लेश्या दोय प्रकार है। तिनमैं शरीरका वर्ण सो द्रव्यलेश्या है सो इहां प्रयोजनभूत नहीं। यातैं भावलेश्याका वर्णन करै हैं। कषायनिका उदयकरि रंगी जो मन, वचन, कायके योगनिकी प्रवृत्ति सो लेश्या है। जाकरि यो जीव आपकूं पुण्य तथा पापकरि लीपै तथा पापपुण्यकूं अंगीकार करै सो लेश्या है। प्रकृतिबन्ध प्रदेशबन्ध तो योगनितैं होय हैं। अर स्थितिबन्ध अर अनुभागबन्ध कषायनितैं होय है। यातैं कषायनिका रंगसहित योगनिकी प्रवृत्तिरूप लेश्यानितैं च्यार प्रकारका बन्ध होय ही। ऐसा भगवान्‌ने कह्या है।

लेश्या छह प्रकार है—कृष्ण[1], नील,[2] कापोत[3], पीत[4], पद्म[5], शुक्ल[6], ए छह नाम जानने। अब इन लेश्यानिका बाह्यकर्म करनेका स्वभाव कहै हैं। छह पथिक परिभ्रमण करते बनके मध्य एक फलकरि सहित आम्रवृक्ष देख्या। तिस आम्रवृक्षकूं देखि उसके फल भक्षण करनेका छहूं पथिकनिने परिणाममैं ऐसा उपाय चिंतवन किया। कृष्णलेश्याका धारक तो वृक्षको मूलतैं छेदि फल लेनेका विचार किया। अर नीललेश्यावाला डाहला छेदनेका विचार किया। कापोतलेश्यावाला फलनिसहित समस्त डाहली छेदनेका विकल्प किया। पीतलेश्याका धारक वृक्षकै जे फल हैं तिनके ग्रहण करनेका विचार किया। पद्मलेश्यावाले अपने भक्षणयोग्य फल ग्रहण करनेका विचार किया। शुक्ललेश्याका धारक भूमिमैं पड्या फल ही भक्षण करनेका विचार किया। ऐसैं इनका कार्य जानना।

अब कृष्णादि छह लेश्यानिका लक्षण ऐसा जानना। जो तीव्र क्रोध होय एकबार वैर हुआ पाछैं वैर छांडे नाहीं। भंडनेका विगाडनेका जाका स्वभाव होय, युद्ध करनेका स्वभाव होय, धर्मरहित होय, दयारहित दुष्ट होय, कोऊकै किसी प्रकार वशि नहीं होय, राजी नहीं होय, ये परिणाम कृष्णलेश्याका धारक जीवकै होय हैं।

अब नीललेश्याका लक्षण कहै हैं। जो मन्द कहिए स्वच्छन्दसंज्ञक होय अथवा क्रियाविषै मन्द होय बुद्धिविहीन कहिए वर्त्तमानकार्यकूं जाननेमैं समर्थ नहीं होय, बहुरि विज्ञान विवेकता रहित होय, विषय जे पंचेन्द्रियविषै ताका लोलुपी होय, मानी अहंकारी होय, मायाचारी कुटिल आचरणका धारक होय, करनेयोग्य कार्यमैं आलस्ययुक्त होय, परको जाका अभिप्राय जाननेमैं नहीं आवै, जाकै निद्रा बहुत होय, ठगनेमैं बाहुल्यता होय, धनधान्यादिकनिमैं तीव्र वांछायुक्त होय, ए लक्षण नीललेश्यावानका जानना।

अब कापोतलेश्यावानका लक्षण कहै हैं। जो परकै अर्थि कोप करै। अर परकी बहुत निंदा करै। अर परकै बहुत प्रकार दूषण लगावै। अर शोक बहुत करै। अर जाकै भय बहुत होय। अर परकूं सहि न सकै। अर परका तिरस्कार करै। अपनी बहुत प्रशंसा करै। अर परकूं आपसमान जाणि परकी प्रतीति नहीं करै। कोऊका विश्वास नहीं करै।

अर कोऊ आपकी प्रशंसा स्तवन करै तिस उपरि बहोत राजी होय आनंदित होय। अपनी अर परकी हानिवृद्धि नहीं जानै। अर रणविषैं अपना मरण वांछैं। अर कोऊ आपका स्तवन करै बड़ाई करै ताकूं बहोत धन देवै, करनेयोग्य नहीं करनेयोग्य विचार नहीं गिणै, ए कापोतलेश्यावान जीवके लक्षण हैं। अब तेजोलेश्या जो पीतलेश्यावानका लक्षण कहै हैं। जो करनेयोग्य नहीं करनेयोग्यकूं अर सेवनेयोग्य नहीं सेवनेयोग्यकूं जाणै। समस्तमैं समदर्शी होय। दयाविषैं जाकै प्रीति होय। अर मनविषैं अर कायविषैं सरल होय ए तेजोलेश्यावानका लक्षण कहै।

अब पद्मलेश्यावानकूं कहै हैं। जो त्यागी होय अर भद्रपरिणामी होय अर उत्तम काज करनेका

जाका स्वभाव होय, शुभकार्य करनेमैं उद्यमी होय। अर जे अनिष्ट उपद्रव आजाय तिनकूं क्लेशरहित सहै। अर साधुनिकी गुरुनिकी पूजामैं जाकै प्रीति होय सो पद्मलेश्याधारक होय है।

अब शुक्ललेश्यावानका लक्षण कहै हैं। जो पक्षपात नहीं करै। अर आगामी विषयवांछारूप निदान नहीं करै। अर समस्तस्त्रीनिकूं जननीसमान जानै। वैरी मित्रनिमैं समानबुद्धि करै। इष्ट अनिष्टमैं रागद्वेषरहित होय, अर पुत्र कलत्र मित्रनिमैं स्नेहरहित होय, ए शुक्ललेश्यावान जीवका लक्षण कह्या। ऐसैं छह लेश्याके परिणाम कहे। इन लेश्याके परिणामनिके अनुकूल ही च्यार प्रकार आयुका बन्ध होय है। सो गत्यादिकनिका वर्णन लिखे कथनी बहुत होजाय। याका सोलह अधिकार गोमटसारजीमैं कह्या है। कथनी बहुत है सो विशेष जाननैका इच्छुक तहांतैं जानना। संसारपरिभ्रमण ही लेश्याके आधीन है। ऐसैं लेश्याकी प्ररूपणा पंद्रमी कही।

अब सोलमी भव्यप्ररूपणा कहै हैं। जीवनिके अनंतचतुष्टय रूप सिद्धपर्याय होने योग्य है ते भव्य हैं, जे सिद्ध होनेयोग्य नहीं ते अभव्य हैं। अर केतेक भव्यअनंतचतुष्टयरूप होनेके योग्य हैं तोहू मोक्ष होनेयोग्य सामग्री अनंतानंतकालहूमैं तिनकूं मिलै नहीं। जैसैं सुवर्णपाषाणकूं मल दूरि होनेकी सामग्री नहीं मिलै तदि सुवर्ण पाषाणतैं जुदा नहीं होय तैसैं केतेक भव्यहू अनंतानंत परिवर्त्तन करतेहू बाह्य मनुष्यगत्यादिक अनेक सामग्री मिले विना संसारतैं नहीं छूटै हैं। अर अभव्य हैं ते अंधकपाषाणसमान हैं तिनमैं सिद्ध होनेकी योग्यता ही नहीं। ऐसैं भव्यप्ररूपणा सोलमी संक्षेपतैं कही।

अब सम्यक्त्व नामा सत्तरमी प्ररूपणा कहै हैं—भगवान् सर्वज्ञ वीतरागकरि प्ररूपे जे द्रव्यभेदकरि छह प्रकार अस्तिकायभेदकरि पंच प्रकार पदार्थभेदकरि नवप्रकार जीवादिक वस्तुनिका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है, सो दोय प्रकार है—एक तो आज्ञासम्यक्त्व, दूजा अधिगमसम्यक्त्व है। सो प्रमाणादिक विना आप्तका वचनका आश्रयकरि किंचित् निर्णयरूप आज्ञाकरि जो श्रद्धान भया सो आज्ञासम्यक्त्व है।

अर प्रमाण नय निक्षेप निरुक्ति अनुयोगद्वारकरि विशेषनिर्णय है लक्षण जाका ऐसा अधिगम-

सम्यक्त्व होय है। सो सम्यक्त्व सराग वीतरागपणातैं दोय प्रकार है। तहां सरागसम्यक्त्व है सो प्रशम संवेग अनुकम्पा आस्तिक्यरूप है। तहां कषायनिकी उत्कटताको अभाव सो प्रशमभाव है। अर संसार देह भोगनितैं विरक्तता सो संवेग है। अर समस्त जीवनिकै क्लेशका अभाव चाहना सो अनुकम्पा है। बहुरि जीवादिक पदार्थ जैसैं अपने स्वभावमैं अवस्थित हैं तैसैं परमागमतैं निश्चय करना सो आस्तिक्य है। तथा आप्तमैं व्रतमैं श्रुतमैं तत्त्वमैं आस्तिक्यरूप सरागसम्यक्त्व है। आत्मविशुद्धतामात्र वीतराग-सम्यक्त्व है। प्रदेशनिका समूहरूप बहुप्रदेशी हैं। यातैं पंच अस्तिकाय कहिए हैं। बहुरि निरन्तर अपने गुणपर्यायनिरूप गमनकरै प्रवर्तै तातैं छह द्रव्य कहिए। अर वस्तुका स्वभाव है यातैं तत्त्व कहिए हैं। बहुरि निश्चयकरनेयोग्य है यातैं नवपदार्थ कहिए हैं। ऐसैं पंचास्तिकाय छहै द्रव्य सप्त तत्त्व नव पदार्थनिका श्रद्धानकूं सम्यक्त्व कहिए। सो इन तत्त्वनिका लक्षण इस ग्रन्थमैं वर्णन है यातैं विशेष इहां नहीं लिख्या है।

बहुरि ए सम्यक्त्व तीन प्रकार है। तहां जो दर्शनमोह तीन प्रकार अर च्यार प्रकार अनंतानुबंधी कषायका करणलब्धिका परिणामकी सामर्थ्यतैं क्षयकरिकैं जो निर्मलश्रद्धान होय सो क्षायिक सम्यग्दर्शन है। सो प्रतिपक्षीकर्मका अभावतैं नित्य है अविनाशी है। आत्मगुणकी विशुद्धतातैं उपज्या तातैं प्रतिसमय गुणश्रेणीरूप निर्जराका कारण है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि वर्तमानभवमैं ही मुक्त होजाय। तथा देवलोक जाय, देवतैं मनुष्य होय निर्वाण जाय, तातैं तीन भव भए। अर कोऊ पूर्वै मिथ्यात्व अवस्थामैं नरक आयु बन्ध किया होय अर पाछैं क्षायिकसम्यक्त्व होजाय तो प्रथमनरक जाय, नरकतैं निकसी मनुष्य होय निर्वाण जाय। ऐसैं तीन भव ग्रहण करै। अर कोऊ पहिलै मनुष्य आयुका या तिर्यंक् आयुका बन्ध किया होय तो कर्मभूमिका मनुष्य तिर्यंच नहीं होय, भोगभूमिमैं मनुष्य तिर्यंच होय, मरणकरि कल्पवासी देव होय, फिर मनुष्य होय निर्वाण जाय। ऐसैं च्यार भव ग्रहणकरै। इस सिवाय संसारमैं नहीं रहै।

बहुरि क्षायिकसम्यग्दृष्टि है सो खोटे उपदेशकरि तथा कुहेतुदृष्टांत तथा इंद्रियनिकै भयका उत्पन्न

करनेवाला देव मनुष्य तिर्यंचनिका विकाररूप भेषकरि तथा ग्लानिरूप वस्तुतैं उत्पन्न भई ग्लानिकरि तथा बहुत कहनेकरि कहा, त्रैलोक्यकरिकैहू क्षायिकसम्यक्त्वी नहीं चलायमान होय है।

बहुरि दर्शनमोहका क्षयपणाका आरंभ तो कर्मभूमिका मनुष्य केवली श्रुतकेवलीके निकट ही करै हैं। अर निष्ठापन सर्व च्यारिगतिमैं होय है। बहुरि दर्शनमोहनीयका भेद सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होतै अर छह प्रकृतिनिका क्षयोपशम होतै चल मल मलिन अगाढ़ इन तीन दोषनिकरि सहित जो तत्त्वनिका श्रद्धान सो क्षायोपशम सम्यक्त्व होय है। इहां दर्शनमोहके उदयकूं वेदनेतैं अनुभवनेतैं याका दूजा नाम वेदकसम्यक्त्व है।

बहुरि अनन्तानुबन्धी च्यार कषायनिका उदयाभाव लक्षण अप्रशस्त उपशमकरि तथा दर्शनमोह तीन प्रकृतिनिका अप्रशस्त उपशमकरिकै जैसैं कर्दम जाका नीचै बैठिगया, अर ऊपरि निर्मल जलसमान जो पदार्थनिका श्रद्धान उपजना सो उपशमसम्यक्त्व है। उपशमसम्यक्त्व अंगीकार करनेयोग्य जीवकूं कहै हैं। च्यारूं गतिमैं भव्य संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक विशुद्ध ज्ञानोपयोगी जाग्रच्छुभलेश्यायुक्तकै सम्यक्त्वग्रहण होय है। ऐसैं तीन सम्यक्त्व कहै। बहुरि मिथ्यात्व सासादन मिश्रका स्वरूप पूर्वैं गुणस्थानप्ररूपणामैं कह्या सो ही जानना। ऐसैं सम्यक्त्वप्ररूपणा सप्तदशमी वर्णन करी।

अब अठारमी संज्ञाप्ररूपणा वर्णन करै हैं—मनइन्द्रियावरणका क्षयोपशमतैं उपज्या जो ज्ञान सो संज्ञा है। सो संज्ञा जाकै विद्यमान होय सो संज्ञी कहिए, जो शिक्षा क्रिया उपदेश आलापकूं ग्रहण करै सो जीव संज्ञी कहिए हैं। हितमैं प्रवृत्ति अहितका निषेधरूप जो शिक्षा ताहि ग्रहण करै, ऐसा कोऊ मनुष्यादिक अर हस्तपादका चलावनेरूप जो क्रिया ताकूं ग्रहणकरै, ऐसा कोऊ बलध इत्यादिक तथा कोरडा चामठी इत्यादिककरि मारन ताडन विधानादिक उपदेश इत्यादिककूं ग्रहण करनेवाला कोऊ गजादिक अर श्लोकादिक पाठ सो आलाप ताकूं ग्रहण करनेवाला कोऊ चकोर राजसूवा इत्यादिक, इस प्रकार मनका अवलंबनकरिकै शिक्षा क्रिया उपदेश आलापकूं ग्रहण करनेवाला जीवकूं संज्ञी कहिए। अर शिक्षा

क्रिया उपदेश आलापके ग्रहण करनेकूं असमर्थ ते जीव असंज्ञी कहिए। बहुरि जे जीव कार्य जो करनेयोग्य ताकूं अर अकार्य कहिए नहीं करनेयोग्यकूं पहलीही विचारै अर तत्त्व अतत्त्वकी शिक्षा ग्रहण करै अर नामकरि बुलाया आवै सो जीव मनसहित है। अर इन लक्षणरहित अमनस्क असंज्ञी हैं, ऐसैं संज्ञिमार्गणा नाम अठारमी प्ररूपणा वर्णन करी।

अब आहारप्ररूपणा उगणीसमी वर्णन करै हैं–औदारिक, वैक्रियिक, आहारक ए तीन प्रकार शरीर नामकर्मकी प्रकृतिनिमैं कोऊ एक शरीर नामकर्मका उदय करिकैं तिस शरीरकै अर वचनकै अर द्रव्यमनकै योग्य जे नोकर्मवर्गणानिका ग्रहण सो आहार है। औदारिकादिक शरीरनिविषै जो उदय आया कोऊ एक शरीरवर्गणा अर भाषावर्गणा अर मनोवर्गणा इनि वर्गणानिका नियमतैं यथायोग्यकालविषै यथायोग्य "आहरति" कहिए ग्रहण करै सो परमागममैं आहार कह्या है।

बहुरि विग्रहगतिकूं प्राप्तहुवा जीव, अर प्रतरलोकपूरण समुद्घातकूं प्राप्तहुवा सयोगकेवली जिन, अर अयोगकेवलीजिन, अर सिद्धपरमेष्ठी ए अनाहारक होय हैं। विग्रहगतिनै प्राप्तहुवा जीव अर प्रतरलोकपूरण अवस्थामैं सयोगीजिन अर अयोगीजिन नोकर्मवर्गणा नहीं ग्रहण करै तातैं अनाहारक है। अन्य समस्तजीव समस्तसमयमैं आहारवर्गणा ग्रहण करै ही हैं, तातैं आहारक ही हैं।

अब समुद्घात केते प्रकार हैं सो कहै हैं। वेदनासमुद्घातै, कषायसमुद्घात,[2] वैक्रियिकसमुद्घातै, मारणांतिकसमुद्घातै, तैजससमुद्घातै, आहारकसमुद्घातै,[6] केवलसमुद्घातै, ऐसैं सप्तप्रकार समुद्घात कह्या है। अब समुद्घातका लक्षण कहै हैं। मूलशरीरकूं तो छांडै नाहीं, अर कार्मणशरीर तैजसशरीर सहित जीवके प्रदेशनिका शरीरतैं बाहिर निर्गमन सो समुद्घात कहिए है। आहारक अर मारणांतिक दोय समुद्घात तो नियमकरि एकदिशाको ही प्राप्त होय है। जातैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागप्रमाण ऊंचा चौडा आत्माका प्रदेश निकसै सो जहांतांई जाना होय तहांतांई मूलशरीरतैं लेइ तारसा चल्या जाय है। बहुरि अन्य पंचसमुद्घात रहे ते दशोंदिशानिकूं प्राप्त होय हैं। इनविषै यथायोग्य चौडाई लंबाई ऊंचाई पाइए है। ऐसैं आहारकप्ररूपणा उगणीसमी संक्षेपकरि वर्णन करी।

अब उपयोगप्ररूपणा वीसमी वर्णन करैं हैं "वसतः गुणपर्यायौ यस्मिन्" इति वस्तु। ऐसैं वस्तुकी निरुक्ति कही। याका अर्थ ऐसा–जामैं गुणपर्याय बसैं सो वस्तु कहिए है। वस्तुका ग्रहणके निमित्त जो ज्ञान प्रवर्त्तै सो उपयोग है। पदार्थका ग्रहणकै निमित्तज्ञानका व्यापार वा ज्ञानका परिणमन या क्रिया-विशेष सो उपयोग कहिए–सो उपयोग दोयप्रकार है, एक साकारोपयोग, एक अनाकारोपयोग। जामैं वस्तुका आकार प्रगट होजाय सो साकारोपयोग अष्टप्रकारका ज्ञान है, ताके मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल, कुमति कुश्रुत कुअवधि नाम हैं।

बहुरि वस्तुकी सत्तामात्र अनाकारग्रहणरूप चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन अवधिदर्शन केवलदर्शन ए च्यार प्रकार दर्शनोपयोग हैं। इहां मति श्रुत अवधि मनःपर्यय ज्ञानकरिकै अपना अपना विषयविषै अन्तर्मुहूर्त्तपर्यंत अर्थकूं ग्रहण करनेके अर्थि व्यापारप्रवृत्ति करना सो ज्ञानोपयोग है। सो साकारोपयोग है। बहुरि चक्षुइंद्रियकरिकै वस्तुका सत्तामात्र सामान्यग्रहण सो चक्षुदर्शनोपयोग है।

बहुरि चक्षुविना अन्यस्पर्शनआदिक इंद्रियनतैं सत्तामात्र सामान्य ग्रहण सो अचक्षुदर्शन है तथा मनकै अचक्षुरिंद्रियपणा है यातैं अचक्षुदर्शनकरि वा अवधिदर्शनकरि जीवादिकपदार्थनिमैं विशेपकरिकै निर्विकल्प जो अन्तर्मुहूर्त्तकाल सामान्य अर्थग्रहणमैं व्यापार लक्षणरूप उपयोग सो अनाकारोपयोग है। समस्तजीवनिका उपयोग लक्षण है। सो अव्याप्ति अतिव्याप्ति असम्भवी दोषनिकरि रहित है। जो लक्षण लक्ष्यविषै भी व्यापै अर अलक्ष्यविषै भी व्यापै सो अतिव्याप्तिदोष है। जैसैं जीवका लक्षण अमूर्त्तिक कहिए तो अमूर्त्तपना तो जीवविषै भी है, अर आकाशादि अजीवविषैं भी है।

बहुरि जहां लक्ष्यका एकदेशविषै लक्षण पाइए सो अव्याप्तिदोष है। जैसैं जीवका लक्षण रागादिक कहिये तो रागादिक संसारीविषै सम्भवै, सिद्धनिविषै सम्भवै नाहीं, तातैं लक्षण अव्याप्तिदोषसहित है। बहुरि वक्ष्यतैं विरोधी लक्षण होई सो असम्भवी है। जैसैं जीवका लक्षण जडत्व कहिए सो सम्भवै नाहीं। ऐसैं त्रिदोषरहित उपयोग ही जीवका लक्षण निर्दोष है। ऐसैं वीसमी उपयोगप्ररूपणा वर्णन करी।

अब इनमैं अष्ट सांतमार्गणा है—

गाथा—उवसमसुहुमाहारे, विगुव्वियमिस्सरणअपज्जत्ते ।
सासणसम्मे मिस्से, सांतरगा मग्गणा अट्ठ ॥ १ ॥
सत्तदिणा छम्मासा, वास पुधत्तं च बार मुहुत्ता ।
पल्लासंखं तिण्हं, वरमवरं एगसमयो दु ॥ २ ॥

अर्थ—ए सात मार्गणा अन्तरालसहित हैं–उपशमसम्यक्त्व, सूक्ष्मसांपरायगुणस्थान[2], आहारक[3]शरीर, आहारकमिश्रशरीर, वैक्रियिकमिश्र, लब्ध्यपर्याप्तमनुष्य, सासादनगुणस्थान, मिश्रगुणस्थान । इस समस्त त्रैलोक्यमैं उपशमसम्यक्त्ववाला कोऊ भी जीव नहीं पाइए तो सप्तदिनपर्यंतका उत्कृष्ट अन्तर है । सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तराल छह महिनेका है । आहारक, आहारकमिश्र, पृथक्त्ववर्षका उत्कृष्ट अन्तर है । इहां पृथक्त्व नाम तीन वर्ष ऊपरि नव वर्षकै मांहि आगमपठित जानना । अर वैक्रियिकमिश्रका उत्कृष्ट अन्तर बारहमुहूर्त्त है ।

बहुरि लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यका अर सासादनगुणस्थानका अर मिश्रगुणस्थानका, इन तीनका उत्कृष्ट अन्तराल पल्यका असंख्यातवां भागप्रमाण असंख्यातवर्षका अन्तराल है । पाछैं कोऊ होय ही ऐसा नियम है । अर जघन्य अंतर एकसमयका है ऐसा जानना । नानाजीवनिकी अपेक्षा करिकैं कोऊ गुणस्थान वा मार्गणास्थानकूं छांडिकरि अन्यगुणस्थान वा मार्गणास्थानकूं प्राप्त होयकरिकैं फिर उस ही गुणस्थान वा मार्गणास्थाननैं नहीं प्राप्त होय तितनैं काल अंतर कहिए है । सो पूर्वैं कहा ही है ।

अब औरहू विशेष जानना । प्रथमोपशमसम्यक्त्वसहित देशव्रतीका नानाजीवनिकी अपेक्षा चौदह दिनका अंतर है । अर उपशमसम्यक्त्वसहित महाव्रतीका अंतर नानाजीवनिकी अपेक्षा पंद्रह दिनका अंतर है तथा द्वितीय सिद्धांतकी अपेक्षा तीस दिनका अंतर है । ऐसैं सांतरमार्गणा वर्णनकिया । अब मार्गणानिमैं गुणस्थानका संक्षेप ऐसा जानना । नरकगतिमैं आदिका च्यार गुणस्थान होय हैं । अपर्याप्त अवस्थामैं सासादन अर मिश्र विना दोय गुणस्थान हैं ।

बहुरि कर्मभूमिके तिर्यंचके पंचगुणस्थान होय हैं। अपर्याप्तमैं मिथ्यात्व सासादन दोय ही गुणस्थान होय हैं। भोगभूमिकै तिर्यंचकै आदिका च्यार गुणस्थान होय हैं। अपर्याप्तअवस्थामैं मिश्रविना तीन गुणस्थान होय हैं। बहुरि एकेन्द्रिय, बेन्द्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, असैनीपंचेन्द्रिय इनके पर्याप्तअवस्थामैं एक मिथ्यात्व ही गुणस्थान है। अपर्याप्तमैं मिथ्यात्व सासादन दोय भी होय। पंचेन्द्रियकै चौदह गुणस्थान होय हैं। पर्याप्तमैं मिश्रविना तीनगुणस्थान ही होय। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजकाय, वायुकाय, वनस्पतिकायके पर्याप्तमैं मिथ्यात्व ही एक गुणस्थान होय है। अर अपर्याप्त अवस्थामैं पृथ्वी, अप्, वनस्पति, कायके सासादन भी होय। अर तेजस्काय, वायुकायके जीवकै अपर्याप्तमैं मिथ्यात्व ही होय है।

योगनिमैं सत्यअनुभयवचनमैं तेरह गुणस्थान हैं। अर सत्यउभयवचनयोगमैं बारह आदिके गुणस्थान हैं। असत्यअनुभयमनोयोगमैं आदिके तेरह अर असत्यउभयमनोयोगमैं आदिके बारह गुणस्थान हैं। औदारिककाययोगमैं आदिके तेरह गुणस्थान हैं। औदारिकमिश्रकाययोगमैं मिथ्यात्व सासादन अविरत अर सयोगी ए च्यार गुणस्थान हैं। वैक्रियिककाययोगमैं आदिके च्यार गुणस्थान हैं। वैक्रियिकमिश्रकाययोगमैं मिश्रविना आदिके तीन गुणस्थान हैं। आहारक आहारकमिश्रविषै एक प्रमतसंयतनाम छठा गुणस्थान है। कार्मणकाययोगमैं मिथ्यात्व सासादन अविरत अर समुद्घातकी अपेक्षा सयोगी गुणस्थानहू है। अयोगी योगरहित हैं।

बहुरि तीन वेदनविषैं आदिके नव गुणस्थान ही हैं। ऊपरि वेद नहीं हैं। बहुरि अनन्तानुबन्धीकषायमैं मिथ्यात्व सासादन दोय ही गुणस्थान हैं। अप्रत्याखानावरण च्यार कषायनिमैं आदिके च्यार गुणस्थान हैं। प्रत्याख्यानावरणविषैं आदिके पांच गुणस्थान हैं। संज्वलन तीन कषाय ए आदिके नवगुणस्थानपर्यंत हैं। संज्वलनलोभ दशमगुणस्थानपर्यंत है। अर हास्यादिक छह नोकषाय अष्टम गुणस्थानपर्यंत हैं। तीन वेद नवमा गुणस्थानपर्यंत हैं।

बहुरि ज्ञानविषैं मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान इन तीन ज्ञानविषै अविरतादि बारमा गुणस्थान-

पर्यंत नवगुणस्थान होय हैं। मनःपर्ययज्ञानविषै छठा प्रमत्तगुणस्थानकूं आदि लेय बारमा गुणस्थानतांई सप्त हैं। केवलज्ञानविषै सयोगी अयोगी केवलीजिन दोय हैं। सिद्ध हैं ही। कुमति कुश्रुत विभंगविषै मिथ्यात्वादि दोय ही गुणस्थान हैं। मिश्रगुणस्थानमैं मिश्रज्ञान है।

अब संयमविषै सामायिक छेदोपस्थापन दोय संयममैं प्रमत्तादिक च्यार गुणस्थान हैं। परिहारविशुद्धिसंयमविषै छठा सातमा दोय ही गुणस्थान होय हैं। सूक्ष्मसांपरायचारित्रविषै एक सूक्ष्मसांपरायगुणस्थान होय है। यथाख्यात संयमविषै उपशांतमोहादिक च्यार गुणस्थान होय हैं। संयमासंयमविषै एकदेशसंयमगुणस्थान ही होय है। असंयमविषै मिथ्यात्वादि च्यार गुणस्थान होय हैं। दर्शनमार्गणामैं चक्षुअचक्षुदर्शनमैं आदिका बारह गुणस्थान होय हैं। अवधिदर्शनविषै अविरतादि नव गुणस्थान हैं। केवलदर्शनमैं सयोगी अयोगी दोय गुणस्थान होय हैं।

लेश्यामार्गणाविषै कृष्ण नील कापोत लेश्याविषै आदिका च्यार ही गुणस्थान होय हैं। पीत पद्म लेश्याविषै मिथ्यात्वादि सप्तगुणस्थान हैं। शुक्ललेश्याविषै मिथ्यात्वादि तेरह गुणस्थान हैं। अयोगी गुणस्थान लेश्यारहित है। भव्यमार्गणामैं भव्यकै चौदह गुणस्थान हैं, अभव्यकै एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही है। सम्यक्त्व मार्गणाविषै उपशमसम्यक्त्वविषै अविरतादि आठ गुणस्थान हैं। क्षयोपशमसम्यक्त्वविषै अविरतादि च्यार गुणस्थान हैं। क्षायिकसम्यक्त्वविषै अविरतादि अयोगीपर्यंत तथा सिद्धहू जानने। संज्ञीमार्गणाविषै संज्ञीकै मिथ्यात्वादि बारह गुणस्थान हैं। असंज्ञीकै पर्याप्तमैं एक मिथ्यात्व अपर्याप्तमैं सासादनहू होय है।

आहारकमार्गणामैं आहारक अवस्थामैं मिथ्यात्वादि तेरह अनाहारककै मिथ्यात्व सासादन अविरत सयोगी अयोगी पंचगुणस्थान होय हैं। ऐसैं श्री गोमटसारसिद्धांतकी आज्ञाप्रमाण वीसप्ररूपणाका वर्णन अतिसंक्षेपतैं किया।

इहां विशेष जाननेका इच्छुक होय सो मूलग्रंथ गोमटसारजीकी टीकातैं जानहु। इहां प्रयोजन जानि

मंदज्ञानीनिके गुणस्थानादि प्ररूपणाका ज्ञान होनेके अर्थि हमारी बुद्धिप्रमाण लिख्या है।

बहुतज्ञानी होय सो इहां प्रमादके वसतैं वा अज्ञानके वसतैं जो भूल चूकि लिख्याहोय सो शुद्ध करदीज्यो। इहां प्रसंग जायगांजायगां गुणस्थानादिकनिका आवै। यातैं मन्दज्ञानी जानिले तो कथन समझिमैं नीका आजाय यह प्रयोजन जाणि लिख्या है।

अब-बन्धपदार्थ कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा वंधहेतवः ॥ १ ॥

अर्थ—मिथ्यात्व अविरत प्रमाद कषाय योग ए पंच वन्धके हेतु कहिए कारग हैं। तहां अतत्त्व-श्रद्धानरूप जो मिथ्यादर्शन सो दोयप्रकार है। एक तो मिथ्यात्वकर्मके उदयतैं परके उपदेशविना ही तत्त्वार्थका श्रद्धानका अभावरूप आत्माका परिणाम सो नैसर्गिकमिथ्यात्व है। सो एकेंद्रियादिक सर्व संसारी जीवनिकै अनादितैं प्रवर्तैं है। याहीकूं अगृहीतमिथ्यात्व कहिए है।

बहुरि जो मिथ्यात्व खोटे मिथ्यादृष्टि अन्यपुरुषनिके उपदेशतैं प्रवर्त्तैं तथा मिथ्याशास्त्रका श्रवणतैं मिथ्यागुरुके उपदेशतैं प्रवर्त्तैं सो परका उपदेश है निमित्त जाकूं ऐसा गृहीतमिथ्यात्व कहिए है सो बड़ा कठिन है। इहां मिथ्यात्व कह्या सो एकांत विपरीत संशय विनय अज्ञान भेदकरि पंचप्रकार है। तिनमैं अनेकधर्मरूप जो वस्तु तिस वस्तुका एकधर्मग्रहणकरि सर्वथा एकांतरूप ही निश्चय करै सो एकांत-मिथ्यादृष्टि है।

ताका विशेष ऐसा जो-वस्तुकूं अस्तिरूप ही कहैं, वा सर्वथा नास्तिरूप ही कहैं, सर्वथा एकरूप ही कहैं, सर्वथा अनेकरूप ही कहैं, सर्वथा नित्य वा अनित्य ही कहैं, गुणपर्यायनितैं सर्वथा अभिन्न ही कहैं। नयकी अपेक्षाविना सर्वथा वस्तुका स्वरूप कहना सो एकांतमिथ्यात्व है। तिनमैं कालवादी तो सर्वथा कालहीकूं कर्त्ता मानै हैं। जो काल ही समस्तकूं उपजावै है। काल ही समस्तका नाश करै है। काल ही निद्राकूं प्राप्त करै है। काल ही जागृत करै है। काल ही फलपुष्पादिकरि युक्त करै, काल ही सयोग वियोग

करै है। काल ही समस्तकूं जीर्ण करै है। तातैं समस्त जगतकी रचनाका कारण काल ही है।

ऐसैं कालहीका सर्वथा एकांत करै हैं। कितने ही ईश्वरका एकांत करै हैं। आत्मा तो अज्ञानी है, अनाथ हैं। आत्माके सुख, दुःख, जीवन, मरण, लाभ, अलाभ, ज्ञानीपणा, पापीपणा, धर्मीपणा, स्वर्ग-गमन, नरकगमन समस्त ईश्वर करै है। तथा संसारका कर्त्ता भी ईश्वर है, हरताहू ईश्वर ही है। ईश्वरतैं ही समस्तकी उत्पत्ति प्रलय है। ऐसैं ईश्वरकी कल्पनाकरि सर्वथा एकांत करै हैं।

बहुरि कितने ही आत्मवादी समस्तकूं एक आत्मा ही कहै हैं। जो आत्मा जगतमैं एक ही है सो सर्वव्यापी है, महान् है, पुरुष है, देव है, सर्वांगनिगूढ है, सचेतन है, निर्गुण है, उत्कृष्ट है इत्यादि स्वरूप आत्माकूं सर्वथा प्ररूपै हैं। बहुरि कोऊ भावीकूं ही प्रधानकरि कहै हैं। जो जाकै जैसा होना है सो नियमतैं होयगा तिसकूं इंद्रहू अन्यप्रकार करनेकूं समर्थ नाहीं। ऐसैं भवितव्यताका ही एकांत करै हैं।

बहुरि कोऊ स्वभावहीका एकांत करै हैं। जो कंटकांनै तीक्ष्ण कौन करै हैं। मयूरनैं चित्रविचित्र कोन करै हैं। कमलनिकों सुगंध कौन करै हैं। मृग, शूकर, सिंह, व्याघ्र, सर्प, पक्षी इत्यादिकनिके भिन्न भिन्न रूप कौन करै, इनको स्वभाव ही कारण कहै हैं।

ऐसैं स्वभावका सर्वथा एकांत करैं हैं। बहुरि केई सर्वथा पुरुषार्थतैं ही कार्यकी सिद्धि कहै हैं। केई पुरुषार्थरहित दैवबल ही कार्यकी सिद्धि कहै हैं। बहुरि केई संयोगतैं ही कार्यकी सिद्धि कहै हैं। संयोग-विना कोऊ कार्य सिद्ध नहीं होइ सकै हैं, ऐसैं अपेक्षारहित जितने नयवादी हैं ते सर्वथापणातैं एकांत मिथ्यात्वरूप हैं, बहुरि अहिंसादिक समीचीन धर्मका फल स्वर्गादिकका सुख है। ताकूं हिंसारूप यज्ञादि-कका फल मानना सो विपरीत मिथ्यात्व है। अर जो हिंसा ही धर्मका कारण है तो मत्स्यनिके मारनेवाले धीवरादिक अर पक्षीनिके मारनेवाले शाकुनिक अर सूकरादिकनिके मारनेवाले सौकरादिकनिकै धर्मकी प्राप्ति होनेका प्रसंग आवै।

तातैं हिंसातैं धर्म कदाचित् नहीं होय है। अर जो या कहो हो, जो यज्ञविषै पशुका मरण पापकै

अर्थि नहीं है अर अन्यमैं पाप अर्थि ही है ऐसा कहना भी योग्य नहीं। दोऊ स्थानमैं मारण है सो तो दुःखका कारण समान ही है। यज्ञबाहिर जैसा मरणमैं दुःख होय तैसा ही यज्ञमैं होय। अर जो या कहो जो स्वयंभू स्वयमेव यज्ञके अर्थि ही पशु रचे हैं तातैं यज्ञमैं मारनेमैं पाप नहीं है, तो पशुनिऊपरि चढ़ना क्रयविक्रयादि करना ये अयोग्य हैं। जो भगवान् तो यज्ञवास्तैं रचे अर फिर चढना सो भगवान्‌की आज्ञातैं पराङ्मुख भया।

बहुरि जो ईश्वर अपने सेवकादिकनितैं यज्ञमैं पशु मराय स्वर्ग देहै तो विना यज्ञ ही स्वर्ग क्यों नहीं पहुंचावै। अर जो कहोगे करनीविना स्वर्ग कैसैं दे, ताकूं कहिए—जो करनी करावनेवाला भी तो ईश्वर ही है, ऐसी खोटी करनी कराय स्वर्ग देहै तो परोपकारादि भली करनी कराय स्वर्ग क्यों नहीं देवै? अर जो कहोगे जैसैं मंत्रका सामर्थ्यतैं दीया विष है सो मरणका कारण नहीं होय है। तैसैं वेदोक्तमंत्रनिकै संस्कार-पूर्वक पशुका मरण पापका कारण नहीं है। सो यह कहना भी नहीं बनै है। जातैं रज्जु इत्यादिकविना ही मंत्रका प्रभावतैं यज्ञमैं स्वयमेव पशु आय पडै तदि तो मन्त्रका प्रभाव ही मानिए सो है नाहीं।

बहुरि मंत्रतैं हू मारिए तोहू जैसैं शस्त्रादिककरि प्राणीनिकूं मारनेवालेकै अशुभ अभिप्रायतैं पापका बन्ध होय है तैसैं ही मंत्रकरि मारनवालकहू पापका ही बन्ध होय है। बहुरि स्त्रीनिमैं लम्पटी क्षुधा तृषा-दिकसहितकूं तथा कामी क्रोधीनिकूं परमात्मा परमेश्वर मानना। संसारमैं उत्पन्न जीव हैं तिनका उपकार अपकार प्रलय करनेवालेनिकूं कृतकृत्य मानना तथा ग्रन्थसहितकूं निग्रन्थ मानना। केवलीकूं कवलाहारी मानना। पंचभर्त्तारीकूं सती मानना। गृहस्थकै केवलज्ञानकी उत्पत्ति मानना। इत्यादिक विपरीत मिथ्या-त्वकी जाति हैं।

बहुरि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकूं मोक्षमार्ग कह्या सो ए ही मोक्षमार्ग हैं कि अन्य, समस्तमततिनिमैं भिन्न भिन्न मार्ग परूपैं हैं सो परस्पर वचनमैं विरुद्धता कोऊ प्रत्यक्ष जाननेवाला सर्वज्ञ है नहीं, शास्त्र परस्पर मिलै नहीं तातैं कोऊ निश्चयतैं निर्णय नहीं होय सकै है इत्यादिक अभिप्राय सो संशयमिथ्यात्व है।

बहुरि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतप संयमध्यानादिकनिकी अपेक्षारहित गुरुनिके पादपूजनादिक विनयकरि ही मुक्ति मानै सो विनयमिथ्यात्व है। तथा सर्व देवनिका, सर्वशास्त्रनिका, सर्वमतनिकूं समस्त भेषीनिकूं समान मानि समस्तका विनय करै अर विनयमात्रतैं ही अपना कल्याण होना मानै सो विनयमिथ्यात्व है। बहुरि जो हित अहित परीक्षारहित परिणाम सो अज्ञानमिथ्यात्व है। जाकै ऐसा विचार होइ जो स्वर्ग तथा मुक्ति नरक कौन देख्या, स्वर्गका समाचार कोनकै आया, पापपुण्य कहां लगै, अर पाप पुण्य कहा वस्तु है, परलोककों कौन जानै, कौनकै स्वर्गतैं समाचार आया, स्वर्ग नरक समस्त कहनेमात्र हैं। इहां ही स्वर्ग नरक है, सुख भोगै सो स्वर्ग है, दुःख भोगै सो नरक है। अर हिंसाकूं पाप कहै हैं, अर दयाकूं धर्म कहै हैं सो कहनेमात्र है, कोऊ ठिकाना हिंसारहित नहीं है। सबमैं हिंसा है, कहू पांव धरनेकूं ठिकाना नहीं है। अर ए भक्ष्य हैं ए अभक्ष्य हैं, ऐसा विचार भी निरर्थक है। एकेंद्रिय वृक्ष अन्नादिक भक्षण करनेमैं अर मांसभक्षण करनेमैं तफावत नाहीं अर दोऊनिमैं ही जीवहिंसा समान है, अर जीवनिकै जीवनिका ही आहार भगवान् बताया है। अर जगतमैं समस्त वस्तु खावनेभोगनेकूं ही है इत्यादिक अभिप्रायरूप अज्ञानमिथ्यात्व है। ऐसैं तो मिथ्यात्वको बन्धका कारण कह्या।

बहुरि छह कायके जीवनिकी विराधनाका त्याग नहीं करना अर पांच इन्द्रिय अर छठा मन इनिकूं विषयनितैं नहीं रोकना सो बारह प्रकार अविरत हैं सो कर्मबन्धका कारण हैं। बहुरि भावशुद्धि, कायशुद्धि, विनयशुद्धि, ईर्यापथशुद्धि, भैक्ष्यशुद्धि, शयनासनशुद्धि, प्रतिष्ठापनशुद्धि, वाक्यशुद्धि ऐसैं अष्टप्रकार शुद्धि अर दशलक्षण धर्म इनविषै उत्साहरहित परिणाम होइ मंदोद्यमी होइ सो प्रमाद है। अथवा स्त्रीकथा, राजकथा, भोजनकथा, देशकथा ऐसैं च्यार विकथा अर क्रोध, मान, माया, लोभ ए च्यार कषाय अर पंच इन्द्रिय अर निद्रा अर स्नेह ऐसैं प्रमादके पनरह भेद हैं। इनमैंतैं कोऊ प्रमादमैं ऐसा लीन होइ जो आपकी अर परकी हेयकी उपादेयकी समालि भूलि असावधान होजाय सो प्रमाद है। सो ए प्रमाद कर्मबन्धके कारण हैं।

अर पचीस कषाय अर मन वचन कायके पन्द्रह योग ए समस्तहू अर भिन्नभिन्नहु कर्मबन्ध होनेकूं कारण हैं। तिनमैं मिथ्यात्वगुणस्थानमैं मिथ्यादर्शनादि पंच बन्धके कारण हैं। अर सासादन मिश्र अविरत इन तीन गुणस्थाननिमैं मिथ्यात्वविना अविरत प्रमाद कषाय योग ए च्यार बन्धके कारण हैं। अर देशव्रत है सो संयतासंयत है, इसमैं विरतपणाहू है अर अविरतपणाहू है। तातैं च्यारों ही बन्धका कारण हैं।

बहुरि प्रमत्तसंयतगुणस्थानमैं प्रमाद कषाय योग ए तीन ही बन्धके कारण हैं। बहुरि अप्रमत्तादि च्यार गुणस्थाननिमैं कषाय अर योग दोय ही बन्धके कारण हैं। बहुरि उपशांतकषाय क्षीणकषाय सयोग केवली इन तीन गुणस्थाननिमैं केवल योग करि ही कर्मका बन्ध होय है। बहुरि अयोगकेवली बन्धरहित है।

ऐसैं संसार अवस्थामैं आत्मा अनादिकालका कर्मरूप पुद्गलस्कंधनितैं मिलरह्या तातैं संसारअवस्थामैं कथंचित् मूर्तिक कहिए है। तातैं नवीन कर्मका बन्ध होता जाय है, पुरातन निर्जरता जाय है। जैसैं सुवर्ण अर पाषाणकै अनादिका सम्बन्ध है तैसैं जीवपुद्गलकै अनादिहीका सम्बन्ध है। जब रत्नत्रयकी परिपूर्णता होइ तदि भिन्नभिन्न होय है। ऐसैं बन्धकै कारण कहे।

अथ—बन्धके स्वरूपकूं कहै हैं—

सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बंधः ॥ २ ॥

अर्थ—जीव है सो कषायसहितपणातैं कर्मयोग्य पुद्गलनिकूं ग्रहण करै है सो बन्ध है। समस्तलोक ऊपरि नीचैं सर्वतरफतैं पुद्गलनिकरि गाढा गाढा भर्‍या है। ते पुद्गल अनेकप्रकार परिणामनकी योग्यताकूं प्राप्त होरहे हैं। तिनमैं अनन्तानन्त पुद्गलपरमाणु कर्म होनेयोग्यहू समस्तलोकमैं भरे हैं। जहां आत्माके प्रदेश हैं तहांहू तिष्ठै हैं।

जब यह आत्मा योगद्वारै सकंप होय कषायसहित होय है तदि समस्त तरफतैं समस्त आत्माके प्रदेशनिकरि कर्मयोग पुद्गलनिका ग्रहण होना सो बंध है। जैसैं तप्तायमान लोहका गोला जलके मध्य

समस्त तरफतैं जलकूं ग्रहण करै है । तैसैं योगकषायनिकरि कर्मयोग्य पुद्गलनिका ग्रहण होय है । बहुरि जैसैं उदरविषै जठराग्निका आशयकै अनुसार आहारका खल रस भागादिरूप परिणमन होय है, तैसैं तीव्र मंद मध्यकषायके आशयकै अनुकूल कर्मनिका स्थितिबंध अर अनुभागबंध होय है । जातैं मिथ्यादर्शनादिकका आश्रयतैं आर्द्र जो आतमा ताकै सर्वतरफनैं योगनिके विशेषतैं सूक्ष्म एक क्षेत्रमैं अवगाहकरि तिष्ठते अनंतप्रदेशरूप कर्म होनेके योग्य ऐसे पुद्गलनिका आत्मातैं एकक्षेत्रावगारूपकरि परस्पर मिलना सो बंध है । ऐसैं कहिए हैं जैसैं भाजनविशेषमैं क्षेपे जे नानारस बीज फल फूल तिनका मदिराभाव परिणाम होय है, तैसैं ही आत्माविषै तिष्ठते पुद्गलनिका योग कषायके वशतैं कर्मभावकरि परिणमन जानना योग्य है ।

ऐसैं कार्मणवर्गणानिका आत्मातैं विभाग रहित एकत्वपनाकरियुक्त होना सो बन्ध है । ज्ञान, दर्शन, अव्याबाध, श्रद्धान, अवगाहन, सूक्ष्मता, अगुरुलघुत्व, अनन्तवीर्य, लक्षण पुरुषका सामर्थ्यकूं बांधै है, रोकै है तातैं बन्ध कहिए है । जैसैं कोठ्यारमैं धानका निकलना भी होय अर प्रवेश करना भी होय अर संचय भी बन्या रहै है तैसैं सिद्धराशिके अनन्तवैं भाग अर अभव्यराशितैं अनन्तगुणा ऐसा मध्य अनन्तप्रमाण कर्मपरमाणु समयसमय नवीन बन्धै हैं अर इतना ही निर्जरै हैं ताहि समयप्रबद्ध कहिए है । अर ड्योढगुणहानिगुणित समयप्रबद्धमात्र सासतो सत्तामैं कर्म मौजूद रहै है सो याका हिसाब विस्तारसहित गोमटसारजीमैं है तहांतैं जानना, इहां लिख्यां कथनी विशेष है ग्रन्थ बन्धै है ।

अब—बंधका प्रकार कहै हैं—

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः ॥ ३ ॥

अथ—प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध, प्रदेशबंध ऐसैं बंध च्यार प्रकार हैं । तहां छह प्रकृति तो स्वभावकूं कहिए है । जैसैं निंबका स्वभाव कडूक है, सांठाका स्वभाव मीठा है, तैसैं समस्त कर्मपुद्गलप्रकृति जो अपना स्वभाव तिसकरि सहित है । ज्ञानावरणका प्रकृति ज्ञानकूं आच्छादन करनेकी है । जैसैं देवताका

मुखऊपरि वस्त्र होय तदि देवताकी प्रतिमा है ऐसा सामान्य तो जाण्याजाय परंतु विशेष रंग रूप मुख हस्त पाद नेत्र नासिका नहीं जानी जाय ऐसा ज्ञानावरणकर्म है सो समस्त वस्तुकूं जानने नहीं देवै है।

बहुरि दर्शनावरणकी प्रकृति है सो दर्शनकूं आच्छादन करै है। जैसैं द्वारपाल द्वारमांही प्रवेश ही नहीं करनेदेय यातैं सामान्य हू नहीं जान्या जाय है। बहुरि वेदनीयकी कहा प्रकृति है—सुखदुःखकूं उत्पन्न करनेकी है। जैसैं मधुकरि लिप्त खड्गकी धारा है। मोहनीय कर्मकी कहा प्रकृति है—मद्य धत्तूर मक्खन कोद्रवकी ज्यों मोहोत्पादनता अचेतनता करता है। आयुकी कहा प्रकृति है—जैसैं वेडीमैं खोडेमैं पग जाका ऐसा पुरुष नहीं निकलिसकै तैसैं भवकूं धारणकरि आयु पूर्ण भएविना भवमैंतैं नहीं निकसने देहै।

बहुरि नामकर्मकी कहा प्रकृति है—चित्रकारी जो नरनारकादि नानाप्रकार शरीरादि करनेरूप है। बहुरि गोत्रकर्मकी कहा प्रकृति है—कुंभकारीकी ज्यों उच्च नीचपणानै प्राप्त करना है। अंतरायकी कहा प्रकृति है—भण्डारीकी ज्यों देनेलेनेमैं विघ्न करना है। ऐसैं स्वभावकूं प्रकृति कहिए है। बहुरि जे बंधकूं प्राप्त भई प्रकृति ते जितने कालतांई अपने स्वभावकूं नाहीं छांडै सो स्थिति है। जैसैं ज्ञानावरणका स्वभाव ज्ञान प्रगट नहीं होनेदेनेरूप है सो तिस रूप स्वभावकूं जबतांई नहीं छांडै सो स्थितिबन्ध है।

बहुरि जैसैं छेली गौ भैंस इनके दुग्धमैं तीव्र मंदादिभावकरिकैं रसविशेष है तैसैं कर्मप्रकृतिमैं तीव्र मंद रस देनेकी शक्ति सो अनुभव है याहीकूं अनुभागबंध कहै हैं। बहुरि कर्मभावरूप परिणए पुद्गलस्कंध तिनका परमाणुके प्रमाणकरि निश्चय सो प्रदेश है। इनि पुद्गलनिके प्रदेशनिका जीवकै प्रदेशनि-करि मिलना सो प्रदेशबंध है। ऐसैं बंधके च्यार भेद हैं। इहां सूत्रमैं विधिशब्द प्रकारवाची है तातैं ए समस्त प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेश ए बन्धके प्रकार हैं तहां प्रकृतिबन्ध अर प्रदेशबन्ध ये दोय तो योगनिके निमित्ततैं होय हैं। अर स्थितिबन्ध अर अनुभागबन्ध ए दोऊ कषायनिके निमित्ततैं होय हैं।

इन योगकषायनिकी हीनअधिकतातैं बन्धकैहू विचित्रपना है। इहां कोऊ आशङ्का करै कि पुद्गल तो जड है, अचेतन है, इनकै प्रकृत्यादिरूप अनेकप्रकार परिणमन अर रस देनेका सामर्थ्य कैसैं सम्भवै,

ताकूं कहिए हैं–जो अचेतन जड पुद्गलनिकै तो घड़ा सामर्थ्य है। जैसैं उदरमैं प्राप्त भया भोजनरूप पुद्गल सो एकक्षणमात्रमैं रुधिर मांस हाड चाम वीर्य मल मूत्र केश नख वात पित्त कफादिक नानाप्रकार परिणमनकूं प्राप्त होय है। अर क्रमतैं अपना प्रभाव प्रगटकरि भोगवै है, वेदनाकूं दूरि करै है तथा बहुतकाल ताईं वेदनाकूं बधावै है। तथा औषधादि खाया हुवा बहुतवर्षपर्यंत अपना भला बुरा रस देहै अथवा औषधभक्षण किया हुवा बहुतकाल रस नहीं देहै। अर कालांतरमैं अपना उदयकै योग्य आहारपान तथा क्षेत्र कालादिकनिका निमित्त पाय उदय आवै है, तैसैं कर्मपुद्गलनिका भी सामर्थ्य जानना।

बहुरि श्वानविषादिक तथा पारो हींगलू मृगांक तामेश्वरादिक बाह्यनिमित्त मिले उदयकूं प्राप्त होय हैं। निमित्त नहीं मिलै तेत शरीरमैं मिल्या रहै अपना रस नहीं देवै तैसैं कर्मपुद्गलनिकाहू स्वभाव जानना। बाह्यनिमित्त मिले रस देवै हैं। तथा मणि मंत्र औषधादिक तथा वचनपुद्गलादिक ए नानाप्रकार सामर्थ्यरूप प्रगट देखिए हैं, तैसैं कर्मपुद्गलनिका सामर्थ्य जानहु।

अब–प्रकृतिबन्ध मूल उत्तरके भेदतैं दोयप्रकार है। तिनमैं मूलप्रकृति कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रांतरायाः ॥ ४ ॥

अर्थ—आद्य कहिए प्रथम जो प्रकृतिबन्ध ताके ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय मोहनीय आयु नाम गोत्र अन्तराय ए अष्ट भेद हैं। कर्मप्रकृतिनिका अष्ट प्रकार स्वभाव है। प्रकृति कहो शील कहो वा स्वभाव कहो, जो कारणांतरकी अपेक्षा नहीं करै ताकूं स्वभाव कहिए है। जैसैं अग्निका ऊर्ध्वगमनस्वभाव है। पवनका तिर्यग्गमनस्वभाव है। जलका अधोगमनस्वभाव है। अर स्वभाव है सो कोऊ स्वभाववान्की अपेक्षा करै है। यातैं ये ज्ञानावरणादिक कौनका स्वभाव है, ऐसैं कहो तो ये जीव अर कर्म दोऊनिका स्वभाव हैं। तिनमैं आत्माका स्वभाव तो ज्ञान है रागादिक स्वभाव नहीं परंतु मोहनीयके निमित्ततैं ज्ञानका ज्ञानस्वभावहू राग द्वेष मोहरूप होइ विभावरूपपरिणतिनैं प्राप्त होय है। जैसैं स्फटिकमणि डाकके संयोगतैं विकारी हुवा दीखै तैसैं विभावपरिणमनशक्तिहू ज्ञानहीकी है तातैं यो ज्ञान अज्ञानीपणानैं प्राप्त

होइ रागादिरूप परिणतिनै प्राप्त होरह्या है। अर रागादिकनिका उत्पादपणा कर्मका स्वभाव है।

अब इहां कोऊ कहै—ऐसैं तो इतरेतराश्रय दोष आया सो नहीं है। जातैं इनकै सादिसम्बन्ध होइ जब इतरेतराश्रय दोष आवै। जीवकर्मकै तो कनकपाषाणमैं सुवर्ण अर मलका सम्बन्धकी ज्यों अनादि-सम्बन्ध है। याहीतैं अमूर्तजीव मूर्तिककर्मकरि बन्धै है। अर जो या कह्यो, जीवकर्मका अस्तित्व कैसैं सिद्ध है ताकूं कहै हैं- अहं सुखी, अहं दुःखी इत्यादि अनुभवतैं तो आत्माका अस्तित्व स्वतःसिद्ध है। अर एक धनवान् एक दरिद्र इत्यादि विचित्रपरिणामनतैं कर्मका अस्तित्वकैहू स्वतःसिद्धपना है।

ज्ञानकूं जो आवरण कहिए आच्छादन करै सो ज्ञानावरण है। दर्शनकूं आवरण करै सो दर्शना-वरण है। जो वेदिए सो वेदनीय है। सुखदुःखका उत्पादकपणा वेदनीयकर्मका कार्य है। जो मोहित करै जाकरि मोहनै प्राप्त होय सो मोहनीय है। जिसकरि नरकादिकभवनिकूं प्राप्त होइ सो आयु है। नारकादि नानारूप करै सो नाम है। जाकरि उच्च नीच कहाइए उच्चनीचपणानै प्राप्तकरै सो गोत्र है। दातार दे याचकादिकनिकै मध्य प्राप्त होइ विघ्न करै सो अन्तराय है। कोऊ या कहै–जो हित अहितकी परीक्षाका अभाव करनेतैं ज्ञानावरण अर मोह ए एक ही दीखै हैं ताकूं कहिए है। इनकै जुदापणा है। वस्तुका जैसा स्वरूप है तैसा जाणै तोहू यह ऐसै ही है इस प्रकार श्रद्धानका नहीं उपजने देना सो मोह है। अर वस्तुकूं जानने नहीं दे सो ज्ञानावरण है।

अब कोऊ कहै–पुद्गलद्रव्य एक है तिसके आवरण करना अर सुख दुःखादिककूंहू उपजावना ऐसैं अनेककार्य करनेमैं विरोध है। ताकूं कहिए ए दोष नहीं है। जैसैं एक अग्निकै दग्धकरना पकावना प्रता-परूप होना प्रकाशकरना इत्यादि अनेककार्य विरोधकूं नहीं प्राप्त होय है, तैसैं एकपुद्गलद्रव्यकेहू आवरण अर सुखदुःखादिका निमित्तपणा विरोधनै नहीं प्राप्त होय है। बहुरि कर्मके भेद हैं ते शब्दकी अपेक्षा तो एकतैं लेय संख्यात जानने। सामान्यकरि तो कर्मबन्ध एक है। जैसैं सेना एक है। वन एक है। अर विशेषकी अपेक्षा सेनामैं हस्ती घोडा स्वामी सेवकादि अनेक भेद हैं। वनमैं अशोक बकुल तिलकादि अनेक भेद हैं।

तैसैं ही विशेषकी अपेक्षातैं पुण्यपापके भेदतैं दोय प्रकार है। अनादिसांत, अनादिअनन्त सादिसांत ऐसैं तीन भेद हैं। अथवा भुजाकार, अल्पतर, अवस्थित ऐसैं हू तीन भेद हैं। प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेशतैं च्यार प्रकार हैं। द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव रूप निमित्तके भेदतैं पंच प्रकार हैं। षट्जीवनिकायके भेदतैं छह प्रकार हैं। राग द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ रूप हेतुके भेदतैं सप्त प्रकार हैं। ज्ञानावरणादि विकल्पतैं अष्ट प्रकार हैं। ऐसैं संख्येयभेद हैं। अर अध्यवसाय स्थानके भेदतैं असंख्येय भेदरूप हैं। पुद्गल परमाणुरूप स्कंधके भेदतैं अनन्त भेदरूप हैं तथा अविभागपरिच्छेदनिकी अपेक्षा अनन्त भेद हैं।

कर्म दोय प्रकार हैं। तिनमैं ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय ए च्यार कर्म हैं ते जीवका ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सम्यक्त्व, चारित्र, दान, लाभादिगुणनिकूं घातै हैं, नष्ट करै हैं तातैं घातिसंज्ञाकूं धारै हैं। अर आयु नाम गोत्र वेदनीय ए च्यार कर्म ज्ञानावरणादिककी ज्यों जीवका गुणनिका घात नहीं करै हैं तातैं अघातिसंज्ञाकूं धारै हैं।

अब इन अष्टकर्मनिके कहनेका अनुक्रमकी उत्पत्तिकूं कहै हैं- तहां ज्ञान है सो आत्माके अधिगमका निमित्त है। तातैं प्रधान है तातैं आदिमैं ज्ञानावरण कह्या। अर दर्शन अनाकारोपयोग है तातैं अल्प है, अप्रगटकूं ग्रहण करै है तातैं पाछैं कह्या परन्तु अर्थके ग्रहण करनेकूं कारण तातैं अन्यतैं उत्कृष्ट है अधिक है।

बहुरि वेदना ज्ञानदर्शनतैं अव्यभिचाररूप है, ज्ञानदर्शनकूं होतै सुखदुःखकूं वेदिए है, अनुभव करिए है। ज्ञानदर्शनविना घटपटादिकनिकै वेदना नहीं होइ है। यद्यपि वेदनीयकर्म अघातिनिमैं है तथापि मोहनीयके बलतैं जीवकूं घातै है तातैं घातिनिकै मध्य मोहनीयकर्मकी आदिमैं वेदनीयकूं कह्या है। जातै मोहनीयकर्मका भेद जो रति अरति प्रकृतिका उदयका बलकरि जीवकै सुखदुःखरूप साता असाताका निमित्त इंद्रियविषयनिके अनुभवकरि जीवकूं घातै है तातैं मोहनीयका आदिमैं वेदनीय कह्या।

बहुरि आयु कह्या, आयुका बलकरि ही नामकर्मका कार्यभूत जो चतुर्गतिरूप भव ताकी अवस्थिति

है तातैं आयुकर्मके पीछैं नामकर्म कह्या। बहुरि गोत्र कह्या सो नामकर्मतैं प्राप्तभया जो गतिशरीरादिक ताकै आश्रय ही ऊंचा नीचा कहावै है तातैं नामके पाछैं गोत्र कह्या।

बहुरि अन्तराय कह्या सो यद्यपि अन्तरायकर्म घातिया है तथापि अघातियाकी ज्यों जीवका समस्त गुण घातिवेको समर्थ नहीं तातैं अन्तमें कह्या है। अर नाम गोत्र ए दोऊ कर्म वेदनीयका निमित्तपणाकरि अघातीनिकै पाछैं कह्या। ऐसैं इनका अनुक्रमका प्रयोजन जानना। ऐसैं मूलप्रकृतिबन्ध अष्टप्रकार कह्या।

अब उत्तरप्रकृतिबन्धका भेद कहै हैं—

पंचनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपंचभेदा यथाक्रमं ॥ ५ ॥

अर्थ—मूलप्रकृति अष्ट कही तिनमैं ज्ञानावरणके पंच भेद हैं। दर्शनावरणके नव भेद हैं। वेदनीयके दोय भेद हैं। मोहनीयके अठाईस भेद हैं। आयुके च्यारि भेद हैं। नामके बीयालीस भेद हैं। गोत्रके दोय भेद हैं। अन्तरायके पांच भेद हैं। ऐसैं भेदरूप उत्तरप्रकृतिबन्ध कह्या। अब ज्ञानावरणका पांच भेद कहै हैं—

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानां ॥ ६ ॥

अर्थ—मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण ऐसैं ज्ञानावरणके पांच भेद जानना। इहां प्रश्न—जो अभव्यकै मनःपर्ययज्ञान अर केवलज्ञानके प्राप्तहोनेकी सामर्थ्य है कि नाहीं है। जो है तो अभव्यपणाकी उत्पत्ति नहीं बणि सकै है। अर जो नहीं है तो वाकै दोऊ ज्ञानका आवरण कहना निरर्थक है। ताका उत्तर कहै हैं—

द्रव्यार्थिकनयकरिकै अभव्यकैहू दोऊ ज्ञानकी शक्ति विद्यमान है यातैं अभव्यकै मनःपर्ययज्ञान अर केवलज्ञान दोऊ हैं। अर पर्यायार्थिकनयकरि अभव्यकै दोऊ ज्ञान नहीं हैं। जातैं कोऊ कालमैं भी इनकी व्यक्ति नहीं होइ शक्तिमात्र ही है। याहीतैं सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र अभव्यकै नहीं होय है।

जैसैं सुवर्णकी खानिमैं कनकपाषाणहू है अर अन्धक पाषाणहू है। अर कनकपाषाणमैं सुवर्ण है अर अन्धकपाषाणमैं हू सुवर्ण है। परंतु कोऊ कालमैं सुवर्णपाषाणकूं तो बाह्य अग्न्यादिक परिपूर्णसामग्री मिलेतैं सुवर्ण भिन्न होजाय किट्टिका भिन्न होजाय। अर अंधकपाषाणकूं बाह्यसामग्रीमिलतैं हू सुवर्ण अर किट्टिका भिन्न होय ही नहीं तैसैं भव्य अभव्यपणा जानना। ऐसैं पंचप्रकार ज्ञानावरण कह्या याका उदयकरि जीवकै जाननेकी सामर्थ्यका अभाव होय है। स्मृति जो देखी सुणी अनुभवी वस्तु ताका विस्मरण होय है। धर्मश्रवणमैं उत्सुकताका अभाव होय है। ज्ञानका तिरस्कारजनित अनेक प्रकार दुःखकूं अनुभवै है। ऐसैं ज्ञानावरणके भेद कहे।

अथ—दर्शनावरणके नव भेद कहै हैं—

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥ ७ ॥

अथ—चक्षुदर्शनावरण अचक्षुदर्शनावरण अवधिदर्शनावरण केवलदर्शनावरण निद्रा निद्रानिद्रा प्रचला प्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्धि ऐसैं दर्शनावरणके नव भेद हैं। जाके उदयतैं आत्मा चक्षु आदि इंद्रियरहित एकेंद्रिय वा विकलेंद्रियपणानैं प्राप्त होइ तथा पंचेंद्रियपणो भी होइ तोहू इंद्रियनिमैं अवलोकनसामर्थ्य नहीं होइ सो चक्षु अचक्षुदर्शनावरण है। नेत्रद्वारै वस्तुका सामान्यग्रहणकूं नहीं होनेदे सो चक्षुदर्शनावरण है। चक्षुविना अन्य इंद्रियद्वारै अर्थका सामान्यग्रहणकूं नहीं होनेदे सो अचक्षुदर्शनावरण है। अवधिदर्शनद्वारै वस्तुका सामान्यग्रहणका निरोध करै सो अवधिदर्शनावरण है। केवलदर्शनद्वारैकरि समस्तदर्शन नहीं होनेदे सो केवलदर्शनावरण है। मद खेद ग्लानि दूरि करनेकूं शयनकरना सो निद्रा है तथा निद्रादर्शनावरणकर्मका उदयकरि गमन करताहू खडा रहिजाय अर बैठिजाय पडिजाय है।

बहुरि जो निद्राका ऊपराऊपरि प्रवृत्ति होइ सो निद्रानिद्रा है। जातैं निद्रानिद्रादर्शनावरणकर्मका उदयकरि जीव नेत्रनिकूं उघाडि नहीं सकै हैं।

बहुरि जो शोक खेद मंदादिकतैं उपजी निद्रा तिसकरि पांचों इंद्रियनिका व्यापारका अभाव

होजाय अंतरंगमैं प्रीतिका बलकूं कारण बैठ्याहुवाकैहू नेत्रनिमैं शरीरमैं विक्रियकूं जणावै सो प्रचला है। प्रचलादर्शनावरणके उदयकरि जीव है सो नेत्रनिकूं किंचित् उघाडिकरि शयन करै है। अर सूताहू किंचित् जानै है अर वारंवार मंदमंद सोवै है। अर बैठ्याहूवा हू घूमै है, नेत्र गात्र चलायमान रहै हैं। देखतोसंतोहू नहीं देखै है।

बहुरि प्रचलाप्रचलादर्शनावरणका उदयकरि लाल बहै, मुखतैं लाल श्रवै है। अंग उपांग चलायमान होय हैं। बहुरि स्त्यानगृद्धि नाम दर्शनावरणका उदयकरि उठ्या हुवो भी सोवै, निद्रामैं वीर्यविशेषके प्रगट होनेतैं बहुत घोररौद्रकर्म करै। निद्रामैं बहुतकर्म करै वार्त्ता करै। ऐसैं नवप्रकार दर्शनावरण कह्या।

अब—दोय प्रकार वेदनीय कर्मकूं कहै हैं—

सदसद्वेद्ये ॥ ८ ॥

अर्थ—साता असाता ऐसैं दोय प्रकार वेदनीयकर्म है। जाके उदयतैं देवादिकगतिविषै उपकारक द्रव्यनिका सम्बन्धकरि प्राणीनिकै शारीरिक मानसिक अनेकप्रकार सुखरूप परिणाम होइ सो सातावेदनीय है। अर जाके उदयतैं नरकादिकगतिविषै जन्म जरा मरण प्रियवियोग अप्रियसंयोग रोग वध बन्धनादि करि उपज्या शरीरसम्बन्धी मनसम्बन्धी दुःखकूं प्राप्त होइ सो असातावेदनीय है।

जातैं प्रशस्तवेदन सो सातावेदनीय है सो रतिमोहनीय कर्मका उदयके बलकरि जीवकूं सुखका कारण जे इंद्रियनिके विषय तिनका अनुभव करावै है। अर अप्रशस्त वेदन सो असातावेदनीय है। सो आरतिमोहनीयकर्मका उदयके बलकरि जीवकै दुःखका कारण इंद्रियनिके विषय तिनका अनुभव करावै है।

अब अठाईस प्रकार मोहनीयकूं कहै हैं—

दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्य-कषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसकवेदा अनंतानुबंध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः ॥ ९ ॥

भार्थ—दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहनीय, अकषायवेदनीय, कषायवेदनीय हैं नाम जिनके ऐसैं तीन दोय नव षोडश भेदरूप है। तिनमैं दर्शनमोहनीय तीन भेदरूप है, चारित्रमोहनीय दोयभेदरूप है। अकषायवेदनीय नवप्रकार है। कषायवेदनीय षोडशप्रकार है। तिनमैं सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व ऐसैं दर्शनमोहनीय तीन प्रकार है। अर अकषायवेदनीय, कषायवेदनीय ऐसैं दोय प्रकार चारित्रमोहनीय है। तिनमैं हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद ऐसैं अकषायवेदनीय नव प्रकार है।

अर अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन इन एकएकके क्रोध, मान, माया, लोभ, भेदनिकरि षोडशप्रकार कषायवेदनीय है। ऐसैं अठाईस प्रकार मोहनीय कह्या। तहां दर्शनमोहनीय है सो बंधप्रति तो एक मिथ्यात्वरूप ही है। अर उदयकूं अर सत्त्वकूं आश्रयकरि मिथ्यात्व सम्यक्त्व मिश्र ऐसैं तीन प्रकार है। तहां जाके उदयकरि सर्वज्ञकरि कह्या मार्गतैं पराङ्मुखपणा अर तत्त्वार्थके श्रद्धानमैं निरुत्सुकपणा उद्यमरहितपणा अर हितअहितकी परीक्षारहितपणा सो मिथ्यात्व है।

बहुरि जो शुभपरिणामके प्रभावकरि इस मिथ्यात्वका रस रुकिजाय तदि शक्तिके घटनेतैं असमर्थ हुवा आत्माका श्रद्धानकूं रोकनेमैं समर्थ नहीं, सम्यक्त्वकूं विगाडि नहीं सकै अर सम्यक्त्वकूं मलसहित करै सो सम्यक्त्व है। बहुरि जाके उदयतैं तत्त्वनिका श्रद्धान अर अश्रद्धान दोऊरूप मिले भाव होंइ सो सम्यग्मिथ्यात्व है।

बहुरि चारित्रमोहनीयके अकषायवेदनीय कषायवेदनीय ऐसैं दोय भेद हैं। इहां अकषायशब्दकरि कषायका अभाव नहीं जानना। क्योंकि अकारका ईषत् अर्थ है। जैसैं या भेड अलोमिका है कहनेकरि काछिवाकी ज्यों रोमका अभाव ही नहीं जानना, छेदनेयोग्य रोम वाकै नाहीं तातैं अलोमिका कही है। तथा जैसैं या कन्या अनुदरा है तो उदररहित तो कोऊ है नहीं परंतु गर्भधारणादि योग्य स्थूल उदरके अभावतैं अनुदरा कही, याका अर्थ कृशोदरा है। तैसैं हास्यादिक नव कषायनिकूं अकषाय कहिए है।

वा नो अव्ययकाभी ईषत् अर्थ है, तातैं नोकषाय कहनेकरिहू ईषत्कषाय जानना। इनकै ईषत्कषायपना कैसैं सो कहै हैं।

जैसैं श्वान जो कूकरा सो स्वामीका सहायका अवलंबनतैं बहुत बलवान होइ प्राणीनिके मारनेमैं वर्तै है अर स्वामीका सहायका अवलंबन नहीं होइ पाछा फिरि आवै। तैसैं क्रोधादि कषायका अवलंबनतैं हास्यादिकनिकी प्रवृत्ति होइ अर क्रोधादिकषायकी प्रवृत्तिका अभावतैं हास्यादिक नहीं प्रवर्तै तातैं इनकूं अकषाय कहे। जाके उदयतैं हास्य प्रगट होइ सो हास्य है। अर जाके उदयतैं देशादिकनिमैं उत्सुकपणा आसक्तपणा होजाय सो रति है। अर जाके उदयतैं देशादिकनिमैं अनुत्सुकपणा सो अरति है। जाके उदयतैं सोच प्रगट होइ सो शोक है। जाके उदयतैं उद्वेग प्रगट होइ सो भय है सो सप्तप्रकार है। समस्त ही भय सप्तप्रकारमैं गर्भित हैं। जाके उदयतैं अपना दोषका आच्छादन करना अर अन्यका कुल शीलादिकानिमैं दोष प्रगटकरि अवज्ञा करना, तिरस्कारादि करना ग्लानि करना, सो जुगुप्सा है।

बहुरि जाके उदयतैं मार्दवका अभाव अर मायाचारादिककी अधिकता कामका प्रवेश नेत्रविभ्रमादिसुखकै अर्थि पुरुषसैं रमनेकी इच्छाकूं प्राप्त होइ सो स्त्रीवेद है। बहुरि जाके उदयतैं निःकपटपणा निश्चलपणा उदारपणा स्त्रीनिमैं रमनेकी इच्छारूप परिणाम सो पुरुषवेद है। बहुरि जाके उदयतैं कामकी अधिकता भण्डशीलता स्त्रीपुरुष दोऊनिमैं रमनेकी इच्छा सो नपुंसकवेद है। अर जो योनि लिंग कुचादिक शरीरका आकार है सो नामकर्मकरि रच्या है वेदजनित नहीं है।

ऐसैं नवप्रकार अकषाय वेदनीय कही। अब कषायवेदनीयषोडशप्रकार ऐसैं जानना—तहां क्रोध, मान, माया, लोभ ऐसै च्यारप्रकार कषाय हैं। तिनमैं स्वपरके घात करनेके परिणाम तथा परका उपकार करनेका अभाव तथा क्रूरपरिणाम सो क्रोध है। सो पाषाणमैं लीक, पृथ्वीमैं लीक, बालुरेतमैं लीक, जलमैं लीक इनके समान च्यार प्रकार है।

बहुरि जाति, कुल, बल, ऐश्वर्य, विद्या, रूप, तप, लाभ इत्यादिकका मदजनित उद्धततामैं परतैं

नम्रीभूत नहीं होनेके परिणाम सो मान है। सो पाषाणस्तम्भसमान अर अस्थि कहिए हाडसमान अर काष्ठसमान अर लतातुल्य च्यार प्रकार हैं।

बहुरि परके ठगनेके परिणामकरि परिणामनिका कुटिलपणा सो माया है। सो बाणाकी जड मींढाका सींग गोमूत्रिका अर अवलेखनी इनके तुल्य चार प्रकार है। बहुरि जो अपना उपकार द्रव्यमैं अभिलाषा सो लोभ है। सो कृमिराग कज्जल कर्दम हरिद्राका रंगतुल्य च्यार प्रकार है। ऐसैं क्रोध, मान, माया, लोभ इनकी च्यार प्रकार अवस्था है।

अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन ऐसैं च्यार हैं। अनन्तसंसारका कारणपणातैं मिथ्यात्वकूं तो अनन्तनामकरि कह्या है। मिथ्यात्वके अनुबन्धनकरनेवाला अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ है सो तो सम्यक्त्वकूं नहीं होनेदे है। बहुरि जाके उदयतैं अ कहिए किंचिलहू प्रत्याख्यान जो देशरूपत्याग नहीं होसकै सो अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ है।

बहुरि जाके उदयतैं समस्त महाव्रतरूप त्याग नहीं हो सकै सो प्रत्याख्यानावरण, क्रोध, मान, माया, लोभ है। बहुरि जो संयमकी साथिहू प्रज्वलित रहै आत्माकूं शुद्धोपयोगरूप नहीं होने दे सो संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ है। ऐसैं षोडशप्रकार कषायवेदनीय कह्या। ऐसैं अठाईस प्रकार मोहनीयकर्मके भेद कहे।

अब च्यार प्रकार आयुकूं कहै हैं—

नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥ १० ॥

अर्थ— नारक, तैर्यग्योन, मानुष, दैव ए च्यार आयुके भेद हैं। जाका सद्भावतैं आत्माका जीवन होय अर अभावतै मरण होइ यातैं जो भवका धारणका कारण सो आयु है। इहां कोऊ कहै–जीवनका कारण तो अन्नपानादिक है, अन्नपानादिकका लाभतै जीवन देखिए है, अलाभतैं मरण देखिए है। ताकूं कहै हैं। अन्नपानादिक तो बाह्यकारण हैं। मूल उपादानकारण आयुकर्म है।

जैसैं घटके होनेविषै मूलकारण तो मृत्तिका है अर बाह्यनिमित्तकारण चाक कुम्भकार दण्डादिक हैं। तैसैं भवधारणका मूलकारण आयुकर्म है, आयुका उपकारक अन्नादिक हैं। जाका आयु नष्ट हो जाय ताकै अन्नादिक निमित्तकी निकटता होतैं हू मरण देखिए है। अर देव नारकीनिके अन्नादिकका बाह्य आहारविनाहू जीवन आयुका निमित्ततैं होय है। जाके उदयतैं तीव्र शीतोष्ण वेदना करनेवाले नरकमैं दीर्घकाल जीवनरूप भवधारण होइ सो नरकायु है।

बहुरि जाके उदयतैं क्षुधा तृषा शीत उष्णादिकृत प्रचुर उपद्रवसहित तिर्यग्योनिमैं वसना होइ सो तिर्यगायु है। बहुरि जाके उदयतैं शरीर मनसम्बन्धी सुखदुःखकरि व्याप्त मनुष्यपर्यायमैं जन्म होइ सो मनुष्यआयु है। बहुरि जाके उदयतैं शारीरिक मानसिक सुखादिसहित देवनिमैं उत्पत्ति होइ सो देवायु है। कदाचित् प्रियका वियोग महर्द्धिक देवनिका अवलोकन मृत्युका चिह्न जो माला भूषणादिकका मलिनपणाका दर्शन आज्ञाकी हानि इत्यादिककरि मानसिक दुःखहू प्रगट होय हैं। ऐसैं च्यार प्रकार आयुकर्मकूं कह्या।

अब—नामकर्मकी बीयालीस प्रकृतिनिकूं कहै हैं—

गतिजातिशरीरांगोपांगनिर्माणबंधनसंघातसंस्थानसंहननस्पर्शरसगंधवर्णानुपूर्व्यागुरुलघूप-
घातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्म-
पर्याप्तिस्थिरादेययशःकीर्त्तिसेतराणि तीर्थंकरत्वं च ॥ ११ ॥

अर्थ—गति, जाति, शरीर, अंगोपांग, निर्माण, बन्धन, संघात, संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, आनुपूर्व्य, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, विहायोगति इस प्रकार इकईस अर प्रत्येकशरीर, त्रस, सुभग, सुस्वर, शुभ, सूक्ष्म, पर्याप्ति, स्थिर, आदेय, यशःकीर्ति ए दश, अर इनके प्रतिपक्षी दश अर तीर्थंकरत्व ऐसैं बीयालीस भेदरूप नामकर्म है। तथा याहीके तिराणवैं भेद हैं सो कहै हैं।

जाके उदयतैं आत्मा भवांतरप्रति सन्मुख होइ गमनकूं प्राप्त होइ सो गति है सो नरकगति, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, देवगति, ऐसैं च्यार प्रकार है। जाके उदयतैं आत्माकै नारकभव होइ सो नरकगति नाम है। ऐसैं ही अन्य भी जानना।

बहुरि तिन नारकादिगतिमैं व्यभिचरै नहीं सदृशपणाकरि एकरूप क्रिया सो जाति है सो पंच प्रकार है। एकेंद्रियजातिनाम, द्वींद्रियजातिनाम, त्रींद्रियजातिनाम, चतुरिंद्रियजातिनाम, पंचेंद्रियजातिनाम। जाका उदयतैं आत्मा एकेंद्रियादिक होवै सो जातिनामकर्म है। बहुरि जाके उदयतैं आत्माकै शरीररचना होइ सो शरीरनामकर्म है। जाके उदयतैं औदारिकशरीरकी रचना होइ सो औदारिकशरीरनाम है। जाके उदयतैं वैक्रियिकशरीरकी रचना होइ सो वैक्रियिकशरीरनाम जानना। ऐसैं ही आहारकशरीर तैजसशरीर कार्मणशरीरनामकर्म हैं। ऐसैं पंच शरीर कहे।

बहुरि जाके उदयतैं अंगोपांगनिका भेद प्रगट होइ सो अंगोपांगनामकर्म है। तहां शिर पीठ हृदय बाहु उदर नलक हस्त पाद ए तो अंग हैं अर इनके भेद जे ललाट नासिकादिक उपांग हैं, सो अंगोपांगनाम तीन प्रकार हैं। औदारिकशरीरांगोपांगनाम, वैक्रियिकशरीरांगोपांगनाम, आहारकशरीरांगोपांगनाम। जाके उदयतैं अंगउपांगनिकी उत्पत्ति होइ सो निर्माण है—ताके दोय भेद। एक स्थाननिर्माण, एक प्रमाणनिर्माण। सो तिस जातिनामकर्मका उदयकी अपेक्षा नेत्रादिकनिका जहां योग्य तहां स्थानकै माही नितना प्रमाण रचना रचै सो निर्माण है।

बहुरि शरीरनाम कर्मके उदयके वशतैं ग्रहणकिए जे आहारवर्गणारूप पुद्गलस्कंध तिनका प्रदेशानिका जातैं मिलना होइ सो बन्धननाम है। सो औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण भेदकरि पंच प्रकार हैं। बहुरि जाके उदयतैं औदारिकादिशरीरनिका छिद्ररहित अन्योन्यप्रवेशानुप्रवेशकरि एकपणा होइ सो संघातनाम है। सो औदारिकसंघातनाम, वैक्रियिकसंघातनाम, तैजससंघातनाम, आहारकसंघातनाम, कार्मणसंघातनाम, ऐसैं पंच प्रकार संघातनामकर्म हैं।

बहुरि जाके उदयतैं औदारिकादि शरीरकी आकृति उत्पन्न होइ सो संस्थाननाम है। सो छह प्रकार है-समचतुरस्रसंस्थाननाम, न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थाननाम, स्वातिसंस्थाननाम, कुब्जकसंस्थाननाम, वामनसंस्थाननाम, हुंडकसंस्थाननाम। तिनमैं जो ऊपरि नीचै मध्यमैं समविभागकरि शरीरके अवयवकी रचना स्थापन होइ जैसैं-प्रवीणशिल्पीकरि रच्या समवस्थित चक्रकी ज्यों अवस्थान करनेवाला समचतुरस्र-संस्थान नाम है। बहुरि नाभिकै ऊपरि तो बहुत देहके पुद्गलनिका स्थापन होय नीचैं अल्प संचयका उत्पन्न करनेवाला न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान नाम है। सो न्यग्रोधनाम वडके वृक्षका है तिसकी समानतातैं न्यग्रोधपरिमण्डल कह्या।

बहुरि स्वाति जो बम्बी तिसकै आकार नीचैं भारी उपरि हलका शरीर करनेवाला स्वातिसंस्थान नाम है। बहुरि पीठके प्रदेशनिमैं बहुत पुद्गलनिका समूह जाकै होई ऐसा लक्षणका रचनेवाला कुब्जक संस्थान नाम है। बहुरि सर्व अंगोपांगनिकी ह्रस्व रचनाका करनेवाला वामनसंस्थान नाम है। बहुरि सर्व अंगोपांगनिकी ऊंची नीची घटती बधती विषम रचना करनेवाला हुंडक संस्थान नाम है।

बहुरि जाके उदयतैं हाडनिके बन्धानमैं विशेष होइ सो संहनननाम है। सो छहप्रकार है। वज्रवृषभनाराचसंहनननाम, वज्रनाराचसंहनननाम, नाराचसंहनननाम, अर्द्धनाराचसंहनननाम, कीलिकासंहनननाम, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनननाम। जो वेढिए बांधिए नशांनिकरि हाडनिकूं तिनकूं ऋषभ कहिए है। अर नाराचनाम कीलनिका है जिनतैं कीलित करिए। अर संहनननाम हाडनिके समूहका है। तहां जाके उदयतैं ऋषभ जो वेष्टन अर नाराच जो कील अर संहनन जो हाडनिके समूह ए तीनों वज्रवत् अभेद्य होय सो वज्रर्षभनाराचसंहनन है। बहुरि जाके उदयतैं नाराच अर संहनन दोय तो वज्रमय होय अर ऋषभ सामान्य होइ सो वज्रनाराचसंहनन है।

बहुरि जाकै उदयतैं वज्रविशेषरहित कीलित हाडनिकी संधि होइ सो नाराच संहनन नाम है। बहुरि जाके उदयतै हाडनिकी संधि अर्द्धकीलित होइ सो अर्द्धनाराच संहनन नाम है। बहुरि जाके उदयतैं

हाड कीलित होइ सो कीलित संहनन नाम है। बहुरि जाके उदयतैं हाडनिकी संधि परस्पर प्राप्त नहीं होइ बाहिर नशां स्नायु मांसकरि बन्धी होइ सो असृपाटिकासंहनन नाम है। ऐसैं संहनन कहे।

अब इहां ऐसा विशेष जानना। जो आठमांस्वर्गपर्यंत तो छहूंही संहननवाले मरणकरि उपजे हैं। अर नवमा, दशमा, ग्यारमा, बारमा स्वर्गलोकमैं असृपाटिकविना पंचसंहननवालेका गमन है। अर तेरमा, चौदमा, पन्द्रमा, सोलमा स्वर्गमैं असृपाटिक अर कीलकविना च्यार संहननवालेहीका गमन है। अर नवग्रैवेयकनिमैं नाराच वज्रनाराच अर वज्रऋषभनाराच इन तीन संहननवालेहीका गमन है। अर नव-अनुदिशविमाननिमैं वज्रनाराच अर वज्रर्षभनाराच दोय संहननवालेहीका गमन है। अर पंचअनुत्तर-विमाननिमैं वज्रर्षभनाराचसंहननका धारकहीका गमन है।

बहुरि मोक्षहू अर क्षपकश्रेणीहू वज्रर्षभनाराच संहननके धारकहीकै होय है। बहुरि उपशमश्रेणी उत्तम तीन संहननवालेहीकै होय है। बहुरि घम्मा मेघा वंशा तीन नारक पृथ्वीपर्यंत तो छहूं संहननवाले जाय हैं। अर चौथी पांचवीं जो अंजना अरिष्टा पृथ्वीमैं असृपाटिका संहननविना पंचसहननवाले जाय हैं। अर मघवी जो छठी पृथ्वी तामैं असृपाटिका कीलितविना च्यार संहननवालेका गमन है। अर सप्तम माघवीपृथ्वीमैं वज्रर्षभनाराचसंहननका धारीहीका गमन है। अन्य पंचसंहननतैं गमन नहीं।

बहुरि देव नारकी एकेन्द्रिय इनकै तो संहननका अभाव ही है। इनका शरीर सप्तधातुमय नहीं, इनकै हाड नहीं। बेन्द्री, तेन्द्री, चोंद्रीकै असृपाटक ही एक संहनन है। कर्मभूमिकी स्त्रीनिकै आदिका तीन संहननविना अर्द्धनाराच कीलित असंप्राप्तासृपाटिका ए तीन संहनन ही नियमतैं होय हैं। बहुरि भोग भूमिके मनुष्य तिर्यंचनिके एक वज्रर्षभनाराचसंहनन ही है। अर कर्मभूमिके मनुष्यतिर्यंचनिकै छहु संहनन होय हैं। पंचमकालमैं उपजे मनुष्य तिर्यंचनिकै अन्तका तीन संहनन ही हैं। ऐसैं संहनन कह्या।

जिस कर्मका उदयतैं शरीरमैं स्पर्श प्रगट होइ सो स्पर्श नाम कर्म अष्टप्रकार है—कर्कशनाम, मृदुनाम,[2] गुरुनाम[3], लघुनाम, स्निग्धनाम, रूक्षनाम, शीतनाम, उष्णनाम ऐसैं जानना। बहुरि जाके

उदयतैं देहमैं रस प्रगट होइ सो रसनामकर्म पंचप्रकार है। तिक्तनाम, कटुकनाम, कषायनाम, आम्लनाम, मधुरनाम, ऐसैं पंचभेद हैं। बहुरि जाके उदयतैं देहमैं गन्ध प्रगट होइ सो गन्धनाम दोय प्रकार है। सुगंध दुर्गंध। बहुरि जाके उदयतैं वर्ण प्रगट होइ सो वर्णनाम पंचप्रकार है। कृष्णवर्णनाम, नीलवर्णनाम, रक्तवणनाम, हरिद्रावर्णनाम, शुक्लवर्णनाम ऐसैं पंच भेदरूप हैं।

इहां कोऊ कहै—ए कहे स्पर्श रस गन्ध वर्ण अचेतनमैं कर्मका उदयविना कैसैं हैं? ताकूं कहिए है। ते पुद्गलके स्वभावतैं ही परिणत हैं। पुद्गलनिमैं तो स्वयमेव स्पर्शरसादिकका परिणमन है ही। चेतना सहित शरीरकै कर्मके उदयकी अपेक्षातैं होइ है। बहुरि जाके उदयतैं पूर्वले शरीरके आकार विनाश नहीं होइ सो आनुपूर्व्य है। ताके च्यार भेद हैं। नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम।

जिस कालमैं मनुष्य वा तिर्यंचका आयु पूण होइ तदि पूर्वके शरीरतैं वियुक्त होइ अर नरकके भवप्रति सन्मुख होइ ताकै मार्गमैं आत्माके प्रदेशनिका आकार पूर्वले शरीरके आकारतैं नहीं विगडै सो नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य है सो याका उदय विग्रहगतिहीमैं है। ऐसैं ही अन्य तीन आनुपूर्व्य हैं। याका उदय काल विग्रहगतिमैं जघन्य एक समयका है उत्कृष्ट तीन समयका है। विग्रहगतिविना अन्यकालमैं याका उदय नहीं है।

बहुरि जाकै उदयतैं लोहका पिंडज्यों भारीपणातैं नीचै नहीं पडै हलकापणातैं आकका फूल फुंया ज्यों ऊर्ध्व नहीं गमन करै सो अगुरुलघुनाम कर्म है। यह कर्मकी प्रकृति शरीरसम्बन्धी जाननी। अर जो अगुरुलघुत्व सर्वद्रव्यनिमैं गुण है सो यातैं भिन्न स्वाभाविक है। बहुरि जाकै उदयतैं अपने शरीरके अवयव बड़ा, सींग लम्बा, स्तन बड़ाभारी उदरादिकनितैं अपना ही घात होय सो उपघात नाम है। अर जाके उदयतैं तीक्ष्ण शृंग नख सर्पकै डाढ इत्यादिक परके घात करनेवाला अंग होइ सो परघातनाम है।

बहुरि जाके उदयतैं आतापकारी शरीर होइ सो आतापनाम है। याका उदय सूर्यके विमानमैं

बादरपर्याप्तजीव पृथ्वीकायिक मणी हैं तिनकै ही है अन्यकै नाहीं। बहुरि जाके उदयतैं उद्योतरूप शरीर होइ सो उद्योतनाम है। याका उदय चन्द्रके बिम्बकी मणीनिमैं वा आज्ञानाम चोइन्द्रीजीव इत्यादिकनिमैं होइ है। बहुरि जाके उदयतैं उच्छ्वास होइ सो उच्छ्वासनामकर्म है।

बहुरि जाके उदयतैं आकाशविषै गमन होइ सो विहायोगतिनाम दोय प्रकार है। तहां जो प्रशस्त हस्ती वृषभकीज्यों सुन्दरगमनका कारण प्रशस्तविहायोगति है। अर ऊँट गर्धभादिकज्यों असुन्दरगमनका कारण अप्रशस्तविहायोगति है। अर सिद्ध होते जीवनिकै अर पुद्गलनिकै कर्मका उदयविना स्वाभाविकी गति है। इहां ऐसा नहीं जानना जो आकाशमैं गति तो पक्षीनिकै है मनुष्यादिकनिकै नहीं होयगी सो समस्त जीवपुद्गलनिका आकाशहीमैं गमन है।

बहुरि जाका उदयतैं एक आत्माकै भोगनेका कारण प्रत्येक एक शरीर होइ सो प्रत्येक शरीर नाम है। अर जाके उदयतैं बहुत आत्माके उपभोगका कारण साधारण एकशरीर होइ सो साधारण शरीरनाम है। जिनकै आहारादि च्यारि पर्याप्ति जन्म मरण श्वास उच्छ्वास उपकार उपघात अनन्तजीवनिकै समानकालमैं होइ सो साधारण जीव है।

भावार्थ—जो एकदेहमैं अनन्तजीव एक क्षेत्रमैं अवगाहनरूप होइ तिष्ठैं ते साधारणशरीरनामकर्मका उदयतैं साधारणजीव हैं। जिस कालमैं आहारादि पर्याप्ति जन्ममरण श्वासोच्छ्वास एक ग्रहण करै तिस काल अनन्तजीवनिकै ग्रहण होय है तातैं ते साधारणजीव कहावै हैं। साधारणजीव निगोदिया वनस्पतिकायमैं हैं अन्य स्थावरनिमैं नहीं। जाके उदयतैं द्वींद्रियादिप्राणीनिमैं जन्म होइ सो त्रसनाम है। अर जाके उदयतैं पृथ्वी, अप्, तेज, वायु वनस्पतिकायमैं उत्पत्ति होइ सो स्थावरनाम है।

बहुरि जाके उदयतैं अन्यकै प्रीति उपजै देखते ही अन्यका प्रीतिरूप परिणाम हो जाय सो सुभगनाम है। बहुरि जाके उदयतैं रूपादिगुणनिकरि सहितहू परकै अप्रीतिका कारण होइ सो दुर्भगनाम है। जाके उदयतैं मनोज्ञस्वरकी उत्पत्ति होइ जाका शब्द सर्वकूं सुहावै सो सुस्वरनाम हैं। अर जाके उदयतैं

अमनोज्ञस्वर होइ सो दुःस्वर नाम है। बहुरि जाके उदयतैं मस्तकादि प्रशस्त अवयव होइ देखे श्रवण कीए रमणीक होइ सो शुभनाम है।

बहुरि जो देखे सुणे रमणीकता नहीं उपजावै सो अशुभनाम है। जाके उदयतैं अन्य जीवनिका उपकार तथा घातके योग्य शरीर नहीं होइ सो तथा पृथ्वी जल अग्नि पवनादिकतैं जाका घात नहीं होइ वा वज्रमैं पहाडमैं प्रवेश करतैं शरीर नहीं रुकै सो सूक्ष्मशरीर है। बहुरि अन्यकै बाधाका निमित्त स्थूलशरीर जाके उदयतैं होय सो बादर नाम है। बहुरि जाके उदयतैं आहारादि पर्याप्तिकी रचना होइ सो पर्याप्तिनाम है। सो छह प्रकार है—आहारपर्याप्तिनाम, शरीरपर्याप्तिनाम, इंद्रियपर्याप्तिनाम, प्राणापानपर्याप्तिनाम, भाषापर्याप्तिनाम, मनःपर्याप्तिनाम इस प्रकार है।

इहां कोऊ कहै–प्राणापानकर्मके उदयतैं उदरतैं पवनका निकसना प्रवेश करना फल है सो ही उच्छ्वासकर्मके उदयतैं है इनमैं कुछ विशेष नहीं। ताकूं कहै हैं–इनमैं इंद्रिय अतींद्रिय भेद हैं। जो शीत उष्णके सम्बन्धतैं उपज्या है दुःख जाकै ऐसा पञ्चेंद्रियकै जो उच्छ्वास निःश्वास दीर्घनादरूप कर्णइंद्रिय अर स्पर्शनइंद्रियकै प्रत्यक्ष हैं ते तो उच्छ्वासनाम कर्मके उदयतैं उपजै हैं। अर जो प्राणापानपर्याप्तिनामकर्मके उदयतैं कीए समस्त संसारीनिके श्रोत्रेंद्रियनिकरि नहीं ग्रहणमैं आवै तातैं अतींद्रिय हैं। एकेंद्रियकै भाषा मन विना च्यारि हैं। विकलचतुष्ककै मनविना पांच हैं। सैनी पंचेंद्रियकै छह पर्याप्ति हैं।

बहुरि जाके उदयतैं आत्मा छहू पर्याप्तिमैं एक पर्याप्तिकूंहू पूर्ण करनेकूं नहीं समर्थ होइ सो अपर्याप्तिनाम है। बहुरि जाके उदयतैं रसादिक सप्तधातु अर सप्त उपधातु अपने अपने स्थानमैं स्थिरभावकूं प्राप्तहोइ सो स्थिरनाम है। तथा दुष्कर उपवासादि तपश्चरणकरतैंहू अंगोपांगनिकै स्थिरपणा बण्या रहै सिथिलपणा नहीं होइ सो स्थिरनाम हैं। जातैं रसतैं तो रुधिर होय है रुधिरतैं मांस होय है मांसतैं मेदा होइ मेदातैं हाड होइ हाडतैं मज्जा जो मिजी सो होय मज्जातैं वीर्य होय वीर्यतैं सन्तान होइ ऐसैं सप्तधातु कह्या।

बहुरि वात पित्त कफ सिरा स्नायु चाम जठराग्नि ए सप्त उपधातु जानने। बहुरि जाके उदयतैं किंचित् उपवासादि करनेतैं तथा स्वल्पहू शीत उष्णादिककै सम्बन्धतैं अंगोपांग कृश होजाय धातु उपधातुका स्थिरपणा नहीं होइ सो अस्थिरनाम है। बहुरि जाके उदयतैं प्रभासहित शरीर होइ तथा देखनेवालेकूं इष्ट होइ सो आदेयनाम है। बहुरि जाके उदयतैं प्रभारहित शरीर होइ सो अनादेयनाम है।

बहुरि जाके उदयतैं पुण्यरूप गुणनिकी विख्यातता प्रगट होइ सो यशःकीर्तिनाम है। जातैं यश उज्वलगुण है अर कीर्तिनाम विख्याततका है। बहुरि पापरूप गुणनिकी विख्यातता जाके उदयतैं होय सो अयशस्कीर्त्तिनाम है। बहुरि जाके उदयतैं अचिंत्यविभूतिविशेषकरि युक्त अरहंतपणा उपजै सो तीर्थंकरत्वनाम है। ऐसैं नामकर्मकी वीयालीस प्रकृतिनिहीके तिराणवैं भेद जानने।

अब—गोत्रकर्मकी दोय प्रकृति कहै हैं—

उच्चैर्नीचैश्च ॥ १२ ॥

अर्थ—उच्चगोत्र नीचगोत्र ए दोय गोत्रकर्मकी प्रकृति हैं। जाके उदयतैं लोकपूज्य ऐसा अर जाका महानपणा विख्यात होइ ऐसैं इक्ष्वाकुआदि कुलमैं जन्म होय सो उच्चैर्गोत्रकर्म है। बहुरि जाके उदयतैं निंद्य तथा दरिद्रसहित अप्रसिद्ध दुःखकरि आकुल कुलमैं जन्म होय सो नीचैर्गोत्रकर्म है।

अब—अन्तरायकर्मकी पांच प्रकृतिनिकूं कहै हैं—

दानलाभभोगोपभोगवीर्याणां ॥ १३ ।

अर्थ—दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य इन पांचनिमैं विघ्न करनेवाला पंचप्रकार अन्तरायकर्म है। जो दान दिया चाहै तोहू जाके उदयतैं देनेसमर्थ नहीं होइ सो दानांतराय है। बहुरि लाभकी इच्छा करताहूं जाके उदयतैं लाभकूं प्राप्त नहीं होइ सो लाभांतराय है। बहुरि जाकै उदयतैं भोगकीया चाहै तोहू भोगने समर्थ नहीं होइ सो भोगांतराय है।

बहुरि उपभोग कीया चाहै तोहू जाके उदयतैं उपभोग करनेसमर्थ नहीं होइ सो उपभोगांतराय है।

बहुरि जाके उदयतैं उत्साहरूप होनेका इच्छुकहू शरीरमैं सामर्थ्यकूं नहीं प्राप्त होइ सो वीर्यांतराय है। इहां गन्ध, अतर, पुष्प, स्नान, तांबूल, अङ्गराग, भोजन पानादिक तो भोग हैं। अर शयन, स्त्री, आभरण, हस्ती, घोडा, रथ, पयादा, महल, बाग इत्यादिक उपभोग जानने। ऐसैं ज्ञानावरणादिकनिका उत्तरप्रकृतिबन्ध कह्या।

अब जो कर्म अपने कर्मस्वभावको छांडि आत्मातैं जुदा जेतैं काल नहीं होइ सो स्थितिबन्ध है। सो दोयप्रकार है। एक जघन्य एक उत्कृष्ट दोयप्रकार स्थितिबन्ध हैं। तिनमैं उत्कृष्ट स्थितिकूं कहै हैं—

आदितस्तिसृणामंतरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥ १४ ॥

अर्थ—आदिका तीन जो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय अर अन्तराय इन च्यार कर्मनिकी उत्कृष्टस्थिति तीस कोटाकोटीसागरप्रमाण है। संज्ञीपंचेन्द्रियपर्याप्तकजीवकै ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय अन्तरायकी उत्कृष्टस्थिति तीस कोटाकोटीसागरप्रमाण है। तिनमैंहू ज्ञानावरणकी पांच, दर्शनावरणकी नव, अन्तरायकी पांच, असातावेदनीय एक इन बीसप्रकृतिनिकी उत्कृष्टस्थिति तीस कोटाकोटीसागरप्रमाण है। अर सातावेदनीय एककी उत्कृष्टस्थिति पनराकोड़ाकोड़ीसागरकी है।

बहुरि अन्य जीवनिकी स्थिति आगमतैं जानना। सो ही कहै हैं—एकेन्द्रियपर्याप्तकै इन च्यार कर्मनिकी उत्कृष्टस्थिति एक सागरोपमके सप्तभाग करिए तिनमैं तीनभागप्रमाण है। द्वींद्रियपर्याप्तककै पचीस सागरोपमके सातभागमैं तीनभागप्रमाण है। त्रींद्रियपर्याप्तककै पचाससागरोपमके सातभागमैं तीनभाग प्रमाण है। चतुरिंद्रियपर्याप्तकै सौसागरोपमके सप्तभागमैं तीन भागप्रमाण है। असैनी पंचेन्द्रियपर्याप्तकै हजारसागरोपमके सप्तभागमैं तीनभागप्रमाण है। अर संज्ञीपंचेन्द्रिय अपर्याप्तकै अनन्तसागरोपमकोटाकोटीप्रमाण उत्कृष्टस्थिति है। बहुरि एकेन्द्रिय, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, असंज्ञीपंचेन्द्रिय अपर्याप्तकै च्यार कर्मनिकी उत्कृष्टस्थिति अपने अपने पर्याप्तिकी उत्कृष्टस्थिति कही तिनमैं पल्यका असंख्यातभागप्रमाण ऊन है।

अथ मोहनीयकी उत्कृष्टस्थिति कहै हैं—

सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥ १५ ॥

अर्थ—मोहनीयकर्ममैं मिथ्यात्वकर्मका उत्कृष्टस्थितिबन्ध संज्ञीपंचेन्द्रियपर्याप्तककै सतरिकोडाकोडीसागरप्रमाण जानना। एकेन्द्रियपर्याप्तकै उत्कृष्टस्थिति एकसागरकी, द्वींद्रियकै पचीस सागरकी, त्रींद्रियकै पचास सागरकी, चतुरिंद्रियकै सौसागरप्रमाण है।

बहुरि पर्याप्तक असंज्ञिपंचेन्द्रियकै एकहजारसागरप्रमाण उत्कृष्टस्थिति जाननी। बहुरि एकेन्द्रिय, द्विंद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय तथा असंज्ञीपंचेन्द्रिय अपर्याप्तककै अपनीअपनी पर्याप्तिकी स्थिति कही तातैं पल्यकै असंख्यातभाग घाटि जाननी। अर सेनी अपर्याप्तककै अन्तःकोडाकोडीसागरप्रमाणस्थिति जाननी।

अथ नामगोत्रकर्मकी उत्कृष्टस्थिति कहै हैं—

विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥ १६ ॥

अर्थ—संज्ञीपंचेन्द्रियपर्याप्तकै नामकर्म अर गोत्रकर्मकी उत्कृष्टस्थिति वीसकोडाकोडीसागरप्रमाणहै। एकेंद्रियपर्याप्तकै एकसागरका सातभागमैं दोयभागप्रमाण है। द्वींद्रियपर्याप्तकै पचीससागरका सप्तभागमैं दोयभागप्रमाण है। त्रींद्रियपर्याप्तकै पचाससागरका सप्तभागमैं दोयभागप्रमाण है। चतुरिंद्रियपर्याप्तकै सौसागरका सप्तभागमैं दोयभागप्रमाण है। असंज्ञीपंचेंद्रियकै हजारसागरका सातभागमैं दोयभागप्रमाण है। संज्ञीपंचेन्द्रियअपर्याप्तकै अन्तःकोडाकोडीसागरप्रमाण है।

बहुरि एकेन्द्रिय द्वींन्द्रिय त्रींन्द्रिय चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय असैनी अपर्याप्तकै अपनेअपने पर्याप्तकी उत्कृष्टस्थितितैं पल्योपमकै असंख्यातवैं भाग ऊन स्थिति जाननी।

अथ आयुकी उत्कृष्टस्थिति कहै हैं—

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥ १७ ॥

अर्थ—आयुकर्मकी उत्कृष्टस्थिति तेतीससागरोपमकी है। संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकके उत्कृष्टस्थिति तेतीससागरोपमकी है। असंज्ञीके पल्यके असंख्यातवैं भागप्रमाण है। अर एकेन्द्रियादिकनिकै आयुकी उत्कृष्टस्थितिबन्ध कोडिपूर्वका जानना। ऐसैं मूलप्रकृतिनिका उत्कृष्टस्थितिबन्ध कह्या।

अब उत्तरप्रकृतिनिका उत्कृष्टस्थितिबन्ध कहै हैं—ज्ञानावरण पांच दर्शनावरण नव अन्तरायकी पांच असातावेदनीय एक ऐसैं बीस प्रकृतिनिका उत्कृष्टस्थितिबन्ध तीस कोडाकोडीसागरका होय है। अर सातावेदनीय स्त्रीवेद मनुष्यद्विक इन च्यारका पन्द्रह कोटाकोटीसागरप्रमाणस्थितिबन्ध है। दर्शनमोहबन्धविषै एक मिथ्यात्व ही है ताकी सत्तरि कोडाकोडीसागरकी स्थिति है।

चारित्रमोहनीयमैं षोडशकषायनिका चालीस कोटाकोटीसागरका स्थितिबन्ध है। हुंडकसंस्थान असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन इन दोय प्रकृतिनिकी बीस कोटाकोटीसागरकी स्थिति है। वामनकी अर कीलककी अठारह कोटाकोटीकी स्थिति है। कुब्जककी अर्द्धनाराचकी षोडशकोडाकोडीकी, स्वातिककी अर नाराचकी चौदह कोटाकोटीकी, न्यग्रोधपरिमण्डलकी अर वज्रनाराचकी बारह कोटाकोटीकी, समचतुरस्रकी अर वज्रर्षभनाराचकी दशकोटाकोटीप्रमाणस्थितिबन्ध है।

बहुरि विकलत्रय अर सूक्ष्म अपर्याप्तक साधारण इन छहकी अठारहकोडाकोडीसागरकी उत्कृष्टस्थिति है। बहुरि अरति, शोक, षंढवेद, तिर्यंगगति, तिर्यंग्गत्यानुपूर्व्य, भय, जुगुप्सा, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्व्य, तैजस, कार्मण, औदारिक, औदारिकअंगोपांग, वैक्रियिक, वैक्रियिकअंगोपांग, आतप, उद्योत, नीचैर्गोत्र, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उछ्वास, एकेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, जाति, निर्माण, स्थावर, अप्रशस्त, विहायोति, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति इनि इकतालीस प्रकृतिनिका उत्कृष्टस्थितिबन्ध बीसकोडाकोडीसागरप्रमाण है।

अर हास्य रति उच्चगोत्र पुरुषवेद स्थिर शुभ सुभग सुस्वर आदेय यशःकीर्ति प्रशस्त विहायोगति देवगति देवगत्यानुपूर्व्य इन तेरह प्रकृतिनिकी दशकोडाकोडीसागरप्रमाणस्थिति है। अर आहारक आहारक

अंगोपांग तीर्थंकरत्व इन तीन प्रकृतिनिका उत्कृष्टस्थितिबन्ध अन्तःकोटाकोटीसागरप्रमाण है। अर देवआयु नरकायुका उत्कृष्टस्थितिबन्ध तेतीससागरप्रमाण है। तिर्यग्मनुष्यआयुका स्थितिबन्ध तीन पल्यप्रमाण है।

ऐसैं बन्धयोग्य एकसोवीस प्रकृतिनिका उत्कृष्टस्थितिबन्ध कह्या सो संज्ञीपर्याप्त पंचेन्द्रियकै ही होय है। एकेन्द्रियादिकनिकै यथायोग्य आगमतै जानना। सो इनमैं देव मनुष्य तिर्यक् आयुविना एकसौ सतरह प्रकृतिनिका उत्कृष्टस्थितिबन्धकूं संक्लेशपरिणाम ही कारण है। उत्कृष्ट संक्लेशपरिणामतैं उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होय है। अर विशुद्धपरिणामनिकरि जघन्यस्थितिबन्ध होय है। तिर्यंक मनुष्यदेवायुको उत्कृष्ट विशुद्धपरिणामकरि स्थितिबन्ध होय। अशुद्धपरिणामनिकरि जघन्यस्थितिबन्ध होय है।

बहुरि आहारकद्विक अर तीर्थंकरनाम देवायु इन च्यार प्रकृति विना एकसो सोलह प्रकृतिनिका सर्वोत्कृष्टस्थितिका बांधनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव ही आगममैं कह्या है। अर देवायु आहारकद्विक तीर्थंकरप्रकृति इन च्यार प्रकृतिनिका सम्यग्दृष्टी ही बन्ध करै है।

अथ—जघन्यस्थितिबन्धकूं वर्णन करै हैं—

अपरा द्वादशमुहूर्त्ता वेदनीयस्य ॥ १८ ॥

अर्थ—वेदनीयकर्मकी जघन्यस्थिति बारहमुहूर्त्तकी है सो सूक्ष्म सांपराय गुणस्थानविषै ही बन्धै है।

अथ—नामगोत्रकी जघन्यस्थिति कहै हैं।

नामगोत्रयोरष्टौ ॥ १९ ॥

अर्थ—नामगोत्रकी जघन्यस्थिति आठमुहूर्त्तकी है सो सांपरायगुणस्थानमैं ही बन्धै है।

अथ—अन्यकर्मकी स्थिति कहै हैं—

शेषाणामन्तमुहूर्त्ता ॥ २० ॥

अर्थ—ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तराय मोहनीय आयु इन पांचकर्मनिकी जघन्यस्थिति अंतर्मुहूर्त्तकी

बन्धै है सो सूक्ष्मसांपरायविषै ही है। अर मोहनीयकी जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त्तकी बन्धै है सो अनिवृत्तिबादरसांपरायगुणस्थानहीमैं बन्धै है। आयुकी जघन्यस्थिति संख्यातवर्षकी आयुको धारक मनुष्यतिर्यञ्च ही बांधै है। ऐसैं स्थितिबन्ध तो कह्या।

अब—अनुभव बन्धकूं कहै हैं—

विपाकोऽनुभवः ॥ २१ ॥

अर्थ—विपाक है सो अनुभव है। विशिष्ट कहिए विशेषरूप जो पाक कहिए उदय सो विपाक कहिए। तथा विविध कहिए नानाप्रकार जो पाक सो विपाक है। तहां उपकार अपकार करनेका है स्वरूप जिनका ऐसैं ज्ञानावरणादिक कर्मनिकी प्रकृतिनिका पूर्वं आस्रवके निमित्ततैं तीव्र मन्द मध्य भावकरि जो उदय सो विपाक है। अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव, लक्षण जो निमित्त तिनके भेदतैं उपज्या जो नानाप्रकारका पाक कहिए उदय सो विपाक है। इस विपाकहीकूं अनुभव कहिए है। शुभपरिणामनिकी प्रकर्षपणातैं अधिकनातैं पुण्यप्रकृतिनिमैं अधिकरस पडै है सो ही प्रकर्ष अनुभव होय है। अर अशुभप्रकृतिनिमैं मन्दरस पडै है।

बहुरि अशुभपरिणामनिकी अधिकतातैं अशुभप्रकृतिनिमैं अधिक रस पडै है अर शुभ प्रकृतिनिमैं मन्द रस पडै है। ऐसैं कह्या जो अनुभव सो स्वमुख अर परमुखकरि दोय प्रकार प्रवर्तै है। समस्त मूल अष्टकर्मनिका तो स्वमुखकरि ही अनुभव होय है। अन्यकर्म अन्यकर्मरूप होइ उदय नहीं आवै है तातैं स्वमुखोदय कहिए है। अर उत्तरप्रकृति हैं तिनमैं तुल्यजातीयप्रकृति हैं तिनकै परमुखकरिभी अनुभव होय है। जैसैं मतिज्ञानावरणीय श्रुतज्ञानावरणीयरूप होयकै हू उदय आवै है। असातावेदनीय है सो कारणनिकै वशतैं सातावेदनीयरूप भी रस देहै ऐसैं परमुखकरि भी उदय आवै है। परन्तु दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहनीय परस्पर नहीं पलटै है। दर्शनमोहनीय है सो चारित्रमोहनीयरूप होइ रस नहीं देहै। चारित्रमोहनीय है सो दर्शनमोहनीयरूप होइ उदयमैं नहीं आवै है।

बहुरि च्यारों आयु भी परस्पर पलटि उदय नहीं आवै हैं। जो बांधी सो ही अपना स्वरूपकरि रस देहै। सो ही कहै हैं—

स यथानाम ॥ २२ ॥

अर्थ—जो प्रकृतिनिका नाम है तैसा ही ताका अनुभव है। जैसैं ज्ञानावरणका फल ज्ञानका अभाव है। दर्शनावरणका फल दर्शनशक्तिका अवरोध होना है। ऐसैं समस्त मूलप्रकृतिनिका वा उत्तर प्रकृतिनिका जाका जैसा नाम तैसा ही फल देहै सो ही अनुभव है। अब कहै हैं–जो कर्म उदयमैं आय तीव्र मन्द रस दीए पाछैं आवरण जो पडदाका आच्छादनकी ज्यों जीवकै लग्या रहै कि साररहित होइ आत्मातैं छूटि पडै है। सो कहै हैं—

ततश्च निर्जरा ॥ २३ ॥

अर्थ—तिस अनुभवपाछैं निर्जरा ही है। जो कर्मबन्ध भया सो उदयकै अवसरमैं आत्मातैं सुख-दुःख देय निर्जरै ही है। जातैं स्थितिको क्षय होतै आत्मा एक समयहू ऊपरि नहीं रहिसके हैं। आत्मातैं छूटि कर्मपणाके अभावतै अन्यरूप होइ परिणमैं हैं। सो ही निर्जरा है। सो दोयप्रकार है। एक सविपाक-निर्जरा, दूजो अविपाकनिर्जरा। तहां अनेक एकेन्द्रियादिजातिविशेषकरि घूर्णित जो चतुर्गतिरूप संसार-समुद्रमैं चिरकालतैं परिभ्रमण करते जीवकै अनेक शुभ अशुभ कर्म हैं तिनका उदयका काल आय प्राप्त होय तदि जैसा विकल्पनिकरि बन्ध किया तिसरूप भोगतेकै उदयावलीरूप नालीकरिकै जो कर्मरस देय झडै हैं सो सविपाकनिर्जरा है। सो या सविपाकनिर्जरा च्यारोंगतिके समस्त संसारीजीवनिकै होय है।

बहुरि जिस कर्मका उदयकाल तो नहीं आया, अर तपश्चरणादिक सामर्थ्यके विशेषतैं उदीरणा होइ कर्म झडिजाय सो अविपाकनिर्जरा है। जैसैं आम्रफल पालमैं शीघ्र पचै तैसैं जानना। इहां सूत्रमैं "च" शब्द है सो "तपसा निर्जरा च" ऐसैं आगै कहैंगे ताकूं हू जनावै है। इहां कोऊ कहै संवरके पीछैं निर्जरा कहना था इहां ही क्यों कह्या, ताका समाधान–जो इहां लघु करनेका प्रयोजन है, विपाककूं अनुभव

कहा, अनुभव नाम भोगनेका है, भोगनेमैं आया सो निर्जरै ही है तातैं निर्जरा थोरेमैं कह्या गया।

कर्मकी प्रकृति दो प्रकार है। एक घातिका, दूजी अघातिका। तहां ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय अन्तराय ए च्यार घातिका हैं। अन्य च्यार अघातिका हैं। तिनमैं घातिकाहू दोय प्रकार है। सर्वघातिका अर देशघातिका। तिनमैं ज्ञानावरण च्यार, दर्शनावरण तीन, अन्तराय पांच, संज्वलन कषाय चार, नोकषाय नव, अर सम्यक्त्वप्रकृति एक ऐसैं छव्वीस देशघातिका हैं। अर केवलज्ञानावरण केवलदर्शनावरण बहुरि निद्रा पांच, मिथ्यात्व एक अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, ए बारह कषाय ऐसैं वीस प्रकृति सर्वघातिका हैं। अर सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति जात्यन्तरसर्वघाति हैं, तिस सहित इकवीस सर्वघातिका हैं। ऐसैं सैतालिस प्रकृति घातिका हैं।

बहुरि नामकर्मकी प्रकृतिनिमैं पंच शरीर, तीन अंगोपांग, एक निर्माण, पांच बन्धन, पांच संघात, छह संस्थान, छह संहनन, आठ स्पर्श, पांच रस, दोय गन्ध, पंच वर्ण, एक अगुरुलघु, एक उपघात, एक परघात, एक आताप, एक उद्योत, प्रत्येक साधारण, शुभ अशुभ, स्थिर, अस्थिर, ए बासठिप्रकृति पुद्गल विपाकी हैं। इनका विपाक जो उदय सो पुद्गलमैं आवै है। बहुरि च्यारि आनुपूर्व्य क्षेत्रविपाकी हैं। जातै जीवकौं परलोकगमन करते पूर्वलादेहका आकारकूं धारता कार्मणशरीरसहित आत्माका गमन होय तदि मार्गमैं जीवकै प्रदेशनिका आकाररूप क्षेत्रहीमैं इनिका विपाक कहिए उदय हैं तातैं क्षेत्रविपाकी हैं। बहुरि च्यार आयुकर्म भवविपाकी हैं। इनका विपाक भवधारणरूप ही है।

अर अवशेषप्रकृति अठंतरि जीवविपाकी हैं। ते कौन ? सो कहै हैं।

च्यार घातियानिकी सैतालीस, दोय वेदनीय, दोय गोत्र सत्ताईस नामकर्मकी, तिनमैं गति च्यार जाति पांच, उच्छ्वास एक, विहायोगति, त्रस स्थावर शुभग दुर्भग सुस्वर दुस्वर सूक्ष्म बादर पर्याप्त अपर्याप्त आदेय अनादेय यशःकीर्ति अयशस्कीर्ति तीर्थंकर ऐसैं सब मिलि अठंतरि जीवविपाकी कहीं। जीवकै उपयोगमैं उदय देवै है तातैं जीवविपाकी हैं। ऐसैं सत्ताकी अपेक्षा एकसो अठतालीस कहीं।

अब-बन्धके च्यार भेदनिमैं प्रदेशबन्धकूं कहै हैं—

नामप्रत्यया:भवतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिता:
सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशा: ॥ २४ ॥

अर्थ—नाम जो समस्तज्ञानावरणादिकर्मप्रकृति तिनकूं कारण ऐसैं सर्वभवनिमैं मन, वचन, कायके योगविशेषतैं सूक्ष्म एकक्षेत्रमैं अवगाह करि तिष्ठते समस्त आत्मप्रदेशनिमैं अनंतानंत कर्मप्रदेश हैं।

भावार्थ—एक आत्माके असंख्यात प्रदेश हैं। तिस एकएक प्रदेशविषै अनंतानंत पुद्गलके स्कंध एक एक समयमैं बंधरूप होय तिष्ठैं सो प्रदेशबंध है। ते पुद्गलस्कंध कैसेक हैं समस्त ज्ञानावरणादि मूलप्रकृति उत्तरप्रकृति उत्तरोत्तरप्रकृतिरूप होनेकूं कारण हैं।

बहुरि कैसेक हैं समस्त त्रिकालवर्त्ती भवनिमैं मन, वचन, कायरूप योगनिके निमित्ततैं आवैं हैं अर सूक्ष्म हैं इन्द्रियगोचर नाहीं। बहुरि आत्माके प्रदेश अर कर्मके प्रदेश क्षीरनीरकी ज्यों एक क्षेत्रमैं अवगाहकरि तिष्ठै हैं। अर एकएक आत्माके प्रदेशमैं अनन्तानन्त कर्मपुद्गल तिष्ठै हैं। ऐसैं प्रदेशबन्ध कह्या।

अब बन्धपदार्थमैं अन्तर्भूत जो पुण्यबन्ध पापबन्ध कह्या चाहिए तिनमैं प्रथम पुण्यप्रकृतिनिकूं कहै हैं—

सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यं ॥ २५ ॥

अर्थ—साता वेदनीय अर शुभ आयु शुभनाम शुभगोत्र ये पुण्यप्रकृति हैं। घातियाकर्म तो च्यारों अशुभ ही हैं। अर अघातियामैं पुण्य पाप दोऊरूप हैं। तिनमैं अडसठि प्रकृति पुण्यरूप हैं। तिनके नाम कहै हैं—सातावेदनीय एक, अर तिर्यक् मनुष्य देव ए तीन, आयु अर उच्चगोत्र एक अर नामकर्मकी त्रैसठि तिनमैं मनुष्यदेवगति दोय अर पंचेंद्रियजाति एक अर शरीर पांच अर अंगोपांग तीन अर निर्माण एक अर बंधन पांच संघात पांच समचतुरस्रसंस्थान एक अर वज्रर्षभनाराचसंहनन एक अर आठ स्पर्श पांच रस दोय गंध पंच वर्ण ए प्रशस्तवर्णादिकनिकी बीस अर मनुष्य देवगत्यानुपूर्व्य दोय अर अगुरुलघु परघात आतप उद्योत उच्छ्वास प्रशस्त विहायोगति प्रत्येकशरीर त्रस सुभग सुस्वर शुभ बादर पर्याप्त

स्थिर आदेय यशस्कीर्ति तीर्थंकर ऐसैं नामकर्मकी त्रेसठि समस्त अडसठि पुण्यप्रकृति जाननी।

अब पाप प्रकृतिनिकूं कहै हैं—

ततोऽन्यत् पापं ॥ २६ ॥

अर्थ—ए पुण्यप्रकृति कहीं, तिनतैं अवशेष रहीं ते पापप्रकृति हैं। तिनमैं च्यार घातियाकर्मनिकी सैंतालीस प्रकृति, अर असातावेदनीय एक अर नरकायु एक नीचगोत्र एक अर नामकर्मकी पचास ए समस्त सौ प्रमाण पापप्रकृति हैं। तिनमैं ज्ञानावरणकी पांच दर्शनावरणकी नव मोहनीयकी अठाईस अन्तरायकी पांच ऐसैं घातीप्रकृति सैंतालीस हैं। अर नरकगति तिर्यग्गति एकेंद्रियादि च्यारि जाति, पांच संस्थान पंच संहनन अर अप्रशस्त स्पर्श रस गंध वर्ण बीस अर नरक तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य दोय, अर उपघात अप्रशस्त विहायोगति स्थावर सूक्ष्म अपर्याप्ति साधारणशरीर अशुभ दुर्भग अस्थिर दुःस्वर अनादेय अयशस्कीर्ति ऐसैं नामकर्मकी पचास अर असातावेदनीय अर नरकायु अर नीचगोत्र ऐसैं सौ हुई।

इहां अष्ट स्पर्श पांच रस दोय गंध व पंचवर्ण ए बीस प्रकृति प्रशस्त अप्रशस्त दोऊरूप हैं। तिनमैं प्रशस्त पुण्यमैं कही अप्रशस्त पापमैं कही। ऐसैं बंधवर्णन कीया। इहां ऐसा विशेष जानना—जो कर्मकी उत्तर प्रकृति एकसौ अडतालीस हैं तिनमैं बंधके कथनमैं एकसो बीस प्रकृतिही आगममैं कही हैं।

जातैं पंच बंधन पंच संघात ए दश प्रकृति तो शरीरतैं अविनाभावी हैं। औदारिकादिशरीरका बन्ध होइगा ताकै औदारिक बन्धनका अर संघातका नियमत बन्ध होयहीगा। तातैं शरीरपंचकाही बन्धमैं ग्रहण कीया अर बन्धन संघात तो विनाकह्या ही आगया तातैं बन्धन पांच संघात पांच ऐसैं दश प्रकृति तो ए घटीं, अर स्पर्श आठ रस पांच वर्ण पांच गंध दोय इन बीस प्रकृतिनिमैं स्पर्श रस गन्ध वर्ण ए भेदरहित च्यार ही बन्धमैं ग्रहण करी तातैं सोलह प्रकृति ए घटी।

बहुरि दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृति हैं तिनमैंतैं बन्धमैं एक मिथ्यात्वहीका बन्ध होय है तातै ए दोय घटी। ऐसैं बन्धन पांच संघात पांच अर स्पर्शादिकनिकै सोलै ऐसैं सब मिलि अठाईस प्रकृति भई तिनकूं एकसौ अडतालीसमैं घटाये बंधयोग्य एकसौबीस प्रकृति जाननी।

तिनमैं तीर्थंकरप्रकृतिका बंध तो सम्यक्त्वहीमैं होइ। तहां अविरतगुणस्थानकूं आदि लेय अष्टमगुणस्थानका छठा भागपर्यंत ही होइ। अर तीर्थंकरप्रकृतिका बंधका आरंभ कर्मभूमिका मनुष्यकै ही होय। अर केवली तथा श्रुतकेवलीकै निकट ही होय। बहुरि आहारकद्विकका बन्ध सप्तमगुणस्थान तथा अष्टमगुणस्थानमैं ही होय है। अर आयुका बन्ध मिश्रगुणस्थानमैं नहीं होय। ऐसा नियम जानना। तिनमैं मिथ्यात्वगुणस्थानमैं तो तीर्थंकर अर आहारकद्विकका बन्ध नहीं होय। तातैं इन तीन विना एकसौसतरह प्रकृति ही बन्धयोग्य हैं।

बहुरि सासादनमैं मिथ्यात्व हुण्डकसंस्थान नपुंसकवेद असृपाटिकासंहनन एकेंद्रिय स्थावर आताप सूक्ष्म अपर्याप्त साधारण विकलत्रयकी तीन नरकगति नरकगत्यानुपूर्व्य नरकायु ए षोडशप्रकृति मिथ्यात्वभावकरि ही बन्धै हैं तातैं सासादनादिकमैं नहीं बन्धै हैं इनकी मिथ्यात्वहीमें व्युच्छित्ति भई तातैं सासादनमैं एकसौ एक ही बन्ध योग्य हैं।

बहुरि सासादनके अन्तमें पचीसकी व्युच्छित्ति है। च्यारि अनन्तानुबन्धी अर निद्रानिद्रा अर प्रचलाप्रचला अर स्त्यानगृद्धि तथा दुर्भग दुःस्वर अनादेय संस्थान च्यार संहनन च्यार अप्रशस्त विहायोगति स्त्रीवेद नीचगोत्र तिर्यग्गति तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य तिर्यक्आयु उद्योत ए पचीस प्रकृतिका बन्ध तो मिथ्यात्वसासादनहीमैं होय है ऊपरि नहीं। तातैं एकसौ एकमैं पचीस घटो तदि छिहतरि चाहिए परंतु मिश्रमैं आयुका बन्ध होय नहीं तातैं देव मनुष्य दोय आयुबन्धका अभाव भया तदि मिश्रगुणस्थानमैं चोहत्तर प्रकृति बन्धयोग्य हैं।

बहुरि मिश्रतैं तो व्युच्छित्ति नहीं तातैं अविरतमैं हू चोहत्तरि चाहिए परंतु इहां आयुका बन्ध होय है तथा तीर्थंकर प्रकृतिकाहू बन्ध होय है तातैं बन्धयोग्य सतत्तरि हैं। बहुरि अप्रत्याख्यानावरण च्यार कषाय, वज्रर्षभनाराचसंहनन, औदारिकद्विक मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्व्य मनुष्यआयु इन दशकी व्युच्छित्ति अविरतगुणस्थानमैं होय है तातैं देशविरतमैं सडसठि हीका बंध होय है। बहुरि पंचमगुणस्था-

नमैं च्यार अप्रत्याख्यानावरणकी व्युच्छित्ति तदि छठे प्रमत्त गुणस्थानमैं त्रेसठि ही बंध योग्य हैं।

बहुरि प्रमत्तगुणस्थानमैं अस्थिर अयशःकीर्ति अशुभ असाता अरति शोक इनि छह प्रकृतिके बन्धकी व्युच्छित्ति होइ तदि अप्रमत्तगुणस्थानमैं बन्धयोग्य सत्तावन तिनमें आहारकद्विक मिले गुणसठि बन्धयोग्य हैं। बहुरि अप्रमत्तगुणस्थानमैं एक देवआयुकी व्युच्छित्ति भई तातैं अपूर्वकरणमैं बन्धयोग्य अठावन प्रकृति हैं। बहुरि अपूर्वकरणमैं पहले भागमैं तो निद्रा प्रचलाकी व्युच्छित्ति होय है अर छठा भागमैं तीर्थंकर निर्माण प्रशस्तविहायोगति पंचेंद्रिय तैजस कार्मण आहारकद्विक समचतुरस्रसंस्थान देवगति देवगत्यानुपूर्व्य, वैक्रियिक, वैक्रियिक अंगोपांग, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास त्रस बादर पर्याप्त प्रत्येक स्थिर शुभ सुभग सुस्वर आदेय ऐसैं तीसकी व्युच्छित्ति होय है।

बहुरि अन्तभागविषै हास्य रति भय जुगुप्सा इनि च्यारिकी व्युच्छित्ति होय है। ऐसैं अपूर्वकरणमैं छत्तीस प्रकृतिकी व्युच्छित्ति होय है तदि अनिवृत्तिकरणमैं बाईस प्रकृति ही बन्ध योग्य हैं। बहुरि अनिवृत्तिकरणके पंचभागनिमैं अनुक्रमतैं पुरुषवेद, संज्वलन च्यार कषाय, इन पांचकी व्युच्छित्ति होय है तदि सूक्ष्मसांपरायमैं सत्तरह प्रकृति बंधयोग्य हैं।

बहुरि सूक्ष्मसांपरायके अन्तमैं पांच ज्ञानावरण पांच अन्तराय च्यार दर्शनावरण यशस्कीर्ति उच्चगोत्र इनि सोलहके बन्धकी व्युच्छित्ति होय है तदि उपशांतकषाय क्षीणकषाय सयोगीजिन इन तीन गुणस्थाननिमैं एक सातावेदनीय ही बंधै है ताकी एक समयकी स्थिति सो बन्धके समयमैं ही उदय होय निर्जरै है। अर अयोगी बन्धरहित है। ऐसैं गुणस्थाननिमैं बन्ध प्रकृति कहीं मार्गणानिमैं आगममैं कहीं हैं सो जाननी।

बहुरि इनमैंहू ज्ञानावरण पांच दर्शनावरण नव अन्तराय पांच, मिथ्यात्व एक, कषाय सोलह, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, वर्णचतुष्क ए सैंतालीस प्रकृति अपनी व्युच्छित्ति पर्यंत ध्रुव उदयरूप हैं। इनका उदय समस्त संसारीनिकै अपनी व्युच्छित्तिके गुणस्थानपर्यंत ध्रुवउदयकूं

धारै है। इनि प्रकृतिनिका उदय अनादितैं सासता निरन्तर है तातैं ध्रुवउदयरूप हैं।

बहुरि सैंतालीसतो ए कहीं सो अर तीर्थंकर आहारकद्विक च्यार आयु इन चोवनप्रकृतिनिका ध्रुवबन्ध जानना, इनका निरन्तर बन्ध हुवा ही करैहै। परन्तु तीर्थंकर अर आहारकद्विक ए तीनप्रकृतिनिका बन्ध है सो तो बन्धका प्रारम्भकाल पाछैं जिन गुणस्थाननिमैं बन्ध संभवै तहां तो निरन्तर बन्धै है। अर बन्धयोग्य गुणस्थानका अभाव हो जाय तो बन्धकूं नहीं प्राप्त होय है। अर आयु है सो बन्धका प्रारम्भ भए पीछै आयुबन्धका त्रिभागका अन्तर्मुहूर्त्तके समय हैं, तिनमैं ही निरन्तर बन्धै हैं, अन्य अवसरमैं निरन्तर बन्धै नहीं है।

बहुरि त्रसस्थावरमैंतै एक, बादरसूक्ष्ममैं एक, पर्याप्त अपर्याप्तमैं एक, प्रत्येक साधारणमैं एक, स्थिर अस्थिरमैं एक, शुभ अशुभमैं एक, सुभग दुर्भगमैं एक, आदेय अनादेयमैं एक, यश अयशमैं एक, गतिच्यारिमैं एक, जाति पांचमैं एक, शरीर तीनमैं एक, संस्थान छहमैं एक, आनुपूर्व्यच्यारमैं एक ऐसैं चौदह प्रकृति नामकर्मकी निरन्तर बन्धै हैं। ऐसैं तो बन्ध कह्या।

अब उदयमैं ज्ञानावरणादि एकसो बाईस प्रकृति हैं तिनमैं ऐसा उदयका नियमहै। आहारक शरीरका उदय प्रमत्तगुणस्थानमैं ही होय। तीर्थंकरप्रकृतिका उदय केवली होकै होय है, मिश्रप्रकृतिका उदय मिश्रगुणस्थानमैं ही होय अन्यमैं नहीं होय। सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय क्षयोपशमसम्यक्त्वहीमैं होय है। अर आनुपूर्व्यका उदय मिथ्यात्व सासादन अविरत इन तीन गुणस्थाननिमैं ही होइ अन्यमैं नहीं होय।

इहां इतना विशेष–जो सासादनगुणस्थानमैं मरणकरि नरक नहीं जाय यातैं नरकानुपूर्व्य मिथ्यात्व अर अविरत इन दोय गुणस्थाननिमैं ही होय है। अब गुणस्थाननिमैं उदय योग्य प्रकृति कहै हैं–उदययोग्य प्रकृति एकसो बाईस तिनमैं सम्यक्त्वप्रकृति अर मिश्रप्रकृति अर आहारकद्विक तीर्थंकर इन पांच मिथ्यात्वगुणस्थानमैं एकसौ सतरहप्रकृतिनिका उदयकी योग्यता है।

बहुरि मिथ्यात्वमैं मिथ्यात्व आताप सूक्ष्म अपर्याप्त साधारण इनि पंचप्रकृतिनिकी व्युच्छित्ति

होय अर एक नरकानुपूर्व्यका उदय नहीं तातैं सासादनमैं एकसो ग्यारह उदययोग्य हैं। बहुरि च्यार अनन्तानुबन्धी एकेन्द्रिय स्थावर विकलत्रय इन नव प्रकृतिनिका उदय सासादनपर्यंत ही है तातैं मिश्रगुणस्थानमैं एकसो दोय प्रकृति भई परन्तु एक मिश्रप्रकृतिका उदय तो मिलिगया अर तीन आनुपूर्व्यका उदय मिश्रमैं होइ नाहीं तातैं निकासि लीनी तदि सौ प्रकृतिका उदय होइ।

बहुरि मिश्रगुणस्थानमैं एक मिश्रप्रकृतिकी व्युच्छित्ति होइ तदि अविरतमैं नीन्याणवैं प्रकृति रही फिर च्यार आनुपूर्व्य एक सम्यक्त्वप्रकृति ऐसैं पांच मिलैं उदययोग्य एकसो च्यार प्रकृति हैं। बहुरि अप्रत्याख्यानावरण च्यार कषाय अर वैक्रियिक अष्टक मनुष्यगत्यानुपूर्व्य तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य दुर्भग अनादेय अयश ऐसैं सतरह प्रकृति चतुर्थगुणस्थानके अन्तपर्यंत ही हैं। तातैं व्युच्छित्ति भई तदि देशसंयम गुणस्थानमैं उदययोग्य सत्यासी प्रकृति हैं।

बहुरि प्रत्याख्यानावरण च्यार कषाय अर तिर्यंच आयु उद्योत नीचगोत्र तिर्यंचगति इन आठप्रकृतिनिकी देशसंयमके अन्तमैं व्युच्छित्ति होइ है तदि प्रमत्तगुणस्थानमें उदययोग्य गुण्यासी प्रकृतिमें आहारकद्विक मिले इक्यासी उदययोग्य हैं। बहुरि आहारकद्विक अर स्त्यानगृद्धि अर निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला इन पांचकी व्युच्छित्ति प्रमत्तगुणस्थानमें होइ है तदि अप्रमत्तमें छिहंतरि उदयके योग्य हैं।

बहुरि सम्यक्त्वप्रकृति अर अन्तका तीन संहनन इन च्यारकी व्युच्छित्ति अप्रमत्तमें होइ है तदि अपूर्वकरणमें उदययोग्य बहत्तरि प्रकृति हैं। बहुरि छह नोकषायकी व्युच्छित्ति अपूर्वकरणमें होइ है तदि अनिवृत्तिकरणमैं छ्यासठि प्रकृति उदययोग्य हैं। बहुरि अनिवृत्तिकरणमैं तीन वेद संज्वलन, क्रोध, मान, माया इनि छहकी व्युच्छित्ति भई तदि सूक्ष्मसांपरायमैं साठि ही उदययोग्य हैं। बहुरि सूक्ष्मसांपरायमें सूक्ष्मलोभकी व्युच्छित्ति होइ है तदि उपशांतकषायमें गुणसठि प्रकृतिकी उदयकी योग्यता है।

बहुरि वज्रनाराच अर नाराच दोऊनिकी व्युच्छित्ति उपशांतकषायमें होइ है तदि क्षीणकषायमें सत्तावन प्रकृति उदययोग्य हैं। बहुरि निद्रा प्रचला अर पांच ज्ञानावरण अर पांच अन्तराय च्यार दर्शना-

वरण इन सोलहकी व्युच्छित्ति क्षीणकषायमें होइ तदि सयोगीगुणस्थानमें एक तीर्थंकर प्रकृति और मिलि बीयालीस उदययोग्य हैं। बहुरि एक वेदनीय, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्तविहायोगति, औदारिक, औदारिकअंगोपांग, तैजस, कार्मण, समचतुरस्रसंस्थान, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उछ्वास प्रत्येक ऐसैं तीसकी व्युच्छित्ति सयोगी गुणस्थानमें होइ है तदि अयोगीमें बारहका उदय होय है।

बहुरि एक वेदनीय, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशस्कीर्त्ति, तीर्थंकरत्व, मनुष्यायु, उच्चगोत्र इन बारह प्रकृतिनिकी व्युच्छित्ति अयोगी भगवानकै होइ है तदि सिद्ध-परमेष्ठी समस्त कर्मोदयरहित अनन्तज्ञान अनन्तसुखमय निरन्तर अविनाशी तिष्ठैं हैं ऐसैं इहां गुणस्थान-निमें उदयप्रकृति कहीं। अर मार्गणानिमैं आगमकै अनुसार जाननेयोग्य हैं।

इहां ऐसा अन्यविशेष जानना—गति आनुपूर्व्य आयु ए तीन सदृशस्थानमें युगपत ही उदय आवै हैं अर आतापप्रकृतिको उदय बादर पर्याप्त पृथ्वीकायकै ही होय है। अर उच्चगोत्रका उदय देव मनुष्य दोय गतिहीमें होइ है। अर स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला इन तीनका कर्मभूमिहीके मनुष्य तिर्यंच-निकै पर्याप्तअवस्थामें उदय आवै है अन्यकै नाहीं। परन्तु आहारक तथा वैक्रियिक ऋद्धिके प्रगट करनवारे-निकै उदय नहीं होय है। और अव्रतगुणस्थानमें अपर्याप्त अवस्थामें स्त्रीवेदका उदय नहीं अर घम्मानरकका अपर्याप्तविना अन्य द्वितीयादि पृथ्वीके नारकीनिका अपर्याप्तअवस्थाका अव्रतगुणस्थानमें नपुंसकवेदकाहू उदय नहीं तातैं स्त्रीवेदका अव्रतगुणस्थानमें च्यारों आनुपूर्व्यका उदय नहीं अर नपुंसकका अव्रतमें नरक-विना तीन आनुपूर्व्यका उदय नहीं है।

अर एकेन्द्रिय विकलत्रय अर स्थावर सूक्ष्म अपर्याप्त इनका उदय तिर्यंचनिहीमें होय अन्यकै नाहीं। अर अपर्याप्तका उदय मनुष्यकै भी होय है अर षट्संहनन अर औदारिकद्विकका उदय मनुष्य तिर्यंचहीकै होय है। अर वैक्रियिकद्विक देवनारकीनिकै ही उदय होय है। बहुरि उद्योतप्रकृतिनिका उदय

है सो तेजस्काय, वातकाय, साधारणवनस्पति, पृथ्वीकायविना बादरपर्याप्त अन्यतिर्यंचनिकै होय है। अर एकेन्द्रियकै अंगोपांग अर संहननका उदय नहीं होय है ऐसैं सामान्य उदयप्रकृति कहीं।

बहुरि इहां इतना विशेष जानना—जो कर्मप्रकृतिका उदय आवै है तिनकूं बाह्यनिमित्त भी जानना। इनि कर्मसारिखे पदार्थ हैं ते कर्मकी ज्यों रस देनेके निमित्त हैं। ज्ञानावरणकी ज्यों वस्तुका विशेषज्ञानकूं रोकनेवाला महीन पडदा है। जैसैं देवताका मुखऊपरि महीनवस्त्र पडिजाय तदि सामान्य तो ग्रहण होजाय परन्तु समस्त अवयवसहित विशेषग्रहण करनेकूं समर्थ नहीं होय। दर्शनावरणकी ज्यों वस्तुका सामान्य-ग्रहणके रोकनेवारा द्वारविषै नियोग किया द्वारपाल है सो नोकर्म है। जातैं द्वारपाल द्वारमाहीं प्रवेश नहीं करनेदे तदि देवताका सामान्य भी ग्रहण नहीं होय है। वेदनीयकी सहत लपेटी खड्गधारा नोकर्म है। जातैं वेदनीयकी ज्यों याहू सुख दुःख वेदनाका कारण है। मोहनीयका मद्य नोकर्म है।

जातैं मोहनीयकी ज्यों मद्यहू जीवका गुणकूं घातै है। आयुकर्मका च्यार प्रकार आहार नोकर्मद्रव्य हैं। जातैं च्यार प्रकार आहारकैहू आयुकर्मकी ज्यों शरीरकी स्थितिका हेतुपणा है। बहुरि नामकर्मका औदारिकादिदेह ही नोकर्मद्रव्य है। जातैं औदारिक देहकैहू योगका उपजावना सम्भवै है। बहुरि गोत्र-कर्मका उच्च नीच अंग नोकर्म हैं। जातै गोत्रकर्मज्यों उच्च नीच अंगकैहू कुलादिक प्रगट करनेका सद्भाव है। अन्तरायकर्मको भण्डारी नोकर्म है। जातैं अन्तरायकर्मकीज्यों भण्डारीहू भोगादिवस्तुनिके संयोगमें विघ्न करै है। ऐसैं उत्तरप्रकृतिनिका भी जानना।

मतिज्ञानादिका रोकनेवाला मतिज्ञानादि कर्म है। त्यों ही पटादिककी आड मतिज्ञानकूं रोकै है। विषादिक द्रव्य श्रुतज्ञानकूं रोकै है। अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञानका घात करनेवाला कोऊ संक्लेश करनेवाला बाह्यपदार्थ है। केवलज्ञानावरणकै नोकर्म नाहीं है। केवलज्ञान क्षायिक है याकूं रोकनेवाला संक्लेशकारी वस्तु नहीं है। पञ्चप्रकारकी निद्राका नोकर्म भैंसिका दही लशुन खल आदिद्रव्य हैं। चक्षुरचक्षुदर्शनकूं रोकनेवाला पटादिक वस्तुकरि आच्छादकता है।

अवधिदर्शकूं रोकनेवाला संक्लेशकारी बाह्यपदार्थ नोकर्म हैं। केवलदर्शन क्षायिक है। याका नोकर्म नहीं है। सातावेदनीयका इष्ट अन्नपानादि नोकर्म द्रव्य हैं। असातावेदनीयका अनिष्ट अन्नपानादिक नोकर्म हैं। सम्यक्त्वप्रकृतिका नोकर्म कहैं हैं।—आप्त अर आप्तका आलय आगम अर आगमका धरनेवाला तप अर तपका धारक ए षट् आयतनहू सम्यक्त्वप्रकृतिकी ज्यों सम्यग्दर्शनके घात करनेवारे नहीं। सम्य. क्त्वके चल मल अगाढ होके हेतु हैं।

अर अनाप्त अर अनाप्तका स्थान कुश्रुत अर कुश्रुतका धारक मिथ्यातप अर मिथ्या तपस्वी ए छह अनायतन मिथ्यात्वकर्मके नोकर्म हैं। मिथ्यात्वकी ज्यौं श्रद्धानके बिगाडनेवाले हैं। अर छह आयतन अर अनायतन दोऊ मिलेहुए मिश्रकर्मका नोकर्म हैं। अनन्तानुबन्धी कषायका मिथ्यात्वका आयतनादि षट् अनायतनादिक हैं।

बहुरि अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संज्वलन कषायनिका जो देशव्रत सकलसंयम यथाख्यातचारित्रके निवारक अपनेअपने योग्य काव्य नाटक कोकआदिक ग्रन्थ तथा विट जनाकी संगति ए नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। बहुरि स्त्रीपुरुषनिका शरीर स्त्रीवेदका नोकर्म है। बहुरि पुरुषशरीर स्त्रीशरीर है ते पुरुषवेदका नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। बहुरि स्त्रीपुरुष नपुंसक शरीर हैं ते नपुंसकवेदका नोकर्म है।

बहुरि विडम्बनारूप बहुरूपियादिक हास्यके पात्र ते हास्य नोकषायका नोकर्म हैं। बहुरि सुपुत्रादिक रति नोकषायके नोकर्म हैं। बहुरि इष्टका वियोग अनिष्टका संयोगादिक अरति नोकषायका द्रव्यकर्म है। बहुरि सुपुत्रादिकका मरण शोक नोकषायका नोकर्म हैं। बहुरि निंदितद्रव्यादि, जुगुप्सा नोकषायका नोकर्म हैं।

बहुरि सिंहादिकका संगम, भय नोकषायका नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। बहुरि अनिष्टआहार विषमृत्तिकादिक नरकायुका नोकर्म हैं। तिर्यग्मनुष्य देवादिकनिका इष्ट अन्नादिक तिर्यग्मनुष्य आयुका नोकर्म हैं। च्यार प्रकारकी गतिनिका क्षेत्रमें अपनी अपनी गतिका क्षेत्र ही नियमकरि नोकर्म है। बहुरि एकेंद्रिय

द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय जातिनाम कर्मनिका अपनीअपनी द्रव्येंद्रिय नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। बहुरि शरीरनामकर्मका उदयतैं उपज्या देहस्कंध ही शरीरनामकर्मका नोकर्म है। तिनमें औदारिक वैक्रियिक आहारक तैजस शरीरनामकर्मका अपनेअपने देहका उदयजनित च्यार देहनिकै योग्य औदारिकादि शरीर वर्गणा नोकर्म हैं।

बहुरि कार्मणशरीरका विस्रसोपचय नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। बहुरि बन्धनादिक पुद्गलविपाकीसहित शेष जे जीवविपाकी तिनका देह ही नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। जातैं पुद्गलरूप जो जीवका सुखादिकभाव तिनका शरीरवर्गणा ही उपादानकारण है। बहुरि क्षेत्रविपाकीरूप जे च्यार आनुपूर्व्यनिका अपनाअपना क्षेत्र ही नोकर्म द्रव्यकर्म है। बहुरि स्थिरनामकर्मका स्थिररसरुधिरादिक नोकर्म हैं। अस्थिरनाम कर्मका अस्थिररसरुधिरादिक नोकर्म द्रव्यकर्म हैं।

बहुरि शुभनाम कर्मका शरीरका शुभ अवयव नोकर्म हैं। अशुभनाम कर्मका शरीरके अशुभ अवयव नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। स्वरनाम कर्मका सुस्वर दुःस्वररूप परणये पुद्गल नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। बहुरि उच्चगोत्रका लोकपूजितकुलमें उपज्या उच्चदेह ही नोकर्म द्रव्यकर्म है। नीचगोत्रका नीकुचलमें उत्पन्न हुवा नीचदेह ही नोकर्म द्रव्यकर्म है। बहुरि दान लाभ भोग उपभोग नाम अन्तरायका विघ्न करनेवाला पर्वत नदी पुरुषादिक नोकर्म हैं।

बहुरि वीर्यांतरायकर्मका रूक्ष आहारपान द्रव्य ही नोकर्म हैं। ऐसैं कर्मके उदयज्यों कार्य करनेवाले वा कर्मके उदयकूं बाह्यनिमित्तरूप कर्मसारिखे नोकर्मद्रव्य कहे। जातैं कर्मका उदयहू बाह्य अभ्यंतर अनेककारणनिकरि आवै हैं। द्रव्य क्षेत्र काल भाव समस्त ही निमित्त हैं। उदयमें आजाय सो तो अपना तीव्र मन्द रस देवै हो। परन्तु बाह्यनिमित्त टलिजाय तो निमित्तविना उदय आवै नहीं। बाह्य सामग्री द्रव्यक्षेत्रादिकका कारण है। तातैं ही अशुभसंयोग छांडिए है। शुभके उदयकूं निमित्त शुभसामग्री मिलाइए है। सारा उपाय ए बाह्य ही कारण हैं।

इस भरतक्षेत्रमैं अबार दुःखमकाल प्रवर्तै है तातैं दुःख होनेकी सामग्री ते सुलभ हैं अर सुख होनेकी दुर्लभ हैं। सो देखिए ही है जो रोगादिक दुःख उपजनेका कारण ऐसा औषधादिक वस्तु सुलभ हैं धनखरचे विना ही आवै हैं। अर रोगादिक मेटनेकी औषधादिक धन दिए भी दुर्लभ हैं। आक, धतूरा, बंबूल सहज उपजै हैं। सुन्दर, सुगन्ध, मिष्ट रोगापहारी फल देनेवाला दुर्लभ है सो सब दुःखमकालका प्रभाव है। कालका निमित्तसूं समस्त मनुष्यादिक वृक्षादिक दुःख करनेवाले बहुत उपजै हैं। उपकारक-वस्तुकी विरलता है।

अब सत्ताकी प्रकृतिकूं गुणस्थाननिमैं कहै हैं—सत्तायोग्य एकसौ अडतालीस प्रकृति हैं। तिनमैं मिथ्यात्वगुणस्थानमैं एकसौ अडतालीसकी सत्ता संभवै है। सासादनमैं तीर्थंकर आहारकद्विकविना एकसौ पैंतालीसकी योग्यता है। मिश्रमैं तीर्थंकरविना एकसौ सैंतालीसकी योग्यता है। अविरतमैं एकसौ अडतालीसकी है। देशव्रतमैं नरकायुविना एकसौ सैंतालीस, प्रमत्तमैं तिर्यगायु, नरकायु विना एकसौ छियालीस है। अप्रमत्तमैं भी तिर्यगायु नरकायु विना एकसौ छियालीस हैं।

बहुरि उपशम सम्यग्दृष्टिकै अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसांपराय उपशांतमोह इन च्यार गुण-स्थानरूप उपशमश्रेणीविषै एकएकमैं एकसौ छीयालीसको सत्त्व है। बहुरि क्षायिकसम्यग्दृष्टिकै उपशम-श्रेणीके च्यार गुणस्थाननिमैं नरक तिर्यक् देव आयु अर च्यार अनन्तानुबन्धी अर तीन दर्शनमोहकी इन दशविना एकसौ अडतीसका सत्त्व है। बहुरि क्षपकश्रेणीके च्यार गुणस्थान हैं तिनमैं अपूर्वकरणमैं तो तीन आयु च्यार अनन्तानुबन्धी तीन दर्शनमोहनीयविना एकसौ अडतीस हैं।

बहुरि अनिवृत्तिकरणका नवभाग हैं। तिनमैं प्रथमभागमैं तो एकसोअडतीसहीका सत्त्व है अर इहां ही नरकगति नरकगत्यानुपूर्व्य तिर्यग्गति तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य विकलत्रय स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्रा प्रच-लाप्रचला उद्योत आताप एकेन्द्रिय स्थावर सूक्ष्म साधारण इन षोडशाकी व्युच्छित्ति भई तदि अनिवृत्ति-करणका द्वितीयभागविषै एकसो बाईसका सत्त्व है।

बहुरि द्वितीयभागमैं आठ मध्यमकषायकी व्युच्छित्ति भई तदि तृतीयभागमैं एकसो चौदहका सत्त्व है। ऐसैं ही तृतीयभागमैं षंढवेद, चतुर्थभागमैं नपुंसकवेद, पञ्चमभागमैं हास्यादिक छह नोकषाय, छठाभागमैं पुरुषवेद, सप्तममैं संज्वलनक्रोध, अष्टममैं मान, नवममैं माया ऐसैं अनिवृत्तिकरणके नव भागनिविषै छत्तीसप्रकृतिनिका नाश भया तदि सूक्ष्मसांपरायमैं एकसो दोयका सत्त्व है।

बहुरि सूक्ष्मसांपरायमैं संज्वलनलोभकी व्युच्छित्ति भई तदि क्षीणमोहमैं एकसो एकका सत्त्व है। बहुरि क्षीणमोहमैं निद्रा प्रचला पांच ज्ञानावरण च्यार दर्शनावरण पांच अन्तराय ऐसैं षोडशका नाश होतै पचासी प्रकृतिका सत्त्व सयोगीजिनकै है। सयोगीमैं व्युच्छित्ति नहीं है। बहुरि पञ्चशरीर, पंचबन्धन, पंच संघात, षट् संस्थान, तीन अंगोपांग, छह संहनन, पांच वर्ण, दोय गन्ध, पंच रस, आठ स्पर्श, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, देवगति देवगत्यानुपूर्व्य, प्रशस्त अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, निर्माण अयश अनादेय प्रत्येक अपर्याप्त अगुरुलघु उपघात परघात उच्छ्वास, एक वेदनीय, नीचगोत्र ए बहत्तरि प्रकृति अयोगीकै द्विचरमसमयमैं नाशनैं प्राप्त होंय तदि अयोगीका अन्तसमयमैं तेरहका सत्त्व है।

बहुरि अयोगीका अन्तका समयमैं एक वेदनीय मनुष्यगति पंचेंद्रियजाति सुभग त्रस बादर पर्याप्त आदेय यश तीर्थंकर मनुष्यायु उच्चगोत्र मनुष्यगत्यानुपूर्व्य इन तेरहको नाशकरि एक समयमैं सिद्धालयकूं प्राप्त होय है। ऐसैं सत्त्वका गुणस्थाननिमैं सामान्यवर्णन किया। मार्गणानिमैं गोमटसारादि आगमतैं धारण करना।

अथ दशकरणका नामादिक स्वरूप कहै हैं। बन्धकरण, उत्कर्षकरण[2], संक्रमणकरण[3], अपकर्षणकरण, उदीरणाकरण, सत्त्वकरण, उदयकरण, उपशमकरण, निधत्तिकरण, निकाचनकरण, ऐसैं दशकरण जानने। जीवकै मिथ्यात्वादिक परिणामनिकर जो नवीन पुद्गलद्रव्य ज्ञानावरणादिकर्मके स्वरूप परिणमैं हैं अर कर्मस्वरूप होइ जीवका ज्ञानादिगुणनिकूं आच्छादन करै हैं सो बन्धनाम करण है।

बहुरि कर्मनिकी स्थिति अर अनुभाग पूर्वै बन्धरूप था तिनकी वृद्धिका होना सो उत्कर्षण नाम

है। बहुरि जो प्रकृति अपने स्वरूपकूं छांडि परप्रकृतिरूप परिणमनकूं प्राप्त होइ सो संक्रमण नाम है। बहुरि स्थिति अर अनुभागकी हानि होना सो अपकर्षणनाम है। उदयावली बाह्य तिष्ठता कर्मकूं स्थितिद्रव्यकूं अपकर्षणका वशतैं उदयावलीविषै निक्षेपण करना सो उदीरणानाम है। पुद्गलनिका कर्मरूपकरि अवस्थितपणा सो सत्त्व नाम है।

बहुरि कर्मकै निषेक अपनी स्थितिका क्षय होनेतैं सदैव झडैं सो उदयनाम है। बहुरि जो कर्मस्वरूप परिणम्या पुद्गलद्रव्य उदयावलीविषै क्षेपनेकूं अशक्य होइ सो उपशांतनाम है। अर जो कर्मस्वरूप परिणम्या पुद्गल उदयावलीमैं क्षेपणेकूं अर संक्रमण करनेकूं शक्य नहीं होइ सो निधत्तिनाम है।

बहुरि जो कर्मपुद्गलद्रव्य उदयावलीमैं क्षेपणेकूं अर संक्रमण करनेकूं, उत्कर्षण करनेकूं अर अपकर्षण करनेकूं शक्य नहीं होइ सो निकाचितनाम है। ऐसैं कर्मकी दश अवस्था हैं। तिनमैं मिथ्यात्वगुणस्थानकूं आदिकरि अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यंत तो दश करण हैं। अपूर्वकरणकै ऊपरि दशमगुणस्थानपर्यंत उपशांत निधत्ति निकाचितविना सात करण हैं। ऊपरि सयोगीपर्यंत संक्रमणकरणविना छह करण हैं। अयोगकेवलीगुणस्थानविषै सत्त्वकरण अर उदयकरण दोय ही करण हैं।

इहां इतना विशेष है—उपशांतकषायविषै मिथ्यात्वप्रकृतिको अर मिश्रप्रकृतिको सम्यक्त्वरूप करणकरि संक्रमकरणहू है। अन्यप्रकृतिनिका संक्रमकरणविना छह करण ही हैं। ऐसैं बन्दपदार्थ है सो परमावधि सर्वावधिज्ञानी तथा मनःपर्ययज्ञानी केवलज्ञानी तो प्रत्यक्ष जानै है। जिनकै एक एक परमाणुका अनन्तानन्त शक्तिके अंशपर्यन्त जाननेका सामर्थ्य है। अन्य जीव तिनका उपदेशथा आगमतैं जानि इस कर्मका विध्वंश करना योग्य है।

ऐसैं इस अध्यायमैं बन्धत्वका निरूपण है। तहां पहलै तो गुणस्थानादि वीस प्ररूपणा वर्णनकरि बहुरि मिथ्यात्व आदि बन्धके कारण कहे अर बन्धका स्वरूप कह्या।

आगैं तिसके च्यार भेद कहिकरि पहला प्रकृतिबन्धकी मूलप्रकृति आठ अर उत्तमप्रकृति एकसो

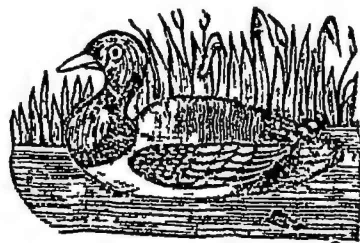
अडतालीस तिनके भिन्नभिन्न नाम कहे अर अष्टकर्मनिकी तथा उत्तरप्रकृतिनिकी उत्कृष्ट जघन्य स्थिति कही। बहुरि अनुभवबन्ध अर प्रदेशबन्धका स्वरूप कह्या। बहुरि पुण्यपापप्रकृतिनिका भेद कह्या। बहुरि बन्धकूं अर उदयसत्वकी गिणती गुणस्थानद्वारै कही। बहुरि निरन्तरबन्धी ध्रुवबन्धयोग्यकृतिनिकूं तथा ध्रुव जिनका उदय तिन प्रकृतिनिकूं कहि दशकरणरूप दश अवस्थाका सामान्यवर्णनकरि अष्टम अध्याय समाप्त किया॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रेऽष्टमो अध्यायः।

अर्थ—ऐसैं तत्त्वार्थका है अधिगम जातैं ऐसा जो दशअध्यायरूप मोक्षशास्त्र तिसविषैं अष्टम अध्याय समाप्त भया।

दोहा।

है जातै तत्त्वार्थका, अधिगम शिवसुखदाय।
मोक्षशास्त्र मंगलमयी, नमूं अष्टम अध्याय॥ ८॥



अथ नवमोऽध्यायः प्रारभ्यते।

दोहा।

ज्ञानविरागस्वभावतै, करै न कर्म प्रवेश।
पूर्वकर्म बहु निर्जरै, पाप आप्तउपदेश ॥ १ ॥

अर्थ—बन्धपदार्थका व्याख्यानके अनन्तर संवरतत्त्व कहनेकूं सूचन करै है। जो यो अष्टप्रकार कर्मनिको बन्ध है सो अनादिसन्तानतैं वारंवार सुखदुःखका कारण है। अर समस्त आत्मप्रदेशनि ऊपरि इन कर्मनिका दृढ़ अवस्थान है अर नानाजातिके शरीरके उपजावनमैं समर्थ है सो ऐसा बन्ध कौन उपाय-करि नाशकूं प्राप्त होइ। यातैं बन्धके नाशके अर्थि संवरका लक्षणकूं कहै हैं—

आस्रवनिरोधः संवरः ॥ १ ॥

अर्थ—आस्रवका निरोध होना सो संवर है। कर्मके आवनेकै निमित्त जो मन वचन कायके योग मिथ्यात्व कषायादिकनिका निरोधहोनेतैं जो अनेकदुःखनिका कारण जो कर्म ताकी प्राप्तिका अभाव होना सो संवर है। सो संवर द्रव्य भावको भेदकरि दोय प्रकार है। चतुर्गतिमैं भ्रमणरूप जो संसार ताको कारण जो क्रिया ताका अभाव होना सो संवर है।

अर भावके निमित्ततैं कर्मपुद्गलनिका आगमनका रुकना सो द्रव्यसंवर है। इहां गुणस्थाननिमैं संवर योग्य प्रकृतिनिका कथन अष्टम अध्यायका अन्तमैं कह्या ही है। इहां आस्रवका निरोध होना सो संवर कह्या परन्तु आस्रवके निरोध कौन कारण करि होइ ऐसा नहीं जाण्या यातैं आस्रव निरोधके कारण कहनेकूं कहै हैं—

स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरिषहजयचारित्रैः ॥ २ ॥

अर्थ—स कहिए कह्या जो संवर सो गुप्ति समिति धर्म अनुप्रेक्षा परीषहजय चारित्र इन छहप्रकारकरि होइ है। संसारपरिभ्रमणके कारणनितैं आपकी रक्षा करना सो गुप्ति है। परप्राणीनिकै पीडाका परिहारकी इच्छाकरि जो सम्यक् यत्नाचाररूप प्रवृत्ति करना सो समिति है। इष्ट जो नरेन्द्र मुनींद्र देवद्रादिस्थानमैं आत्माकूं धारण करै सो धर्म है। शरीरादिक परद्रव्य ज्ञानस्वभाव आत्मद्रव्य अन्य धर्मादिक द्रव्यनिका स्वभावनिका वारंवार चितवन करना सो अनुप्रेक्षा है। क्षुधातृषादि परिषह बाह्य अभ्यंतर निमित्तत प्राप्त होइ तिनकूं क्लेशरहित परिणामनितैं सहना सो परिषहजय है। संसारपरिभ्रमणकूं कारण ऐसी क्रियाका अभावकरि आचरण करना सो चारित्र है। ऐसैं गुप्ति समिति धर्म अनुप्रेक्षा परिषहजय चारित्र इनकरि संवर होना कह्या।

इहां संवरका प्रकरण होतैहू स शब्द सूत्रमैं कह्या सो ऐसा जणावै है जो गुप्त्यादिकनितैं ही संवर होइ है। अन्य जो तीर्थनिमैं अभिषेक करना दीक्षाग्रहण करना मूण्ड मुण्डावना देवताराधनादिक संवरके कारण नहीं हैं। जातैं रागद्वेष मोहकरि ग्रहण कीया कर्मका अभाव होना अन्यकारणनिकरि नहीं संभवै है।

अब–संवरका अन्यह्र कारण है ताकूं कहै हैं—

तपसा निर्जरा च ॥ ३ ॥

अर्थ—तपकरि संवर तो होइ ही है तपतैं निर्जराहू होइ है। यद्यपि दशलक्षणधर्मविषै तप आगया तोहू समस्त संवरके कारणनिमैं तप है सो प्रधानकारण है यातैं प्रधानकूं भिन्न कह्या ही चाहिए। तपके प्रभावतैं नवीनकर्मका संवर होइ है। अर पुरातनबन्धनरूप भए सत्तामैं तिष्ठतेनिकी निर्जराहू होइ है। यद्यपि तपका फल स्वर्ग राज्यादिकनिका अभ्युदयरूप है तथापि प्रधानफल कर्मका क्षयकरि मुक्त होना है। गौणफल इन्द्र चक्रवर्त्यादिकनिका विभव है। जैसैं खेतीका प्रधानफल धान्य उपजना है गौणफल पराल घासादिकहू है।

अब–गुप्तिका लक्षण कहै हैं—

सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥ ४ ॥

अर्थ—योग जो मन वचन कायकी क्रिया इनका यथेष्ट आचरणका रोकना सो योगनिग्रह है। सम्यक् कहिए सत्कार लोकरंजनादिक तो इस लोकसम्बन्धी अर विषयसुखादि परलोकसम्बन्धीनिकी अपेक्षारहित केवलस्वरूपकी विशुद्धताके अर्थि योगनिका निग्रह सो गुप्ति है। मन वचन कायकी स्वेच्छा-प्रवृत्तितैं जो आस्रव होइ था सो इनके निरोधतैं संवर होइ है। जो शरीरका परित्याग जेतैं नहीं होय तेतैं संक्लेशका अभावके अर्थि मन वचन कायके योगनिके रोकनेकी प्रतिज्ञा है। तोहू आहार विहार नीहार प्रश्नादिककी अपेक्षातैं योगनिकी प्रवृत्ति अवश्य होइ।

तिस प्रवृत्तिमैं समितिरूप प्रवर्त्तनेतैं आस्रव नहीं आवै है संवर होइ है। तातैं समितिनिकूं कहै हैं—

ईर्याभाषैषणादाननिक्षपोत्सर्गाः समितयः ॥ ५ ॥

अर्थ—ईर्या भाषा एषणा आदाननिक्षेपण उत्सर्ग ए पांच समिति हैं। इहां पूर्वसूत्रतैं सम्यकपदकी अनुवृत्ति आवै है तातैं सम्यकपद पांचूंनिमैं लगाना। तातैं सम्यगीर्या, सम्यग्भाषा, सम्यगेषणा, सम्यगादाननिक्षेपण, सम्यगुत्सर्ग, ऐसैं इनकी अनादिसिद्धांतमैं सार्थकसंज्ञा है। तहां जो मुनि जीवनिके स्थानयोन्यादिकको ज्ञाता होइ अर धर्मकै अर्थि यत्नमैं सावधान होय ऐसे साधुकै सूर्यका उदय होजाय अर नेत्रनिके विषयग्रहणका सामर्थ्य उपजि आवै अर मनुष्य तिर्यंचनिकै परिभ्रमणतैं ओस बरफ इत्यादिक जिस मार्गतैं दूरि भई होइ ऐसे मार्गमैं अन्यतैं मनको रोकि धीरैं धीरैं पद स्थापन करता शरीरका अंगोपांगादिकनिकूं संकोचरूप करता जूडाप्रमाण आगली भूमिके देखनेमैं दृष्टीकूं लगावता सन्ता गमन करै ताके पृथ्वीकाय जलकायादिजीवनिकी विराधनाके अभावतैं ईर्यासमिति होइ है।

बहुरि हित मित सन्देहरहित वचन बोलै सो भाषासमिति है। तहां जातैं अपने संसारका अभाव होइ सो स्वहितवचन है। अर जातैं परजीवनिका संसारपरिभ्रमण मिटै सो परहित है। ऐसा वचन कहै जातैं अपना अर अन्यका हित होय अर अनर्थक बहुत प्रलापरहित प्रामाणीक वचन सो मितवचन है।

अर जामैं सन्देहादिरहित प्रगट अर्थ होय वा प्रगट अक्षर होय सो असंदिग्धवचन है। हित मित असंदिग्ध वचन तो कहै, अर मिथ्यात्ववचन, ईर्षाके वचन, अप्रियवचन, कषायके वचन, भेद करनेवाले वचन, अल्पसावचन, शङ्काकूं धारता शङ्कित वचन, भ्रम उपजावनेवाला वचन, कषायके वचन, हास्यके वचन, देशकालादिकके अयोग्य वचन, सभाके सत्पुरुषनिमैं नहीं बोलनेके वचन, कठोरवचन, अधर्मकी विधिका उपदेशक वचन, अतिप्रशंसादिक वचन इत्यादि सदोषवचनकूं छांडि निर्दोष जिनसूत्रकै अनुकूल वचन कहै ताकै भाषासमिति होइ ही है।

बहुरि दिवसविषै एकवार निर्दोष आहार ग्रहण करना सो एषणासमिति है। तिसके धारक गृहादिकपरिग्रहरहित अर गुणरत्ननिकरि भरी देहरूपगाड़ीकूं वांगवाकीज्यौं प्रमाणीक आहार देय समाधितपनिकूं प्राप्त करनेके इच्छुक हैं। अर उदरमैं उपज्या क्षुधादिक दाहका उपशमनकै अर्थि औषधिकी ज्यों प्रमाणीक आहार ग्रहणकरता भोजनके आस्वादनकी लालसारहित देशकालादि सामर्थ्यसहित उत्तमकुलमैं उपज्या अनिंद्य अर उद्गम उत्पादन एषणासंयोजनप्रमाण अंगार धूप कारणादिदोषरहित नवधाभक्तिसहित कृत कारित अनुमोदनादि दोषरहित उत्तमकुलके उपजेनिकरि भक्तितैं दीया अन्तराय टालि खड़ा अपना हस्तरूप ही पात्रमैं भोजन करै। याचना नहीं करै, हुङ्कारादि समस्या नहीं करै, आधा उदर भोजनतैं भरै, चौथाई जलतैं भरै, अर उदरका चतुर्थभाग रीता राखै। केवल रत्नत्रय धर्मका सहकारी शरीरकूं जाणि धर्मका पालनके निमित्त आहार लेहै। अर शरीरकी पुष्टता आस्वादनादि दोषरहित ग्रहण करै ताकै एषणासमिति होइ है।

बहुरि शरीर पुस्तक कमण्डलादि धर्मतैं विरोधरहित अन्य जीवनितैं विरोधरहित उपकरणनिकूं नेत्रनितैं देखि पीछीतैं सोधि ग्रहणकरना, धरना, प्रवर्त्तन करना सो आदाननिक्षेपणसमिति है। बहुरि त्रसस्थावर जीवनिकूं बाधा जैसैं नहीं होइ तैसैं शुद्ध जन्तुरहित अंकुररहित, मार्गचारिनिकी दृष्टिके अगोचर भूमिमैं मलमूत्रादि क्षेपणकरि प्राशुकजलतैं शौचक्रिया करै सो उत्सर्गसमिति है। ऐसैं संवरकूं कारण

पंचसमिति कहीं। इहां कोऊ शंका करै–जो ईर्यासमित्यादि पंचसमिति तो कायगुप्तिके अन्तर्भूत हैं फिर भिन्न कैसैं कहीं? ताकूं उत्तर कहै हैं–जो प्रमाणीककालपर्यंत समस्त योगनिका निग्रह सो तो गुप्ति है।

अर गुप्तिमैं बहुतकालपर्यंत ठहरनेकूं असमर्थ साधुकै अपने कल्याणरूप क्रियामैं प्रवृत्ति होय सो समिति है। याहीतैं गमन भाषण भोजन ग्रहण निक्षेपणा मलमोचनलक्षण समितिकी विधिमैं जे अप्रमादी हैं तिनकै गमन भाषणादिद्वारै प्रवेश करते कर्मनिका निरोधहोनेतैं संवरकी सिद्धि होइ है।

अथ–धर्मके संवरका हेतुपणातैं धर्मकूं कहै हैं—

उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥ ६ ॥

अथ—उत्तमक्षमा, उत्तममार्दव, उत्तमआर्जव, उत्तमशौच, उत्तमसत्य, उत्तमसंयम, उत्तमतप, उत्तमत्याग, उत्तमआर्किंचन्य, उत्तमब्रह्मचर्य ए दश धर्मके भेद हैं। आहारके अर्थि परके कुलमैं गमन करते साधुकै दुष्टजननिकरि किए दुर्वचन तिरस्कार हास्य ताडन मारणादिक क्रोधकी उत्पत्तिके निमित्तनिकी निकटता होतै हू परिणाममैं मलीनपणाका अभाव सो क्षमा है।

बहुरि उत्तम जाति कुल रूप विज्ञान ऐश्वर्य श्रुत लाभ वीर्यनिकूं विद्यमान होतैहू इन कूल मदका नहीं होना सो मार्दव है अथवा परकरि किया तिरस्कार होतैहू अभिमानका अभाव सो मार्दव है, बहुरि मन वचन कायकी कुटिलता वक्रताका अभाव सो आर्जव है। बहुरि जो परकी धन परके स्त्रीनिमैं अभिलाषाका अभाव अर छह कायके जीवनिकी हिंसाका अभाव सो शौच है अथवा अपने जीवितका लोभ पर जे स्त्रीपुत्रमित्रादिकनिके जीवितका लोभ अर अपने आरोग्यपणा चाहना तथा स्त्रीपुत्रादिकनिकै आरोग्य रहनेका लोभ अपने इंद्रिय प्रबल रहनेका लोभ तथा स्त्रीपुत्रादिका इंद्रियांके प्रबलता रहनेका लोभ अपने उपभोगसामग्री मिलनेका स्थिर रहनेका लोभ ऐसैं च्यार प्रकार लोभका परिणाममैं अभाव होइ समभाव सन्तोषभावका प्रगट होना सो शौच है।

बहुरि प्रशस्तजनामैं सुन्दरवचन बोलना सो सत्य है। ताके जनपदादिक दश भेद कहे। कोऊ कहै

जो सत्य तो भाषासमितिमैं अन्तर्भूत है फिर सत्य कैसैं कह्या। ताकूं कहै हैं—जो संयमी है सो साधुपुरुषनिमैं असाधुपुरुषनिमैं हितमित ही कहै है। जो प्रमाणीक नहीं कहै तो रागभाव तथा अनर्थदंडादिक दोष आवै तातैं भाषासमिति कही। अर इहां ऐसा जो दीक्षित संयमी वा संयमीनिका भक्त जे श्रावक हैं ते ज्ञानचारित्रादिककी शिक्षादिकमैं सत्यवचन सूत्रके अनुकूलवचन धर्मकी वृद्धिके अर्थि बहुत बोलनाहू युक्त है।

अब संयम कहा है सो कहै हैं—ईर्यासमित्यादिकमैं वर्त्तता मुनिकै जीवनिकी रक्षाके अर्थि एकेंद्रियादि प्राणीनिकै पीडा करनेका परिहार सो प्राणिसंयम है। अर शब्द, रूप, गन्ध, रस, स्पर्शरूप इंद्रियनिके विषयनिमैं रागका अभाव सो इंद्रियसंयम है। ऐसैं प्राणीसंयम अर इंद्रियसंयम दोयप्रकार संयम कह्या। तिस संयमकाहू दोय भेद हैं—उपेक्षासंयम एक अपहृतसंयम दोय ऐसैं भेद हैं। तहां देशकालके विधानका जाननेवाला अर उत्कृष्टसंहननकूं धारता अर मनवचनकायकी गुप्तिका धारक साधुका जो रागद्वेषकरि लिप्त नहीं होना सो उपेक्षासंयम है। तथा याकूं वीतरागसंयम हू कहै हैं।

बहुरि उत्कृष्ट मध्यम जघन्य भेदकरि अपहृत संयम तीन प्रकार है। तहां प्रासुकवस्तिका प्रासुकआहारमात्र ही है बाह्य साधन जाकै अर स्वाधीन वा पराधीन है ज्ञानचारित्रका करणा जिनकै ऐसा साधुकै बाह्यजंतु प्राणीका पड़ना होजाय तो उस प्राणीतैं अपना शरीरकूं दूरकरि प्राणीनिकी रक्षा करै सो उत्कृष्ट है। अर कोमल उपकरणतैं प्राणीनिको दूरि परिहार करै सो मध्यम है। अर अन्य उपकरणकरि प्राणीनिकूं दूरि करना सो जघन्य अपहृतसंयम है।

अब इस अपहृतसंयमका जाननेके अर्थि अष्टशुद्धिका उपदेश भगवान् कह्या है। सो ही कहै हैं—भावशुद्धि, कायशुद्धि, विनयशुद्धि, ईर्यापथशुद्धि, भिक्षाशुद्धि, प्रतिष्ठापनाशुद्धि, शयनासनशुद्धि, वाक्यशुद्धि, ऐसैं अष्टशुद्धिका नाम कह्या। अब अष्टशुद्धि ताकूं कहै हैं। तहां जो भावशुद्धि है सो कर्मनिके क्षयोपशमकरि उपजै है अर मोक्षमार्गमैं रुचि करिकै उज्ज्वलताकूं प्राप्तभई है अर रागादि उपद्रवकरि

रहित है सो ही भावशुद्धि है। याकूं होतै ही आचार प्रकाशकूं प्राप्त होय है। जैसैं उज्ज्वल भीतपरि चित्राम दिपै है, तैसैं जाका रागादि उपद्रवरहित भावशुद्धि होयगी ताकै ही आचार भूषित होयगा।

बहुरि कायशुद्धि कहै हैं—जाका काय वस्त्रादिक आभरण अर आभूषणादिरहित है। अर स्नान-विलेपनादिसंस्काररहित है। अर शरीरमैं पसेव रजादिककरि लिप्तपणाकूं धारै हैं। अर नेत्र भ्रकुटि ग्रीवा हस्तपादादिकनितैं विकार करनेकरि रहित हैं। अर जाकी सर्वत्र यत्नाचाररूप प्रवृत्ति है। मानूं मूर्तिमान प्रशमभावके सुखकूं दिखावै ही है। ऐसी कायकी शुद्धता होय तातैं अन्य जीवनिकै आपतैं भय नहीं होय है अर अन्यजीवनितैं आपकै भय नहीं उपजै सो ही कायशुद्धि है।

अब विनयशुद्धिकूं कहै हैं। अरहंतादिक परमगुरुनिमैं यथायोग्य पूजा स्तवन वन्दनादिकमैं लीन अर सम्यग्ज्ञानादिकमैं यथा विधिकरि युक्त अर समस्त कार्यनिमैं गुरूनिके अनुकूल प्रवृत्तिकरि युक्त अर प्रश्न स्वाध्याय वाचना कथा विज्ञप्ति हास्यादिकनिके अंगीकार करनेमैं प्रवीण अर देश काल भावनिका यथावत् जाननेमैं प्रवीण ऐसा आचार्यनिकै अनुकूल आचरण करनेवालो विनयशुद्धि है। समस्त त्रैलोक्यकी सम्पदाकी मूल है अर या विनयशुद्धि ही संसारसमुद्रके तिरणेकूं जिहाज है। ऐसैं विनयशुद्धि कही।

अब ईर्यापथशुद्धि कहै हैं। नानाप्रकार जीवनिके स्थान तथा जीवनिके उत्पत्तियोग योनिस्थान अर जीवनिके बसनेके आश्रय इनका ज्ञानकरि उपज्या यत्नाचार तिसकरि प्राणीनिकै पीडाका परिहारकरि जामैं गमन होय अर अपना अन्तरंगज्ञानका प्रकाश अर सूर्यका प्रकाश अर अपना इंद्रियका प्रकाशकरि देख्याहुवा क्षेत्रमैं गमन होय अर जामैं शीघ्रगमन नहीं होय विलम्बतैं गमन नहीं होय अर संभ्रमरूप विस्मयरूप क्रीडा विकार दिगन्तरावलोकनादिदोषरहित गमन होय सो ईर्यापथशुद्धि है। याकूं होतै सन्तै संयम प्रतिष्ठाकूं प्राप्त होय है। जैसैं सम्यक् नीति होतैं विभवप्रतिष्ठा पावै। ऐसैं ईर्यापथशुद्धि कही।

अब भिक्षाशुद्धिकूं कहै हैं—कैसी है भिक्षा जो भिक्षाकूं जाय है तदि शरीरकूं आगैं पाछैं नेत्रनितैं अवलोकनकरि है गमन जामैं अर शरीरका आगला पाछला अंग ऊपरि पीछो फेरनेका है विधान जामैं

अर आचारांग सूत्रमैं जो भिक्षाका देशकाल कह्या तिसका जाननेमैं प्रवीण अर भोजनका लाभमैं अलाभमैं सन्मानमैं अपमानमैं समान है मनकी वृत्ति जामैं अर लोकनिंद्य कुलका वर्जन करनेमैं तत्पर अर चन्द्रमाका गमन ज्यों हीन अधिक गृहमें समान है गमन जामैं अर दीन अनाथनिके गृह अर दानशाला विवाहगृहादिकनिकै अत्यन्त वर्जनेकरि सहित अर दीनवृत्तिकरि रहित अर प्रासुक आहारके अवलोकनमैं सावधान अर आगममैं जो कह्या निर्दोष आहारकी प्राप्तिकरि प्राणीनिकी रक्षामात्र ही है फल जाका अर लाभमैं अर अलाभमैं सुन्दर रसरूप आहारमैं अर विरस आहारमैं समान है सन्तोष जामैं ऐसी भिक्षा आगममैं कही है।

भावार्थ—मुनिकी भिक्षा सदाकाल ऐसैं जानना–जिस अवसरमैं अन्यमतनिके भेषोजन भिक्षा लेय आवर्त होय तथा बहुत धूलिआदिक शांत होगई होय चाकीनिके मूसलनिके शब्द होते रहिगए होय तिस कालमैं अपने अंगका आगला पाछला भागकूं देखि पींछीसूं सोधि गमन करै। ईर्यापथ सोधते मौनसहित मार्गमैं वचनालापरहित धर्मध्यानादि तथा द्वादशभावनादि चितवन करता गमन करै। सो आचारांगमैं मुनिके आहार करनेयोग्य देशकी अर कालकी प्रवृत्तिकूं निपुण हुवा जानता होय, जो देशकी कालकी प्रवृत्ति ही नहीं जानै ताकै मुनिधर्म कैसैं प्रवर्त्तै?

जो इस देशमैं उत्तम कुलमैं मनुष्यनिकी ऐसी रीति है ऐसा खानपान है धर्मका आचारका मार्गकूं मुनिके आहार देनेकी विधकै जाननेवाले लोक वसै हैं कि नहीं जाननेवाले वसै हैं तथा लोकनिके ऐसा कालमैं भोजन होइ है तथा इस कालमैं दानमैं सावधानी है। तथा इस कालमैं ऐसैं वाणिज्यादि कर्ममैं प्रवर्त्तै है। ऐसैं देशकालजनित प्रवृत्ति पहलै ही श्रावकादिक धर्मात्माजननितैं श्रवणकरि लीनी होय। अर जो भोजनका लाभ होजाय तो हर्ष नहीं करै, अर अलाभ होय तो विषाद नहीं करै। अर सन्मान होय तो हर्ष नहीं अर अपमान होय तो विषाद नहीं करै, अर लोकनिंद्य कुलमैं कदाचित् गमन नहीं करै अर विना जाने गमन होजाय तो अन्तरायकरि वनकूं पाछा जाय फिर उस दिवसमैं भोजन नहीं करै।

अर धन ऐश्वर्यवान राजाके घरमैंहू भोजनके अर्थि प्रकाश करै अर धनाढ्यकैहू प्रवेश करै। अर जे दीन अनाथ याचकादिक लोक हैं तिनके घरमैं प्रवेश नहीं करै। अर जहां दान बटता होइ, विवाहादिक मङ्गलगान गीतादिक प्रवर्त्तता होय, जहां पूजन यज्ञादिक होता होय, ऐसे घरमैं भोजनके अर्थि प्रवेश नहीं करै। अर आहारके निमित्त याचना आशीर्वाद धर्मलाभादिक नहीं कहै। अर विवर्णता उदरकी कृशता हस्त नेत्र भृकुटीकी समस्या तथा हुंकारादिक ऐसी दीनवृत्ति कदाचित् नहीं करै।

तीनवार आदरपूर्वक तिष्ठतिष्ठ इत्यादिक प्रतिग्रहविना खड़ा नहीं रहै। जठांताई अन्य भिक्षुकादिकनिकै जानेकी मनाई नहीं होइ तीठांपर्यंत जाय, विजुलीका चमत्कारकीज्यों अंग दीखो तथा मतिदीखो बाहुडि अन्य ग्रहमैं प्रवेश करै। प्रासुक आहारकूं देखनेमैं तत्पर अयोग्य जैसातैसा नहीं ग्रहण करै। अर आचारांग आगममैं कही ज्यों छीयालीस दोष बत्तीस अन्तराय चौदह मल इत्यादिकरहित शुद्धविधिकरि निर्दोष आहारकूं ग्रहणकरि प्राणनिका रक्षामात्र ही फल जानै है।

आहार करनेकरि भोजनका आस्वादन इन्द्रियबल दीर्घजीवनादिफलकूं नहीं चाहै हैं। जातैं चारित्ररूप सम्पदा तो भोजनकी शुद्धतातैं है। जैसैं साधुजननिकी सेवा गुणसम्पदाकूं कारण है। लाभमैं अलाभमैं सुन्दररसरूप भोजनमैं नीरस विरस भोजनमैं समभाव करि जो सन्तोषी होय तिसहीकै भिक्षाशुद्धि है।

भिक्षाकी पांच वृत्ति हैं–गोचरीवृत्ति, अक्षम्रक्षणवृत्ति, उदराग्निप्रशमनवृत्ति, भ्रमराहारवृत्ति, गर्त्तपूरणवृत्ति ऐसैं पंचप्रकार भिक्षावृत्ति है। तिनमैं जैसैं लीला आभरणादिसहित श्रेष्ठस्त्रीकरि ल्याया घासकूं गौ चरै है परंतु तिस स्त्रीका रूपसम्पदा आभरणादिककै देखनेमैं लीन नहीं होइ है, जैसा घास धस्या तसैंकूं चरवेमैं ही लीन है तैसैं साधुहू भिक्षाके देनेवाले मनुष्यनिका कोमलललितरूप सौंदर्य वेष विलास देखनेमैं निरुत्सुक हुवा शुष्क आहार द्रव कहिए जलघृतादिकनिकरि रहित आहारमैं तफावत नहीं विचारता जैसा रस नीरस शीत उष्ण कठिन कोमल जैसा दातारकरि दीया वैसा भक्षण करै है।

तातैं गौकीज्यौं चार कहिए भक्षण तातैं गोचरीवृत्ति कहिए हैं। अथवा जैसैं वनकै नानास्थाननिमैं

तिष्ठते अपनेयोग्य घासकूं गौ चरै है अर वनके स्थानशोभा सम्पदा देखनेमैं तत्पर नहीं होइ है तैसैं साधुहू गृहस्थका दीया योग्य आहारहीकूं भक्षण करै हैं। गृहस्थका महल मकान सुवर्ण रूपामय मृत्तिकामय पात्र धन समृद्धिसहितपणा रहितपणाके देखनेमें लीन नहीं होय तिनकै गोचरीवृत्ति वा गवेषणावृत्तिकरि आहार कहिए है।

बहुरि जैसैं वणिक् रत्नांके भारकरि परिपूर्ण भरी गाडीकूं कोऊ घृतादिकतैं वांगि अपने वांछित देशकू प्राप्त करै है, तैसैं मुनिहू गुणरत्नकरि भरी देहरूप गाडीकूं निर्दोष भिक्षा देय अपने वांछित समाधिपतनकूं प्राप्त करै हैं। समाधिमरणपर्यंत लेजाय है सो अक्षम्रक्षणवृत्तिकरि भिक्षा है। इहां अक्षम्रक्षण नाम गाडीकूं वांगनेका है। बहुरि जैसैं भण्डारमें लाग्या अग्निकूं जैसा तैसा जलकरि गृहस्थी बुझावै हैं तैसैं साधुहू उदरमैं प्रज्वलित भई क्षुधारूप अग्निकूं रस नीरस भोजनकरि बुझावैं सो उदराग्निप्रशमनवृत्ति नाम भिक्षा है।

बहुरि जैसैं भ्रमर है सो पुष्पकूं बाधा नहीं करता गन्ध ग्रहण करै है तैसैं साधुहू दातारकै किंचित् बाधा नहीं उपजावता आहारकूं ग्रहण करै सो भ्रमराहारवृत्ति है। बहुरि जैसैं गृहस्थ है सो अपना गृहमैं भया खाडाकूं भाटा रेत कजोडा इत्यादिककरि भरिदेहै तैसैं साधुहू उदररूप खाडाकूं लूखा सचिक्कण शीत, उष्ण जैसा प्राप्त भया भोजन तिस करि पूर्ण करै है सो गर्त्तपूरणवृत्ति है। ऐसैं भिक्षा पंचप्रकारवृत्तिकरि होय सो भिक्षाशुद्धि है।

बहुरि साधु है सो अपने नख, रोम, नासिका, मल, कफ, वीर्य, मूत्र मलादिकका क्षेपण करै सो देशकालकूं जाणि जैसैं कोऊ जीव मात्रकै बाधा नहीं होइ परिणाम नहीं बिगडै मार्गमैं आवने जावनेवालेनिका परिणामकै मलीनता नहीं आवै ऐसा प्रासुक चोपटरूप भूमि होइ तहां क्षेपण करै सो प्रतिष्ठापनशुद्धि है। बहुरि शयनासनशुद्धिका इच्छुक मुनि है सो जहां स्त्रीनिका आरजार होय नीचपुरुष तिष्ठते होंइ तथा चोर मद्यपानी सिकारी कुकर्मादि करनेवाले होंय तथा श्रृंगारके विकार शरीरके विकारकरि सहित

उज्ज्वलवेषके धारनेवाली वेश्या कुलटादिक जहां होंइ तथा क्रीडासामग्रीसहित तथा गीत नृत्य वादित्रादिकरि व्याप्त होय ऐसैं स्थाननिकूं दूरिहीतैं छांडै तथा तिर्यंच रोगीपुरुष मार्गके आवनेजावनेवालेनिके स्थानकूं छांडिकरि अकृत्रिम गुफा वृक्षनिके कोटरादिक तथा कृत्रिम शून्यगृहादिक अपने अर्थि नहीं रच्या ऐसैं जंतुबाधारहित प्रासुकस्थाननिमैं तथा वनके प्रदेश पर्वतनिके शिखर बालूके टीबा इत्यादिक निर्दोषस्थानमैं शयनासन करै तिनकै शयनाशनशुद्धि है।

बहुरि वाक्यशुद्धिका धारक साधु है सो ऐसा वचन बोले जो पृथ्वी कायिकादि छह कायके जीवनिका घात नहीं होइ तथा पृथिव्यादिकनिका आरम्भकी प्रेरणारहित होइ अर कठोर निष्ठुर परके पीडाका प्रेरक नहीं होइ, जिस वचनतैं मिथ्यात्व असंयमादिक नहीं होइ, कषायनका संघरहित राग, द्वेष, मोहका नाश करनेमैं तत्पर होइ, व्रतशील उपदेशादिक जाका प्रधान फल होइ सांसारिक फल नहीं होइ, अर आपका परका हितरूप होइ प्रमाणीक अल्प अक्षररूप होइ, मधुर होइ मनोहर होइ संयमीके योग्य होइ ऐसा वचनका उचारण करना सो वाक्यशुद्धि है। समस्त चारित्रसम्पदा वाक्यशुद्धिके आधार है। ऐसैं अपहृतसंयममैं अष्टशुद्धि कही।

बहुरि जो कर्मका क्षयके निमित्त अनशनादिक तपका करना उत्तम तप है। जैसैं अग्निकरि तपाया सुवण मलकूं छांडि शुद्ध होय है तैसैं तपकरि तपाया आत्माहू कर्ममलकरि रहित शुद्ध होय है। बहुरि चेतन अचेतनलक्षण परिग्रहका त्याग सो त्यागधर्म है। बहुरि जो आत्मस्वरूपतैं अन्य जो शरीरादिकनिमैं संस्कारादिकनिका अभावके निमित्त ए हमारा, ऐसा ममत्वरूप अभिप्रायका अभाव सो आकिंचन्य है।

बहुरि पूर्वै जो कलागुणनिकरि चतुर ऐसी स्त्रीनिकूं अनुभवकरि तिनकूं स्मरण करनेका त्याग तथा स्त्री मात्रकी कथा श्रवण करनेका त्याग तथा रससुगंधादिकरि वासित स्त्रीनिका संसर्गसहित शय्या आसनादिकनिका संसर्गका त्याग करना तथा विषयानुरागरहित होइ ब्रह्म जो अपना शुद्ध आत्मा तिस विषै जो चर्या कहिए प्रवर्तन करना सो ब्रह्मचर्य है। ऐसैं संवरके अर्थि दशलक्षण धर्मका धारण कह्या।

इन क्षमादिक दशधर्मनिके उत्तम विशेषण हैं सो दृष्टप्रयोजनादिक जो ख्याति लाभ पूजादिककी निवृत्तिके अर्थि जानना। अर समस्त जो ए उत्तमक्षमादिक गुण इनिके प्रतिपक्षी जे क्रोधादिक तिनमैं दोष जाणि भावना करना योग्य है। सोही कहै हैं।

उत्तमक्षमातैं व्रतकी अर शीलकी रक्षा होइ है, इस लोक परलोकमैं दुःखका संगम नहीं होय है। अर समस्तजगतमैं सन्मान सत्कारादि प्रगट होय है। अर क्रोधके वशत धर्म अर्थ काम मोक्षका नाश होय है तातैं क्षमा ही करना योग्य है। बहुरि अन्य कोऊ क्रोधके निमित्त दुर्वचन निंदादि प्रगट करि हैं तो ऐसा विचारै जो यो मूनैं निंदै है दोष कहै है ते दोष हमारै मांही विद्यमान हैं कि नहीं हैं जो हैं तो सत्य कहै हैं तदि सत्य कहनेवाला हमारा निंदक नहीं है उपकारक है।

अब मोकूं ए दोष अंगीकार नहीं करना शीघ्र त्याग करना। सत्य कहनेवालेमैं दोष कोन अज्ञानी करै है। यह मेरा उपकारक है जो कुगतिमैं डूबतेकूं हस्तावलम्बन देहै। अर झूठे कहैं हैं तो यो कहनेवाला अज्ञानी है। अज्ञानभावतैं कहै हैं आपके कर्मबंध करै है अर हमारे निर्जरा होय है। अर जो यो दुर्वचन कहे अर मैंहू क्रोधरूप हो जाऊं तो मुझमैं अर इसमैं भेद कहा रह्या, अर गाली दुर्वचन ए वस्तुत्वकरि देखिए तो शब्दरूप परिणमे पुद्गलस्कंध हैं हमारे लगै नाहीं। अर जो यो दुर्वचन कहे हैं सो मेरे देहकूं नामकूं जातिकुलकूं कहै हैं सो ए पर पुद्गल हैं मैं इनसूं भिन्न हूं।

बहुरि जाकूं दुर्वचन कहे सो मैं नहीं अर मैं हूं ताकूं वचन पहुंचे नहीं। बहुरि जो यो दुर्वचन कहै है सो परोक्ष कहे हैं प्रत्यक्ष तो नहीं कहे हैं। अज्ञानी प्रत्यक्ष भी कहै है। अर जो प्रत्यक्ष कहै तो विचारै जो ताडना तो नहीं करै है। अज्ञानी ताडनाहू करै है। अर ताडन करै तो मोकूं प्राणरहित तो नहीं किया। अज्ञानी मारिभी डारै हैं। अर जो मारिडारै तोहू चितवै जो एकबार मरण तो अवश्य होइहीगा इसमैं मेरा धर्मघात तो नहीं किया। संसारमैं मरण सबकूं आवैगा। यो त्रैलोक्यपूज्य परमउपकारक अनन्तभवनिमैं दुर्लभ यो उत्तमक्षमादिकधर्म हमारा मति विनसो। अर हमारा ही पूर्वकृत कर्म है

जो मैं पूर्वै अशुभकर्म बांध्या सो उदय आया है, पर पुरुष तो निमित्तमात्र है।

इस पापका फल नरकमैं उदय आवता अब सहज ही रस देय निर्जरै है। अर हे आत्मन्! तू भगवान् वीतरागकूं जानै है। अर वीतरागधर्मकी उपासना करै है। यातैं तोकू तो वीतरागता बधावना ही श्रेष्ठ है। बहुरि केते उपकारी जन तो परकै सुखकै अर्थि धन देवै है जमीं जायगां देवैं हैं शरीरकूं देवै हैं ऐसे हैं। अब यो मोकू दुर्वचनादि कहिकरि ही सुखी होजाय तो मेरै इस सिवाय कहा लाभ है। मेरै निमित्ततैं कोऊ प्राणीकै दुःख मति होहु। अर अशुभकर्म तो मैं किया अर अब उदयकूं भोगता अन्यकूं दूषण द्यूँ सो तो मेरी बडो मूढता है।

अर अठै तो दुर्वचन ही सहूं हूं अर संक्लेश परिणामकरि नवीनकर्म बांधूं हूं सो याका फल तिर्यंचमैं मारिडारना नासिका फोडि रज्जू सांकल घालना वारंवार मारना बहुत बोझ भार लादना मर्मस्थाननिमैं लाठी चामठी लोहमय आयुधनिकी चोब देना दृढ बांधना क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण रोगादिजनित हजारां वेदना भोगना पराधीन रहना सो तो थोरे कालमैं उदय आवैगा तातैं वैर विरोध छांडि समभावकूं अंगीकार करि जिनेंद्रभाषित परमोपकारक आत्माका रक्षक ऐसा उत्तमक्षमाधर्महीका शरण ग्रहणकरि धारणकरना श्रेष्ठ है।

बहुरि मानकषायका अभावतैं मार्दवधर्मका धारक पुरुषविषे गुरुजन अनुग्रह करै हैं। साधुपुरुष हैं ते मार्दवयुक्तकूं साधु मानै हैं उत्तम जानै हैं। यातैं सम्यग्ज्ञानादिकनिको पात्र होय है। तातैं स्वर्गमोक्षफलकी प्राप्ति होइ है। इस लोकमैं कीर्ति विस्तरै है। अर मानकरि मलिन मनविषै व्रत शील नहीं तिष्ठै हैं नष्ट होजाय हैं। साधुजन मानीका संसर्गका परित्याग करै हैं। लोकमैं अपकीर्ति होइ है। अभिमानीका जगत् वैरी होजाय है। सम्पूर्ण आपदाका मूल एक अभिमान है। तातैं मानकषाय छांडि मार्दवधर्म धारना श्रेष्ठ है।

बहुरि सरलहृदयमैं समस्तगुण वसै है। सत्यप्रतीती कीर्ति समस्तगुण सरलपरिणामीकूं प्राप्त होय

हैं मायाचारीकों गुण नहीं आश्रय करै हैं। मित्र भी अवज्ञा करै। प्रतीति सांचधर्म समस्त नष्ट होजाय दुर्गतिकूं प्राप्त होइ। तातैं आर्जवधर्म धारना श्रेष्ठ है। बहुरि शौचधर्मीका इहां ही बड़ा सन्मान होय है। समस्त विश्वासादि गुण यामैं बसै हैं। क्लेशित परिणाम नहीं रहै हैं। समभाव सन्तोषभावतैं इहां ही बड़ा सुखकूं पाय स्वर्गमोक्षपद पावै हैं। अर लोभोंमें समस्त दोष ही बसै हैं। गुण अवकाश नहीं पावै है। लोभीमैं समस्त पाप कृतघ्नता धर्महीनता अकीर्ति वैर हिंसादिकमहापाप बसै हैं। इस लोक परलोकमैं अचिन्त्य कष्ट लोभीमैं आवै हैं यातैं लोभत्यागि शौचधर्म धारना श्रेष्ठ है।

बहुरि सत्य बोलनेवालेमैं समस्त गुणनिकी सम्पदा बसै हैं। असत्यवादीको बांधवादिक भी अवज्ञा करै हैं। मित्र हैं ते असत्यवादीकौं छांडै हैं। अर इहां ही जिह्वाका छेद सर्वस्वहरणादि कष्ट भोगि दुर्गतिमें जाय हैं। तातैं सत्यधर्म धारना श्रेष्ठ है। बहुरि इस मनुष्यपर्यायमैं आत्माका हित एक संयम ही है। संयमी यहां ही देवनिकरि पूजनीक है परलोकके फलकूं तो कौन कहि सकै। अर संयमरहित है सो प्राणीनिकी हिंसामैं विषयनिके अनुरागमैं नित्यप्रवर्त्तनकरि दुर्गतिका पात्र होय हैं। तातैं संयमधारण करना ही श्रेष्ठ है।

बहुरि तप है सो समस्त अर्थका साधन है। तपतैं अनेक ऋद्धि प्रगट होय है। तपस्वीनिकरि आश्रय किया क्षेत्रहू लोकमैं तीर्थताकूं प्राप्त होय है। जाकै तप नहीं सो लोकमैं तृणहूतैं लघु है अर तप छोडनेवालेकूं समस्त गुण छांडै हैं। अर संसारपरिभ्रमणतैं नहीं छूटै है तातैं तपधर्म धारना ही श्रेष्ठ है।

बहुरि परिग्रहत्याग ही आत्माका हित है। जिसजिस परिग्रहतैं रहित होइ तिसतिसतैं जीवकै खेद क्लेश दूरि होय है। पाप रहित परिणाम होय है। दुर्ध्यान नष्ट होय हैं। परिग्रहकी आशा बहुत ही बलवान है। इस जीवकै परिग्रहकरिकै तृप्ति नाहीं उपजै हैं। वडवानलकीज्यों आशारूप खाडाकूं कौन पूर्ण करै। यों आशारूप गर्त दिनदिन ऐसा बधै है। जामैं त्रैलोक्यकी सम्पदा आजाय तोहू नहीं भरै। समस्त जीव विषयनिकी वांछाकरि सदाकाल कलुषित होरहे हैं। तातैं उत्तमत्यागधर्म धारना ही श्रेष्ठ है।

बहुरि शरीरादिकनिमैं निर्ममत्वपणातैं संसारतैं परमनिवृत्तिरूप होय है शरीरादिकनिमैं कीया है स्नेह जामैं ऐसैं पुरुषकै सर्वकाल संसारपरिभ्रमण ही जानना। तातैं शरीरादिक समस्त परवस्तुमैं ममत्व छांडि अपने स्वरूपकूं आकिंचन्य भावना सो ही आकिंचन्य श्रेष्ठ धर्म है। बहुरि ब्रह्मचर्यकूं पालन करता पुरुषकूं हिंसादिक दोष नहीं स्पर्शन करै है। जो सास्वता गुरुकुलमैं वसैं तिस विषै गुणसम्पदा वसै है, अर जो रूपवती स्त्रीनिका हावभाव विलास विभ्रमके वशीभूत हैं ताहि पाप अपने आधीन करै हैं। जो इन्द्रियनिकै वश होना है सो अपने आत्माका घात करना है। तातैं ब्रह्मचर्य धारण करना श्रेष्ठ है।

ऐसैं उत्तम क्षमादिकनिमैं अर इनके प्रतिपक्षी क्रोधादिकनिमैं गुण दोष विचारपूर्वक क्रोधादिकनिका अभाव होतैं संतैं इनके निमित्ततैं आवते कर्मके आस्रवके अभावतैं महान् संवर होय है।

अब संवरको कारण द्वादश अनुप्रेक्षाकूं कहै हैं—

अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्म-
स्वाख्याततत्त्वानुचिंतनमनुप्रेक्षाः ॥ ७ ॥

अर्थ—अनित्य अशरण संसार एकत्व अन्यत्व अशुचि आस्रव संवर निर्जरा लोक बोधदुर्लभ धर्मस्वाख्यात इन बारहके स्वरूपको वारंवार चिंतना सो अनुप्रेक्षा है। इस जीवकै अनित्यभावना नहीं रुची तदि देह धन कुटुम्बादिकनिके अर्थि महापापमैं प्रवर्त्तै है। ए इंद्रियविषय धन यौवन जीवितव्य जलबुद्बुदज्यों अथिरस्वभाव हैं। गर्भादि अवस्थाविशेष हैं ते संयोगवियोगरूप हैं। मोहतैं अज्ञानी नित्यता मानैं हैं। संसारमैं अपना ज्ञानदर्शनोपयोग स्वभावतैं अन्य कोऊ वस्तुका संयोग ध्रुव नहीं है।

जन्म है सो मरणकरि सहित है। यौवन जराकरि ग्रस्त है। लक्ष्मी विनाशसहित है। जहां संयोग है तहां अवश्य वियोग है। इंद्रियनिके विषय इंद्रधनुषवत् चंचल हैं। देखते देखते नष्ट होय हैं। इंद्रियनिका सामर्थ्य अवश्य दिनदिन घटै है। जैसैं मार्गमैं सन्मुख आवता पथिकजनका संसर्ग क्षणमात्रका है तैसैं

मित्र बन्धुजननिका सम्बन्ध अत्यंत अल्पकाल जानहु। नाना भोजन पान सुगंध वस्त्र आभरणादिककरि बहुतकाल लालन पालन कीयाहू देह क्षणमात्रमैं विनसै है। अर लक्ष्मी चक्रीनिकीहू स्थिर नहीं। तातैं समस्तकूं अनित्य चिंतवन करना सो अनित्यभावना है। ऐसैं चिंतवन करतेके समस्त देह धन कुटुम्बादिकनिमैं आसक्तताका अभावतैं वियोग होतैंहू परिणाममैं पीडा नहीं उपजै है।

बहुरि अशरणभावना भावनेतैं सांसारिक सम्बन्धकूं अपने रक्षक नहीं जाणै है। जैसैं एकांत वनमें बलवान् अर क्षुधावान् अर मांसका इच्छुक ऐसा व्याघ्रकरि पकड्या मृगका बालककूं किंचित् शरण नहीं है। तैसैं जन्म जरा मरण रोग, प्रियका वियोग, दुष्टका संयोग, वांछितका अभाव, दारिद्र दुर्जनादिकतैं उपजे दुःखकरि पीड़ित प्राणीकै कोऊ शरण नहीं है। बहुत पुष्ट किया अपना शरीरहू भोजनप्रति सहायी है कष्टमैं नहीं। कष्ट आवतैं आत्माकै अपना शरीर ही दुःख उपजावै है। अर बड़े यत्नतैं संचयकिया धनहू परलोककूं नहीं जाय है। अर जिनकूं सुखदुःखमैं शामिल होय भोगे ऐसै मित्रहू मरणकालमैं नहीं रक्षा करे हैं। अर समस्त बांधवहू रोगसहितकी रोगतैं रक्षा नहीं करै हैं।

इस संसारमैं मरण कहां नहीं देख्यो हो। जामैं स्वर्गलोकको इंद्र ताकूं अणिमादिक अनेकऋद्धिनिके धारक असंख्यात देवहू क्षणमात्र भी नहीं रक्षा करिसकै तो अन्य ग्रह पिशाच योगिनी यक्ष क्षेत्रपाल मंत्र तंत्र यज्ञ होम औषधि वैद्य रसायानादिक कौन रक्षा करनेमैं समर्थ होइ। मरण तो आयुकर्म नाश होनेतैं है अर आयुकर्म कोऊ देनेकूं समर्थ नहीं। यातैं देवनिका इंद्रहू आयु पूर्ण भए रक्षा करनेमैं समर्थ नहीं है। अन्यकी कहा कथा। अर जो मरण करते मनुष्यकी देव देवी मंत्र तंत्र क्षेत्रपालादिक रक्षा करते तो मनुष्य अक्षय होजाते। देखहु, नानाप्रकार रक्षाका उपायकरिकेहू कोऊ बलवान् ऐश्वर्यवान् धनवान् ज्ञानवान् शूरवीर तथा निर्बल निर्धन रंक अज्ञान अशक्त मरणतैं नहीं बचे हैं।

ऐसैं प्रत्यक्ष देखताहू जो ग्रह भूत पिशाच योगिनी यक्ष मंत्र तंत्रादिकनिकूं शरण मानै हैं सो यो महान् मिथ्याभावका उदय है। ऐसैं अन्य असातादिक कर्मके उदयकूंहू निवारण करनेकूं कोऊ शरण

नहीं है। एक सम्यग्भावतैं आचरण कीया धर्म ही शरण है। जातैं शरण दोय प्रकार है–एक लौकिकशरण, एक अलौकिक शरण, तिनमैं लौकिकशरण तो चेतन अचेतन मिश्र भेदकरि तीन प्रकार हैं। तिनमैं राजादिक तथा देवतादिक तो लौकिक जीवशरण है। गढकोट कपाट इत्यादि लौकिक अजीवशरण हैं। मनुष्यादिक सहित नगरग्रामादिक लौकिकमिश्रशरण हैं। ऐसैं ही पंचपरमेष्ठी अलौकिकजीवशरण हैं। इनिके धातुपाषाणादिमय प्रतिविम्ब जिनसिद्धांतके पुस्तक वाक्यादिक अलौकिकअजीवशरण हैं। धर्मोपकरणसहित साधूनिका समूह अलौकिकमिश्रशरण हैं।

ऐसैं व्यवहारशरण कह्या। निश्चयशरण तो उत्तमक्षमादिकरूप परिणमनकूं प्राप्तभया ऐसा शुद्ध वीतरागपरिणतिरूप अपना आत्मा ही आपकै शरण है। जातैं निश्चयतैं तो क्रोधादिरूप परिणया आत्मा आप ही आपका घातक है। अर क्षमादिक परिणमननैं प्राप्त होइ तदि आप ही आपका रक्षक है। अन्यकूं रक्षक घातक समझना सो मिथ्याभाव है। एक भलेप्रकार आचरण कीया धर्महीकूं शरण जानहु। मित्रधनादिक कोऊ रक्षक नहीं हैं।

ऐसैं अशरणानुप्रेक्षा चिंतवन करतेकै मैं नित्य अशरणहूं ऐसे भावतैं सांसारिक समस्त बन्धमैं ममत्वके अभावतैं भगवान् सर्वज्ञकथित वचनहीमैं लीनता उपजै है। ऐसैं अशरणभावना कही। अब संसारभावनाका ऐसा स्वरूप है। संसारनाम परिभ्रमणका है। इस संसारमैं एक शरीरकूं छांडै है अन्यकूं ग्रहण करै है। ऐसैं निरन्तर एकएककूं छांडना अर नवीन नवीन ग्रहण करना तथा नाना प्रकारकी देहनिमैं परिभ्रमण करना सो संसार है।

जब पापका उदय आवै है तदि नरकनिमैं प्राप्त होइ नानाप्रकार वचनके अगोचर ताडन, मारन, छेदन, भेदन, शूलारोपण वैतरणीनिमज्जन शाल्मलीघसीटन तथा असुरांकरि कीयादुःख शरीरसम्बन्धीदुःख मानसिकदुःख क्षेत्रजनितदुःख परस्पर कीया दुःख ऐसैं पंचप्रकारके घोर दुःखनिकूं असंख्यातकालपर्यंत नरकधरामैं भोगै हैं। जिनकै नेत्रका टिमकारामात्रहू सुखरूप नहीं है। अर तिलतिलमात्र खण्ड करेहू

घांणीमैं मिलेहू आयु पूर्ण भएविना मरणकूं प्राप्त नहीं होय है। पाराकी ज्यों देहके खण्डखण्डहू मिलि जाय हैं। बहुरि कदाचित् नरकमैंतैं आयु पूर्ण करि निकलै तो नानाप्रकारका तिर्यंचयोनिकूं प्राप्तहोइये है। तहां गर्भविषैही छेदन मारणादि दुःखकूं प्राप्त होय है तथा क्षुधा तृषा शीत उष्णजनित घोरवेदना भोगै है। जहां परस्पर मनुष्यनिकी ज्यों अपना सुखदुःख कहना श्रवण करना गोष्ठी करना उपाय करना है नाहीं। सदाकाल क्षुधादिवेदनाकरि पीडित भयभीत रहै हैं। अनेक तिर्यंच मारि खाजाय हैं। दुष्ट मनुष्य मारि भक्षण करै है। जेठैंतेठैं हेरिकरि मारै हैं।

तथा नासिका फाडि जेवड़ा शांकल घालि बांधै हैं, बहुतभार लादै हैं, मर्मस्थाननिमैं तीक्ष्ण मारनितैं मारै हैं, भागने छिपने नहीं देहैं, अपना दुःख सहि सकैनहीं, कोऊ पुकार सुनै नाहीं। रोगादिककी तीव्र वेदना होत हू मर्मस्थाननिमैं चोट देय मारै हैं। उछलै हैं पडै हैं अत्यंत पराधीनता भोगै हैं। जिनकै कार्य करनेकूं हस्तादिक अवयव कहनेकूं वचन नहीं, कोनसूं दुःख कहैं कोन पूछै कोन सुनै। कोऊ राजादिक सहाय करै नहीं। अर अशक्त होय पडै तो कोन उठावै, जलमैं थलमैं कर्दममैं शीतमैं तावडामैं वर्षामैं पड्याहुवाकूं असमर्थ जाणि काकादिक दुष्टपक्षी तीक्ष्ण लोहसमान चूंचनिकरि नेत्रनिकों खोंसि लेजाय हैं अर मर्मस्थाननिमैं काटिकाटि खाय हैं।

ऐसैं तिर्यंचगतिका घोर दुःख प्रत्यक्ष दीखै है। जो अन्यायकरि परका धन खाय हैं। लोभी व्यसनी होय कुदान लेवैं हैं। अभक्ष्य भक्ष्य भक्षण रात्रिभोजन करै हैं विकथामैं प्रवत्त हैं ताका फल तिर्यंचगतिमें भोगवें हैं तथा तिर्यंचनिमें पक्षी हैं तेहू अत्यंत दुःखरूप रहैं हैं। वृक्षनिकी छोटी शाखानिकूं दृढ़ पकडि भयभीत भए क्षुधातृषाकी बाधा, तीव्र पवनकी बाधा, वर्षाका पतनकूं शीत बरफके पडनेकूं गडेनिकी मारकूं अत्यंत भोगते अन्धकारकी भरी रात्रिकूं भयभीत भए एकाकी पूर्ण करै हैं। ऐसी तिर्यंचगतिमें मायाचारके परिणामतैं भोले असमर्थ जीवनिके धन विषयभोगनिकूं हरनेतैं अनेकपर्यायनिमें असंख्यातकालपर्यंत दुःख भोगै हैं। कोन कहनेकूं समर्थ हैं।

बहुरि कदाचित् मनुष्य होय तो तहांहू गर्भवासविषै संकुचित अङ्ग हुवा महाघृणाके स्थानमें नव दशमास पूर्णकरि योनिसंकट महादुःख भोगि बाहिर आवै है। बहुरि बाल्य अवस्थामें नानाप्रकारका रोगजनित दुःख तथा मातापिताका मरण होनेकरि वियोगजनित दुःख, क्षुधा शीत उष्णजनित वेदनाकूं सहता महान दुःख भोगै हैं।

बहुरि विषयभोगनिकी चाहजनित दरिद्रजनित अपना भयतैं उपज्या अलाभतैं उपज्या घोर दुःख भोगै हैं। अर कोऊ पुण्ययुक्तहू मनुष्य होय ताकैहू इष्टका वियोग अनिष्टका संयोगजनित दुःख देखिए ही हैं। कोउकै तो स्त्री ही नहीं है, कोऊकै स्त्री है तो पुत्र नहीं, पुत्र है तो धन नहीं, धन है तो नीरोगशरीर नहीं, नीरोगशरीर है तो धनका नाश होजाय तथा पुत्र कपूत होइ तथा स्त्री दुराचारिणी होइ, स्त्रीका पुत्रका मरण होजाय तथा वैरीसमान बांधव होय है, राजा लूटै है, अग्नि दग्ध करै है तथा धनवान् होइ निर्धन होजाय है। इत्यादिक दुःख मनुष्यपर्यायमैं प्रत्यक्ष देखहु।

बहुरि देवपर्यायमैंहू इष्टवियोगादिक दुःख तथा महर्द्धिकदेवनिकी सम्पदा देखि तथा विषयांकी तृष्णातैं दुःख तथा स्वर्गलोकतैं पतन होनेका घोरदुःख भोगै हैं। ऐसैं संसारीजीव अनन्तकालतैं चतुर्गतिनिमैं नानादुःख भोगता अनन्तपरिवर्त्तन पूर्णकीए। परिवर्त्तन नाम परिभ्रमणका है। सो परिवर्त्तन द्रव्य क्षेत्र काल भव भावकरि पांच प्रकार है। तहां द्रव्यपरिवर्त्तन कर्म नोकर्म भेदकरि दोय प्रकार है। तिनमैं नोकर्मपरिवर्त्तन कहै हैं। याका स्वरूप ऐसा—जो औदारिक वैक्रियिक आहारक लक्षण रूप तीन शरीरनिके विषैं किस ही शरीर सम्बन्धी षट्पर्याप्तनिके योग्य पुद्गलनिकूं एक जीव एकसमयविषैं स्निग्ध रूक्ष वर्ण गन्धादिकरि तीव्र मन्द मध्य भावकरि यथासम्भव ग्रहण कीये अर द्वितीयादि समयनिमैं जीर्ण कीए। तिनका ऐसा क्रम जानना।

जो एकजीव एकसमयमैं अभव्यराशित अनन्तगुणा अर सिद्धराशिके अनन्तवैं भाग ऐसा मध्य अनन्तका जो प्रमाण तितना परमाणुका पुंज एकसमयप्रबद्ध कहावै सो ग्रहण करै है अर इतना ही निर्जरे

है। तिनमैं कोऊ समयप्रबद्ध तो ऐसा है जामैं कदे ग्रहण नहीं कीए ऐसे परमाणु हैं सो तो अगृहीतसमयप्रबद्ध हैं। अर जामैं पूर्वै ग्रहण कीए ऐसे परमाणूनिका ही समूह है सो गृहीतसमयप्रबद्ध है। अर जामैं केते अगृहीतका समूह सो मिश्रसमयप्रबद्ध है।

इहां कोऊ कहै—अगृहीत परमाणु कैसे हैं? ताका समाधान—सर्वजीवराशिके प्रमाणकूं समयप्रबद्धके परमाणूनिका प्रमाणकरि गुणिए, जो प्रमाण आवै ताकूं अतीतकालके समयनिका प्रमाणकरि गुणिए जो प्रमाण होइ तिसतैं भी पुद्गलद्रव्यका प्रमाण अनन्तगुणा है। जातैं जीवराशितैं अनन्तगुणा है। जातैं जीवराशितैं अनन्तवर्गस्थान गुण पुद्गलराशि होइ है। तातैं अनादिकाल नानाजीवनिकी अपेक्षा भी अगृहीतपरमाणु लोकविषै विशेष पाइए हैं।

बहुरि एकजीवका परिवर्त्तनकालकी अपेक्षा नवीन परिवर्त्तनका प्रारम्भ भया तब सर्व ही अगृहीत भए पीछैं ग्रहे ते गृहीत होय हैं। इस अपेक्षाहू अगृहीत मिश्रगृहीत यथासम्भव जानना। तिनका काल द्रव्यपरिवर्त्तनमें ऐसा जो नोकर्मपुद्गलपरिवर्त्तनका प्रथमसमयतैं आरंभ करिए हैं। जो पहले समय अगृहीतग्रहण होइ फेरि दूजै समय गृहीत वा मिश्र ग्रहण होजाय सो गिणतीमें नाहीं। अगृहीत ही ग्रहण होइ सो दूजीवार गिणतीमें आवै फेरि अगृहीत ही ग्रहण होइ सो तृतीयवारकी गिणतीमें आवै।

ऐसै अगृहीतग्रहण निरन्तर अनन्तवार ही ग्रहण होजाय तदि एकवार मिश्रग्रहण होइ। फेर अनन्तवार निरन्तर अगृहीतग्रहण होजाय तदि फेर एकवार मिश्रग्रहण होइ सो दोयबार मिश्र भया। फिर अनन्तवार निरन्तर आठहीतैं ग्रहण होजाय तदि एकवार मिश्रग्रहण होय सो तीनवार मिश्र ग्रहण भया। ऐसैं अनन्तवार अगृहीतग्रहण होय एकएकवार मिश्रग्रहण होतै होतै मिश्रग्रहणहू अनन्तवार होजाय तदि फेरि अनन्तवार अगृहीतग्रहण करि एकवार गृहीतग्रहण करै। बहुरि अनन्तवार अगृहीतग्रहण करि एकवार मिश्रग्रहण करै। फेरि अनन्तवार अगृहीतग्रहण करै तदि एकवार मिश्रग्रहण करै तदि दोयवार मिश्रग्रहण भया।

ऐसैं अनन्तवार अगृहीतग्रहणकरि एकएकवार मिश्रग्रहण करतैं फिर अनन्तवार मिश्रग्रहण होजाय तदि फेरि अनन्तवार गृहीतग्रहण करि एकवार गृहीतग्रहण होय ऐसैं दोयवार गृहीतग्रहण भया। ऐसा पलटनितैं ही अनन्तवार गृहीतग्रहण होचुकै तदि पुद्गलपरिवर्त्तनका चतुर्थभाग भया। फिर ऐसैं ही निरंतर मिश्रग्रहण अनन्तवार होजाय तदि एकवार अगृहीतग्रहण होय। फिर अनन्तवार मिश्रग्रहण होजाय तदि एकवार अगृहीतग्रहण होय। ऐसैं अनन्तवार अगृहीतग्रहण होचुकै फिर अनन्तवार मिश्रग्रहणकरि एकवार गृहीतग्रहण होय। ऐसैं निरन्तर गृहीतग्रहणहू अनन्तवार होजाय (?)

बहुरि पुद्गलपरिवर्त्तनकी द्वितीय चतुर्थांश पूर्ण होइ है। बहुरि निरन्तर मिश्रग्रहण अनन्तवार हो चुकै तदि एकवार गृहीतग्रहण होय। फिर निरन्तर अनन्तवार मिश्रग्रहण होजाय तदि एकवार गृहीत-ग्रहण होय। ऐसैं अनन्तवार गृहीतग्रहण होजाय तदि फिर निरन्तर मिश्रग्रहण अनन्तवारकरि एकवार अगृहीतग्रहण करै। ऐसैं अगृहीतग्रहण अनन्तवार हो जाय तदि पुद्गलपरिवर्त्तनका तृतीय चतुर्थांश ही पूर्ण होय है।

बहुरि निरन्तर गृहीतग्रहण अनन्तवार होजाय तदि एकवार मिश्रग्रहण करै। फेरि निरन्तर अनन्तवार गृहीतग्रहण होजाय तदि एकवार मिश्रग्रहण होय। ऐसैं अनन्तवार मिश्रग्रहण होजाय तदि निरन्तर गृहीतग्रहण अनन्तवारकरि एकवार अगृहीतग्रहण करै। ऐसैं अनन्तवार अगृहीतग्रहण होजाय तदि पुद्गलपरिवर्त्तनकी चतुर्थांश पूर्ण होय फिर लगते ही समयविषैं जे नोकर्मपुद्गलपरिवर्त्तनके प्रथमसमयमैं ग्रहणकरि द्वितीयादि समयमैं निर्जरारूप किए। ऐसैं अनन्ते नोकर्मके समयप्रबद्धपुद्गल थे ते ही अथवा तिनसमान ही शुद्ध गृहीतरूप आयकरि ग्रहण होय तदि यो समस्त मिल्यो हुवो नोकर्मपुद्गलपरिवर्त्तन होय है।

अब कर्मपुद्गलपरिवर्त्तन ऐसैं जानना—जे पुद्गल एकसमयविषै एकजीव अष्टप्रकार कर्मस्वभावकरि ग्रहण किए ते समयाधिक आवलीकालकूं उल्लंघनकरि द्वितीयादिसमयनिमैं निर्जीर्ण भए। ते कर्मयोग्य

पुद्गल पूर्वोक्त नोकर्मद्रव्यपरिवर्त्तनकीज्यों तिस ही क्रमकरि तिस ही प्रकारकरि तिस जीवके जेते काल कर्मभावकूं प्राप्त होइ तिष्ठै हैं तितनैं यो समस्त मिल्यो हुवो कर्मपुद्गलपरिवर्त्तन होय है। और समस्तविध नोकर्मपरावर्त्तनकीज्यों जाननेयोग्य हैं। ये कर्म नोकर्मद्रव्यरूप दोऊ पुद्गलपरिवर्त्तनका समान ही काल है। ऐसैं द्रव्यपरिवर्त्तनका स्वरूप संक्षेपकरि कह्या।

अब क्षेत्रपरिवर्त्तन कहै हैं। क्षेत्रपरिवर्त्तन दोयप्रकार है—एक स्वक्षेत्रपरिवर्त्तन, एक परक्षेत्रपरिवर्त्तन। तिनमैं स्वक्षेत्रपरिवर्त्तन कहै हैं। कोऊ जीव अंगुलिके असंख्यातवें भागप्रमाण जीव सूक्ष्मनिगोदीयाकी जघन्य अवगाहनकरि उपजि अर अपनी स्वांसकै अठारवैंभाग जो आयुप्रमाण जीयकरि मरया सो फिर उस देहतैं एकप्रदेश अधिक अवगाहनाकरि उपजि अपनी स्थितिप्रमाण जीवता रहि फेरि मरि दोय प्रदेश अधिक अवगाहना पावै।

ऐसैं पूर्वले देहतैं एकएक प्रदेश अधिक महामत्स्यका देहकी अवगाहनापर्यंत समस्त अवगाहनाके भेदनिकरि अनुक्रमतैं समस्त अवगाहना समाप्त करै अर बीचिबीचि अनन्तबार अन्यअन्य अवगाहना धारै सो इहां गिणी नहीं। जातैं एकप्रदेश अवगाहना पायवेका अवसर कोऊ अनन्तभवनिमैं आवै है तातैं एकएक प्रदेशकी अधिकता करिकैं अनन्तानन्त कालमैं समस्त अवगाहना पूर्ण करै है तदि यो समस्त स्वक्षेत्रपरिवर्त्तन होय है।

अब परक्षेत्रपरिवर्त्तन कहै हैं–कोऊ जीव सूक्ष्मनिगोद्का लब्ध्यपर्याप्तक होय ताकी समस्त अवगाहनातैं जघन्य अवगाहना है, यातैं अन्य जघन्यअवगाहना नहीं, सो इस जघन्य अवगाहनाकरि लोकाकाशका मध्यका अष्टप्रदेशांनै अपने शरीरका मध्यका अष्टप्रदेशांमैं उपजि करि अर अपनी स्थिति पूर्ण होतैं मरण करी फेरि सोही जीव तैसैं ही तिस अवगाहनाकरि लोकाकाशका अष्ट मध्यप्रदेशांनै अपने शरीरके बीचिकरि दूजीवार तीजीवार इत्यादिक घनांगुलका असंख्यात भागका जेता प्रदेश होइ है तितना ही वार तहां ही उपजि उपजि मरै। अर बीचिमैं अनंतवार अन्य अन्य क्षेत्रनिमैं उपजै सो इस परिवर्त्तनके

प्रमाणमैं नहीं। पाछैं एकप्रदेश उस क्षेत्रतैं अधिकमैं उपजै ऐसैं एक एक प्रदेशकी अधिकताकरि समस्त-प्रदेशनिकूं अपने जन्मक्षेत्रपणाकूं प्राप्त करै सो परक्षेत्र परिवर्त्तन है।

भावार्थ—ऐसा है-जो सूक्ष्मनिगोद जीवकी जघन्य अवगाहनाकूं आदि लेय महामत्स्यकी उत्कृष्ट अवगाहनापर्यंत कोऊ ऐसी अवगाहना बाकी नहीं रही जो यो जीव नहीं पाई। बहुरि लोकका मध्यमैं लेय नीचै ऊपरि तिर्यक्‌ समस्तलोकाकाशका प्रदेशनिमैं ऐसा कोऊ एक प्रदेश नहीं है जहां इस जीवनै जन्ममरण नहीं किया।

अब कालसंसारकूं कहै हैं—कोऊ जीव उत्सर्पिणी कालका प्रथमसमयविषै उत्पन्न हुवा फिर अपनी आयु समाप्त करि मरण करै। फिर वीसकोडाकोडी सागरमैं उत्सर्पिणीकाल आवै ताके दूजे समयमैं जन्म ले अर दूजासमयमैं ही जन्म लेना कहां होइ। कोऊ अनंते उत्सर्प्पिणी जातेहू दूजे समयमैं ही उपजनेका संयोग मिलै। ऐसैं ही उत्सर्प्पिणीका तीसरा समयमैं चतुर्थमैं पंचममैं ऐसैं उत्सर्प्पिणी अवसर्प्पिणीका वीसकोडाकोडी सागरका जेता समय होय तितना निरन्तर जन्मकरि पूर्ण करै। अर ऐसैं ही समस्तसमय मरणकरि पूर्ण करै। जो यो जन्ममरणका समुदितरूप काल सो कालपरिवर्त्तन है।

भावार्थ—उत्सर्पिणी अवसर्पिणीका ऐसा कोऊ समय बाकी नहीं है जिसमैं यो जीव अनन्तानंत-वार जन्ममरण नहीं किया।

अब भवपरिवर्त्तन कहै हैं—कोऊ जीव नरकगतिमैं जघन्य आयु दशहजार वर्षकी धारणकरि उपज्या फिर मरणकरि संसारमैं परिभ्रमणकरि द्वितीयवार भी दशहजार वर्षकी आयु पावै, जो एक दोय समय घडी दिन वर्ष अधिक पावे सो गिणतीमैं नहीं। तृतीयवार चतुर्थवार पंचमवारकूं आदिकरि दश-हजार वर्षका जेता समय होय तीतनीवार तो दशहजार वर्षप्रमाण ही आयु पाय मरै, पाछैं एकसमय अधिक इत्यादि तेतीससागरका जेता समय होय तितना समय यो उत्तर आयुकरि व्यतीत करै सो नरक-भवपरिवर्त्तन जानना।

ऐसैं ही तिर्यंचगतिमैं जघन्य आयु अंतर्मुहूर्त्तप्रमाण पाय फिरि समाप्तकरि अन्तर्मुहूर्त्तका जेते समय होंय तितना प्रमाण जघन्य आयु धारि पाछैं एकसमय अधिक अनुक्रमकरि तीन पल्यपर्यंत समस्त-स्थितिविषै जन्मधारि पूर्ण करै सो तिर्यग्भवपरिवर्त्तन जानना। ऐसैं ही मनुष्यआयुकूं अंतर्मुहूर्त्तकूं आदि लेय तीन पल्यपर्यंत पूर्ण करै। देवगतिमैं नरकगतिज्यों दशहजार वर्षकूं आदिलेय इकतीस सागर पर्यंत पूर्ण करै सो देवभवपरिवर्त्तन है। इकतीस सागरतैं अधिक आयुके धारक अनुदिश अनुत्तर चौदह विमाननिमैं उपजे देवनिकै परिवर्त्तन नहीं होय। जातैं उनके नियमतैं सम्यक्त्व है। सम्यग्दृष्टीकै संसारमैं भ्रमण होय नहीं। ऐसैं च्यार आयुसम्बन्धी समस्त परिवर्तनका मिल्याहुवा काल भवपरिवर्तनका जिनेंद्रने कह्या है।

अब भावपरिवर्त्तनकूं कहै हैं—योग स्थान अनुभाग बन्धाध्यवसायस्थान कषायाध्यवसायस्थान स्थितिस्थान इन च्यारनिके परिवर्त्तनतैं होइ है। सो इन च्यारनिका स्वरूप ऐसा—जिनतैं प्रकृतिबन्ध प्रदेशबन्ध होइ ऐसैं प्रदेशपरिस्पंदलक्षण योग तिनतैं जे घनादिस्थान ते योगस्थान हैं। बहुरि जिन कषाययुक्तपरिणामनितैं कर्मनिका अनुभाग बन्ध हो है तिनके जघन्यादिक स्थान ते अनुभागबन्धाध्यवसाय-स्थान हैं। अर जिन कषायपरिणामनितैं स्थितिबन्ध होहै तिनके जघन्यस्थानतैं इहां कषायाध्यवसायस्थान कहै हैं। अर बन्धनरूप जे कर्मनिकी स्थिति तिनके जघन्यादिस्थान ते स्थितिस्थान कहिए। कोऊ पंचेंद्रिय-संज्ञक पर्याप्तक मिथ्यादृष्टी जीव है सो आपके योग्य सर्वमैं जघन्य ज्ञानावरणकर्मकी स्थिति अन्तःकोटाकोटीसागर प्रमाण बांधै है।

जातैं संज्ञी पर्याप्तक मिथ्यादृष्टीकै अन्तःकोटाकोटीसागरप्रमाणतैं घाटि नहीं बन्धै है। कोटिसागरके ऊपरि अर कोटाकोटीकै मांही ताहि अन्तःकोटाकोटीसागर कहिए है। तिस जघन्यस्थितिकूं आदि लेय एकएकसमय अधिकताकरि तीस कोटाकोटीसागरकी उत्कृष्ट स्थितिपर्यंत भेदकूं लीए ज्ञानावरणकर्मकी स्थिति है। अर तिस एकएक स्थितिस्थानकूं असंख्यात लोकप्रमाण कषायाध्यवसायस्थान कारण है, एक-

एककषायाध्यवसाय स्थानकूं असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान कारण हैं।

बहुरि एकएक अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानकै योगश्रेणीके असंख्यातवैं भागप्रमाण योगस्थान हैं। अब परिवर्त्तनके आरंभका क्रम ऐसा—जो संज्ञीपर्याप्तक मिथ्यादृष्टीकै ज्ञानावरणकर्मकी अन्तःकोटाकोटीसागरप्रमाणजघन्यस्थितिबन्ध होय अर तिस स्थितिकूं कारण जघन्य ही कषायाध्यवसायस्थान अर तिस जघन्यकषायाध्यवसायस्थानकूं कारण जघन्य ही अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान होइ। अर जघन्य ही योगस्थान होइ।

बहुरि योगस्थान तो पलटि दूजोहू होय अर अनुभागकषायस्थिति जघन्य ही बन्धै। फिर योगस्थान तीजो होजाय अर वे तीनों जघन्य ही रहैं। फिर योगस्थान चोथो, पांचवों, छठो इत्यादिक श्रेणीके असंख्यातवैं भागप्रमाण योगस्थान पलटिजाय अर स्थित्यादि तीनों जघन्य ही रहैं। ऐसैं श्रेणीके असंख्यातभागप्रमाणयोगस्थान पलटिजाय तदि स्थितिस्थान अर कषायस्थान तो जघन्य ही रहै। अर अनुभागस्थान दूजा होय।

फिर दूजा अनुभागस्थानके योग्य श्रणीके असंख्यातवें भागप्रमाण योगस्थान क्रमतैं पलटिजाय तदि फिर अनुभागस्थान तीसरा होइ। फिर इस उपरि योगस्थान श्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण योगस्थान पलटि जाय तदि अनुभागस्थान चौथा होय। इस क्रमतैं एक अनुभागस्थानके योगश्रणीके असंख्यातवेंभागप्रमाण योगस्थान पलटतै पलटतै असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान हो जाय तदि एककषायाध्यवसायस्थान पलटै। तदि स्थितिस्थान तो जघन्य ही रह्या अर कषायस्थान दूसरा भया।

अर अनुभागस्थान पहला अर योगस्थान पहला भया फिर श्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण योगस्थान पलटिजाय तदि एक अनुभागस्थान पलटै। अर ऐसैं असंख्यातलोकप्रमाण अनुभाग पलटि जाय तदि एककषायाध्यवसायस्थान पलटै। ऐसैं असंख्यातलोकप्रमाण कषायाध्यवसायस्थान भी पलटि चुकै तदि अतःकोटाकोटिसागरप्रमाणजघन्यस्थितितैं एक समय अधिक कर्मकी स्थिति बांधै।

ऐसैं श्रेणीके असंख्यातवेंभाग बार योगस्थान पलटिजाय तदि तो येक अनुभागस्थान पलटै अर असंख्यातलोकप्रमाण अनुभाग पलटि जाय तदि येककषायस्थान पलटै। अर असंख्यातलोकप्रमाण कषायस्थान पलटिजाय तदि एक समय अधिक होय स्थिति पलटै।

ऐसैं एकएकसमयकरि अधिकतातैं ज्ञानावरण कर्मकी तीस कोटाकोटीसागरकी स्थिति समाप्त करै। फिर दर्शनावरण वेदनीय अन्तरायकी तीस कोटाकोटीसागरकी अर नामगोत्रकमकी वीस कोटाकोटीसागरकी अर आयुकर्मकी तेतीससागरकी ऐसा ही क्रमकरि पूर्ण करै। फिरि एकसो अडतालीस उत्तरप्रकृतिनिकी अर असंख्यात लोकप्रमाण उत्तरोत्तर प्रकृतिनिकी स्थिति पूर्ण करै तदि एकभावपरिवर्त्तन होइ है।

ऐसैं पंचप्रकारके परिवर्त्तन अनंते किए। ऐसैं अनेक कुयोनि अर कुलकोटिनिके बहुत संकटरूप संसारमैं कर्मयंत्रकरि प्रेरित प्राणी पिता पुत्र होय, पुत्र पौत्र होय हैं। माता, बहन भार्या पुत्री होय हैं, बहुत कहा कहिए, आप ही आपकै पुत्र होय है। इत्यादि संसारका स्वभावका चिंतवन सो संसारानुप्रेक्षा है। ऐसैं संसारभावनाकूं चिंतवन करनेवाला पुरुष संसारका दुःखतैं भयभीत होय संसारतैं विरक्त होय है। विरागयुक्त होय तदि संसारका नाशके अर्थि यत्न करै है। ऐसैं संसारभावना कही।

बहुरि जन्म जरा मरण रोग वियोगादिकनिके महादुःखनिमैं आएकूं असहाय एकाकी चिंतवन करना सो एकत्वानुप्रेक्षा है। संसारविषैं मैं एकाकी अनादिकालतैं हूँ, कोऊ मेरै स्वजन नहीं है, अर परिवार नहीं है, जो मेरै व्याधि जरा मरणादिक दुःखकूं दूरि करै। एक धर्म ही मेरा सहायी है शरण है अविनाशी है। ऐसैं चिंतवन करना सो ही एकत्वभावना है। ऐसैं चिंतवन करतेकै स्वजननिविषै प्रीति नहीं उपजै है। परजननिमैं द्वेष नहीं उपजै है। तातैं समस्तमैं प्रीति वैर छांडि मोक्षके अर्थि ही यत्न करै हैं। ऐसैं एकत्वभावना कही।

बहुरि शरीरादिकनितैं अपना स्वरूपकूं अन्य चिंतवन करना सो अन्यत्वानुप्रेक्षा है। यो शरीर इन्द्रियगम्य है। अर मैं आतमा अतींद्रिय हूं। अर शरीर अज्ञानी है अर मैं आतमा ज्ञानी हूं। शरीर

अनित्य है मैं नित्य हूँ। शरीर आद्यतवान् है मैं अनादि अनन्त हूँ। संसारमैं परिभ्रमण करता जो मैं ताके अनन्तशरीर व्यतीत भये। ऐसैं शरीरादिकनितैं अपना अन्यपणाकूं चिंतवन करना सो अन्यत्व-भावना है।

ऐसैं चिंतवन करते जीवके शरीरादिकनिमैं ममत्वके अभावतैं आत्मकल्याणमैं ही उद्यम होय है। शरीरका अशुचिरूप चिंतवन करना सो अशुचिभावना है। अर शुचिपणा–लौकिक लोकोत्तर भेदतैं दोय प्रकार है। तिनमैं आत्माकै कर्मकलंकका नाश होय अपने स्वरूपमैं अवस्थित होना सो तो लोकोत्तर-शुचिपणा है। इसका कारण तो सम्यग्दर्शनादिक हैं तथा सम्यग्दर्शनादिककै धारक साधु हैं तथा साधु-निकी आधाररूप निर्वाणभूम्यादिक मुक्त होनेके उपाय हैं तातैं शुचिनामके योग्य हैं।

बहुरि लौकिकशुचिपणा अष्टप्रकार है–कालशौच, अग्निशौच, भस्मशौच, मृत्तिकाशौच, गोमय-शौच, जलशौच, ज्ञानशौच, ग्लानिरहितपणाशौच ऐसैं हैं। परंतु ये अष्टप्रकार शौच लौकिक हैं। ते शरीरनै शुद्धिकरनेकूं समर्थ नहीं। जातैं शरीर तो अन्यजलादिकशुचिद्रव्यनकूं अशुचि करै है। शरीरका आदिकारण तो महा अपवित्र माताका रुधिर पिताका वीर्य है।

अर उत्तरकारण आहारका परिणमनादिक हैं सो मनुष्य तिर्यंचनिके कवलाहार है सो ग्रहण होतै प्रमाण कफके स्थानकूं पायकरि अतिद्रवरूप हुवा अधिक अशुचि होय है। पाछैं पित्ताशयनै प्राप्त होइ पच्या हुवा महा अशुचि ही होय है। फिर पक्याहुवा वाताशयकूं पाय वायुकरिकै खलरसभावकरि भेदनै प्राप्त होय है। तहां मलमूत्रादिक तो खलभागरूप है। रुधिर मांस मेदा मज्जा वीर्य ये रसभाग हैं यातै समस्त अशुचिका कारण पात्र शरीर है। याकी अशुचिता दूरि करनेकूं कुंकुम चन्दन कर्पूरादिकनिके अनुलेपन तथा स्नानादिक समर्थ नहीं हैं। अंगारकीज्यों आपके आश्रितद्रव्यनिकूं शीघ्र ही अपने स्वभाव-ज्यों अशुचि करै है। ऐसैं स्मरण करतेकै शरीरतैं विरक्तता होइ तदि संसारसमुद्रके तरणके अर्थि चित्तकूं धारे हैं। ऐसैं अशुचिभावना कही।

बहुरि मिथ्यात्व अविरत कषायनिके द्वारै कर्मनिका आगमन ताकूं आस्रव कह्या। जो संसार परिभ्रमणका कारण आत्माका गुणनिका घातक है। इंद्रियनिका आतापकरि संसारमैं महाक्लेश भोगै हैं। तथा मोहके उदयके वशतैं जीवके परिणाम होइ हैं ते समस्त आस्रव ही हैं। इन मिथ्यात्वादिक आस्रव-भावतैं पुण्यपापरूप कर्मका आगमन होय है सो संसारमैं परिभ्रमण करावै है। ऐसैं आस्रवनिके दोषनिकूं चिंतवन करना सो आस्रवभावना है। ऐसैं चिंतवन करतेकै उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्ममैं दृढबुद्धि होय है। आस्रवनिके निरोधमैं यत्न करै हैं।

बहुरि सम्यक्त्व देशव्रत महाव्रत तथा कषायनिका विजय योगनिका निरोध ए संवरहीके नाम हैं। तथा तीन गुप्ति पंचसमिति दशलक्षणधर्म अनुप्रेक्षा परिषहजय उत्कृष्टचारित्र इनतैं परमसंवर होय है। जो पुरुष समस्तविषयतैं विरक्त होइ संवर करै है ताकै संसारपरिभ्रमणका अभाव होय है। ऐसैं संवरभावना कही।

बहुरि जो सम्यग्ज्ञानी अहंकारमदरहित हुवा निदानरहित वीतरागभावनातैं तप करै है ताकै बड़ी निर्जरा होय हैं। समस्तकर्मनिकी शक्तिका उदय होना सो अनुभव है सो ही कर्मके रसका अनुभव है। अर रस दीयां पाछैं निर्जरै ही है सो निर्जरा संसारीजीवकै च्यारों ही गतिमैं अवसरपाय होय सो तो सविपाकनिर्जरा है अर तप व्रत संयमके प्रभावतैं होय सो अविपाकनिर्जरा है।

जैसैं जैसैं संयमीनिकै उपशमभावकी तपकी वृद्धि होय तैसैं तैसैं निर्जराकी वृद्धि होय है। जो साधु कषायनिका निग्रहकरिकै दुष्टनिकरि कीए अनेक प्रकारके दुर्द्धर उपसर्ग सहै हैं। शरीरकूं विनाशीक जडस्वभाव जानि अपना ज्ञानदर्शनस्वभावकूं अखण्ड अविनाशी अनुभव करता संक्लेशरहित मन अर इंद्रियनिका निग्रहकरि अपने स्वरूपमैं लीन होइ हैं तिनकै परमनिर्जरा है। निर्जरा है सो मोक्षका कारण है। ऐसैं चिंतवन करतहू बड़ी निर्जरा जानि निरन्तर भावना करना उचित है। ऐसैं निर्जराभावना कही।

अब लोकभावना कहै हैं—सर्व तरफ अनन्तानन्तक्षेत्ररूप आकाशद्रव्य है। ताका अत्यन्तमध्य-विषै षड्द्रव्यनिका समुदायरूप लोक है। सो समस्त चौदह राजू ऊंचा है। अर दक्षिण उत्तर नीचैं ऊपरि

मध्यमैं समस्त सात राजू है, अर पूर्व पश्चिम विषै नीचै तो सात राजू है, अर पाछैं ऊपरि अनुक्रमतैं सात राजू ऊंचापर्यंत घटि मध्यलोककै निकट एक राजूप्रमाण है। बहुरि ताकै ऊपरि क्रमकरि वधतावधता साढातीन राजू ऊंचा जाय ब्रह्मस्वर्गका अन्तके निकट पांच राजू विस्तार है।

बहुरि ताकै ऊपरि क्रमकरि घटता घटता लोकका अन्तविषै एक राजूप्रमाण हैं। या प्रकार लोकका पूर्वपश्चिम विस्तार है। इस लोककै मध्यमें एकराजू लम्बी एकराजू चोडी चोकोर चौदहराजू ऊंची लोकका नीचला वातवलयका अन्तसूं ऊपरि लोकका अन्तपर्यंत त्रसनाली है। त्रसजीव इस त्रसनालीमैं ही हैं। नरक भुवनलोक मध्यलोक व्यंतरलोक तिर्यग्लोक ज्योतिर्लोक स्वर्गलोक मुक्तिस्थान समस्त त्रसनालीकै-मांही है। त्रसनालीकैबाह्य उपपाद अर मारणांतिक अर केवलसमुद्घातविना त्रसका गमन नाही है। अर स्थावरजीव समस्त ही लोकमैं हैं। अर विकलत्रयजीव तथा असंज्ञीपंचेंद्रिय तिर्यंच हैं ते कर्मभूमिके एकसो सत्तरिक्षेत्रमें हैं। अर अन्तका स्वयंभूरमणद्वीपका अर्द्धभागमैं समस्तस्वयंभूरमणसमुद्रमें अर ताकै बारैं च्यार कोणनिमैं ही हैं। अर समस्त असंख्यातद्वीपसमुद्रनिमैं नहीं है। अर ऊर्ध्वलोक अधोलोकमैं हू विकलचतुष्क नहीं है। अर मनुष्य अढाई द्वीपमैं ही हैं। अढाईद्वीपबारैं आधास्वयंभूरमणद्वीपपर्यंत हैमवत क्षेत्रकी जघन्य भोगभूमिके तिर्यंचनिसमान पंचेंद्रियतिर्यंच ही हैं। अर लवणोदधि कालोदधि अर अन्तको स्वयंभूरमणसमुद्र इन तीन समुद्रमैं ही जलचरजीव हैं। अन्य असंख्यातद्वीपनिमैं नहीं है। अर समस्त रचनाकी कथनी तृतीय अध्यायमैं वर्णन करी ही है।

इस लोकके अन्तमैं नीचैं ऊपरि मध्यमैं सर्वत्र तीनपवन व्याप्त हैं। बहुरि तीनसैं तेतालीस राजू-प्रमाण आकाशरूप क्षेत्रके समस्त प्रदेशनिमैं तिलमैं तेलकीज्यों धर्म द्रव्यके अर अधर्मद्रव्यके असंख्यात प्रदेश व्याप्त होरहे हैं। अर तिसही असंख्यातप्रदेशरूप लोकाकाशमैं अनन्तानन्तजीवद्रव्य तिष्ठै हैं। अर याहीमैं जीवराशितैं अनन्तानन्तगुणे पुद्गल तिष्ठै हैं। इस लोकके ही असंख्यात प्रदेशनिमैं एक एक भिन्न स्वरूपकरि कालद्रव्य तिष्ठै हैं।

ऐसैं छहूं द्रव्यनिका समुदायरूप लोकाकाशविषै यो जीव अनन्तानन्तकालमैं मिथ्यात्वके वशतैं परद्रव्यनिमैं आपा मानि परिभ्रमण करै है। पुद्गलजनितपर्यायहीमैं अहंकार मानि रह्यो है। सो लोकभावनाका चिंतवन करनेतैं समस्तद्रव्यनिका भिन्नभिन्नगुणपर्यायनिकरि स्वभाव जाननेतैं जीवद्रव्यका स्वभाव जानैं। तदि जीवद्रव्यमैं अपना आत्मा भी है ताहि निश्चयकरि परके उलझनितैं आपकूं निकाशि मोक्षके अर्थि यत्न करै। ऐसैं लोकभावना कही।

बहुरि रत्नत्रयस्वभावका प्राप्त होना अतिदुर्लभ है। जातैं एकनिगोदशरीरमैं अतीत कालके सिद्धनितैं अनन्तगुणे जीव हैं। ऐसैं निगोद शरीरनितैं तथा पंचप्रकारके स्थावर जीवनितैं समस्तलोक निरन्तर व्याप्त है। तहां त्रसपणा पावना बालुकासमुद्रमैं हीराकी कणिकावत् दुर्लभ है। अर त्रसनिमैंहू विकलत्रयजीवनिकी बहुलता है तातैं पंचेंद्रिय पावना बहुत दुर्लभ है। जैसैं गुणवंतनिकै कृतज्ञता पावना बहुत कठिन है। अर कदाचित् पंचेन्द्रियहू होय तो तिनमैं पशू, सिंह, व्याघ्र, मृग, पक्षी, सर्पादिकनिकी बहुत पर्यायनिमैं जाय उपजै। चोहटेमैं रत्नराशिका पावना दुर्लभ तैसैं मनुष्यपणा बहुत दुर्लभ है।

अर मनुष्यपणा पायकरि छूटि फेरि मनुष्य होना ऐसा दुर्लभ है जैसैं दग्धहुवा वृक्षके पुद्गलनिका फिरि वृक्षरूप होना दुर्लभ है। अर कदाचित् मनुष्यपणा भी हो जाय तोहू हित अहितका विचाररहित पशुसमानमनुष्यनिकरि भरया कुदेश बहुत हैं। तातैं पाषाणनिमैं मणिकीज्यों उत्तमदेश पावना अतिदुर्लभ है। अर कदाचित् उत्तम देशहू पावै तो पापकर्ममैं लीन ऐसे कुकर्मके करनेवाले कुल बहुत हैं। तातैं शीलविनयसंयमादिकनिकूं धारनेवाला कुल अत्यन्त अल्प हैं। अर कुलहू उत्तम पाजाय अर अल्पआयु ही मरिजाय तो एती सामग्री निष्फल होइ है।

अर दीर्घायु भी होइ तो इंद्रियपरिपूर्णता दुर्लभ है। अर इंद्रियसामग्री पाजाय तो बलरूप नीरोगपणा पावना अतिदुर्लभ है। अर समस्तहू प्राप्त होजाय अर जो सम्यक्धर्मको ग्रहण नहीं होइ तो नेत्ररहित मुखकीज्यों व्यर्थ है। यो धर्म ही अतिकठिन प्राप्त होय है। अर धर्मकूं प्राप्तहोयकरिकैहू जो विषयनिके

बहुरि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रहू आत्माका स्वभाव ही है, श्रद्धान ज्ञान आचरण हैं ते आत्माहीकी परिणति है। अर समस्त अन्यजीवनिकी दया अर अपनी दयारूपपरिणति भी आत्माहीकी है। तातैं दशलक्षणरूप रत्नत्रयरूप जीवदयारूप जिनभक्तिरूप इनरूप आत्माकूं हुवा विना अन्यत्र कोऊ प्रकार धर्म है नहीं। धर्म ही संसारका दुःखका अभावको कारण है। सो अहो परमोपकारक! धर्मकूं भगवान् अरहन्तदेव स्वाख्यात कहिए भलेप्रकार बहुतसुन्दर कह्या है। ऐसैं चिन्तवन करना सो धर्मस्वाख्यातत्वानुप्रेक्षा है। ऐसैं चिंतवन करताकै धर्मानुरागतैं धर्ममैं प्रयत्न होय है। ऐसैं अनित्यत्वादि अनुप्रेक्षाके चिंतवनतैं उत्तम क्षमादि धरणेतैं महान् संवर होय है।

अब परिषहनिके जयकूं आगै कहैंगे सो हालि पूछै है जो परिषह कोन अर्थि सहिए यातैं सूत्र कहै हैं—

मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परिषहाः ॥ ८ ॥

अर्थ—रत्नत्रयमार्गतैं नहीं छूटनेके अर्थि अर कर्मकी निर्जराके अर्थि परीषह सहने योग्य हैं। जे क्षुधादिक परिषह स्ववश होय सहै है ताकै कर्मके वशतैं रागादिक शीत उष्णादिक वेदना आवतै परिणाम धर्मतैं नहीं चलै हैं संयमतैं नहीं छूटै हैं। जातैं जो अनशनादितपकरि तथा आतापनयोग वृक्षमूल अभ्रअवकाशादिकजनित परिषहनिकरि अपना शरीरकूं मनकूं साधि राख्या होय सो पराधीन आया मनुष्यतिर्यंचदेवनि कृत उपसर्गतैं तथा मरणके कारण रोगनिकूं होतैंहू धर्मके मार्गतैं चलायमान नहीं होय है। अर कर्मनिकी बडी निर्जरा करै हैं यातैं सदाकाल शरीरका मनका स्तंभनके अर्थि परिषह सहना उचित है। जो परिषहनिकूं जीतै है सो संवरकूं आश्रयकरि समस्तसंसारका नाश करनेकूं समर्थ होय ज्ञानध्यानरूप आयुधनिकरि कर्मनिका मूल छेदनिकरि निर्वाणकूं प्राप्त होय है। याहीतैं अब परिषहनिकूं कहै हैं—

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ॥ ९ ॥

अर्थ—क्षुधा[1], तृषा[2], शीत[3], उष्ण[4], दंशमशक[5], नाग्न्य[6], अरति[7], स्त्री[8], चर्या[9], निषद्या[10], शय्या[11], आक्रोश[12]

वध[13], याचना[14], अलाभ[15], रोग[16], तृणस्पर्श[17], मल[18], सत्कारपुरस्कार[19], प्रज्ञा[20], अज्ञान[21], अदर्शन[22], ऐसैं द्वाविंशतिपरीषहके नाम कहे। क्षुधातृषादिक ए बाईसपरिषह शरीरसम्बन्धी अर मनसम्बन्धी अत्यन्तपीडाका कारण समभावनितैं सहना। इनके जीतनेमैं मोक्षके अर्थीनिकूं बड़ा यत्न करना।

कैसैं जीतना सो कहै हैं—अत्यन्तक्षुधारूप अग्निकूं प्रज्वलित होतै धैर्यरूपजलकरि जो शांत करै ताकै क्षुधापरीषहका विजय होय है। कैसेक हैं साधु जिनकै वस्त्रादिककरि शरीरका समस्तसंस्कार नहीं है। अर शरीरमात्र उपकरणकरि सन्तुष्ट हैं। अर संयमका विनशनेका कारण दूरिहीतैं परिहार करै हैं। अर कृत कारित अनुमत संकल्पित उद्दिष्टादिक दोषनिकरि रहित हैं भोजन जिनकै, अर देशकालादिककी योग्य अपेक्षाकरि है प्रवर्त्तन जिनकै, ऐसैं त्यागीनिकै अनेक उपवास अर मार्गके चलनेतैं अर रोगके उपजनेतैं तथा तपके वर्द्धनतै तथा स्वाध्यायके करनेतैं उपज्या खेदतैं वा वेलांका उलंघनतैं अवमोदर्यादिकतैं तथा असातावेदनीयकी उदीरणादिकतैं तथा नानाप्रकार आहाररूप ईंधनका अभाव इत्यादि कारणनितैं जैसैं पवनकरि प्रज्वलित अग्निकी शिखाकीज्यों शरीर इंद्रिय हृदयके क्षोभ करनेवाली जठराग्निकरि प्रज्वलित क्षुधाकी वेदना उत्पन्न होय ताका इलाजकूं अकालविषै अर संयमकी विरोधीद्रव्यनिकरि आप नहीं करै अर अन्यकरि कीयाहुवाकूं नहीं सेवन करै अर मनविषै संयमके घात करनेवाले द्रव्यनिका सेवनकूं धारण करै हैं। अर ऐसा विषाद नहीं करै—या वेदना दुस्तर है अर काल महान् है, दिन बड़ो है, कैसैं पूर्ण होयगा।

अर जिनके हाड चाम नख कलेवरमात्र देह रहिगया तोहू आवश्यक क्रियामैं नित्य सासता उद्यमी हैं। अर पराधीनबन्दिग्रहादिकमैं तिष्ठता मनुष्य तथा निर्धन रोगीमनुष्य तथा पींजरेनिमैं दृढ़बन्धननितैं बन्धे तिर्यंच तिनकै क्षुधाकी पीड़ा पराधीनता अवलोकनकरि संयमरूप कुंभमैं धारणकीया धैर्यरूपजलकरि जे क्षुधारूप अग्निकूं शांत करते क्षुधाकृतपीड़ाकू नहीं गिणै हैं तिन साधुनिकैं क्षुधापरीषहका विजय होय है ॥ १ ॥

बहुरि तृषावेदनीयकी उदीरणाके कारण होतैहू ज्यों तृषाकै वस नहीं होना सो तृषापरीषहसहना है। देखहु, वीतरागीमुनिकै स्नानका अवगाहका अंगऊपरि जलके सींचनेका तो यावज्जीव त्याग है, अर पक्षीनिकीज्यों एकस्थानमैं ध्रुव जिनका बसना नहीं है, अर परकै घर अतिक्षार सचिक्कण रूक्ष प्रकृतिविरुद्ध आहार ग्रहण कीया है। अर ग्रीष्मऋतुका आताप अर पित्तज्वर अर अनशनादितप इनकरि उदीर्णाकूं प्राप्तभई जो शरीर अर इन्द्रियानिमैं मंथनकरनेवाली तृषा, ताका इलाजमैं अनादररूप मन जिनका अर ग्रीष्मके तीक्ष्णसूर्यकी किरणनिकरि संतापित जो वनभूमि तिसमैं तिष्ठै हैं। अर निकट तिष्ठता जलका ह्रद तिसमैं मनकूं नहीं चलावते जलकायके जीवनिकै बाधाका परित्यागकी इच्छातैं जलका चाहरहित है।

जैसैं जलका सम्बन्धरहित वेलि म्लानताकूं प्राप्त जो शरीरलता ताहि नहीं गिणतै तपका परिपालनमैं तत्पर है अर भिक्षाका अवसरमैंहू अपनी चेष्टा आकार समस्यादिकरि अपने पीवनेयोग्य भी जलादिकप्रति प्रेरणा याचना नहीं करते अपना धैर्यरूप कुम्भमैं धारणकीया शीतलसुगन्ध ध्यानरूप जलकरि तृषारूप अग्निकी शिखाकूं बुझावै है। तिन साधुनिकै तृषापरिषहसहना होय है ॥ २ ॥

बहुरि जो शीतके कारणनिकूं निकट होतै शीतका इलाजकी वांछारहित हुवा संयमका परिपालन करै हैं, ताके शीतपरिषह सहना जानना। वस्त्रनिका है परित्याग जिनकै अर पक्षीनिकी ज्यों रहनेका स्थानका नहीं है निश्चय जिनकै, अर शरीरमात्र ही है आधार जिनकै, अर समस्त ही ऋतुमैं वृक्षनिके नीचैं तथा चौहटै तथा गुफादिक वा नदी तलावका तटमैं रात्रीकूं ध्यानादिसहित व्यतीत करनेकी है प्रतिज्ञा जिनकै, अर शिशिरऋतुमैं पडना ओस अर बरफ पाला अर महान् शीतपवनका घात करि हन्या है शरीर जिनका, तोहू शीतके दूरि करनेमैं समर्थ अग्नि इत्यादिकनिकूं चिंतवन नहीं करै हैं।

अर ऐसा विचारै हैं जो हे आत्मन्! तू नरकनिविषै दुःसह शीतवेदना असंख्यातकाल पर्यंत अनन्तवार कर्मकै वसि होय भोगी है। या वेदना तो कुछ है नहीं। ऐसैं चिंतवन करता परमार्थ बिगडनेका भयतैं शीत दूरि होनेके इलाजकी वांछाप्रति विचार नहीं करै है। शीतके दूरि करनेमैं समर्थ विद्या

मन्त्र औषधि पत्र वल्कल त्वचा तृण चामडादिकनिका सम्बन्धमैं कदाचित् मनकूं नहीं चलावै हैं। अन्यका देहतुल्य अपना देहकूं मानि रहै है। धैर्यरूप गर्भगृहमैं विवेकरूप दीपकके उद्योतमैं निजस्वरूपकूं अवलोकन करते आनन्दसहित रात्रिकूं व्यतीत करै हैं।

अर जो पूर्वकालमैं भोगे जे श्रेष्ठ स्त्रीनिकूं नवीन यौवनकरि पुष्ट कुच नितम्ब भुजनिका अन्तरालकरि शीतका निवारण ताहि नहीं स्मरण करै हैं। कामके सुखका रसकी खानि जो पूर्वै भोग्या स्थानमैं आसारपणा जानि चिंतवन नहीं करै हैं। शीतकी तीव्र वेदना होतैहू विषाद रहित संयममैं तीव्र उत्साहसहित तिष्ठैं तिनकैं शीत वेदनाका सहना होय है ॥ ३ ॥

बहुरि ग्रीष्मादिजनित दाहके इलाजकी वांछाका अभावतैं चारित्रकी रक्षा करना सो उष्ण परिषहका सहना होय है। ग्रीष्मऋतुका सूर्यकी अतिकठोरकिरणनिकरि सन्तापित है देह जिनका, अर तृषाकी वेदनातैं उपज्या तथा अनशनतपकरि पित्तके प्रकोपकरि अर तावडेकरि मार्गके खेदकरि उपजी है उष्णता जिनकै, अर पसेव शोष दाहकरि अत्यंत पीडित हैं तोहू जलके भवनमैं निवासकूं जलके अवगाहनकूं चन्दनकर्पूरादिकके लेपकूं जलके छिड़काव आलीभूमिका स्पर्श नीलकमल केलिके पत्रनिकरि पवन जल तूलिका चन्दन चन्द्रमाकी किरण कमल वर्फ इत्यादिक पूर्वकालमैं अनुभव शीतल द्रव्यनिकी चाहरहित है चित्त जिनका, अर ऐसा विचार करै हैं जो संसारमैं बहुतवार अतितीव्र उष्णवेदना पराधीन हुवा भोगी है। अब तो मैं कर्मक्षयका कारण तप करनेमैं उद्यमी हूं तातैं संयममैं विरोध करनेवाली क्रियामैं अनादरकरि चारित्ररक्षण करना। ऐसैं उत्तमभावके धारक साधुके उष्णपरीषह सहन होय है ॥ ४ ॥

बहुरि दंशमशकपरीषहसहनकूं कहै हैं—त्याग कीया है शरीरका आच्छादन जिननै अर कहां हूं नहीं बांध्या है स्थान जिननै वस्त्रादिककूं त्यागकरि, अर कोऊ क्षेत्रमैं अपना स्थानका नेम नाहीं बांध्या है। अर परके कीए मठ, मकान, गुफा, दरांड़ादिकनिमैं रातिदिन बसे हैं। तहां डांस, मच्छर, मक्षिका, पीसू, जूवां, उटकण (खटमल) कीडा कीडी बीछू इत्यादिक तीव्र वेदनाके उपजावनेवारे अनेक जीवनिके

तीक्ष्ण डंकनिकरि मर्मस्थानमैं भक्षणकीएहू अपने परिणाममैं विषादकूं प्राप्त नहीं होइ है। अपने कर्मके उदयकूं चितवन करै हैं अर विद्या मंत्र औषधादिक इलाजकरि तिनका अभावकूं नहीं इच्छा करै हैं। कर्मरूप वैरीके भंगप्रति उद्यम युक्त होय समस्त जीवनिकी दयाप्रति उद्यमी होय बसै हैं। तिनकै दंश-मशकपरिषहसहन होय है ॥ ५ ॥

बहुरि जैसा माताका गर्भतैं उपज्या तैसा नग्नरूप धारण करना सो नग्नपरीषहसहन है। गुप्ति समितिका विरोधी जो परिग्रह ताका त्यागकरि परिपूर्ण ब्रह्मचर्य इस नग्नतामैं बसै है। अर वांछारहित मोक्षका कारण चारित्रका आधारहू नग्नपणा ही है। अर नग्नपणा कोऊ संस्कारतैं नहीं वण्या है स्वतैसिद्ध है। अर विकाररहित है। अर मिथ्यादर्शनकरि सहित पुरुषहू यातैं वैर नहीं करै है। अर परममंगलरूप है। ऐसा नग्नपणाकूं प्राप्तहुवा साधु है सो स्त्रीके शरीरकूं महा अशुचि दुर्गंध देखै है। अर वैराग्यभावनाकरि मनके विकारकूं रोकै है। शीतउष्णादिकसमस्तपरिषहनिकूं सहै है।

यातैं नग्नपरिषहका विजय ही परमकल्याण है। अर अन्य भेषी हैं ते मनके विकारकूं निरोध करनेकूं असमर्थ हैं। अर देहके विकारकूंहू रोकनेकूं समर्थ नहीं हैं। तातैं कौपीन वस्त्र भोजपत्रादिक आभरणधारण करै हैं। परंतु आत्माका सम्यग्ज्ञान स्वभावका नष्ट करनेवाला कामलोभादिकनिकूं नहीं रोकै हैं। तातैं नग्नपणाका परिषहका विजय धन्य दिगम्बर ही धारण करै हैं ॥ ६ ॥

बहुरि संयममैं अत्यन्त रति धारै हैं तातैं बाह्य अरतिकूं दिगम्बर जीतै हैं। इतने कारण अरति उपजनेके विद्यमान हैं। क्षुधा तृषा शीत उष्णादिककी बाधा, संयमकी रक्षा इंद्रियनका दुर्जयपणा व्रतनिका परिपालनका भार, सर्वकाल अप्रमादीपणा, देशांतरनिका अनेक भाषानिका अजानपणा कठोर चपल वनके प्राणीनिका संगम, प्रचुर भयानक वनका वास, कठोरभूमिमैं शय्या आसनादिकका नियम, अर एकविहारीपणा इत्यादिक कारणनितैं उत्पन्न भई दुःखकारी अरति तिन धैर्यके विशेषतैं निवारण करता साधुजनकूं संयममैं रतिकी भावनातैं विषयनिके सुखका विषका आहारका सेवनकीज्यों परिपाककालमैं

कटुक चिंतवन करै है। तिनकै अरति परिषहका विजय होय है ॥ ७ ॥

बहुरि सुन्दर स्त्रीनिका रूपका अवलोकन स्पर्शनादिकनैं पराङ्मुखपणा सो स्त्रीपरिषहका जीतना है। एकांत वन बगीचेनिके महलभवनादिक स्थानमैं तिष्ठते साधुनिके रागद्वेषसहित यौवनका मद, रूपका मद, आभरण वस्त्रादिकनिका मद, उन्मादसहित मद्यपानादिकरि उन्मत्त हावभावविलासविभ्रमनिकरि सहित स्त्री आय नानाप्रकारकी बाधा करतासंताहू स्त्रीनिके नेत्र मुख भृकुटीका विकार शृंगार आकार विहार विलास लीलाकरि कटाक्षनिका विक्षेप तथा सुकुमार सचिक्कण कोमल उन्नत पुष्ट ऐसे कुच अर उज्ज्वल कृश उदर अर विस्तीर्ण जघन अर रूप गुण आभरण सुगन्ध वस्त्रमाल्यादिकनिके अवलोकन स्मरणतैं अत्यंत दूरवर्ती है मन जिनका, देखनेस्पर्शनेकी अभिलाषारहित हैं। तथा स्त्रीनिके कोमल स्नेहके भरे शृंगाररसकूं पुष्ट करनेवाले गीत वादित्रनिके श्रवणप्रति निरादररूप वर्तै हैं। संसारसमुद्रके मध्य पतननैं अतिभयभीत तिनकैं स्त्रीपरीषहका सहन होय है ॥ ८ ॥

बहुरि मार्गके गमनके दोषनिका निग्रह करना सो गमनपरीषहका विजय है। बहुत कालपर्यंत गुरूनिके संघमैं ब्रह्मचर्यका कीया है अभ्यास जिननैं अर जाण्या है बन्धमोक्षका पदार्थका स्वरूप जिननैं। अर कषायनिका निग्रहमैं तत्पर अर द्वादशभावनामैं स्थापी है बुद्धि जिननै, अर नानादेशनिके व्यवहार अर भाषामैं प्रवीण ऐसैं साधुनिके गुरूनिकी आज्ञात संयमीनिकी भक्तिके अर्थि तथा ग्रामकै नजीक एकरात्रि वसना, नगरके समीप पंचरात्रि वसनेका वर्षाऋतुविना उत्कृष्टनियम है। यातैं पवनज्यों निःसंगपणानै प्राप्त भया देशकालादिप्रमाणकरि मार्गविषै गमनकूं करते भयानक बनीके प्रदेशनिमैं सिंहकी ज्यों निर्भयपणातैं सहायकूं नहीं वांछा करता कर्कश कंटक कंकरादिकनिके भिदनेकरि उत्पन्न भया है चरणनिमैं खेद जिनकै तोहू पूर्वं अनुभव किया जो यानवाहनादिऊपरि चढि गमन ताकूं नहीं स्मरण करतेकै गमनजनित दोषनिका परिहारतैं चर्यापरीषह सहन होइ है ॥ ९ ॥

बहुरि स्वयं संकल्प किया जो आसन तानैं चलायमान नहीं होना सो निषद्यापरीषहका विजय

होय है। संयमकी क्रियाके जाननेवाला अर धैर्य ही है सहाय जाकै अर उत्साहवान् अर श्मशान उद्यान वन शून्यगृह पर्वतनिकी गुफा दराड़ा इत्यादिक पूर्वै परचे नहीं किए ऐसे स्थाननिमैं तिष्ठते साधु हैं सो उपसर्ग रोगविकार प्रगट होते आसनतैं चलायमान नहीं होय हैं। मंत्रत्रियादिक इलाजकूं नहीं करै हैं। अनेक क्षुद्रजीवनिकी बाधा होतैहू काष्ठपाषाणवत् निश्चल रहै हैं। पूर्वै अनुभव किए जे कोमल गादी गद्दा सिंहासनादिक तिनके सुखरूप स्पर्शादिकनिकूं नहीं चिंतवन करै हैं। प्राणीनिका पीड़ाका परिहारमैं उद्यमी हैं। ज्ञानध्यानभावनामैं बुद्धिकूं धारै हैं तिनकै निषद्यापरीषहका सहन होय है ॥ १० ॥

बहुरि आगमकी आज्ञाप्रमाण शयनतैं नहीं चिगना सो शय्यापरीषहका सहन है। स्वाध्याय अर ध्यान मार्गमैं गमनकरि खेदसहित ऐसैं अर कठोरभूमि कठैं नीची कठैं ऊंची ऐसी विषमभूमि अर प्रचुर कांकरा कांकरी ठोकरानिके खंडनिकरि सहित अर सकड़ी तथा अतिशीत अतिउष्ण भूमिविषै मुहूर्तप्रमाणनिद्राकूं प्राप्त होते ऐसे अर जैसैं करवट लिया तैसैं एक पसवाडे वा दंडतुल्य वा सूधे शयन करते ऐसे अर शरीरमैं बहुत बाधा होतैहू संयमके पालनके अर्थि हलनचलन नहीं करते ऐसे अर व्यंतरादिक दुष्टदेवनिमैं त्रासरूप किए तोहू भागने उठनेप्रति अभिलाषरहित ऐसे अर मरणका भयकी शंकारहित ऐसे अर पड्या काष्ठकी ज्यों वा मृतकशरीरकी ज्यों पलटनेकरि रहित ऐसे अर व्याघ्र सिंह महानसर्पादिक दुष्टजीवनिकरि भर्या यो वन है इहांतैं शीघ्र निकसि जाना भला है, कदि रात्रि पूरी होसी इत्यादिकविषादकूं नहीं धारते ऐसे पूर्वै गृहस्थावस्थामैं भोगी जो रूणया घृतवत् कोमल शय्या ताकूं नहीं यादि करते ऐसे ज्ञानी वीतरागी साधुकै सम्यक् आगमोक्त शय्यातैं नहीं चिगना सो शय्यापरिषहका सहना जानना ॥ ११ ॥

बहुरि अनिष्टवचनका सहना सो आक्रोशपरीषहका विजय है। तीव्र मोहकरि सहित मिथ्यादृष्टि आर्य म्लेच्छ दुष्ट पापाचारी उन्मत्त गर्विष्ट इत्यादिकनिकरि कहे क्रोधरूप अग्निशिखाकूं वधावनेवारे हृदयमैं शूलसमान कठोरवचन मर्मछेदके वचन श्रवण करै हैं तोहू परिणाममैं कलुषित नहीं होय हैं। अर

रोष करै तो भस्म करदेनेका सामर्थ्य है तोहू साम्यभावका धारक साधु है सो उनकी करुणा ही करै हैं। जो इनकै कर्मका उदयकरि अज्ञान भाव है। हमारे देखनेकरि इनकै दुःख उपज्या है, कर्मके परवश हैं इनको अपराध नहीं। मेरा ही अशुभकर्मका उदय है। ऐसैं चिंतवन करता परकरि कहे दुर्वचनकरि कलेसकूं नहीं प्राप्तहोय ते अनिष्टवचननिकूं सहै हैं। तिनकै आक्रोशपरीषहका सहना होय है ॥ १२ ॥

बहुरि मारनेवालेमैं रोषका अभावरूप होना सो वधपरीषह सहना है। ग्राममैं उद्यानमैं वनीमैं नगरमैं रात्रिदिन एकाकी अर आच्छादनरहित नग्नमुनिकूं क्रोधके भरे चोर भिल्ल म्लेच्छ तथा पूर्व अवस्थाके वैरी मिथ्यादृष्टि धर्मके द्रोही दुष्टलोक नानाप्रकारके ताडन, आकर्षण, घसीटन, बन्धन, पाषाण, लाठी, शस्त्र, चाबुक इत्यादिकनिकरि मारै हैं तोहू वैररहित भए हैं। ऐसा विचारै हैं जो शरीर अवश्य विनाशीक है। जैसैं मेरा व्रत शीलभावना ध्यानका नाश नहीं होय अर समभावतैं शरीरका पतन होय सो श्रेष्ठ है। जैसैं दग्ध होतेहू चंदन सुगन्धकूं ही देहै तैसैं क्रोधकरिकैं मारन, ताडन करताहू दुष्ट वैरी प्रति उत्तम-क्षमाके बलकरि अपने कर्मकी निर्जरा करतेहू धैर्यके धारी विकारपरिणामकूं प्राप्त नहीं होय है। तिनकै बन्धपरीषहका विजय होय है ॥ १३ ॥

बहुरि प्राणीनिका नाश होतैहू आहारादिकनिकै अर्थि दीनतारूप प्रवृत्तिका अभाव सो याचना-परीषहका विजय है। क्षुधाकरि तथा मार्गके खेदकरि तपकरि रोगादिककरि जिनका वीर्य नष्ट होगया अर शुष्कवृक्षकीज्यों आर्द्रतारहित है शरीर जाका, ऊँचे प्रगट भये हैं हाड नसाजाल जाकै, अर नीचैं गडिगए हैं नेत्र जिसकै, अर सूकिगया है अधर ओष्ठ जाका, अर कृश भया है कपोल जाका, अर संकुचित भई है शरीरकी त्वचा जाकै, शिथिल हुवा है गोडा टकूंण्या कटि जंघा बाहु जाका, अर मौनकूं धारणकरि है गमन जाकै, अर गृहस्थनिकै घर अन्य किसीका रोकना नहीं तहांपर्यंत शरीरका दर्शनमात्र है व्यापार जिनकै, अर मदरहित है अपने आधीन चित्त जाका, अर प्राणनिका अन्त होतैहू आहार वस्तिका औषधादिकनिकूं दीनवचनकरि मुखकी विवर्णताकरि हस्तादिककी समस्याकरि उदरकी कृशताकरि

कदाचित् याचना नहीं करता, रत्नका व्यापारी मणिकूं दिखावै तैसैं दीनतारहित है शरीरका दिखावना जाकै, जैसैं जगतमैं वन्दनाकीया हुवा अपने हस्तका प्रकाशन करै तैसैं दातार भोजनके पात्रमैं ग्रास उठाय देवनेकूं हस्त करै तदि साधु अंजुलीकूं ऊंची करै हैं, हस्तपुटका दीनतारहित आहारका अवसरमै धारणा करते साधुकै याचना परीषहका सहना होय है। अवार इस निकृष्टकालके प्रभावतैं दीन अनाथ पाषडीनिकरि व्याप्त जगतमैं जिनेंन्द्रके मार्गकूं नहीं जानते याचना करै हैं, तिनकैं याचनापरीषहका सहना नहीं है ॥ १४ ॥

बहुरि आहारादिकका अलाभ होतेहू लाभकी ज्यों संतुष्ट जो साधु ताकै अलाभपरिषहका विजय है। पवनकी ज्यों अनेकदेशनिमैं है गमन जिनका अर एकदिनमैं एककाल भोजनके अर्थि नगरग्राममैं प्रवेश करै हैं तथा एक उपवास दोय तीन पांच उपवासादिकके पारणके अर्थि नगर ग्राममैं आवै हैं तहां एकवार शरीरका दिखावनामात्रहीमैं प्रवत्त हैं। अर देहि इत्यादिक याचनारूप अयोग्यवचनकरि रहित हैं। अर आज आहारका लाभ होयगा कि कालि होयगा ऐसैं संकल्परहित हैं। अर देहका इलाजरहित हैं। अर एकग्राममैं भिक्षाका लाभ नहीं होय तौ अन्यग्राममैं गमन कदाचित् नहीं करै। अर हस्तपुटमात्र ही जिनकै पात्र है। अर बहुतदिन बहुतगृहांमैं परिभ्रमण करतेहू भोजनका लाभ नहीं होतेहू संक्लेशरहित है चित्त जिनका, अर यो पुरुष दाता नहीं अन्य दाता है इत्यादिक परीक्षारहित है परिणाम जिनका, अर लाभतैं भी अलाभकूं परमतप मानि सन्तोषकूं धारते साधुकै अलाभपरिषहका विजय होय है ॥ १५ ॥

बहुरि नानाप्रकारकी व्याधि होतैहू इलाजप्रति वांछाका अभाव सो रोगपरीषहका विजय है। यो शरीर दुःखको कारण है अशुचिनाको भाजन है जीर्णवस्त्रकीज्यों अवश्य त्यागनेयोग्य है। अर वायु पित्त कफ सन्निपातके निमित्ततैं अनेक ज्वर काशश्वासादिक अनेकरोगनकरि पीडित है, ऐसैं अपने शरीरकूं अन्यका शरीरकीज्यों मानै हैं। वीतरागपरिणामतैं नहीं छूटै हैं। देहका इलाजतैं अपूठा (विरक्त) है चित्त जाका। रत्नत्रय इस देहविना नहीं रहै। यातैं रत्नत्रयका सहकारी देहका अकालमैं नाश नहीं होनेके अर्थि

आचारांगकी आज्ञाप्रमाण निर्दोष आहार ग्रहण करै हैं। जिनकै जल्लोषधादिक अनेक ऋद्धि तपके प्रभावनैं उपजी हैं तोहू शरीरमैं निस्पृहपणातैं प्रतिकारीकी नहीं वांछा करता रोगकूं पूर्वकर्मकृत फल जानि समभावतैं सहते ऐसा विचारै हैं जो कर्मका ऋण चुकै है। अब मैं ऋणरहित भया। ऐसैं चिंतवन करतेकैं रोग परीषहका विजय होय है ॥ १६ ॥

तृणकंटकादिकनिका निमित्ततैं उपजी वेदनाकूं सहते साधुकै तृणस्पर्शविजय होय है। शरीरमैं व्याधि अर मार्गमैं गमन अर शीतऊष्णताजनित खेदके दूरि करनेकै अर्थि आपकै निमित्त नहीं संवारै ऐसे सूके तृण पत्र कठोरभूमि कंटक काष्ठफलक शिलातलादिक प्रासुकदेशनिमैं शय्या वा आसनादिक करनेतैं तृणादिककरि बाधानैं प्राप्तभया है शरीर जाका अर उत्पन्नभया है खाजिका विकार जाकै तोहू तृणकंटक कठोर कांकरीभूमिका स्पर्शजनित दुःखकूं नहीं अनुभव करतेकै तृणपरीषह सहना होय है। १७॥

बहुरि अपना शरीरका मल अर आगन्तुकमलका संचयका नाश होनेका संकल्प अभाव सो मलपरीषहका सहन जानना। जीवनिकी पीडाका परित्यागके अर्थि यावज्जीव स्नानका त्यागकी है प्रतिज्ञा जाकै, अर पसेवरूप कर्दमकरि लिप्त है सर्व अंग जाका, अर खाजि दाद कोढकी उत्कटतासहित है काय जाका, अर नख रोम डाढी मूंछके केशनिका अर सहज बाह्यमलका मिलापकेकारण अनेक चामकै मध्य है विकार जाकै, अर अपने शरीरमैं अर परकै मलका संचय दूरि करनेमैं नहीं है मन जाका, कर्ममलरूप कर्दमका नाश करनेमैं उद्यमी, अर पूर्वैं भोग्या स्नानविलेपनादिकका स्मरणतैं पराङ्मुख है चित्तकी वृत्ति जाकी ऐसे साधुकै मलपरीषहका सहन कहिए है ॥ १८ ॥

बहुरि जिन साधुनिका सन्मान अपमानविषै समरूप होय सत्कारपुरस्कारका अभिलाष नहीं होइ तिनकै सत्कारपुरस्कारविजय है। मैं चिरकालतैं ब्रह्मचर्यका सेवन कीया है। महातपस्वी हूं, स्वमतपरमतका निश्चयका ज्ञाता हूं। हितकारी उपदेश देनेमैं तत्पर हूं। रत्नत्रयमार्गमैं प्रवीण हूं। अर बहुतवार वादीनिका विजय कीया है। ऐसा हूं तोहू मोकूं प्रमाण नहीं करै हैं। भक्ति नहीं करै हैं। हर्षतैं खडा होइ

आसनादिक नहीं देहैं। ऐसै परिणाम कदाचित् नहीं करै हैं। अपने आत्मकल्याणकूं ध्यावै हैं। सत्कार पुरस्कारकूं नहीं वांछा करै हैं ताकै सत्कारपुरस्कारपरीषहका विजय होय है। पूजाप्रशंसारूप तो सत्कार है। अर नाममें क्रियाके आरंभमें अग्रेसर करना वा प्रधानकार्यमें बुलावना सो पुरस्कार है ॥ १९ ॥

बहुरि बुद्धिके मदका अभाव करना सो प्रज्ञापरीषहका विजय है। मैं अंगपूर्वप्रकीर्णकनिमैं प्रवीण हूं। अर समस्तग्रंथ तथा अर्थका निश्चय करनेवाला हूं। त्रिकाल विषय अर्थके जाननेवाला हूं। शब्दशास्त्र तथा न्यायशास्त्रके जाननेमैं निपुण हूं। हमारे अग्रभागविषै अन्य पंडितजन सूर्यका उद्योतकरि तिरस्कारकूं प्राप्त हुवा आग्याका उद्योतज्यों अवभासै है। इस प्रकार प्रज्ञाका मदका अभाव करना सो प्रज्ञापरीषहका जीतना है ॥ २० ॥

बहुरि आपकै अज्ञानपणाकरि आपका तिरस्कार होना अर ज्ञानका अभिलाष करतैहू ज्ञानका नहीं होना ऐसा अज्ञानजनितपरीषहका जीतना सो अज्ञानपरीषहका सहना है। यो अज्ञानी है कुछ नहीं जानै है पशुसमान है। इत्यादिक तिरस्कारके वचननिकूं मैं सहूंहूं। अर अध्ययन करनेमैं अर अर्थके ग्रहण करनेमैं अर तिरस्कार सहनेमैं सशक्त हूं, अर बहुतकालका दीक्षित हूं अर नानाप्रकारके तपके भारकरि व्याप्त हूं, अर सकलसामर्थ्यमैं उद्यमी हूं। अर अनिष्टमनवचनकायकी प्रवृत्तिकरि रहित हूं। तोहू अब भी मेरे ज्ञानका अतिशय नहीं उपज्या। ऐसैं विकल्पनिकूं स्वप्नहूंमैं नहीं करै ताकै अज्ञानपरीषहका विजय जानना ॥ २१ ॥

बहुरि दीक्षादिकनिकूं निरर्थक जाननेका अभाव सो अदर्शनपरिषहका सहन है। मैं संयमीनिमैं मुख्य हूं अर दुर्द्धरतपका आचरण करनेवाला हूं, परमवैराग्यभावनाकरि शुद्धमनका धारक हूं। सकलपदार्थनिके तत्त्वका जाननेवाला हूं, अर्हंतके आयतन साधुजन अर धर्म इनका पूजक हूं। अबहू मेरा ज्ञानका अतिशय प्रगट नहीं भया। महान उपवासादिक आचरण करनेवालेनिकै प्रातिहार्यविशेष प्रगट होय है सो यह बात तो प्रलापमात्र है, कहनेकी है। अर या दीक्षाहू निरर्थक है। अर व्रतनिका पालनाहू निष्फल

है। हमकूं तो कुछ प्रभाव प्रगट हुवा नहीं। दर्शनविशुद्धताके योगतैं इत्यादिक चिंतवन नहीं प्रगट होय ताकै अदर्शनपरीषहका विजय होय है ॥ २२ ॥

ऐसैं विना संकलपही उपजे द्वाविंशतिपरीषह तिनकूं सहता संक्लेशचित्त नहीं होय है तिसकै रागादिकपरिणामजनित आस्रवका अभावतैं महान् संवर होय है।

अब–गुणस्थाननिमैं परिषहनिकूं कहै हैं—

सूक्ष्मसांपरायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥ १० ॥

अर्थ—सूक्ष्मसांपराय तो दशमगुणस्थानवर्त्ति अर छद्मस्थवीतराग जो उपशांतकषायक्षीणकषाय नाम जिनके ऐसैं ग्यारमा बारमा गुणस्थानवालेनिकै चौदहपरीषह ही हैं। क्षुधा[1], तृषा[2], शीत[3], उष्ण[4], दंशमशक[5], चर्या[6], शय्या[7], वध[8], अलाभ[9], रोग[10], तृणस्पर्श[11], मल[12], प्रज्ञा[13], अज्ञान[14], ए चतुर्दश हैं। अवशेष नाग्न्य, अरति, स्त्री, निषद्या, सत्कारपुरस्कार, आक्रोश, याचना, अदर्शन इन अष्टपरीषहनिका सद्भाव नहीं है। अर ए चौदह परीषहहू सत्तामात्र हैं।

जैसैं सर्वार्थसिद्धि देवनिकै समस्तपृथ्वीका गमनका सामर्थ्य है परन्तु जानेका प्रयोजन नहीं अर रागभाव नहीं तातैं गमन नहीं। तैसैं सूक्ष्मसांपरायके तो मोहका अत्यन्त मन्द उदय अर छद्मस्थ वीतरागके मोहका अभाव तातैं वेदनीयका तथा ज्ञानावरण अन्तरायके सद्भावतैं चौदह परीषह उपचारतैं कहीं मोहनीयके अभावतैं मुख्यपणातै अभाव ही है। अब–केवलीके कहै हैं—

एकादश जिने ॥ ११ ॥

अर्थ—जिनेन्द्रभगवानकै ग्यारह परीषह कल्पे हैं। वेदनीयकर्मके उदयके सद्भावतैं भगवान् केवलीजिनकै ग्यारह परीषह हैं। कोऊ कहैगा ग्यारह परीषह है तो क्षुधादिककाहू प्रसंग आया। सो नहीं है, जातैं अघातिकर्मका उदयका अभावतैं वेदनीयकर्मके क्षुधादिक वेदना उपजावनेका सामर्थ्यका अभाव है। जैसैं मंत्र औषधादिकके बलतैं क्षीण भई है मारणशक्ति जामैं ऐसा विषद्रव्य मरणके अर्थि नहीं

कल्पना करिए है। तैसैं ध्यानरूप अग्निकरि दग्ध कीए हैं घातिकर्मरूप ईंधन जानैं अर प्रगट भया है अनन्त ज्ञानादिकचतुष्टय जाकै ऐसे केवली जिनकै अन्तरायकर्मका अत्यंत अभावतैं निरन्तर शुभनोकर्मपुद्गलनिका संचय होनेतैं प्रक्षीण भया है सहाय बल जाकै ऐसा वेदनीयकर्म अपना वेदनारूप प्रयोजन उपजावनेकूं असमर्थ है।

यातैं भगवान् जिनकै वेदनीयका उदय होतैहू क्षुधाका अभाव निश्चय करना। संसारीजीवनिकै वेदनीयकर्मके उदयतैं क्षुधा[1], तृषा[2], शीत[3], उष्ण[4], दंशमशक[5], चर्या[6], शय्या[7], वध[8], रोग[9], तृणस्पर्श[10], मल[11], ए ग्यारहपरीषह होय हैं। यातैं केवलीजिनकैहू वेदनीयकर्मका उदय है तातैं कर्मकूं कारण देखि केवलीके ग्यारह परीषह कहीं। परंतु मोहनीयकर्मके बलतैं वेदनीयकर्म प्रबल होइ आहारादिककी इच्छारूप क्षुधादिक परीषह उपजावै था। अब वेदनीयकै मोहनीयकर्मके सहायका अभावतैं वेदना देनेरूप शक्ति नहीं रही तब क्षुधादिक वेदना कैसैं उपजावै। अर असातावेदनीयकी उदीरणा होय तदि क्षुधा उपजै है। सो वेदनीयकर्मकी उदीरणा छठा गुणस्थानपर्यंत ही है ऊपरि नाहीं है। तदि वेदनीयकी उदीरणाविना केवलीकै क्षुधादिकबाधा कैसैं होय।

जैसैं निद्रा प्रचलाकर्मका उदय तो बारमा गुणस्थानपर्यंत है परंतु उदीरणा विना निद्रा नहीं व्यापै है। अर जो निद्राकर्मके उदयतैं ही ऊपरके गुणस्थाननिमैं निद्रा आजाय तो प्रमादीकै ध्यानका अभाव होजाय। बहुरि जैसैं संज्वलनका मन्द उदय होतै अप्रमत्तगुणस्थानमैं प्रमादका अभाव है। जातैं प्रमाद है सो संज्वलनका तीव्र उदयमैं होय है, मन्द उदयमैं नहीं होय। तथा वेदनीयके तीव्र उदयतैं संसारीजीवके मैथुनसंज्ञा होय है। अर वेद नवगुणस्थानताांई हैं। परन्तु वेदके मन्द उदयतैं श्रेणी चढे हुए संयमीनिकै मैथुनसंज्ञाका अभाव है, मन्द उदयतैं मैथुनमैं वांछा नहीं उपजै है तथा निद्रा प्रचला कर्मका उदय तो बारमा गुणस्थानताांई है। परन्तु मन्द उदयतैं निद्रा नहीं व्यापै हैं। तैसैं ही केवलीभगवानके वेदनीयका मन्द उदयतैं क्षुधातृषादिक नहीं उपजै है।

बहुरि शक्तिरहित असातावेदनीयहू केवलीकै क्षुधादिकवेदना उपजावनेकूं समर्थ नहीं है। जैसैं स्वयंभूरमण समुद्रका समस्त जलकूं एक सरसूंका अनन्तवां भाग प्रमाण विषकी कणिका विषरूप करनेकूं समर्थ नहीं तैसैं अनन्तगुण अनुभागका धारक सातावेदनीयका उदयसहित केवली भगवानकूं अनन्त-भाग खण्ड असंख्यातवार जाका होगया ऐसा असातावेदनीयकर्म क्षुधादिक वेदनीकूं नहीं उपजाय सकै है।

अर जो थे या कहो आहारविना केवलीका देहकी स्थिति कैसैं रहो तो यों जाणों। आहारविना देवनिके शरीरकी स्थिति कैसैं है? जैसैं देवनिके शरीरकी स्थिति कवलाहारविना है तेसैं केवलीका देहकी स्थितिहू है। अर जो थे या कहो–देवनिकै तो मानसिक आहार है तो केवलीकैहू निरन्तर शुभसूक्ष्मश-रीरके बलाधानका कारण ऐसैं नोकर्मपुद्गलनिका ग्रहणरूप आहार है ही। अर जो थे या कहो–केवलीका देह तो मनुष्यका है, मनुष्यदेह औदारिक है, इस देहकी स्थिति कवलाहारविना कैसैं होय तातैं देहवत् कवलाहार ही उचित है ऐसैं कहो सो ठीक नहीं–जो मनुष्यनिकै तपश्चरणजनित ऐसा प्रभाव प्रगट होय है जो त्रैलोक्यमैं ऐसा सामर्थ्य नहीं अर भगवान् केवलीकै अनन्त ज्ञान अर अनन्तवीर्य प्रगट भया।

अन्यमनुष्यनिकै इन्द्रियजनित ज्ञान केवलीकै अतींद्रियज्ञान केवलीजिनकूं अन्यमनुष्यनिकै समान कैसैं कहो हो। अर मनुष्यनिकै अर केवलीजिनकै समानता होजाय तदि आत्मा अर परमात्मामैं भेद काहेका रह्या। जिस काल क्षपकश्रेणी चढै हैं तिस कालविषै अधःप्रवृत्तिकरणका परिणामनितैं च्यारि आवश्यक होय हैं। प्रथम तो समयसमयविषै कषायनिकी मन्दतातैं परिणामनिकी अनन्तगुणी उज्वलता ॥१॥ अर स्थितिबन्धापसरण कहिए पूर्वैं कर्मकी स्थिति बांधी ताका समयसमय अनन्तगुणा घटना ॥ २ ॥ अर सातावेदनीयादि प्रशस्तकर्मनिका अनुभाग जो रस देनेकी शक्ति ताका समयसमय अनन्तगुणा बढ़ना ॥३॥ अर असातावेदनीयादिक अप्रशस्तकर्मकी प्रकृतिनिका अनुभाग समयसमय घटना ॥ ४ ॥

जातैं अशुभप्रकृतिनिमैं विषहालाहलरूप शक्तिका तो अभाव होय है। अर निम्ब कांजीरूप रस रहिजाय है, ऐसैं च्यार आवश्यक तो अधःप्रवृत्तिकरणतै होय हैं अर अपूर्वकरणतैं गुणश्रेणीनिर्जरा, अर

गुणसंक्रमण, अर स्थितिकांडकोत्कीर्ण अर अनुभागकांडकोत्कीर्ण ए च्यार आवश्यक अपूर्वकरणतैं होय हैं। यातैं केवलीभगवानके असातावेदनीय आदि अप्रशस्तप्रकृतिनिका रस असंख्यातवार अनंतानंतका भाग लागिकैं घटिगया तदि असातामैं सामर्थ्य कहां रही जो केवलीकै क्षुधादिवेदना उपजावै।

बहुरि असातावेदनीयका बन्ध तौ छठा गुणस्थानपर्यंत ही है। अर सप्तमगुणस्थानतैं ही असातावेदनीयका बन्ध नहीं, एक सातावेदनीयका ही बन्ध है। अर ग्यारमा बारमा तेरमा गुणस्थाननिमैं जो सातावेदनीयका बन्ध है सो एक समयकी हू स्थिति नहीं पावै है। जातैं स्थितिका कारण कषाय तो मूलतैं गया तदि साताका बन्ध उदयरूप होता ही बन्धै है। तदि पूर्वका बंध्या असाताका मन्द उदय वर्त्तमानकालका साताका उदयरूप होय परिणमै है। तब क्षुधादिक वेदना कौन उपजावै? जैसैं अमृतके समुद्रमैं मिल्याहुवा एक दग्धहुवा विषका कण रस नहीं दे सकै है।

बहुरि बडी मूढता प्रगट देखिये है जो तीन लोकके पतिकरि वंदनीक देवाधिदेव परमपूज्य अर्हत् भट्टारककूं अर जगतके विषयी कषायी रंक पुरुषनिकूं समान कहना इस सिवाय अन्य मूढता नहीं है, अर जगत्‌विषै भी प्रसिद्ध है--जो मणि मन्त्र औषध विद्या तप इनका अचित्य प्रभाव। है चिंतामणि अर अन्य पाषाण कैसैं समान होय। अर अन्य तारा अर सूर्य कैसैं समान होय। तातैं नानावेदनाका नष्ट करनेमें समर्थ ऐसा केवलज्ञानके होतै केवलीकै आहार निहार मानना अनंतसंसारका कारण है। अर प्राणिनिका जीवना तो आयुकर्मके उदयके आधीन है। केवल आहारमात्रतैं ही नहीं हैं। जातैं भोगभूमिके मनुष्यनिका तो शरीर तीन कोसप्रमाण है। अर तीन पल्यका आयु है। अर तीन दिन गए पीछैं बोरप्रमाण आहार करै हैं। बहुरि अन्डेमैं पक्षी अपनी माताका उदरकी ऊष्माहीतैं वृद्धिनैं प्राप्त होय है तातैं पक्षीनिके उजाहार है। एकेंद्रियनिके जल पवनादिक ही आहार हैं। सो लौकिकजनहू कितने जीवनिकै पवनका ही आहार कहै हैं। नारकीनिकै कर्मनिका भोगना ही आहार है। देवनिकै मानसिक आहार है। तैसैं केवलीजिनकै नोकर्मपुद्गलनिका आहार है।

बहुरि अन्यमनुष्यनिकी ज्यों केवलीजिनकै वेदनीके उदयतैं कवलाहार मानो हो तो सयोगीकै द्रव्यमनका सद्भावतैं मनका विकलपहू मानो, अर द्रव्येंद्रिय विद्यमान हैं तातैं इन्द्रियजनितज्ञानहू मानो अर शुक्लेश्या विद्यमान है तातै कषायहू केवलीकै माननेका प्रसंग आवैगा। जिस मुनिकै कायबलऋद्धि होय है ताकै ही ऐसा सामर्थ्य होय है जो त्रैलोक्यकूं चलायमान करै तो केवलीका सामर्थ्य कौन कहिसकै। बहुरि भक्षण करनेकी इच्छाकूं बुभुक्षा कहिए हैं। सो भगवानके मोहनीय कर्मका अभाव भया तदि भोजनकी इच्छा काहेतैं भई?

अर मोहनीयकर्मका अभाव होतैं भी जो इच्छा मानोहो तो स्त्रीभोगनेकी इच्छाकाहू सद्भाव आया तदि वीतरागताकूं जलांजलि दीनी वीतरागता कहां रही। बहुरि जो केवली भोजन करै हैं सो नित्य एकबार करै हैं कि अनेकबार करै हैं कि एकदिन दोय दिनकै आंतरै करै हैं कि छह महीना बरस दिनकै अन्तरतैं करै हैं। उनके कितने दिनके अन्तरकरि भोजन है। जो प्रमाण कहोगे तो उनकी शक्तिका उतना ही प्रमाण आगया तदि अनन्तशक्ति कहना वृथा है। बहुरि भोजन करै हैं सो क्षुधाकी वेदनातैं करै हैं कि रसनेंद्रियका स्वादकै अर्थि करै हैं?

जो क्षुधाकी वेदना नहीं सहीजाय यातैं करै हैं तो क्षुधासमान वेदनाही नहीं तदि केवलीकै अनंतसुख कहना वृथा भया। अर जो रसनेंद्रियका स्वादके अर्थि करै हैं तो अतींद्रियात्मक स्वाधीनसुखका अभाव आया। भोजनकै आधीन सुख रह्या तदि स्वाधीन परमेश्वरपणाका अभाव आया। बहुरि भोजनकूं आस्वादै हैं सो केवलज्ञानतैं आस्वादै हैं कि रसनेंद्रियतैं आस्वादै हैं। जो केवलज्ञानतैं आस्वादै हैं तो दूर समस्त त्रैलोक्यमैं वर्त्तते आहारकूंहू आस्वादन करै हैं फेर कवलाहारसूं कहां प्रयोजन रह्या। अर रसनेंद्रियतैं आहारका स्वाद लेहैं तो केवलीकै इंद्रियजनित मतिज्ञानका प्रसंग आया तदि केवलज्ञानका अभाव आया।

बहुरि केवली त्रैलोक्यमैं वर्त्तते समस्त जीवनिका मरण ताडन त्रासन मांस रुधिरादिकनिकूं प्रत्यक्ष

देखता भोजनका अन्तराय कैसैं टालै हैं। अल्पशक्तिका धारक श्रावकहू ऐसैं घोरकर्मनिकूं देखै तो अन्तराय करै है फिर केवली कैसैं भोजन करै हैं। बहुरि भोजनकी इच्छामात्रतैं सप्तमगुणस्थानका धारक तथा श्रेणीमैं तिष्ठता साधु छठे गुणस्थानकूं प्राप्त होय है सो प्रमादी कहावै है तो केवली भोजन करता प्रमादी कैसैं नहीं होय? यह बड़ा आश्चर्य है।

ध्यानरूप अग्निकरि दग्ध कीए हैं च्यारघातियाकर्म जिननैं अर अनन्त अरोक ज्ञानदर्शनसुखवीर्य जिनकै प्रगट भया ऐसा भगवान् केवलीकै अन्तरायकर्मके अत्यन्त अभावतैं निरन्तर समयसमय शुभ-सूक्ष्मपुद्गलनिके संचय होनेतैं औदारिकशरीर कवलाहारविना ही अनन्तशक्ति धारण करै है तातैं बहोत कहांताईं लिखीजाय, केवलीके आहारकी असत्यकल्पनाकरि मोहनीयकी सत्तरिकोटाकोटीसागरकी स्थिति निरन्तर बांधना उचित नहीं। निरस्त भया है घातिकर्मका चतुष्टय जाकै ऐसे जिनभगवानकै वेदनीयका सद्भाव होतैंहू द्रव्यकर्मका सद्भावतैं एकादशपरीषह नहीं होय हैं, जातैं मोहनीयका सहायविना वेदनीयकर्म क्षुधादिकवेदना नहीं करि सकै हैं, अर वेदना नहीं करै है तोहू वेदनीयका कर्मपरमाणुके सद्भावतैं उपचारतैं ग्यारह परीषह कहे हैं।

जैसैं समस्त ज्ञानावरणका अभावकरि सकलपदार्थनिका अवभासक केवलज्ञान प्रगट होतैंहू केवली भगवानकै उपचारतैं ध्यान कह्या। भगवानकै सकलपदार्थ एककालमैं युगपत् प्रत्यक्ष भए तदि एकाग्रचिंतानिरोधध्यान जो एकपदार्थकूं आलम्बनकरि ध्यावै सो कहां रह्या, तोहू ध्यानका फल कर्मका नाश होनेके सद्भावतैं उपचारतैं ध्यान कह्या अथवा इस ही वाक्यतैं केवलीजिनकै ग्यारहपरीषह नहीं है जातैं उपचारतैं परीषह कहे हैं सो उपचार झूठा है।

जैसे किसी बालकमैं क्रूरपणा, शूरपणा देखि उपचारतैं सिंह कहिदिया। तीक्ष्ण नखदंत कपिल नयन केशावलीका धारनेवाला सिंह नहीं है परन्तु सिंहका कोई धर्म देखि सिंह कहना सो उपचार है।

तथा लौकिकजन कहै हैं—यह वस्त्र आभरण मेरा है, यह देश मेरा है, यह राज्य हमारा है, यह

नगर हमारा है। ऐसैं समस्त कहना उपचार है सो झूठा है, तातैं जिनेंद्रके उपचारतैं कहे ग्यारह परीषह नहीं हैं। अब बहुत कथनी कीए ग्रंथविस्तार बधिजाय तातैं श्वेतांबरपराजयादितैं विशेषकथन जानना।

अब समस्तपरीषह कहा है सो कहै हैं—

बादरसांपराये सर्वे ॥ १२ ॥

अर्थ—प्रमत्तकूं आदिकरि नवमगुणस्थानताई बादरसांपराय कहिए स्थूलकषाय हैं। इनमैं समस्त बाईस परीषह होय हैं।

अब कौन प्रकृतिका उदयतैं कौन परीषह होय सो कहै हैं—

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥ १३ ॥

अर्थ—ज्ञानावरणकूं होतैसंतै प्रज्ञा अर अज्ञानपरीषह होय हैं। इहां कोऊ कहै, ज्ञानावरणके उदय होतै अज्ञानपरीषह होना तो ठीक है परंतु प्रज्ञापरीषह कैसैं होय। प्रज्ञा तो ज्ञान है सो आत्माका स्वभाव है सो ज्ञानावरणके उदयमैं कैसैं होय। ताका उत्तर कहै हैं–जो प्रज्ञाका मदजनित परीषह होय है सो ज्ञानावरणका उदय होतै ही होय है। जातैं क्षयोपशमतैं उपजी मन्दप्रज्ञा सो ही मद उपजावै है। जाकै सकलज्ञानावरणका नाश होजायगा ताकै प्रज्ञाका मद नहीं उपजैगा। प्रज्ञाका मद होय है सो क्षयोपशम ज्ञानीकै होय है। क्षयोपशमज्ञानीकै ज्ञानावरणको उदय विद्यमान है ही।

दर्शनमोहांतराययोरदर्शनालाभौ ॥ १४ ॥

अर्थ—दर्शनमोहकूं होतैसंतै अदर्शनपरिषह होय है अर अंतरायकर्मके उदयतैं अलाभपरिषह होय है।

चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः ॥ १५ ॥

अर्थ—चारित्रमोहकूं होतैसंतै नाग्न्य, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना, सत्कारपुरस्कार ए सात परिषह होय हैं।

अब अवशेष परिषहनिके निमित्तकूं कहै हैं—

वेदनीये शेषाः ॥ १६ ॥

अर्थ—ए कहे तिनतैं शेष जे क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श, मल ए ग्यारह परिषह वेदनीय कर्मके होतैसंतै होय हैं।

अब एककालमैं युगपत कितने परिषह होंय तातैं सूत्र कहै हैं—

एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नेकोनविंशतिः ॥ १७ ॥

एक जीवकै युगपत् एक कालमैं उगणीस परिषह होय हैं अधिक नहीं। जातैं शीत उष्णमैंतैं एक काल एकही होय अर शय्या चर्या निषद्या इन तीननिमैं एककालमैं एकही होय। तातैं तीन घटनेतैं युगपत् उगणीसही कहे। ऐसैं परिषहनिका प्रकरण कह्या।

अब संवरनिर्जराका कारण चारित्रकूं कहै हैं-सो चारित्र चारित्रमोहका उपशम क्षय क्षयोपशम लक्षण जो आत्मविशुद्धिरूप लब्धि, ताकी सामान्य अपेक्षाकरि तो एक प्रकार है। प्राणीनिकै पीडा अर इंद्रियनिका दर्पका निग्रहकी शक्ति अपेक्षा दोय प्रकार है। उत्कृष्ट मध्य जघन्य विशुद्धिताकी प्रकर्षता अप्रकर्षतातैं तीन प्रकार है। अर सराग वीतराग सयोगी अयोगीकी अपेक्षा च्यार प्रकार हैं।

तोहू पंचप्रकारकरि कहै हैं—

सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातमिति चारित्रं ॥ १८ ॥

अर्थ—सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात ऐसैं पंचप्रकार चारित्र हैं। व्रतनिका धारण, समितिका पालन, कषायनिका निग्रह, अशुभ मनवचनकायकी प्रवृत्तिरूप दण्डनिका त्याग करना, इंद्रियनिका विजय जिस जीवकै होय ताकै संयम जानना। तहां समस्त सावद्ययोगका अभेदकरि जामैं त्याग होय सो सामायिकचारित्र है।

बहुरि कोऊ सामायिकसंयमरूप होय फेर चिगकरि सावद्यव्यापाररूप हुवा फिर प्रायश्चित्ततैं सावद्यव्यापारतैं उपज्या दोषकूं छेदि आत्माकूं व्रतधारणादिरूप संयममैं धारण करिए सो छेदोपस्थापन है अथवा व्रत समिति गुप्त्यादिकका भेदरूप चारित्र सो छेदोपस्थापन है।

बहुरि प्राणीनिकी पीडाका परित्यागकरिकै विशिष्टशुद्धता जाकै होय सो परिहारविशुद्धिचारित्र है सो परिहारविशुद्धिचारित्र कौनकै होय सो कहै हैं–जन्मतैं तीस वर्षप्रमाण जाकी अवस्था होय अर जन्मदिनकों आदि लेय सर्वकाल सुखी रह्यो होय अर तीस वर्ष पीछैं जिनदीक्षा ग्रहणकरि श्रीतीर्थंकरांका चरणारविंद सेवनकरै तो तीर्थंकरांका चरणांकै समीप प्रत्याख्यान नाम नवमा पूर्व पढ्या होय, अर जीवनिका निरोध, जीवनिका प्रगट होनेका काल, जीवनिका प्रमाद उत्पत्ति योनि देश द्रव्यस्वभावके विधानका जाननेवाला होय, प्रमादरहित होय, महावीर्यका धारक होय, बड़ी निर्जरा जाक होय, दुर्द्धर चर्याका आचरण करनेवाला होय, तीन सन्ध्याकूं वर्जनकरि अन्य अवसरमैं दोय कोशप्रमाण विहार करनेवाला होय, रात्रिकै विषै विहाररहित होय, वर्षाकालका नियमरहित होय, ऐसे साधुकै परिहारविशुद्धि संयम होय है अन्यकै नाहीं होय। इनके शरीरतैं जीवकी विराधना नहीं होय है। परिहारविशुद्धिचारित्रका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त्त है।

छठा अर सातमा दोय गुणस्थाननिमैं यो संयम है। जो अन्तर्मुहूर्त्तमैं गुणस्थान पलटिजाय तो संयम छूटिजाय अर उत्कृष्टकाल अडतीस वर्ष घाटि कोटिपूर्व है। कैसैं सो कहै हैं–उत्पत्तिदिवसतैं तीस वर्षका दीक्षित होय अष्टवर्ष तीर्थंकरनिकै निकट रह्या पाछैं परिहारविशुद्धिसंयम उपजै अर कोटिपूर्वका आयु तातैं अडतीस वर्ष घाटि कोटिपूर्व रहै।

बहुरि सूक्ष्मकषायगुणस्थानमैं सूक्ष्मसांपरायचारित्र है। जो सूक्ष्म अर स्थूलहिंसाका त्यागमैं असावधान नहीं अर अखण्डित जिनकै उत्साह है, अर सम्यग्दर्शनज्ञानमहापवनकरि संधुक्षित जो प्रशस्त परिणामरूप अग्निकी शिखाकरि दग्ध किया है कर्मरूप ईंधन ज्यां, ध्यानविशेषकरि शिखारहित किया

है कषायरूप विषका अंकुरा ज्यां, नाशकै सन्मुख किया है सूक्ष्ममोहबीज ज्यां, ऐसे साधुकै सूक्ष्मसांपरायचारित्र होय है। समस्त उपशांत तथा क्षीणमोहके होनेतैं यथाख्यातचारित्र होय है।

जैसा निर्विकार आत्माको स्वभाव तैसा समस्त मोहनीयके उपशमतैं वा क्षयतैं प्रगट होगयो तातैं यथाख्यातचारित्र है सो उपशांतकषाय क्षीणकषाय वा सयोगी अयोगी जिनकै होय है। सामायिक छेदोपस्थापन संयम है सो प्रमत्त अप्रमत्त अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण इन च्यार गुणस्थाननिमैं होय है। अर परिहारविशुद्धि छठे सातमे दोय ही गुणस्थाननिमैं होय है। सूक्ष्मसांपराय एक सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानहीमैंहोय है। इहां और विशेष जानना—सामायिकछेदोपस्थापनाकी जघन्यविशुद्धताकी लब्धि अल्प है तातैं परिहारविशुद्धिचारित्रकी जघन्यविशुद्धता अनन्तगुणी है। तातैं परिहारविशुद्धताकी उत्कृष्टविशुद्धता अनन्तगुणी है। तातैं सामायिकछेदोपस्थापनाकी उत्कृष्ट विशुद्धता अनन्तगुणी है तातैं यथाख्यातचारित्रकी सम्पूर्णविशुद्धता अनन्तगुणी है सो घाति बाधिरहित है।

अब- निर्जराका कारण तपके भेदनिमैं बाह्यतपके भेद कहै हैं—

अनशनावमोदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ॥ १९ ॥

अर्थ—अनशन, अवमोदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, कायक्लेश ऐसैं छह प्रकार बाह्य तप हैं। तहां लौकिक ख्याति पूजा देवताआराधन मंत्रसाधनादिककी अपेक्षा नहीं करिकै जो संयमकी सिद्धिकेअर्थि, रागका उच्छेदके अर्थि, कर्मका विनाशके अर्थि, ध्यानके स्वाध्यायकी सिद्धिके अर्थि, इंद्रियनिका विजयके अर्थि, कामका नाशके अर्थि निद्राप्रमादका विजयके अर्थि, जो भोजनको त्याग सो अनशनतप है। सो अवधृतकालका अर अनवधृतकालका भेदतैं दोय प्रकार है। तिनमैं एकबार भोजन तथा एक उपवास दोय तीन पांच पक्ष मास छहमास इत्यादिक कालकी मर्यादाकरि जो अनशन त्याग सो अवधृतकाल अनशन है। अर यावज्जीव भोजनका त्याग करि संन्यास करना सो अनवधृत अनशन है।

बहुरि संयमका पालन, निद्राका विजय, त्रिदोषका उपशमन, आलस्यका अभाव, अनशनजनित बाधाका अभाव, कायोत्सर्गकी दृढता, ध्यानकी निश्चलता, सन्तोष, स्वाध्यायकी सुखसिद्धिके अर्थि जो अल्प आहार करना, अर्द्धभोजन चतुर्थांशभोजन एकग्रासपर्यंत लेना सो अवमोदर्यतप है। बहुरि संयमीमुनिका एक गृह पांच गृह सात गृहमैं भोजनके अर्थि नियम करना तथा एक पाड़ामैं (महल्लामैं) वा दोय पाड़ामैं तथा रसता चोहट्टा आदिका नियम तथा दातारका भोजनका नियम तथा पात्रका नियमकरि भोजनके निमित्त नगर ग्रामादिकमैं जावना अर संकल्पमाफिक भोजनका लाभ मिलै तो लेना, नहीं मिलै तो पाछा वनमैं आय उपवास धारण सो वृत्तिपरिसंख्यान है। इस तपतैं आशाका अभाव, अन्तरायकर्मकी निर्जरा अर परमसन्तोष होय है।

बहुरि इंद्रियनिका दमन, तेजकी हानि, संयमका भंगका अभाव, लालसाका नाशके अर्थि, इंद्रियनिका दमनके अर्थि, तेजकी हानिके अर्थि, संयमका घातकूं दूरि करनेके अर्थि, जो घृत दुग्ध दधि तैल गुड लवण छह प्रकार रसनिका त्याग करना सो रसपरित्याग तप है। कोऊ कहै, रसवान् वस्तुका त्याग सो रसपरित्याग नहीं है। जातैं समस्त ही पुद्गल रसवान् हैं रसरहित कोऊ नहीं।

तातैं रसपरित्यागकरि घृत तैल दुग्धादिरस ग्रहणका त्याग जानना। जो रसवान्का त्याग करिए तो रसवान् तो समस्त आहार है तदि समस्त आहार त्यागका प्रसंग आजाय अर आहार विना देह रहै नहीं, देहविना रत्नत्रय कोंनकै आधार होय? रत्नत्रयधर्मविना कर्मका अभाव नहीं तातैं रसशब्दकरि घृतादिरसविशेष ग्रहण करना।

इहां कोऊ कहै—जो साधु आहारके निमित्त मौन धारणकरि जाय हैं अर आपकै निमित्त कीयाहुवा आहार ग्रहण नहीं करै है अर गृहस्थकूं अपना त्यागकूं जणावै नहीं है तदि रसनिका त्याग निर्वाह कैसैं होय? सो ऐसा जानना—जो गृहस्थ पात्रमैंतै भोजन उठाय साधुका अंजूलीरूप पात्रमैं धरै है। तदि साधु नेत्रकरि अपने भोजनकूं अवलोकन करै है—तिसमैं दुग्ध दधि घृत गुडादिककरि संयुक्त होय सो तो

दृष्टितैं ही अवलोकनमैं आवै है अर लवणका अनुमान देशादिककी रीतिसों होजाय है। जो कितनेक देशनिमैं तो रोटी, पुडी, खीचडी, बड़ा, सेव, कचोरी इत्यादिकमैं लवणका संयोग नहीं होय है, कितने ही देशमैं लवणसहित ही होय है अर लाडू मोदक, घेवर, खीर, पूवा इत्यादिकमैं लवणका संयोग नहीं होय है सो देशकालका ज्ञाता समस्तरीति जाणि त्याग ग्रहण करै हैं। कदे ही छह रसका त्याग ग्रहण करै हैं कदे ही एक रसका कदे ही दोय च्यारका ऐसैं अपनी इच्छापूर्वक रसनिका त्याग सो रसपरित्याग तप है।

बहुरि प्राणीनिकी पीडारहित प्राशुक क्षेत्रविषै निवासकूं इच्छा करता साधु है सो एकांतमें ब्रह्मचर्य स्वाध्याय ध्यानादिककी सिद्धिके अर्थि शयन आसन करै हैं। जिस स्थानमें विषयी कषायी रागीनिका संचार नहीं होय, स्त्रीनिका नपुंसकनिका तिर्यंचनिका संचार क्रीड़ादिक नहीं होय, इंद्रियनिका विषयनिकूं पुष्ट करनेवाली सामग्री नहीं होय ऐसा पर्वतनिका दराडा गुफा मठ बनखण्डादिक निर्जन प्रदेशनिमैं शय्या आसन करै तिनकै विविक्तशय्यासननाम तप होय है।

बहुरि शरीरमैं ममत्व त्यागी जिनेन्द्रका मार्गतैं अविरोध ऐसा अनेक प्रकार कायके कष्टरूप तप करै सो कायक्लेशतप है। कठोरभूमिमैं बहुतकाल आसनकी अचलताकरि तिष्ठना, मौन धारना, ग्रीष्म-ऋतुमैं पर्वतकै शिखरपर अचल कायोत्सर्गादिक धारणकरि तीव्र आतापनयोग धारण करना, वर्षाऋतुमें वृक्षके नीचैं वर्षाकृत घोरबाधा सहना, शीतऋतुमैं नदीकी तीर तथा चौहटै दृढ़शय्यासनकरि रात्रि व्यतीत करना, सर्प वीछू कानखिजूरे डांस इत्यादिक जंतूनिकरि करी बाधा तथा दुष्टमनुष्य व्यंतरादिक देव सिंह व्याघ्रादिकनिकरि करी तीव्र बाधाकूं समभावनितैं सहना सो कायक्लेश तप है। सो यह तप देहकै आया दुःख सहनेके अर्थि अर विषयसुखनिमैं अभिलाष मेटनेके अर्थि अर प्रवचनकी प्रभावनाके अर्थि कायक्लेश तप आचरण करिए है।

ऐसे क्लेशका कारण होतैहू ज्ञानाभ्यासमैं आत्मानुभवमैं लीन रहै हैं, चित्तमैं क्षोभ नहीं करै हैं साम्यभावतैं नहीं चिगै हैं ते साधु धन्य हैं। इहां सम्यक्पदकी अनुवृत्ति लेणी तातैं सम्यक्तप है सो

यंत्रमंत्रादिककी सिद्धिके अर्थि नहीं धारै है तथा जगतके जननिकरि पूजाप्रशंसाके अर्थि नहीं करै हैं, केवल आत्माके सहनशीलता अर कर्ममलका क्षेपणके अर्थि करै हैं। कोऊ कहै, परिषहमैं अर कायक्लेशमैं कहा भेद है ताका उत्तर—जो स्वयमेव उदै आवै सो परिषह है अर अपनी बुद्धिपूर्वक अंगीकार करै सो कायक्लेशतप है।

अर इन छह प्रकारके तपकै बाह्यपणा कैसैं सो कहै हैं–अनशनादिक बाह्यतपकी अपेक्षातैं ए तप हैं तथा बाह्य इंद्रियनिकै ग्रहणमैं आवै हैं तथा गृहस्थनकरि भी करिए हैं तथा बाह्यलोकनिकूं प्रत्यक्ष दीखै हैं तातैं याकै बाह्यपणा जानना। कर्मरूप ईंधनके दग्ध करनैतैं तप कहिए हैं तथा देहकै अर इंद्रियनिकै ताप करनैतैं तप कहिए है।

अब–अभ्यंतरतपकूं कहिए हैं—

प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानानुत्तरं ॥ २० ॥

अर्थ—प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्य स्वाध्याय व्युत्सर्ग ध्यान ए छह प्रकार अभ्यंतर तप हैं। ए तप अन्यमतीनिकरि नहीं कीए जांय तथा बाह्य द्रव्यकी अपेक्षा नहीं करै हैं तातैं अभ्यंतरनाम है।

अब–इन अभ्यंतर तपनिके भेद कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

नवचतुर्दशपंचद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥ २१ ॥

अर्थ—नवप्रकार प्रायश्चित्त है, विनय च्यार प्रकार है, वैयावृत्य दश प्रकार है, स्वाध्याय पंचप्रकार है, व्युत्सर्ग दोय प्रकार है। ऐसैं ध्यानतैं पहले पंच प्रकार तपके भेद कहे।

अब–प्रायश्चित्तके नव भेद कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपच्छेदपरिहारोपस्थापनाः ॥ २२ ॥

अर्थ—आलोचना, प्रतिक्रमण, आलोचना अर प्रतिक्रमण दोऊ सो तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप,

छेद, परिहार, उपस्थापना, ये नव भेद प्रायश्चित्तके कहे। जो प्रमादतैं उपज्या दोषका अभाव होनैकूं अर भावनिकी उज्जलता होनैकूं अर परिणामनिकी शल्य दूरि करनेकूं अर अनवस्थाका अभावके निमित्त अर मर्यादाका लोप नहीं होनेके अर्थि अर संयमीकी दृढ़ आराधनादिककी सिद्धिके अर्थि नवप्रकारको प्रायश्चित्त अंगीकार करिए है। प्रायः जो साधु ताको चित्त जाविषै होय सो प्रायश्चित्त है। अथवा प्रायः जो अपराध ताकी चित्त कहिए शुद्धता सो प्रायश्चित्त है।

तहां जो एकांतमैं तिष्ठते अर प्रसन्नमनका धारक अर देशकालके जाननेवाले ऐसे वीतरागी गुरुके आगैं शिष्य है सो विनयकरिकैं दश दोषरहित हुवा आपका प्रमादकू प्रगट करि जनावना सो आलोचना है सो आलोचना गुरुनिकूं दश दोष टालिकरि करै। ते दोष कौन सो कहै हैं—जो आचार्य हमारे ऊपरि प्रीति अनुग्रहरूप होय अल्प प्रायश्चित्त देवैंगे ऐसे अभिप्रायत गुरुनिकी भेट पीछी कमण्डलादिककरि आलोचना करै सो आलोचना आकंपितदोषसहित है। बहुरि गुरुनिकूं ऐसा जणावै जो मैं प्रकृतिकरि बलरहित हूँ, रोगी हूँ, उपवासादि करनेकूं समर्थ नहीं हूँ। जो मोकूं अल्प प्रायश्चित्त दीजिए तो मैं हू दोष आलोचना करूँ। ऐसैं आचार्यनै अपना स्वरूपका अनुमान कराय आलोचना करै सो अनुमापित दोषसहित आलोचना है।

बहुरि अन्यकरि नहीं देख्या दोषकूं तो छिपावै, अर अन्यकै प्रगटहुवा दोषकूं आलोचना करै सो दृष्टदोष है। बहुरि अल्पदोष हुवा होय ताकूं तो नहीं जणावै अर स्थूल दोषकूं आलोचना करै सो बादरनाम दोष है। बहुरि महान् दुस्तर प्रायश्चित्तका भयतैं महान् दोषकूं तो छिपावै, अर याकै अनुकूल अल्प दोष जणावै सो सूक्ष्मदोष है।

बहुरि गुरुनिकूं पूछै—जो हे भगवन्! ऐसा दोष जाकै होय ताका कहा प्रायश्चित्त है। ऐसा उपायकरि गुरुनिकूं पूछै सो प्रछन्नदोष है। बहुरि पाक्षिक चातुर्मासिक सांवत्सरिकादि प्रतिक्रमणका दिवसमैं बहुत यतीनिके समुदायका शब्दमै अपना दोषकूं कहै सो शब्दाकुलित दोष है।

बहुरि जो यो गुरुनिको दीयो प्रायश्चित्त है सो योग्य है कि नहीं तथा आगममैं है कि नहीं ऐसी

आशंकाकरि अन्यसाधुनिकूं पूछना सो बहुजनदोष है। बहुरि कुछ प्रयोजन विचार गुरुनिकूं दोष नहीं जणावै अर आपणैं समान अन्य साधुकूं दोष जणाय महानहू प्रायश्चित्त ग्रहण करै सो सफल नहीं सो यो अव्यक्त दोष है। बहुरि गुरुनिकूं तो आलोचना नहीं करै अर अन्य मुनिकूं आपसमान अपराधी जाणि वाकूं पूछै जो म्हारै याकै अपराध समान है जो याकूं प्रायश्चित्त दीया सो मोकूं करना युक्त है, ऐसैं आपका दोषकूं छिपावै ताकै तत्समदोष है।

ऐसैं दश दोषरहित आलोचना करै। संयमी आलोचना करै सो एकांतमैं एकाकी गुरुकूं आलोचना करै। अर अर्जिकाकी आलोचना एकगणिनी दूजी अर्यिका तीजा गुरु तिनकै आश्रय चोडै प्रकाशमैं होय है। जो साधु लज्जाकरि तिरस्कारके भयकरि अपना दोषकी आलोचनाकरि दोषकूं शोधन नहीं करै तो नहीं जाण्या है लाभ अर खरच जानै ऐसा अधमऋणवानकी ज्यों क्लेशित होय है। अर आलोचना कीए विना महानहू तप वांछितफलकूं नहीं देवै है।

बहुरि आलोचनाहू करिकै गुरुनिका दीया हुवा प्रायश्चित्त ग्रहण नहीं करै सो विनाबीजके संस्कार कीया धान्यकी ज्यों फलकूं नहीं देवै है। अर आलोचना अर पूर्व ग्रहणकीया प्रायश्चित्त मज्जनकीया दर्पणमैं रूपकी ज्यों देदीप्यमान होय है। बहुरि कर्मके वशतैं उपज्या प्रमादके उदयतैं उपज्या जो दोष सो म्हारै मिथ्या होहु ऐसैं परिणामनिमैं पापकूं खोटा जानि विरक्त होय मिथ्यामैं दुःकृत इत्यादिक प्रगट करना सो प्रतिक्रमण है।

बहुरि कोऊ कर्म तो आलोचनामात्रकरि शुद्ध होइ है, कोऊ प्रतिक्रमणतैं शुद्ध होय है, कोऊ आलोचना अर प्रतिक्रमण दोऊनितैं शुद्ध होय है सो तदुभय है। बहुरि दोषसहित आहारपान उपकरणका संसर्ग भया होय तो ताका त्याग करना, आपको दोषनैं न्यारा करना सो विवेक है। बहुरि कालका नियमकरि कायोत्सर्ग करना सो व्युत्सर्ग है। बहुरि अनशनादितप ग्रहण करना तथा उपवास बेला तेला पञ्चोपवास पक्षमासादिकनिका उपवास ग्रहण करना सो तप है।

बहुरि दिवस मास संवत्सरकी मर्यादाकरि दीक्षाका घटावना सो छेदनाम प्रायश्चित्त है। कोऊ साधु बहुतकालका दीक्षित होयकरिकैहू कोऊ दोष ऐसा करै जो ताका छेद नामा प्रायश्चित्त होय जैसैं कोऊ वीस वर्षका दीक्षित था फिर दोषके वशतैं दशवर्षकी दीक्षा छेदी गई तो अब आपको दशवर्षका ही दीक्षित मानै। दश वरसतैं एक दिवस पहलीका भी दीक्षित होय ताकूं आपतैं बड़ा मानैं वंदनादिक पहली करै। बहुरि पक्षमासादिकका नियमकरि संघतैं बाह्य करना सो उपस्थापनाप्रायश्चित्त है। ऐसैं नवप्रकार प्रायश्चित्त कह्या।

इहां ऐसा जानना—जो प्रमादजनित दोषका तो सोधना, शल्यका मेटना, भावनिकी उज्जलता करना, मर्यादमैं रहना इत्यादिककी सिद्धिके अर्थि प्रायश्चित्त है। यद्यपि प्रायश्चित्त अनेक प्रकार है तोहू सामान्य नवभेद कहे। तहां देश काल अवस्था संहनन बुद्धि इत्यादिक देखि यथायोग्य प्रायश्चित्त देहैं—अर शिष्य है सो आचार्यनिकी आज्ञाप्रमाण श्रद्धानकरि प्रायश्चित्त ग्रहण करै ताकै शुद्धता होय है।

अब विनयनाम अभ्यंतरतपकूं कहै हैं—

ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ॥ २३ ॥

अर्थ—ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय, उपचारविनय, ऐसैं विनयतप च्यारप्रकार है। तहां जो आलस्यरहित होय अर देशकालादिककी विशुद्धताका विधानमैं विचक्षण शुद्धमनकरि बहुत सन्मानपूर्वक जिनसिद्धांतनिका ग्रहण अभ्यास स्मरणादिक करै सो ज्ञानविनय है। बहुरि निःशङ्कितादिगुणनिकरि सहित होय शङ्कादिकदोषरहित तत्वार्थनिका श्रद्धान सो दर्शनविनय है।

बहुरि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानके धारकनिका पंचप्रकार चारित्रकै श्रवणमात्रतैं ही रोमांचादिसहित अंतरंगमैं भक्ति उपजना, परमहर्षका होना, मस्तकविषै अंजुलिकरना, भावनिमैं चारित्रके अंगीकार करनेमैं परिणाम राखना सो चारित्रविनय है। बहुरि पूजनेयोग्य जे आचार्यादिक त्यानैं प्रत्यक्ष होतै उठी खड़ा होना, सन्मुख गमन करना, अंजुली करना, वन्दना करना, पश्चाद्गमन करना, सो उपचारविनय है।

बहुरि आचार्यादिक प्रत्यक्ष नहीं होइ परोक्ष होतैहू अंजुली जोड़ना, गुणनिकी महिमा करना, वारंवार स्मरण करना, उनकी आज्ञा प्रमाण प्रवर्त्तन करना सो उपचारविनय है। इस विनय नाम तपतैं ज्ञानका लाभ, आचारकी विशुद्धता, सम्यक् आराधना इत्यादिकनिकी सिद्धि होय है। तातैं विनयभावना-करि निर्वाणकी प्राप्ति निकट है।

अब वैयावृत्य तपकूं कहै हैं-

आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्ष्यग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानां ॥ २४ ॥

अर्थ—आचार्य उपाध्याय तपस्वी शैक्ष्य ग्लान गण कुल संघ साधु मनोज्ञ ये दशप्रकारके साधु इनका वैयावृत्य करना सो वैयावृत्यतप है। कायकी चेष्टाकरि वा अन्यद्रव्यकरि व्यापार करना, आचार्या-दिकनिकी टहल करना सो वैयावृत्त है। तिनमैं जितने व्रताचरण करिए सो आचार्य हैं ऐसैं तो निरुक्ति है। अर याका विशेष-जो सम्यग्ज्ञानादिकगुणनिका आधार ऐसे महत् पुरुषनितैं स्वर्गमोक्षके सुखरूप अमृतके बीज जे अहिंसादिकव्रत तिनकौं अपने हितके अर्थि भव्यजीव आचरण करै ते आचार्य हैं। जो व्रत शील भावनाकै आधार होय अर जिनकी निकटतानै साधुजन विनयपूर्वक प्राप्त होय श्रुतका अध्ययन करिए सो उपाध्याय हैं।

बहुरि जे महान उपवासादिकमैं तिष्ठैं ते तपस्वी हैं। बहुरि श्रुतज्ञानके शीखणेमैं तत्पर अर निरं-तर व्रतभावनामैं निपुण सो शिष्य हैं। बहुरि जिनका शरीर रोगादिककरि क्लेशरूप होय ते ग्लान मुनि हैं। बहुरि वृद्धमुनिनिका समुदाय सो गण है या बड़े मुनिनिकी परिपाटीका होय सो गण है। बहुरि दीक्षा-देनेवाले आचार्यका शिष्य होय सो कुल है। बहुरि च्यारप्रकारके मुनिका समूह सो संघ है। बहुरि बहुत कालका दीक्षित होय सो साधु है।

बहुरि जाका उपदेश लोकमान्य होय वा स्वयं उपदेशविना ही लोकनिमैं पूज्य होय प्रशंसावान होय सो मनोज्ञ है अथवा समस्तलोक जाकूं महाविद्यावान् कहै प्रशस्तवक्ता कहै महाकुलवंत कहै ऐसैं

लोकमान्य होय जिनमार्गका गौरवके उत्पादनका कारण होय सो मनोज्ञ है अथवा असंयतसम्यग्दृष्टीहू मनोज्ञ है।

ऐसैं आचार्यादिक दशप्रकार कह्या तिनके शरीरसम्बन्धी व्याधि अर दुष्टमनुष्य तिर्यंचनिकृत उपसर्ग वा क्षुधादिकपरिषह तथा मिथ्यात्वादिककी उत्पत्ति होजाय तो प्रासुक औषध भोजनपान वस्तिका काष्ठफलक तृणनिका संस्तरण धर्मोपकरणादिककरि इलाज करै। अर सम्यक्त्व छूटिगया होय तो उपदेश देय फेरि सम्यक्त्वग्रहण करावै इत्यादिक वैयावृत्ति है। अर जो भोजनपान औषधादिक बाह्यसामग्री नहीं होय तो अपना देहकरिकै ही टहल करै, कफ नासिका मलमूत्र विष्टादिकनिकूं दूरि क्षेपै जैसैं सुख होय तैसैं शरीरकरि टहल सेवा करै, जैसैं धर्ममैं लीनता होजाय तैसैं उपदेश करि धैर्यधारण करावै, तिनके अनुकूल आचरण करै सो समस्तवैयावृत्य है।

इस वैयावृत्य करनेतैं रत्नत्रयकी विशुद्धता, ग्लानिको अभाव, प्रवंचनमैं वात्सल्य इत्यादिकगुण प्रगट होय है। तातैं वैयावृत्यहीमैं प्रवर्त्तन करना उचित है। इहां विषयके भेदतैं वैयावृत्य दशप्रकार कह्या है। अब—स्वाध्याय तपकूं कहै हैं—

वाचनाप्रच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः ॥ २५ ॥

अर्थ—वाचना, पूछना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय, धर्मोपदेश, ऐसैं पञ्चप्रकार स्वाध्यायतप है। तहां निर्दोष-ग्रन्थका तथा ग्रन्थके अर्थका तथा ग्रन्थ अर्थ दोऊनिका विनयवान् धर्मका इच्छुक भव्यपात्रकूं शिखावना पढ़ावना सो वाचना स्वाध्याय है।

बहुरि जो आपकै शब्दमैं शब्दके अर्थमैं संशय होय तो संशयके दूरि करनेके अर्थि तथा अपने निश्चयरूप दृढ़परिणाम होनेकेअर्थि विनयसहित होय बहुज्ञानीनिसूं प्रश्न करना सो प्रच्छनास्वाध्याय है। आपका ज्ञानकी उन्नति, परका तिरस्कार, परकी हास्य प्रगटकरनेकूं प्रश्न नहीं करै है। अर प्रश्न करै सो उद्धत होय नहीं करै, हँसतो सन्तो नहीं करै, बहुत उत्कट शब्दकरि सभानिवासीनिकै क्षोभ करता हुवा

नहीं करै, बहुतप्रलाप नहीं करै, विनयपूर्वक अल्प अक्षर ने प्रश्न करै सो प्रच्छनानामा स्वाध्याय है।

बहुरि गुरुनिकी परिपाटीतैं जाण्याहुवा अर्थको मनकरि अभ्यास करना, वारम्वार चिंतवन करना सो अनुप्रेक्षास्वाध्याय है।

बहुरि इस लोकसम्बन्धी फलकूं नहीं वांछा करता शीघ्रता अर विलम्बनरूप जे घोषणाके दोष तिनकरि रहित जो पाठ करना सो आम्नायनामा स्वाध्याय है।

बहुरि दुष्टप्रयोजनका परित्यागतैं उन्मार्ग दूरि करनेके अर्थि सन्देहका दूर करनेका अर अपूर्व पदार्थके प्रकाशनके अर्थि धर्मके कथनरूप उपदेशरूप करना सो धर्मोपदेशनामा स्वाध्याय है सो स्वाध्यायतैं बुद्धिका अतिशय प्रगट होय है, प्रशस्तअभिप्राय होय है, प्रवचनकी स्थिति होय है, संशयका उच्छेद होय है, परवादीकी शङ्काका अभाव होय है, परमसंवेग जो धर्मानुराग वा संसारदेहभोगनितैं विरक्तता होय है, तपकी वृद्धि होय है, अतिचारनिकी शुद्धता होय है।

अब–स्वाध्यायके अनन्तर कह्या जो व्युत्सर्ग ताहि कहै हैं—

बाह्याभ्यंतरोपध्योः ॥ २६ ॥

अर्थ—बाह्य अर अभ्यंतर दोय प्रकारकी उपधि जो परिग्रह ताका त्याग सो व्युत्सर्ग है। तहां आत्मातैं बाह्य जे धन शरीरादिकका त्याग सो बाह्य उपधित्याग है। बहुरि क्रोध मान माया लोभ हास्य रति अरति शोक भयादिक दोषनितैं निवृत्ति होना सो अभ्यंतरव्युत्सर्ग है।

यह त्याग करना है सो कालका नियमकरि भी होय है, अर यावज्जीव भी होय है सो यो कायोत्सर्ग निःसंगपणो करै है, निर्भयपणा करै है, जीवितकी आशाका अभावके अर्थि दोषनिका छेदके अर्थि मोक्षमार्गकी प्रवृत्तिके अर्थि कायोत्सर्ग तप अंगीकार करना योग्य है।बाह्य अभ्यंतर परिग्रहत्यागी ज्ञायक शुद्ध आत्मस्वभावमैं निश्चल तिष्ठना सो कायोत्सर्ग है।

अब–ध्याननामा तपकूं कहै हैं—

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानमांतर्मुहूर्त्तात् ॥ २७ ॥

अर्थ—उत्तमसंहननके धारक पुरुषकै एकाग्रचिंताका निरोध सो ध्यान है। सो ध्यान उत्कृष्टपणै अन्तर्मुहूर्त्तपर्यंत है। आदिका तीन संहनन है सो उत्तमसंहनन है तेही ध्यानके कारण हैं। अर ध्यान है सो उत्कृष्टपणै अन्तर्मुहूर्त्तपर्यंत ही रहै हैं तिनमैं मोक्षका कारण वज्रऋषभ नाराच ही हैं। चित्तकी वृत्तिकूं अन्य क्रियातैं रोकि एककै विषै निरोध करै सो एकाग्रचिंतानिरोध है सो ही ध्यान है।

भावार्थ—अर्थकी एकपर्यायकूं अवलम्बनकरि चित्तकी वृत्तिका ठहरना सो ध्यान है। सो उत्तमसंहननका धारककै अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट ठहरै, अन्य संहननवालेकै इतने काल एकाग्र ठहरनेमैं असमर्थपणा है। इहां एकाग्रवचनतैं वैयग्र्यका अभाव जानना। नानापर्यायनिमैं भ्रमण करै सो वैयग्र्य सो तो ज्ञान है, ध्यान नाहीं।

इहां कोऊ पूछै—जो साधुपुरुषकै बहुतकाल ध्यानअवस्था कैसैं कहिए, ताका समाधान—जो ध्येयकूं छांडि दूजे ध्येयविषै उपयोग आवै ऐसैं अन्यअन्य ध्येयमैं ध्यानका सन्तान चल्या आवै जेतै एकाग्र ठहरै। ऐसैं बहुतकाल कहनेमैं विरोध नाहीं। बहुरि इस सूत्रमैं ध्याता, ध्यान, ध्येय, ध्यानका काल ए चार कहे हैं। सामर्थ्यतैं याके प्रवर्त्तनकी सामग्री जानिए है। तहां उत्तमसंहननका धारी पुरुष है सो ध्याता है। एकाग्रचिंताका निरोध होना सो ध्यान है। एककूं प्रधानकरि चित्तकूं रोकै सो ध्येय है। अन्तर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट याका काल है। इस सूत्रमैं समस्त ध्यानको वर्णन नहीं संग्रह कीयो है। जातैं ध्यानके प्राभृतग्रन्थनिमैं सकलध्यानके लक्षण वर्णन हैं। इहां तो प्रसङ्गपाय सामान्यलक्षण कह्या है।

अब ध्यानके भेद जनावनेकूं सूत्र कहै हैं—

आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥ २८ ॥

अर्थ—आर्त्त रौद्र धर्म्म शुक्ल ए च्यार प्रकार ध्यान हैं। तिनमैं आर्त्त रौद्र ए दोय अप्रशस्त हैं अर धर्म्य शुक्ल ए दोय प्रशस्त हैं। तिन प्रशस्तध्याननिकूं कहै हैं—

परे मोक्षहेतू ॥ २९ ॥

अर्थ—परे कहिए अंतके धर्म अर शुक्ल ये दोऊ ध्यान मोक्षके हेतु हैं। इस ही वचनतैं पहिले कहे जे आर्त्त रौद्र ते अप्रशस्त ध्यान हैं, संसारके कारण हैं।

अब आद्यका आर्त्त ध्यानका लक्षण कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

आर्त्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः ॥ ३० ॥

अर्थ—अमनोज्ञका संयोग होतां सन्तां तिसके वियोगके अर्थि जो चिंतवन सो आर्त्तध्यान है। विष कंटक शत्रु शस्त्रादिक जो अमनोज्ञवस्तु ताका वियोग मेरे कैसैं होय ऐसैं वारंवार चिंतवन करना सो अनिष्टसंयोगज आर्त्तध्यान है। तथा और दूसरा भेदकूं कहै हैं—

विपरीतं मनोज्ञस्य ॥ ३१ ॥

अर्थ—मनोज्ञवस्तुका वियोग होतैं तिसके संयोगके अर्थि वारंवार चिंतवन करै सो इष्टवियोगज नाम आर्त्तध्यान है।

अब आर्त्तका तीसरा भेद कहै हैं—

वेदनायाश्च ॥ ३२ ॥

अर्थ—दुःखरूप रोगादिककी वेदनाका चिंतवन करना सो वेदनाजनित आर्त्त है। वेदना होतैं वारंवार रोगका इलाजमैं चिंतवन करना, मनकी स्थिरताका अभाव होना, धैर्य छूटि जाना तथा अंगमैं विक्षेप, शोक, विलाप रुदनादिक होना, सो वेदनाजनित आर्त्तध्यान है। अब रागके विशेषतैं वा काम-करि आतुरतातैं तथा परभवमैं विषयसुखमैं लंपटतातैं चौथा आर्त्तध्यान होय ताका स्वरूप कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

निदानं च ॥ ३३ ॥

अर्थ—आगामी भोगनिकी वांछा सो निदान है। हमारै संपदा होजाय, कुटुंबकी वृद्धि होजाय ऐसैं तथा स्त्रीकी प्राप्तिके निमित्त तथा राज्यकी, ऐश्वर्यकी, महलमकानकी, इंद्रियनिकाभोगांकी, वैरीनिका घातकी वांछा करै सो निदान नामा आर्त्तध्यान है। सो यो च्यार प्रकारको आर्त्तध्यान कृष्ण नील कापोत लेश्यामैं उपजै है अर ज्ञानतैं उत्पन्न होय है अपने पुरुषार्थतैं उपजाया है, पापमैं प्रयोग रखणेका परिणाम याका आधार है, नानासंकल्पका करनेवाला है, धर्मके आश्रयकूं त्यागि कषायनिका आश्रयस्थान है, उपशमभावका अभाव करनेवाला है, प्रमाद इसका मूल है, अशुभकर्मके ग्रहणका कारण है, कटुकविपाकरूप असाताका बन्ध करै है, तिर्यंचगतिमैं परिभ्रमण करावै है।

अब—इस आर्त्तध्यानके स्वामीकूं कहै हैं—

तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानां ॥ ३४ ॥

अर्थ—सो यो आर्त्तध्यान अविरत जे मिथ्यात्व सासादन मिश्र इन चार गुणस्थाननिमैं तथा देशविरतमैं प्रमत्तगुणस्थानिके धारकनिकै भी होय है परन्तु प्रमत्तगुणस्थानके धारकनिकै निदान नहीं होय है। अन्य तीन आर्त्त कदाचित् होय हैं अर मिथ्यात्वकूं आदि लेय छठा गुणस्थानपर्यंत उत्तरोत्तरगुणस्थाननिमैं कषायकी मंदतातैं आर्त्तध्यानहू मन्द होय है।

अब—रौद्रध्यान कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः ॥ ३५ ॥

अर्थ—हिंसा अनृत स्तेय विषयरक्षण इनतैं रौद्रध्यान होय है। सो अव्रती अर देशव्रतीनिकै होय है। हिंसा असत्य चोरी परिग्रह इनके चिंतवनतैं रौद्रध्यान होय है सो मिथ्यात्वादि चार अव्रतरूप अर देशव्रत इन पंचगुणस्थाननिमैं होय है। देशव्रतीकैहू हिंसारूप विवाहादिककै आरंभतैं अर परिग्रहकी रक्षातैं रौद्रध्यान होय है परन्तु नरकादिकको कारण रौद्रपरिणाम नहीं होय है।

जातैं देशव्रतीकै अन्यायप्रवृत्तिका अभाव है। अर सकलसंयमीकै रौद्रध्यान नहीं होय है। जो रौद्र-

ध्यान होजाय तो सकलसंयमका अभाव होजाय, तातैं देशव्रतीपर्यंत ही रौद्र होय है। अर कृष्ण, नील, कापोत लेश्याके आधार ही रौद्रध्यान होय है। अब-धर्मध्यान कहनेकूं सूत्र कहै हैं—

आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यं ॥ ३६ ॥

अर्थ—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय ऐसैं च्यारप्रकार धर्मध्यान है। तहां जो आगमकी प्रमाणतातैं अर्थका निश्चय करना सो आज्ञाविचय है। जो उपदेशदाताका तो अभाव होय अर अपनी बुद्धि मन्द होय अर कर्मका प्रबल उदय होय अर पदार्थनिका स्वरूपकै सूक्ष्मपणा होय तातैं समझनेमैं नहीं आवै तथा हेतु दृष्टांत जाननेमैं नहीं आवै तहां सर्वज्ञका प्ररूप्या आगमकूं प्रमाण करिकै अर गहनपदार्थमैं ऐसा निश्चय करै जो योही तत्व है इस प्रकार ही है अन्य नहीं अन्यप्रकार नहीं ऐसा चिंतवनकूं आज्ञाविचय कहिए है। अथवा सम्यग्दर्शनकरि जाका परिणाम उज्ज्वल होय अर अपने अर परकै मतके सिद्धांतकरि पदार्थनिका निर्णयका ज्ञाता होय। अर सर्वज्ञके कहे सूक्ष्मपदार्थनिकूं निश्चय करिकैं अर ए पदार्थ ऐसैं ही हैं इस प्रकार अन्य जीवनिकूं जनावनेका इच्छक होय सो पुरुष श्रुतज्ञानका सामर्थ्यतैं अपने सिद्धांततैं जैसैं विरोध नहीं आवै तैसैं व्याख्यानके अवसरमैं प्रमांण नय हेतु इत्यादिक करि सभा-निवासी भव्यजननिकूं जिनभाषित सत्यार्थ तत्व जणावै तथा ताकै समर्थनके अर्थि तर्क नय प्रमाणकरि युक्त करनेमैं तत्पर होय चिंतवन करै सो सर्वज्ञकी आज्ञाप्रकाशनपणातैं आज्ञाविचय धर्मध्यान होय है।

बहुरि अपायविचयकूं कहै हैं—जिनका मिथ्यादर्शनकरि ज्ञाननेत्र ढकिगया तिनका आचार विनय उद्यमादिक समस्त संसारका वधावनेके अर्थि होय हैं। अविद्याका आधिक्यतैं संसारपरिभ्रमण बधै ही है। तथा जैसैं जन्मके आंधे बलवान् हैं तोऊ सन्मार्गतैं छूटे हुए कल्याणरूप मार्गका उपदेशदाताविना नीच उच्च पर्वत विषमपाषाण कठोर स्थाणु कंटकसमूहकरि व्याप्त पृथ्वीमैं पडे हुए उद्यम करतेहू सन्मार्गतैं प्राप्तहो-नेकूं समर्थ नहीं होय है तैसैं ही सर्वज्ञप्रणीतमार्गतैं विमुख पुरुष मोक्षकी वांछा करै है, तोहू उपदेशदाता-विना सत्यार्थमार्गकूं नहीं जाननेतैं दूरिहीतैं नष्ट होय है।

ऐसैं सन्मार्गका अभाव चिंतवन सो अपायविचय धर्मध्यान है अथवा-मिथ्यादृष्टीनिकरि कह्या उन्मार्गतैं ए प्राणी कैसैं टलैं तथा अनायतन सेवाका अभाव कैसैं होय तथा पापके कारण वचन अर पापकी भावनाका अभाव प्राणीनिकै कैसैं होय। ऐसैं चितवन करना सो अपायविचयधमध्यान है। बहुरि कर्मके फलका अनुभवनिकूं गुणस्थाननिमैं तथा मार्गणास्थाननिमैं तथा उदीरणाकूं चिंतवन करना सो विपाकविचयधर्मध्यान है। बहुरि जो लोकका, संस्थानका तथा द्रव्यनिका तथा द्वादशभावनाका चिंतवन सो संस्थानविचयधर्मध्यान है सो असंयत देशसंयत प्रमत्त अप्रमत्त संयत इन च्यारगुणस्थाननिमैं होय है।

अब उत्कृष्ट धर्मध्यान अप्रमत्त संयतहीकै है, शुक्लध्यानका स्वामीकूं कहै हैं—

शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥ ३७ ॥

अर्थ—आद्यके दोय शुक्लध्यान हैं ते सकलश्रुतधारक श्रुतकेवलीके होय हैं। च शब्दकरि धर्मध्यानहू होय है परंतु श्रेणी नहीं चढै तेतैं धर्मध्यान है। अर दोऊ श्रेणीनिमैं शुक्लध्यान नहीं है, ऐसैं मोहके उपशमावनेवालेकै तो पहला शुक्लध्यान अर मोहके क्षपावनेवालेकै आदिके दोय शुक्लध्यान हैं।

अब अन्य दोय कौनकै होय यातैं सूत्र कहै हैं—

परे केवलिनः ॥ ३८ ॥

अर्थ—अन्तके दोय शुक्लध्यान सयोगकेवली अयोगकेवली जिनकै होय है। छद्मस्थकै नहीं होय है। इहां आचार्यनिने ऐसैं कह्या है-जैसैं अंधकारमैं मुष्टिकरि अभिघात करना तिसके सदृश शुक्लध्यानका कहना है। जातैं मोहनीयका उपशम तथा क्षयविना इस ध्यानका अनुभव नहीं होय है, तातैं शुक्लध्यानके ध्याताकी विशेषताप्रति हमने व्याख्यान नहीं कीया है क्योंकि इस ध्यानका लक्षणविशेषका उपदेश नहीं प्राप्त भया है।

अब शुक्लध्यानके नामविशेष कहै हैं—

पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्त्तीनि ॥ ३९ ॥

अर्थ—पृथक्त्ववितर्कवीचार, एकत्ववितर्कवीचार, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति, व्युपरतक्रियानिवर्त्ति ऐसैं चार प्रकार शुक्लध्यान हैं। इनिका लक्षण आगैं कहैंगे तिनतैं सार्थकपणा जानना।

अब शुक्लध्यानका अवलम्बन कहै हैं—

त्र्येकयोगकाययोगायोगानां ॥ ४० ॥

अर्थ—प्रथमशुक्लध्यान तो तीन योगनिविषै होय है अर दूजा शुक्लध्यान तीन योगनिमैंतैं एकयोगमैं होय है अर तीजा शुक्लध्यान काययोगकै विषै ही होय है अर चौथा शुक्लध्यान अयोगीकै ही होय है।

अब–प्रथमध्यानका विशेष जाननेकूं सूत्र कहै हैं—

एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ॥ ४१ ॥

अर्थ—पूर्वे कहिए आदिके दोऊ ध्याननिका आधार परिपूर्णश्रुतज्ञान है। जिनके पूर्वनिका ज्ञान प्रगट भया होय तिनके ही आदिके दोऊ ध्यान होय हैं। बहुरि वितर्क जो श्रुत अर वीचार जो अर्थ योगशब्दनिका पलटना ताकरि सहित है।

अब–इनमैं विशेष कहै हैं—

अवीचारं द्वितीयं ॥ ४२ ॥

अर्थ—दूजा शुक्लध्यान वीचाररहित है। जातैं प्रथम शुक्लध्यान तो वितर्कवीचार दोऊनिकरि सहित है। अर दूजा शुक्लध्यान वितर्ककरि सहित है। अर वीचारसहित नहीं है।

अब–वितर्कका लक्षण कहै हैं—

वितर्कः श्रुतं ॥ ४३ ॥

अर्थ—विशेषताकरि तर्क कहिए विचारिए सो वितर्क है। वितर्क नाम श्रुतज्ञानका है।

अथ-विचारका लक्षण कहै हैं—

वीचारोऽर्थव्यंजनयोगसंक्रांतिः ॥ ४४ ॥

अर्थ—व्यंजनयोगका पलटना सो वीचार है। इहां ऐसा विशेष है जो अर्थनामकरि तो ध्यान करने योग्य द्रव्य वा पर्याय है, अर व्यंजननाम शब्दका है। अर मन वचन कायकी क्रियाकूं योग कहिए है। संक्रांतिनाम पलटनेका परिभ्रमणका है। तिस ध्यानमैं द्रव्यकूं ध्यावता द्रव्यकूं छांडि पर्यायकूं ध्यावै है, पर्यायकूं छांडि द्रव्यकूं ध्यावै या तो अर्थसंक्रांति है, अर श्रुतका एक वचनकूं अवलम्बन करै बाहूकूं छांडि अन्य अवलम्बन करै सो व्यंजनसंक्रांति है। अर काय योगकूं त्यागि अन्य योगकूं ग्रहण करै अर बाहूकूं त्यागि अन्ययोगकूं ग्रहण करै सो काययोगसंक्रांति है। ऐसैं परिवर्त्तनकूं विचार कहिए है।

ऐसैं कह्या जो च्यार प्रकार शुक्लध्यान तथा धर्मध्यान अर गुप्त्यादिक बहुप्रकारके उपाय तिनकूं संसारका अभावके अर्थि मुनीश्वर ध्यावनैकूं योग्य है। अब इस ध्यानका आरंभविषै ऐसा परिकर होय है-जदि उत्तमशरीरका संहननकरिकैं परिषहनिकी बाधाके सहनेकी शक्तिरूप अपना आत्मकूं जानै तदि ध्यानका परिचयके अर्थि आरम्भ करै।

कैसैं करै सो कहै हैं-पर्वतकी गुफा कंदरा दरी द्रुमनिके कोटर नदीनिके तट श्मशान जीर्णबगीचा शून्यगृहादिकनिमैं कोऊ एक स्थान ध्यानके योग्य होय तथा सर्प मृग पशु पक्षी मनुष्यादिकनिके रहने बसनेका स्थान नहीं होय, अर उस स्थानकमैं उत्पन्नभए तथा अन्यस्थानकनितैं आए ऐसैं द्वींद्रियादिक जीवनिकरि रहित होय अर जहां अति गरमीकी उष्मा नहीं होय, अति शीतकी बाधा नहीं होय अर जामैं अतिपवन नहीं होय, अतिवर्षाकी बाधा नहीं होय, अति बड़ा नहीं होय, बाह्य आभ्यंतर विक्षेपका करनेवाला नहीं होय, ऐसा अनुकूलस्पर्शसहित पवित्र पृथ्वीतलके विषै सुखरूप तिष्ठता अर बांध्यो है पल्यंकासन जानै ऐसो शरीरकूं सरल करिकैं कठोरता वक्रता रहितहुवा अपना अङ्क जो गोदि ताकैविषै वामहस्तका तलउपरि दक्षिणहस्तकी हथेलीकरि तिष्ठै।

अर नेत्रनिकूं अति ऊघाडै नहीं अर अति मीचैं नहीं अर दंतनिका अग्रभाग मिल्याहुवा रहै। अर किंचित्मात्र उन्नत मुख होय, मध्यका अंग उदर सरल होय, कठोरतारहित होय, परिणामकरि मस्तक ओष्ठ गम्भीर होय, मुखका वर्ण प्रसन्न होय, टिमकारणेरहित स्थिर अर सौम्यदृष्टि होय, अर निद्रा आलस्य काम राग रति अरति शोक हास्य भय द्वेष विचिकित्सा इनकरि रहित होय, अर मन्दमन्द श्वासोश्वासका प्रचार होय, इत्यादिक परिकरसहित साधु है सो मनकी वृत्तिकूं नाभिऊपरि बाह्य हृदयविषै तथा मस्तकविषै तथा अन्यस्थानमैं जहां परिचयकरि राख्या होय, तहां निरोधकरि निश्चल मोक्षाभिलाषी हुवो प्रशस्तध्यानकूं ध्यावै।

तिस ध्यानविषै एकाग्रमन हुवा उपशम कीया है राग द्वेष मोह जानै, अर निपुणपणातैं निग्रहकरी है शरीरकी हलन चलन क्रिया जानै, अर मन्द कीया है उच्छ्वासनिश्वास जानै, अर भलेप्रकार निश्चल कीया है अभिप्राय जानै ऐसा क्षमावान् हुवा बाह्य अभ्यंतर द्रव्यपर्यायनिमैं ध्यावता ग्रहणकीया है श्रुतज्ञानका सामर्थ्य जानै ऐसा अर्थ अर अक्षर जे हैं तिनमैं, अर काय अर वचन जे हैं तिनमैं भिन्न-भिन्नताकरि परिभ्रमण करता ऐसा ध्यावनेवाला ध्याता बलका उत्साहपरिपूर्ण नहीं ताकीज्यों अनिश्चलज्यों मन ताकरिकै जैसैं अतीक्ष्ण कहिए भोंटा शस्त्रकरिकै बहुतकालमैं वृक्ष छेद्या जाय तैसैं मोहनीयका प्रकृतिनिकूं उपशम करता वा क्षपावता साधु पृथक्त्ववितर्कवीचारध्यानकूं भजनेवाला होय है। ऐसैं पृथक्त्ववितर्कवीचारध्यान कह्या।

अब इस ही विधिकरि मूलसहित समस्त मोहनीयकूं दग्ध करनेतैं अनंतगुणा विशुद्धयोगविशेषकूं आश्रयकरिकै ज्ञानावरणकी सहायभूत बहुतप्रकृतिनका बंधकूं निरोध करता अर स्थितिकूं घटावता वा क्षय करता, श्रुतज्ञानका उपयोगसहित हुवा, अर्थव्यंजनयोगनिके पलटनेका अभावकरि अचल हुवा है मन जाका ऐसा क्षीणकषायगुणकूं प्राप्त हुवा, वैडूर्यमणिकी ज्यों कर्ममलका लेपरहित हुवा ध्यानकरिकैं फिर पाछा नहीं बाहुडै है यातैं याकूं एकत्ववितर्कशुक्लध्यान कह्या।

ऐसैं एकत्ववितर्कशुक्लध्यानरूप अग्निकरि दग्ध कीया है घातिकर्मरूप ईंधन जानै अर देदीप्यमान प्रगट हुवा है केवलज्ञानरूप सूर्य जाकै ऐसा, जैसैं मेघपटलमैं छिप्या हुवा सूर्य मेघपटलकूं दूरि होतैं ही प्रगट होय अपनी प्रभाकरि प्रकाशमान होय है, तैसैं आवरणकर्मकूं दूरि होते ही अपनी प्रभाकरि प्रकाशमान भगवान् तीर्थंकर तथा अन्यकेवली लोकेश्वर जे इंद्रादिक तिनकरि वन्दनीय पूजनीय होय है। अर उत्कृष्टताकरि किंचित् ऊन कोटीपूर्वकी आयुप्रमाण आर्य देशनिमैं विहार करै है।

अर जदि आयुका अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहिजाय अर जो वेदनीय नाम गोत्रकर्मकी स्थिति भी जो अन्तर्मुहूर्तकी ही होय तदि सर्व वचनमनका योग, अर बादरकाययोगका अवलम्बनरूप होय सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यानकूं प्राप्त होनेकूं योग्य है। अर जो आयुकर्मकी स्थिति तो अंतर्मुहूर्तकी होय, अर वेदनी नाम गोत्र इन तीन कर्मनिकी स्थिति अधिक होय तो योगी अपने आत्मप्रदेशनिके चार समयकरि दण्ड कपाट प्रतर लोकपूरणरूप विस्तारणतैं अर चार समयकरि ही प्रदेशनिके संकोचतैं चार कर्मनिकी स्थितिकूं अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयुकी स्थितिके समानकरिकैं अर पूर्वशरीरप्रमाण होय सूक्ष्म क्रियातैं प्रतिपातिध्यानकूं प्राप्त होय पाछैं समुच्छिन्नक्रियानिवर्तिध्यानकूं आरंभै है।

इस अवसरमैं सासोच्छवासका प्रचार, समस्त मनवचनकायके योग, समस्तप्रदेशनिका चलनहलन रूप क्रियाका निषेध भया तामैं समुच्छिन्नक्रियानिवर्तिध्यान कहिए हैं। तिस समुच्छिन्नक्रियानिवर्तिध्यानके होतै समस्त बन्ध अर आस्रवका निरोध अर अवशेष समस्त कर्मनिका नाशका सामर्थ्य उत्पन्न होनेतैं अयोगकेवलीकै संपूर्ण संसारका दुःखका नाश करनेवाला साक्षात् मोक्षका कारण संपूर्ण यथाख्यात चारित्र रूप ज्ञानदर्शनकी परिपूर्णताकूं प्राप्त होय है सो भगवान् अयोगकेवली तिस अवसरमैं ध्यानरूप अग्निकरि दग्धकीया है समस्तमलकलंकका बन्ध ज्यां जैसैं किट्टपाषाणरहित जातिवान् सुवर्णकी ज्यों अपने शुद्ध रूपकूं पाय निर्वाणकूं प्राप्त होय है।

इहां ऐसा जानना–जो यथाख्यातचारित्र तो पूर्वैं बारमैं गुणस्थानहीमैं होगया परन्तु चारित्रकी

परिपूर्णता जो चोरासी लाख उत्तरगुण अर अठारहहजार शील इनकी परिपूर्णता चौदमा गुणस्थानके ही अन्तमैं होय है तातैं यथाख्यातचारित्रकी परिपूर्णता इहां लिखी है। अर यथाख्यातचारित्ररूप ज्ञान-दर्शनहीका परिणमन हुवा है, अर जो पहली ही रत्नत्रयपरिपूर्ण होगया होय तो मोक्ष उस ही कालमैं भया चाहिए तातैं जहां रत्नत्रयकी पूर्णता भई तिस ही समयमैं मोक्ष होय ऐसैं जानना।

यद्यपि भगवान् केवलीकै एकाग्रचितानिरोधध्यान ही है, एकएकपदार्थका चिंतवन तो क्षयोपशम-ज्ञानीकै होय है, भगवान् केवलीकै युगपत् सकलपदार्थ प्रत्यक्ष होगया। अब ऐसा पदार्थ कोऊ बाकी रह्या नाहीं जाका ध्यान करै कृतकृत्य है, कुछ करना जानना बाकी नहीं रह्या तथापि आयुकूं पूर्ण होने अर तीन कर्मकी स्थिति पूर्ण होतै योगनिका निरोध अर कर्मनिकी निर्जरा स्वयमेव होय है। अर ध्यानतैं ही योगनिका निरोध अर कर्मकी निर्जरा होय है।

यातैं ध्यानकासा कार्य देखि उपचारतैं ध्यान कह्या है सत्यार्थ ध्यान नहीं है। केवलीभगवानकै अनंतानंतपरिणतिसहित त्रिकालवर्ती समस्तपदार्थ हस्तरेखावत् प्रगट भया, अब ध्यावनकूं कोऊ बाकी रह्या नाहीं जाका ध्यान करैं। ऐसैं दोय प्रकार तप है सो नवीन कर्मका निरोधका हेतुपणातैं संवरका कारण है अर पूर्वके बांधे कर्मनिके नाश करनेके निमित्तपणातैं निर्जराका हेतुहू है। ऐठैं कही जो परीषहके जयतैं अर तपश्चरणतैं कर्मनिकी निर्जरा होय है तहां ऐसैं नहीं जाण्यागया जो समस्तसम्यग्दृष्टीनिकै समान ही निर्जरा है कि भिन्न भिन्न है।

अब—समस्तके निर्जरा समान नाहीं है यातैं सूत्र कहै हैं—

सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानंतवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशांत-
मोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ॥४५॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टि, श्रावक पंचमगुणस्थानी, विरत कहिए महाव्रती मुनि, अनंतानुबंधीका विसंयोजन

करनेवाला, दर्शनमोहकूं क्षपावनेवाला, चारित्रमोहका उपशम करनेवाला, उपशांतमोह, क्षपकश्रेणी चढ़ता, क्षीणमोहजिन, इनकै आदिके अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत अनुक्रमतैं असंख्यातगुणी निर्जरा होइ है। प्रथम सम्यक्त्वकूं आदिकरि दशस्थाननिके धारकनिके परिणामनिकी विशुद्धताकी अधिकतातैं अंतर्मुहूर्त्तपर्यंत समय समय असंख्यातगुणी निर्जरा होय है।

इहां ऐसा जानना–जैसैं कोऊ मद्यपानीके मद्यका एकदेशका अभावतैं अप्रगट कुछ ज्ञानशक्ति प्रगट होय है तथा जैसैं प्रचुर निद्रामैं शयन करता पुरुषके एकदेशनिद्राका अभाव होतै ही कुछ थोरा स्मरण उत्पन्न होय है तथा जैसैं विषकरि अचेत पुरुषकै किंचित् विषके दूरि होनेतैं चेतनाका अवलम्बन होय है तथा जैसैं पित्तादिविकारकरि मूर्छित पुरुषकै विकारका अंश किंचित् दूरि होतै अप्रगट चेतना प्रगट होय है तैसैं निगोदादि एकेंद्रियपर्यायमें अनंतानंतकाल परिभ्रमण करतैं कोऊ विशेषलब्धितैं द्वींद्रियादिक त्रसनिमैं जन्म पावै हैं फिर वारंवार निगोदादिमैं जाय हैं फिर अनंतानंतकालमैं अतिकठिन त्रसपर्याय पाय फिर निगोदादिमैं पृथ्वीकायादि एकेंद्रियनिमैं जाय है। पंचेंद्रियपणा पावना अतिदुर्लभ है।

अर पंचेंद्रिय भी होय तो क्रूर तिर्यंच होय दीर्घकाल नरकमैं व्यतीत करै हैं। केचित् नरक तिर्यंचसूं निकसि मनुष्यपणामैं घुणाक्षरन्यायकरि उपजै हैं। जैसैं कोऊ घुणनामा जीव धान्य तथा काष्ठादिकमैं उत्पन्न होय उसकूं भक्षण करतैं स्वयमेव अक्षर उकीरि आवै तैसैं मनुष्यजन्मकूं प्राप्त होय है। तिसमैंहू उत्तम देश कुल इंद्रियपरिपूर्णता पाय अर संक्लेशका अभावतैं विशुद्ध अभिप्राययुक्त होय, बुद्धिकी शक्तियुक्त होय भव्य होय अर जाका आत्मा कषायमलरहित होय तोहू सम्यक् उपदेशका अभावतैं सत्यार्थमार्गकूं नहीं प्राप्तहुवा, कुगुरुनके उपदेशतैं मिथ्यादृष्टि होय फेर संसारमैं अनन्तानन्तकालमैं ज्ञानावरणकर्मका एकदेशका उपशमतैं परिणामनिकी विशुद्धितायुक्त हुवा उपदेश लब्धिसंयुक्त होय सत्यार्थउपदेशकूं प्राप्त होनेतैं अथवा मुनींद्रनिके सम्बन्धतैं श्रद्धान ज्ञान पाय कर्मका अभावतैं सत्यार्थश्रद्धानकूं प्राप्त होता मिथ्यात्वके उपशम करनेकूं कारण तीन करणपरिणामनिकूं प्राप्त होय उपशमसम्यग्दृष्टि होय है।

तिस प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्तिके पहली तीन करण होय हैं तिनमैं अनिवृत्तिकरणका अन्तसमयमैं वर्त्तती विशुद्धताकरि विशुद्ध जो सातिशय मिथ्यादृष्टी ताकै जो आयुकर्मविना सप्तकर्मनिकी निर्जराका जो गुणश्रेणीनिर्जरा द्रव्य असंख्यातगुणा है तातैं असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानकूं प्राप्त होतै ही अन्तर्मुहूर्त्तपर्यंत समयसमय असंख्यातका गुणकारकूं लिए गुणश्रेणीनिर्जराद्रव्य असंख्यातगुणा है।

तातैं देशसंयतगुणस्थानीकै अन्तर्मुहूर्त्तपर्यंत निर्जरा होनेयोग्य कर्मपुद्गलरूप गुणश्रेणीनिर्जराद्रव्य असंख्यातगुणा है। तातैं सकलसंयम ग्रहण करनेका आदिका अन्तर्मुहूर्त्तपर्यंत समयसमय असंख्यातका गुणकाररूप कर्मकी निर्जरा होनेयोग्य द्रव्य असंख्यातगुणा है। सो सकलसंयम प्रथम ही अप्रमत्तसंयतनाम सप्तमगुणस्थानहीमैं होय है।

छठा प्रमत्तगुणस्थान तो सप्तमतैं पछ्याहुवाकै होय है। तातैं अनन्तानुबन्धी च्यार कषायकूं द्वादशकषायमैं नवनोकषायरूप परिणमन कराय दे, तीन करणके प्रभावतैं ताकै असंख्यातगुणा गुणश्रेणीनिर्जरा द्रव्य है सो अनन्तानुबन्धीको विसंयोजन अविरत, देशविरत, प्रमत्तसंयम, अप्रमतसंयत इन चार गुणस्थाननिहीमैं होय है। जिस गुणस्थानमैं विसंयोजन करै ताहि अन्तर्मुहूर्त्तपर्यंत समयसमय असंख्यातगुणी निर्जरा होय है।

अर अनन्तानुबन्धीका विसंयोजनतैं दर्शनमोहकूं क्षपावनेवालाकै गुणश्रेणीनिर्जराद्रव्य असंख्यातगुणा है सो दर्शनमोहकी क्षपणाकूं करणत्रयका सामर्थ्यतैं केवली श्रुतकेवलीकै निकट मनुष्यहीकै अविरतादि च्यार गुणस्थाननिमैं होय है। तहां ही अन्तर्मुहूर्त्तपर्यंत गुणश्रेणीनिर्जरा होय है तातैं अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानी कषायकै उपशम करनेवालेकै गुणश्रेणीनिर्जराद्रव्य असंख्यातगुणा है।

तातैं उपशांतकषाय गुणस्थानी सकलमोहनीयकूं उपशम कीया ताकै गुणश्रेणीनिर्जराद्रव्य असंख्यातगुणा है। तातैं क्षपकश्रेणीवाला अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानवालेकै गुणश्रेणीनिर्जराद्रव्य असंख्यातगुणा है। तातैं क्षीण कषायीकै गुणश्रेणीनिर्जराद्रव्य असंख्यातगुणा है तातैं स्वस्थानगत केवली जिनकै

गुणश्रेणीनिर्जराद्रव्य असंख्यात गुणा है। तातैं समुद्घात केवली जिनकै गुणश्रेणी निर्जराद्रव्य असंख्यातगुणा है।

भावार्थ—इन ग्यारह स्थाननिकूं प्राप्त होय तिनकै आदिके अन्तर्मुहूर्त्तपर्यंत परिणामनिका विशुद्धताकी अधिकताकरि समग्रसमयप्रति असंख्यातगुणी आयुविना सप्तकर्मके परमाणुद्रव्यनिकी निर्जरा होय है। इहां निर्जरा तो स्थानस्थानप्रति असंख्यातगुणी है अर निर्जरा होनेका काल असंख्यातवैं भाग घटता घटता है। इहां समुद्घात जिनकै गुणश्रेणीनिर्जरा काल अन्तर्मुहूर्त्त है सो समस्ततैं अल्प है यातैं संख्यातगुणा काल स्वस्थानजिनकै है।

यातैं क्षीणकषायीकै संख्यातगुणा है ऐसैं सातिशयमिथ्यादृष्टीपर्यंत बधताबधता है तोहू सातिशयमिथ्यादृष्टिकहू गुणश्रेणीनिर्जराका काल अन्तर्मुहूर्त्त ही है। जातैं अन्तर्मुहूर्त्तके भेद बहुत हैं। ऐसैं गुणश्रेणीनिर्जराके स्थान कहे।

अब—साधुपणामैंहू केतेक भेद हैं तिन भेदनिकूं कहै हैं—

पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रंथस्नातका निर्ग्रंथाः ॥ ४६ ॥

अर्थ—पुलाक बकुश कुशील निर्ग्रंथ स्नातक ए पंचप्रकारके निर्ग्रंथ हैं। तहां जो उत्तरगुणनिकी भावनाकरिकै तो रहित होय अर व्रतनिविषैहू कोऊ काल क्षेत्र विषे कदाचित् परिपूर्णकूं नहीं प्राप्त होतै साधु पुलाक ऐसा नाम पावै है जातैं पुलाक ऐसा नाम परालसहित शालिका है, सो अशुद्धपरालसहित ध्यानकी उपमा देव साधूकूं पुलाक कह्या है। जातैं याकै कोऊ क्षेत्र कालके योगतैं मूलगुणनिमैं विराधना होय है तातैं अशुद्धताका मिलापतैं याकूं पुलाक कह्या है।

बहुरि जाकै बाह्य अभ्यंतर परिग्रहका अभावके अर्थि तो निरन्तर उद्यम है। अर व्रत जाकै अखण्डित हैं, मूलगुणनिमैं बाधा नहीं है अर शरीर पीछी कमण्डलु पुस्तकादिकनिका संवारनेमैं शोभित करनेमैं जाका परिणाम हैं, अर धर्मका यश प्रभाव अपना प्रभाव यशकूं चाहै है तथा जाकै संघकी

धर्मकी प्रभावनाके अर्थि शुद्धिकी वांछाहू है, संसारीके प्रयोजनके अर्थि नहीं है वा अपने साता रहनेकूंहू भला जानै है जातैं परमार्थतैं एहू परिग्रह ही हैं जो संघ तथा उपकरणका हर्ष सो ही भया छेद यातैं कर्बुरित आचरणकरि युक्त है तातैं बकुश कह्या।

इहां बकुश नाम कर्बुरितका है उज्जलमैं किंचित् मलिनतातैं कर्बुरित कह्या है। बहुरि कुशील साधु दोय प्रकार है-एक प्रतिसेवनाकुशील, एक कषायकुशील। तहां जाकै उपकरण शरीरादिकतैं भिन्नपणा नहीं भया अर मूलगुण उत्तरगुणनिकी परिपूर्णता है। कथंचित कोऊ प्रकार उत्तरगुणनिमैं विराधनाहू होजाय है ते प्रतिसेवनाकुशील है।

बहुरि ग्रीष्मऋतुमैं कदाचित् गोड़े नीचै जंघा कहावै ताका प्रक्षालनहू है। अन्य कषायनिका उदयकूं तो वशि कीया अर संज्वलनमात्रका उदयके आधीनपणातैं कषाय कुशील कहावै है। बहुरि जाकै मोहकर्मका उदयका तो अभाव भया अर अन्य कर्मका उदय ऐसा है जैसैं जलमैं दण्डतैं लहरि पडैं ते शीघ्र ही विलयमान होजाय हैं तैसैं प्रदेशनिका तथा उपयोगका मन्दमन्द चलना है सो प्रगट अनुभवमैं नहीं आवै है तिनकी निर्ग्रंथसंज्ञा है।

तिसमैं ग्यारमा बारमा दोय गुणस्थान हैं तिनमैं ग्यारमा गुणस्थानमैं तो मोहका उपशम ही है सो ऊपरि चढै नहीं पडै ही, सौ दशमैं गुणस्थान आवै अर मरण करै तो अहमिंद्रनिमैं जाय उपजै, अर बारमैं गुणस्थान क्षपकश्रेणीवालो जाय सो अन्तमुहूर्त गए केवलज्ञान केवलदर्शन उपजावै ते निर्ग्रंथ हैं। यद्यपि पांचप्रकारका मुनि वस्त्र आवरण आयुध गृह कुटुम्ब धन धान्यादिक रहितपणातैं समस्तनिर्ग्रंथ ही हैं तथापि मोहनीयकर्मका सद्भावतैं निर्ग्रंथ नहीं कह्या। व्यवहारकरि निर्ग्रंथ है। परमार्थतैं तो समस्त मोहनीयका अभाव भया निर्ग्रंथपणा प्रगट क्षीणकषायी बारमा गुणस्थानका धारककै ही होय है।

बहुरि समस्तघातिकर्मनिका नाशकरि केवली जिन भए तिनकै स्नातक ऐसी संज्ञा प्रगट होय है। 'स्नात' वेदसमाप्तौ इस धातुका स्नातक शब्द बणै है सो वेद जो ज्ञान ताकी पूर्णता जहां होय तहां

स्नातकसंज्ञा प्रगट होय है। इहां कोऊ कहै, जैसैं चारित्रका भेदतैं गृहस्थ है सो निर्ग्रंथनाम नहीं पावै है। तैसैं ही पुलाकादिमुनिनकै हू उत्कृष्ट मध्य चारित्रका भेदतैं निर्ग्रंथपणा नहीं बणै है, ताकूं कहिए है जो ऐसैं नाही है—जैसैं ब्राह्मण जातिका आचार अध्ययनादिक भेदकरि भिन्न २ है तोहू ब्राह्मणपणाकरि सर्व ही ब्राह्मण हैं तैसैं इहांहू जानना।

बहुरि सम्यग्दर्शन अर निर्ग्रंथरूपकरि समस्तपुलाकादिक समान हैं अर भूषण वस्त्र आयुधकरि समस्त ही पुलाकादिक रहित हैं। तातैं समस्त पुलाकादिकनिमैं निर्ग्रंथशब्द वर्त्तै है अर जो या कहो पुलाकमुनिकै कोई अवसरमैं व्रतका भंग भी क्षेत्रकालके वशतैं होय है ताकूं भी निर्ग्रंथ कहो हो तो श्रावककै भी निर्ग्रंथपणा कहनेका प्रसंग आया। ताकूं उत्तर कहै हैं—श्रावकके नग्नरूप नहीं, कैसैं निर्ग्रंथपणा आवै कदापि नहीं आवै। अर जो कहो अन्यमिथ्यादृष्टी नग्न भी रहै हैं तिनकै निर्ग्रंथ कहनेका प्रसंग आया सो नहीं है।

जातैं अन्य भेषीनिकै सम्यग्दर्शन नहीं है। नग्नपणामात्र तो बावलाकै तथा बालककै है तिर्यंचकैहू है सो निर्ग्रंथ कहावै नहीं, जो सम्यग्दर्शनसहित सम्यग्ज्ञानपूर्वक संसारदेहभोगनतैं विरक्त होय नग्नपणा धारैं हैं तिनमैं निर्ग्रंथशब्द प्रवर्त्तै है अन्यमैं नहीं प्रवर्त्तै।

अब पुलाकादिकनिर्ग्रंथनिकै अन्य विशेष जणावनेकूं सूत्र कहै हैं—

संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिंगलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः ॥ ४७ ॥

अर्थ—संयम श्रुत प्रतिसेवना तीर्थ लिंग लेश्या उपपाद स्थान ए अष्टभेदरूप अनुयोगनिकरिहू पुलकादिक मुनिनिके भेद साधणे। व्याख्यानकरणे तहां पुलाकादिक कोन संयममैं है सो कहै हैं—तहां पुलाक बकुस प्रतिसेवनाकुशील हैं ते सामायिक छेदोपस्थापन परिहारविशुद्धि सूक्ष्मसांपराय इन चार संयमनिमैं वर्त्तैं हैं अर निर्ग्रंथ स्नातक ए दोय एक यथाख्यातसंयमविषै प्रवर्त्तैं हैं।

अब श्रुतकूं कहै हैं-पुलाक बकुश प्रतिसेवना कुशील ए तीन उत्कृष्टताकरि अभिन्नाक्षर दशपूर्वधारी

होय है। अर कषायकुशील अर निर्ग्रंथ ए दोय चौदहपूर्वधर होय हैं। अर जघन्यकरि पुलाकके आचारांगमैं आचारवस्तु होय है। अर बकुश कुशील निर्ग्रंथनिकै अष्ट प्रवचनमात्रका ज्ञान होय है। अर स्नातक हैं ते केवली है इनके श्रुत नहीं होय है।

बहुरि प्रतिसेवना जो विराधना ताहि कहै हैं। पुलाकमुनिकै तो पंचमहाव्रत एक रात्रिभोजनत्याग इन छह व्रतनिमैं परके बसतैं जबरीतैं एक कोऊ व्रतकी विराधना होजाय है जातैं महाव्रतनिमैं मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनातैं पंच पापनिका त्याग है तिनमैं अपनी सामर्थ्यकी हीनतातैं कोऊ भंगमैं दूषण लागै है।

बहुरि बकुश दोय प्रकार हैं—एक उपकरणबकुश, एक शरीरबकुश। तिनमैं उपकरणनिमैं आसक्त कमण्डलु पींछी पुस्तकादिकनिकी भूषा कहिए शोभायमान ताका अभिलाषकरि संस्कारका सेवनतैं उपकरणबकुशकै विराधना जाननी। बहुरि शरीरका संस्कारकरनेरूप शरीरबकुशकै विराधना है। बहुरि प्रतिसेवनाकुशील निर्ग्रंथ अर स्नातक इनके प्रतिसेवना जो विराधना सो नाहीं है। जाका त्याग होइ ताकूं कोइ कारणकरि सेवनकरि फिर सावधान होय फेरि नहीं सेवन करै है यातैं प्रतिसेवना नाहीं है। इहां प्रतिसेवनाकूं विराधना हू कहिए है। अब तीर्थ कहै हैं—समस्त तीर्थंकरनिके तीर्थमैं पंचप्रकारके मुनि होय हैं।

अब लिंग कहै हैं—लिंग दोय प्रकार हैं—एक द्रव्यलिंग, एक भावलिंग। तहां भावलिंगकरि तो पांचूं ही भावलिंगी हैं। सम्यग्दर्शनसहित संयमपालनेमैं सावधान हैं। अर द्रव्यलिंगकरि भेद है। कोऊ आहार करै हैं, कोऊ अनशनादि तप करै हैं, कोऊ उपदेश करै हैं, कोऊ अध्ययन करै हैं, कोऊ ध्यान करै हैं, कोऊ तीर्थविहार करै हैं, काहूकै दोष लागै है, कोऊ प्रायश्चित्त लेहैं, कोऊ दोष नहीं लगावै हैं, कोऊ आचार्य हैं, कोऊ उपाध्याय हैं, कोऊ प्रवर्त्तक हैं, कोऊ निर्यापक हैं, कोऊ वैयावृत्य करै हैं, कोऊ ध्यानकरि श्रेणी चढै हैं, कोऊ केवलज्ञान उपजावै हैं। इत्यादिक प्रवृत्तिकरि भेद हैं।

अर नग्न दिगम्बरपणा सबकै है इसमैं भेद नाहीं है। ऐसा लिंगभेद नाहीं। जैसैं कोई रक्त पीत श्वेत श्यामवस्त्र धारै, कोई जटा धारै, कोऊ कौपीन धारै, कोऊ पालकी चढै, कोऊ हस्ती चढै, रथ चढै, सो ए सब भेद मिथ्यादृष्टीनिकै कालके निमित्ततैं हैं।

अब लेश्या कहै हैं—पुलाककै तो तीन शुभलेश्या ही हैं। याकै बाह्यप्रवृतिका अवलम्बन नहीं है। अपने मुनिपणाका साधनमैं ही राचि रहै हैं। बकुश अर प्रतिसेवनाकुशीलकै छह भी होय है, अपि शब्द करि अन्य आचार्य तीन शुभ ही कहै हैं। कषाय कुशीलकै कापोतादिक च्यार हैं। अन्य आचार्यनिके अभिप्रायतैं तीन शुभ ही हैं। अर निर्ग्रंथ स्नातकनिके एक शुक्ल ही है। अयोगी लेश्यारहित हैं।

अब उपपाद कहै हैं—पुलाकमुनिका उत्कृष्ट उपपाद आयुके धारक सहस्रारस्वर्गके देवनिमैं अठारह सागरकी आयुका धारक उपजै। अर बकुश प्रतिसेवना कुशीलका उत्कृष्ट उपजना बाईस सागरका आयुके धारक आरण अच्युत कल्पमैं जानना। अर कषायकुशील अर ग्यारमा गुणस्थानवाले उपशांतमोह हैं ते निर्ग्रंथ हैं। तिन निर्ग्रंथनिका उत्कृष्ट उपपाद तेतीस सागरकी स्थितिका धारक सर्वार्थसिद्धिमैं होय है। बहुरि इन पंचप्रकार पुलकादिक समस्तनिका जघन्य उपपाद दोय सागर आयुका धारक सौधर्म ईशानस्वर्गमैं है। अर स्नातकके निर्वाण ही होय है।

अब संयमका लब्धिके स्थान कहै हैं—ते कषायके निमित्ततैं असंख्यात लोकप्रमाण होय हैं। तहां सर्वजघन्यलब्धिस्थान पुलाक अर कषायकुशीलकै हैं, ते दोऊ युगपत् असंख्यात संयमलब्धिस्थाननिकूं प्राप्तहोय तीठां पाछैं पुलाककी व्युच्छित्ति होय है। बहुरि कषायकुशील अर प्रतिसेवनाकुशीलकी अर बकुश युगपत् असंख्यातस्थान साथि प्राप्त होय पाछैं बकुशकी व्युच्छित्ति होय है। पाछैं तहांतैं प्रतिसेवनाकुशील अर कषायकुशील साथि गमनकरि प्रतिसेवनाकुशीलकी व्युच्छित्ति होय है। तहांतैंहू असंख्यातस्थान जाय कषायकुशीलकी व्युच्छित्ति होय है।

यातैं ऊपरि अकषायस्थाननिकूं निर्ग्रंथप्राप्ति होय है। सोहू असंख्यातस्थान जाय व्युच्छित्तिकूं

प्राप्त होय हैं। याकै ऊपरि एकस्थानकों प्राप्त होय स्नातक व णकूं प्राप्त होय है। ऐसैं ए संयमस्थानमें हैं ते अविभागप्रतिच्छेदनिकी अपेक्षा स्थानस्थानप्रति अनंतगुणा हैं।

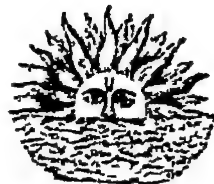
ऐसैं इस अध्यायमैं संवरतत्त्व निर्जरातत्त्वका निरूपण है। तहां संवरका कारण गुप्ति समिति धर्म अनुप्रेक्षाके भेद, परीषहका विशेषकरि भेदनिका कथन, अर चारित्रके भेद, तपके बारह भेद, ताके उत्तर-भेद तथा ध्यानके चारभेदनिका निरूपण किया। बहुरि गुणश्रेणीरूप निर्जराके दशस्थान अर पुलाकादिक पंचप्रकार मुनिनिका स्वरूप कहि अध्याय पूर्ण किया।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अर्थ—ऐसैं तत्त्वार्थका है अधिगम जातैं ऐसा जो दशअध्यायरूप मोक्षशास्त्रविषै नवम अध्याय समाप्त भया।

दोहा।

है जातै तत्त्वार्थका, अधिगम सब सुखदाय।
मोक्षशास्त्र मंगलमयी, नमूं नवम अध्याय ॥ १ ॥



अथ दशमोऽध्यायः प्रारभ्यते ।

दोहा ।

अरिरजविघ्न निवारिकै, निरावरणनिर्दोष ।
नमूँ आप्तके परमपद, होय मोक्षसुख पोष ॥ १ ॥

अब अन्तविषै कह्या जो मोक्षपदार्थ ताके स्वरूप कहनेका अवसर है तथापि मोक्षकी प्राप्ति केवलज्ञानपूर्वक है तातैं पहिलै केवलज्ञानकी उत्पत्तिकों कहिए है—

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणांतरायक्षयाच्च केवलं ॥ १ ॥

अर्थ—मोहनीय कर्मका क्षयतैं अन्तर्मुहूर्त क्षीणकषायनाम पाय पाछैं युगपत ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तरायका क्षय करि केवलज्ञानकूं प्राप्त होय है। इहां पहली मोहका क्षय काहेतैं होय है सो–परिणामनिके विशेषतैं कहै हैं–पूर्वै कही जो विध तिसकरि अर परमतपका विशेषकरि परिणामनिकी उज्जलताकी अधिकतातैं शुभप्रकृतिनिमैं रस प्रचुर होजाय है, अर अशुभप्रकृतिनिमैं रस विनष्ट होजाय है तहां कोऊ वेदकसम्यग्दृष्टी, अविरत, देशविरत, प्रमत्तसंयत, इन च्यार गुणस्थानमध्य कोऊ एक गुणस्थानमैं तीन करणपरिणामनिकरि अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभकूं अप्रत्याख्यानावरणादि बारह कषाय नव नोकषायरूप परिणमन करै सो ही अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन है, सो अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करि बहुरि अन्तर्मुहूर्त स्थिति रहि फिर तीन करणकूं प्राप्त होय क्रमतैं मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्त्वप्रकृतिका क्षयकरि क्षायिकसम्यग्दृष्टी होय अर कर्मनिकी हानि होनैतैं महान् विशुद्धताकरि शुद्ध हुवो सप्तम गुणस्थानमैं अधःकरणके परिणामनिकरि पूर्ववत् अपूर्वकरण क्षपकतानै प्राप्त होय तहां नवीन शुभपरिणामनितैं पापप्रकृतिनिकी स्थिति अनुभागका नाशकरि अर शुभप्रकृतिनमैं अनुभाग वधाय अनिवृत्ति-

करणकरि अनिवृत्तिबादरसांपरायनाम पाय तहां अप्रत्याख्यानावरण अर प्रत्याख्यानावरणरूप अष्ट-कषायनिको क्षयकरि फिरि नपुंसक वेदका नाशकरि फिर स्त्री वेदका नाश करि फिर नोकषाय षट्ककूं पुरुषवेदमैं क्षेपकरि इनका नाश करै।

बहुरि पुरुषवेदकूं क्रोधसंज्वलनमैं, क्रोधसंज्वलनको मानसंज्वलनमैं, मानसंज्वलनको मायासंज्वलनमैं, मायासंज्वलनकूं लोभसंज्वलनमैं, संक्रमणके विधानका क्रमकरि बादरप्रकृष्टिका विभागतैं नाशनै प्राप्त करिकै अनिवृत्तिबादरसांपरायक्षपकभावकूं पाय लोभसंज्वलनकूं सूक्ष्मसांपरायक्षपकभावका अनुभवकरि समस्तमोहनीयका मूलतैं नाशकरि क्षीणकषायकूं चढिकरि उत्तारण कीया है मोहका भार जानैं ऐसा क्षीणकषाय गुणस्थानका द्विचरमसमयमैं निद्राप्रचलाका विनाशकरि अन्तका समयविषै पंचज्ञानावण च्यार दर्शनावरण पंच अन्तराय इन चौदह प्रकृतिनिका नाशकरि तिसकैं अनन्तर समयविषै ज्ञानदर्शन है स्वभाव जाका अर अचिंत्य है विभूतिविशेष जाकी अर जाकै कोऊ प्रतिपक्षी नाहीं ऐसा केवल नाम आत्माका असहाय पर्यायकूं प्राप्त होय केवली होय है।

कैसाक है केवली कर्मके लेपरहित है, अर कमलकीज्यों निर्मल है, अर त्रिकालवर्त्तीसमस्तद्रव्यनिका गुणपर्यायनिके स्वभावकूं युगपत् साक्षात् जाननेवाला है, अर सर्वत्र अरोक है दर्शन जाकै, अर प्राप्तभया है समस्त पुरुषार्थ जाकै, जैसैं वर्षाकालकूं व्यतीत होतै अपनी किरणनिका समूहकरि आल्हादकारी सौम्य है दर्शन जाका ऐसा चन्द्रमाकीज्यों उज्जल है, देदीप्यमान है मूर्ति जाकी, ऐसा त्रैलोक्यनाथ भगवान् केवली होय है।

अब कहै हैं जो अवरोधकरिरहित अनन्तवीर्यादिसंयुक्त केवलज्ञानकूं अर इसका लाभ होनेका कारणनिकूं तो जान्या।

अब—मोक्षका लक्षण तो कहा है अर कौन हेतुतैं मोक्ष होय सो कहो यातैं सूत्र कहै हैं—

बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥ २ ॥

अर्थ—बन्धके कारणनिका अभाव अर निर्जराकरिकै समस्तकर्मका अत्यन्त अभाव सो मोक्ष है। तहां मिथ्यादर्शनादि बन्धके कारणनिका अभावतैं तो नवीनकर्म नहीं बन्धै अर पूर्वे बन्धै कर्मनिका गुप्त्यादिकनिर्जराके कारणनिकरि निर्जरा होजाय तदि भवमैं स्थिति करनेके कारण आयुकर्मनाम गोत्र वेदनीय कर्मकी अत्यन्त अभावतैं मोक्ष ही होय है। तहां चरमशरीरीके नरक तिर्यंच देव इन तीन आयुका तो पहली बन्धहीका अभाव है जातैं चरमशरीरीके भुज्यमान एक ही आयुका सत्त्व होय है, परभवका आयु नहीं बांधे है ऐसा नियम है।

अर असंयतादि चारि गुणस्थाननिमैंतैं कोई एक गुणस्थानविषै दर्शनमोहनीय कर्मकी तीन प्रकृति अर चार चार अनन्तानुबन्धी ऐसैं सात प्रकृतिनिका क्षय करै। बहुरि नवम गुणस्थानका नवभाग हैं–तिसके पहले भागमैं निद्रानिद्रा, प्रचला प्रचला, स्त्यानगृद्धि, नरकगति, तिर्यंचगति, एकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय ए च्यार जाति, नरकगत्यानुपूर्व्य, तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य, आताप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, इन षोडशप्रकृतिनिका युगपत् नाश करै है। अर दूसरा भागमैं अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण इन आठ कषायनिका क्षय करै है।

अर तीसरा भागमैं नपुंसकवेदका, चौथामैं स्त्रीवेदका, पांचमांमैं छह हास्यादिकनिका, छठामैं पुरुषवेदका, सातमामैं संज्वलन क्रोधका, आठमामैं मानका, नवमामैं मायाका, ऐसैं नवमा गुणस्थानमैं छत्तीस प्रकृतिनका नाश करै है। दशमगुणस्थानमैं संज्वलनलोभका नाश करै है।

बहुरि क्षीणकषाय छद्मस्थ वीतरागनाम बारमा गुणस्थानमैं द्विचरमसमयमैं पञ्चज्ञानावरण, पंच अन्तराय, दर्शनावरण ४, निद्रा १ प्रचला १ ऐसैं सोलह प्रकृतिनिका नाश करै है। इहां पर्यंत सोलहप्रकृतिनिका नाश करि केवलज्ञान उपजाय चौदमा अयोगीगुणस्थानमैं पच्यासी प्रकृतिनिका नाश करै है तहां उपांत्यसमय जो अन्तका समयका पहला समय तहां द्विचरम कहिए तिसविषै दोय वेदनीयमैंतैं एक वेदनीय, देवगति, पांच शरीर, पांच बन्धन, पांच संघात, छह संस्थान, छह संहनन, तीन अंगोपांग, पंचवर्ण,

दोयगन्ध, पंचरस, अष्ट स्पर्श, देवगत्यानुपूर्व्य, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्ताप्रशस्त-विहायोगति, अपर्याप्तक, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति, नीचगोत्र, निर्माण, ऐसैं बहत्तरि प्रकृतिनिका क्षय करै हैं। बहुरि अयोगीका अन्तसमयविषै, एक वेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यआयु, पंचेन्द्रियजाति, मनुष्यगत्यानुपूर्व्य, त्रस, बादर, पर्याप्तक, सुभग, आदेय, अयशस्कीर्ति, तीर्थंकरत्व, उच्चगोत्र। इन तेरह प्रकृतिनका अत्यन्त नाशकरि मोक्ष होय है।

इहां प्रश्न—जो कर्मका बन्धके सन्तानकी आदिका अभाव है तातैं अन्तहू नहीं भया चाहिए—ताकूं उत्तर कहे हैं। जो ऐसा एकांत नहीं है जातैं प्रत्यक्ष देखिए है, जैसैं बीजका अर अंकुरका अनादि-सन्तान है तोहू अग्निकरि बीज दग्ध होजाय तदि फिर अंकुरा प्रगट नहीं होय है ऐसैं अन्त देखिए हैं। तैसैं मिथ्यादर्शनादि कारणनितैं संसारका अनादिसन्तान होतैहू ध्यानरूप अग्निकरि कर्मबीज दग्ध होजाय तदि भवरूप अंकुराके उत्पादका अभावतैं मोक्ष होय है।

द्रव्यकर्म है सो पुद्गलपरमाणुनिका स्कंध है सो कर्मकषायरूप परिणया है सो कर्मरूप पर्यायका नाश होय है। पुद्गलद्रव्यपणाकरि विनाश नहीं होय है।

अब कोऊ पूछै हैं—जो पुद्गलमयी द्रव्यकर्मकी प्रकृतिनका नाशतैं ही मोक्ष है कि भावकर्मका भी नाश होय है यातैं सूत्र कहै हैं—

औपशमिकादिभव्यत्वानां च ॥ ३ ॥

अर्थ—जीवके औपशमिकादिभाव अर पारिणामिकमैं भव्यत्वभावनिके अभावतैं मोक्ष है। इहां भव्यत्वका ग्रहण है सो अन्य जीवत्वादिकका अभावका निषेधके अर्थि है। औपशमिक औदयिक अर पारिणामिकमैं भव्यत्वकाहू मुक्तजीवकै अभाव है। अभव्यत्वभाव पहिले ही नहीं था अर जीवत्वादिक पारिणामिक भावका मुक्त जीवकै अभाव नहीं है।

अब-मुक्तजीवकै जे क्षायिकभाव हैं तिनकों कहै हैं—

अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥ ४ ॥

अर्थ—केवलसम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, सिद्धत्व, इन भावनिविना अन्यभावनिका मुक्तजीवकै अभाव है। इहां कोऊ कहै—जो मुक्तजीवकै च्यार ही भाव अवशेष रह्या कह्या तो अनन्तवीर्यकाहू अभाव आया। ताकूं कहै हैं—ये दोष नहीं है। जातैं अनन्तवीर्यादिक हैं ते ज्ञानदर्शननैं अविनाभावी हैं, तातैं अनन्तज्ञानदर्शनकी लारही अनन्तवीर्य है। जातैं अनन्तवीर्यरूप सामर्थ्यकरि हीनकै अनन्तज्ञानदर्शनकी प्रवृत्ति भी नहीं होय है अर अनन्तसुख है सो अनन्तज्ञानमय ही है, ज्ञानविना जडकै सुखवेदना है नहीं।

इहां कोऊ कहै—जो दुःखरूप समुद्रमैं डूब्या हुवा समस्तजगतकूं जानते देखते सिद्धनिके करुणा उत्पन्न होय, करुणाते कर्मका आस्रव होनेका प्रसंग आवै है सो नहीं है, जातैं भक्ति स्नेह करुणा वांछा क्रिया ए समस्त रागभावके भेद हैं। वीतरागकै समस्तरागका अभावतैं समस्तआस्रवका अभाव है, अर जो कारणविना ही मुक्तजीवकै बन्ध कल्पना करिए तो मुक्ति होनेका अभाव आवैगा। मुक्त हुवा पाछैं बन्धका सद्भाव ठहरैगा। अर जो या कहोगे मुक्तजीवकैहू स्थानवान्‌पणो है तातैं पतन होयगा सो नहीं है।

जातैं आस्रवका अभावतैं पतन नहीं। जिस नावमैं जल प्रवेश करैगा सो डूबैगी। मुक्तजीवकै आस्रव नहीं तातैं पतनहू नहीं है। बहुरि जाकै कर्मका बन्धकरि भारीपणो है ताका पतन होय है। जैसैं भारी जो तालका फल ताकै वृक्षतैं बन्धी बींटके संयोगका अभावतैं पतन देखिए है अर गौरवरहित आकाशका पतन नहीं देखिए है।

अर मुक्तजीवके गौरवता है नाहीं तातैं पतनको अभाव है। अर जिसके मतमैं स्थानवानपणा ही पतनका कारण है ताकै समस्तपदार्थनिका पतन ठहरैगा। बहुरि कोऊ कहै—सिद्धक्षेत्र तो अल्प है तिसमैं अनन्तानन्तसिद्ध हैं। तातैं परस्पर उपरोध होयगा सो नहीं है। अवगाहनशक्तिका योगतैं जैसैं मूर्तिमान्‌पदार्थनिमैं हू अनेक मणिदीपकादिकनिका प्रकाश अल्पक्षेत्रनिमैंहू परस्पर नहीं रुकै है तो अवगाहनशक्तियुक्त अमूर्तिकमुक्तजीव कैसैं परस्पर अवरोध करैं।

बहुरि मुक्तजीवनिकै अमूर्तिकपणातैं ही जन्ममरणक्लेशादिक बाधा नहीं है यातैं बाधारहितपणातैं ही अनन्तसुखी तिष्ठै हैं। बहुरि आकाशकूं तो परमाणुकरि अवगाह्यक्षेत्रकूं आदि लेय एकएक प्रदेशकी वृद्धिकरि कल्पनारूप आकाशका परिणामकूं कल्पना किया परन्तु मुक्तजीवका ज्ञानकूं उपमा देनेकूं कोऊ पदार्थ नहीं। अर सांसारिकसुख है सो इंद्रियादिकनिकै आधीन अर वेदनापूर्वक अर अन्तसहित है। अर मुक्तजीवनिका सुख स्वाधीन सास्वता वेदनारहित है तातैं मुक्तजीव उपमारहित हैं।

बहुरि कोऊ कहै—मुक्तजीवनिकै मूर्ति नहीं तातैं आकारको अभाव होयगो सो नहीं है। चरमदेहका जैसा आकार है तैसा आत्मप्रदेशनिका आकार रहै है। फिर कोऊ कहै—जीवकी रचना आकार तो शरीरके अनुकूल है, शरीरका बन्धनेमें था तदि शरीरके आकार था, अब शरीरका अभाव भया, तदि स्वाभाविक लोकाकाशके प्रदेशनिप्रमाण विस्तारकूं प्राप्त होना योग्य है ताकूं उत्तर कहै है—जो ऐसै नाहीं है। जातैं आत्माके प्रदेशनिका संकोच विस्तारका कारण नामकर्म था। नामकर्म जैसा शरीरमें प्रवेश करावै था तैसा संकोचविस्तार था। नामकर्मका अभावतैं दीपकवत्‌ संहार संकोच विसर्पण विस्तार दोऊका अभाव जानना।

अब कोऊ कहै—जिस देशमें कर्मका अभाव होय तिस ही स्थानमें मुक्तजीवका अवस्थान प्राप्त हुवा चाहिए। जातैं मुक्तजीवकै बन्धका अभाव भया अर भारीपणाका अभाव है तातैं अधोगति संभवै नहीं है। अर योगनिका अभावतैं तिर्यग्गति नहीं सम्भवै है। तातैं तहां ही अवस्थानयुक्त होने योग्य है ताकूं उत्तर कहै हैं-जैसैं अनेकदिशामें गमनके निमित्तका अभाव है तैसैं ऊर्ध्वगमनके ही निमित्तका अभाव नहीं है।

तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकांतात् ॥ ५ ॥

अर्थ—समस्तकर्मका अभाव भए पीछे जीव ऊर्ध्वगमन करै है सो लोकका अन्तपर्यंत जाय है।

अब—ऊर्ध्वगमनका कारण कहे बिना ऊर्ध्वगमन कैसैं निश्चय किया जाय तातैं ऊर्ध्वगमनका हेतु कहै हैं—

पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बंधच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥ ६ ॥

अर्थ—पूर्वप्रयोगतैं असंगतैं बन्धके छेदतैं तथा गतिपरिणामतैं इन चार हेतुनितैं ऊर्ध्वगमन होय है। अब–इन चार हेतुनिका दृष्टांतके अर्थि सूत्र कहै हैं—

आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरंडबीजवदग्निशिखावच्च ॥ ७ ॥

अर्थ—इहां पूर्वसूत्रमैं कहे हेतु तिनका यथासंख्य दृष्टांत जानना सो ही कहै हैं। जैसैं कुम्भकारके प्रयोगतैं भया जो हस्तका अर दण्डका अर चाकका संयोग तातैं चाकका फिरना होयहै फिर जो कुंभकार फिरावता रहिगया तो हू पूर्वके प्रयोगतैं जहांतांई फिरनेका संस्कार नहींमिटै तहांतांई फिर बोही करै। तैसैं ही संसारमैं तिष्ठता जीव हू मुक्तिकी प्राप्तिके अर्थि बारंवार चिंतवन अभ्यास करै था सो मुक्ति भए पाछैं अभ्यास नहीं रह्या तोहू पूर्वले संस्कारतैं मुक्तिगमन होय है।

बहुरि जैसैं तूम्बा मृत्तिकाकै लेपतैं भर्‍याहुवा जलमैं डूबि रह्या था, मृत्तिकाका लेप दूरि होते ही तूम्बा जलकै ऊपरि ही आजाय तैसैं कर्मके भारकरि दब्या परवश भया आत्मा तिस कर्मके सम्बन्धतैं संसारमैं नियमतैं पड्या है फिर कर्मका लेप दूरि होय तब ऊर्ध्व ही गमन करै है। बहुरि जैसैं एरण्डका डोडामैं तिष्ठता एरण्डबीज सो डोडाकूं सूकिकरि फूटतैं ही ऊँचा उछलै है तैसैं मनुष्यादिभवमैं राखनेवाला गतिजात्यादि नामकर्म तथा आयु नाम गोत्रके बन्धन टूटते ही आत्मा ऊर्ध्व ही गमन करै है।

बहुरि जैसैं तिर्यग्गमन करावनेवाला पवनका अभाव होय तदि दीपककी शिखा ऊर्ध्व ही गमन करै है, तैसैं नानागतिमैं गमन करावनेका कारण कर्मका अभाव होतै आत्माका ऊर्ध्वगमन ही होय है। जैसैं अग्निका ऊर्ध्वगमनस्वभाव है तैसैं जीवकाहू ऊर्ध्वगमन स्वभाव है। जैसैं अग्निशिखा पवनकी प्रेरी तिर्यग्गमन करै अर पवनका अभाव भए ऊर्ध्वगमन करै है तैसैं कर्मका प्रेर्‍या जीव चतुर्गतिमैं परिभ्रमण करै है, कर्मका अभाव भए ऊर्ध्वगमन करै है।

इहां कोऊ पूछैं—मुक्ति भए पीछैं आत्माका ऊर्ध्वगमनस्वभाव ही है तो लोकके अन्तमैं ही कैसैं ठहर्‌या फिर ऊंचा ही कौन हेतुतैं नहीं जाय।

अब—ताका उत्तर कहै हैं—

धर्मास्तिकायाभावात् ॥ ८ ॥

अर्थ—मुक्त आत्मा है सो लोकका अन्तमैं जाय तिष्ठै है परैं अलोकमैं नहीं जाय हैं। जातैं आगैं गति उपकार करनेवाला धर्मास्तिकायका अभाव है। अर धर्मास्तिकायका अभाव समस्तलोकमैं भी मानिए तो लोक अलोकका विभागका अभाव होजाय।

आगैं पूछैं हैं—मुक्त भए जीव तिनकैं गति जाति आदिक तो कारण नाहीं तातैं इन विषै भेदका व्यवहार नाहीं है कि कछु भेदव्यवहार कीजिए।

अब—ताका उत्तर कथंचित् भेद भी करिए ताका सूत्र कहै हैं।

क्षेत्रकालगतिलिंगतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धिबोधितज्ञानावगाह-
नांतरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥ ९ ॥

अर्थ—क्षेत्र काल गति लिग तीर्थ चारित्र प्रत्येकबुद्धबोधित ज्ञान अवगाहना अन्तर संख्या अल्पबहुत्व इनि बारह अनुयोगनिकरि सिद्धजीवनिकूं भेदरूप साधने। प्रत्युत्पन्ननय अर भूतप्रज्ञापननय इन दोऊ नयनिकी विवक्षाकरि क्षेत्रादिक बारह अनुयोगनितैं सिद्धनिमैं भेद साधनेयोग्य है। तहां क्षेत्रकरि तो कौन क्षेत्रमैं सिद्ध होय है—प्रत्युतपन्ननयकी अपेक्षाकरि सिद्धक्षेत्रविषै अथवा अपने आत्मप्रदेशनिविषै सिद्ध होय हैं अथवा आकाशके प्रदेशनिविषै सिद्ध होय है। भूतप्रज्ञापननयकी अपेक्षाकरि जन्म अपेक्षातैं पनरह कर्मभूमिका जन्म्या जीवहीकै सिद्धगति होय है। तथा पन्द्रह कर्मभूमिमैं जन्म्या मनुष्यकूं कोऊ देव आदि अन्य क्षेत्रमैं लेजाय तो अढाई द्वीपप्रमाण समस्तमनुष्यक्षेत्रतैं सिद्ध होय हैं। इहां प्रत्युत्पन्न-

ग्राहीनय वर्त्तमानपदार्थकूं ग्रहण करै है सो ऐसा नय ऋजुसूत्र है। तथा शब्द समभिरूढ एवंभूत भी याही नयका परिवार है।

बहुरि कालकरि कौनसे कालमैं सिद्ध होय—तहां प्रत्युत्पन्नग्राहीनयकी अपेक्षाकरि एकसमयमैं सिद्ध होय हैं। भूतप्रज्ञापननयकी अपेक्षाकरि सामान्यकरि तो उत्सर्पिणी अवसर्पिणी दोऊ कालमें सिद्ध होय हैं अर विशेषकरि अवसर्पिणीका सुखमदुःखमा जो तीजा काल ताका अन्तभागविषै अर दुखमासुखमा जो चौथा काल समस्तके विषै उपज्या अर दुखमसुखमका उपज्या पंचमकालके विषै भी मोक्ष होय है। अर दुःखमकालमें अर दुःखमदुःखमकालमैं उपज्या सिद्धगति नहीं पावै है। अर विदेह क्षेत्रका उपज्या कोई देवादिक हरि लेजाय सो समस्त उत्सर्पिणीके विषै सिद्ध होय है।

बहुरि गतिविषै प्रत्युत्पन्नग्राहीनयकी अपेक्षा सिद्धगतिविषै ही सिद्ध होय हैं। अर भूतविषयनयकी अपेक्षाकरि मनुष्यगतिहीमैं सिद्ध होय हैं। बहुरि लिंगकेविषै प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षाकरि वेदरहित ही सिद्ध होय हैं। भूतग्राहीनयकी अपेक्षाकरि भाववेद तीनोंहीकरि क्षपकश्रेणि चढि मोक्ष पावै हैं। द्रव्यकरि पुरुषवेदहीतैं सिद्ध होय हैं अथवा निर्ग्रंथलिंगकरि ही सिद्धगति होय हैं। भूतविषयनयकी अपेक्षा पूर्वै जाकै सग्रन्थीपणा था ताहीकै मोक्ष होय है।

बहुरि तीर्थकरि—कोऊ तो तीर्थंकर होय मोक्ष पावै है, अर केई सामान्यकेवली होय मोक्ष पावै है। तिसमैंहू कोऊ तो तीर्थंकर विद्यमान होय तिस समय मोक्ष पावै है। केई तिर्थंकरनिकूं नहीं विद्यमान होतै मोक्ष पावै हैं। बहुरि चारित्रविषै प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षा तो चारित्रनिका अभावहीकरि सिद्ध होय है। तहां चारित्रका नाम ही नहीं अर भूतग्राहीनयकी अपेक्षामैं अनन्तर अपेक्षा तो यथाख्यातचारित्रकरि ही मोक्ष पावै हैं। अर अन्तरकी अपेक्षा—सामायिक छेदोपस्थापना सूक्ष्मसांपराय यथाख्यातचारित्रकरि ही मोक्ष पावै हैं। तथा कोऊकै परिहारविशुद्धि होय तब पांचूहीतैं मोक्ष पावै है।

बहुरि प्रत्येकबुद्ध तो अपनी शक्तिकरि स्वयमेव ही ज्ञान पावै है। अर बोधित कहिए परके उप-

देशतैं पावै। तहां केई तो प्रत्येक बुद्ध मोक्ष पावै हैं, केई बोधितबुद्ध मोक्ष पावै हैं। बहुरि ज्ञानकरि प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षा तो केवलज्ञानकरि ही सिद्ध होय हैं। अर भूतग्राहीनयकी अपेक्षा करि–केई तो मति श्रुत इन दोय ज्ञानकरि ही केवलज्ञान उपजाय मोक्ष पावै हैं। केई मति श्रुत अवधि मनःपर्यय इन चारों ज्ञानकरि केवल उपजाय मोक्ष पावै हैं। केई मति श्रुत अवधि इन तीन ज्ञानकरि केवल उपजाय मोक्ष पावै हैं।

बहुरि अवगाहना उत्कृष्ट पांचसैं पचीस धनुष्यकी है। अर जघन्य साढा तीन हस्तप्रमाण कछु घाटि है मध्यके नानाभेद हैं। इनमैं एकएक अवगाहनातैं मोक्ष पावै हैं। प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षा देशोनक ही है। बहुरि सिद्ध होतै जीव अन्तरकरि भी सिद्ध होय अर अन्तररहित भी सिद्ध होय हैं। तहां जो सिद्ध होय हैं तिनकै अनन्तर जघन्य तो दो समय है। अर उत्कृष्ट अष्टसमयपर्यंत निरन्तर सिद्ध होय हैं। बहुरि अन्तर जघन्य तो एकसमय है अर उत्कृष्ट छह महिना है। बहुरि संख्या जघन्यकरि तो एकसमयमैं एक ही सिद्धगति पावै है। अर उत्कृष्ट एकसमयमै एकसौ आठ जीव मोक्ष पावैं हैं।

बहुरि क्षेत्र आदिक एकादशकरि अभिन्नकै परस्पर भेदतैं संख्याकी विशेषतातैं अल्पबहुत्व कहिए हैं तहां प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षा सिद्धक्षेत्रविषै ही सिद्ध होय हैं। याकै अल्पबहुत्व नाहीं हैं। बहुरि भूतग्राहीनयकी अपेक्षा सिद्धक्षेत्र दोय प्रकार हैं। जन्मतैं अर संहरणतैं तिनमैं संहरणसिद्ध अल्प हैं। इनतैं संख्यातगुणे जन्मसिद्ध हैं।

बहुरि क्षेत्रनिका विभागतैं ऊर्ध्वलोकतैं भए सिद्ध अल्प हैं। तिनतैं असंख्यातगुणा अधोलोकतैं भए सिद्ध हैं। तिनतैं असंख्यातगुणातिर्यग्लोकतैं भए सिद्ध हैं। कोऊ कहै ऊर्ध्वलोकतैं अर अधोलोकतैं भए सिद्ध कैसैं हैं ताका उत्तर–जो आगमकी आज्ञाविना अपनी रुचिसैं तो कहि करि कौन संसारमैं डूबै? विशेष जाणेविना कह्या जाय नाहीं सामान्य आगममैं लिख्या सो प्रमाण है? सो ही लिखदिया है। बहुरि सर्वतैं थोरे समुद्रतैं भए सिद्ध हैं। तिनतैं संख्यातगुणा द्वीपतैं सिद्ध भए हैं। ऐसैं तो सामान्य कह्या।

इनका विशेष—सर्वतैं थोरैं लवणसमुद्रतैं भए समुद्रतैं सिद्ध हैं। तिनतैं संख्यातगुणा कालोदधिसमुद्रतैं भए सिद्ध हैं। तिनतैं संख्यातगुणा जम्बुद्वीपतैं भए, तिनतैं संख्यातगुणा घातकी द्वीपतैं भए सिद्ध हैं। तिनतैं असंख्यातगुणा पुष्कारर्द्धतैं भए सिद्ध हैं। ऐसैं क्षेत्रका विभागतैं अल्पबहुत्व जानना।

बहुरि कालका विभागतैं उत्सर्पिणीकालतैं सिद्ध भए, तिनतैं अवसर्पिणीकालमैं भए सिद्ध विशेषकरि अधिक हैं। बहुरि उत्सर्पिणी अवसर्पिणीकाल विना जे सिद्ध भए ते तिनतैं संख्यातगुणा हैं। जातैं विदेहक्षेत्रनिमैं उत्सर्पिणी अवसर्पिणी दोऊ काल नहीं प्रवर्त्तैं हैं।

बहुरि प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षाकरि एकसमयमैं सिद्ध होय हैं यातैं अल्पबहुत्व नाहीं है। गतिविषै प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षा तो अल्पबहुत्व नाहीं। बहुरि एकगतिका अन्तर अपेक्षाकरि तिर्यंचगतिके आये मनुष्य सिद्ध भए ते तो समस्ततैं अल्प हैं। तिनतैं संख्यातगुणे मनुष्यगतितैं मनुष्य होय सिद्ध होय है। तिनतैं संख्यातगुणा देवगतिमैं आए मनुष्य होय सिद्ध होय हैं।

बहुरि वेदका अनुयोगकरि प्रत्युत्पन्ननयकरि तो वेदरहित सिद्ध होय हैं तहां अल्पबहुत्व नाहीं। भूतनयकी अपेक्षा सर्वतैं अल्प तो नपुंसकलिगतैं श्रेणी चढि सिद्ध होय हैं, तिनतैं असंख्यातगुणा स्त्रीवेदमैं श्रेणी चढि सिद्ध होय हैं। तिनतैं संख्यातगुणा पुरुषवेदतैं श्रेणी चढि सिद्ध भए हैं। बहुरि तीर्थंकर होय सिद्ध भए अल्प हैं। तिनतैं संख्यातगुणा सामान्यकेवली होय सिद्ध भए हैं।

बहुरि चारित्रकरि प्रत्युत्पन्ननयकीअपेक्षा चारित्रविना ही सिद्ध भए तहां अल्पबहुत्व नाहीं, अर भूतनयकी अपेक्षा अनन्तरचारित्र यथाख्यातहीतैं सिद्ध होय हैं तहां भी अल्पबहुत्व नाहीं है। बहुरि अन्तरसहित चारित्रअपेक्षा पंचचारित्रतैं सिद्ध भए अल्प हैं तिनतैं संख्यातगुणा चारित्रतैं भए हैं। बहुरि प्रत्येकबुद्धनितैं संख्यातगुणे बोधितबुद्ध भए सिद्ध हैं।

बहुरि ज्ञानकरि प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षा तो केवलज्ञानहीतैं सिद्ध होय हैं। तिनमैं अल्पबहुत्व नाहीं। भूतनयकी अपेक्षाकरि दोय ज्ञानतैं सिद्ध भए अल्प हैं। तातैं संख्यातगुणा च्यार ज्ञानतैं भए सिद्ध

हैं। तिनतैं असंख्यातगुणा तीन ज्ञानतैं भए सिद्ध हैं। बहुरि अवगाहनाकरि जघन्य अवगाहनातैं सिद्ध भए थोरे हैं। तिनतैं संख्यातगुणा उत्कृष्ट अवगाहनातैं भए सिद्ध हैं। तिनतैं संख्यातगुणे मध्यम अवगाहनातैं भए सिद्ध हैं।

बहुरि संख्याविषै एकसमयमैं उत्कृष्टपणैं एकसो आठ सिद्ध होय हैं ते तो अल्प हैं। तिनतैं अनन्तगुणा पचासताईंकी संख्यात भए सिद्ध हैं, तिनतैं असंख्यातगुणा गुणचासतैं लगाय पचीसताईंकी संख्यात एकसमयमैं भए सिद्ध हैं। तिनतैं संख्यातगुणे चोईसतैं लगाय एकपर्यंत संख्यातैं एकसमयमैं भए सिद्ध हैं।

ऐसैं निसर्ग अर अधिगमविषै कोऊ एकतैं उपज्या तत्त्वार्थनिका श्रद्धान है स्वरूप जाका अर शंकादि अतिचाररहित है। अर प्रशम संवेग अनुकंपा आस्तिक्य है प्रगट लक्षण जाका, ऐसा निर्मलसम्यग्दर्शन अर सम्यग्दर्शनकी उपलब्धितैं ही विशुद्ध हुवा सम्यग्ज्ञानकूं प्राप्त होय करिकै अर नामादिक च्यार निक्षेप अर प्रत्यक्ष परोक्ष दोय प्रमाण अर निर्देशादिक अर सत्संख्यादिक जे बड़े उपाय तिनकरि जीवनिके पारिणामिक औदयिक औपशमिक क्षायोपशमिक क्षायिक भावनिका स्वरूप है ताहि जाणिकरिकैं, बहुरि चेतनके भोगके साधनेरूप जे विषय तिनकी उत्पत्ति विनाश स्वभावके ज्ञान होनेतैं विषयनिमैं विरक्त होय अर वांछारहित होय, तीनगुप्ति पंच समितिरूप हुवो दशलक्षण धर्मके आचरणतैं, अर धर्मके फलका दर्शनतैं निर्वाणकी प्राप्तिमैं यत्नके अर्थि वृद्धितैं प्राप्त हुवा है श्रद्धान अर संवेग जाकै, अर भावनाकरि प्रगट किया है स्वरूप जानैं ऐसा, अर अनुप्रेक्षाकरि स्थिर किया है अभिप्राय जानैं ऐसा, अर संवररूप है आत्मा जाका, ऐसा हुवा सन्ता आस्रवरहितपणातैं दूरि भया है नवीनकर्मका संचय जाकै ऐसा, बहुरि परिग्रहके जीतनेतैं अर बाह्य अभ्यंतर तपके आचरणतैं, अर अनुभव करनेतैं सम्यग्दर्शनके धारक विरताविरतकूं आदि लेय सयोगीजिन पर्यंतनिके परिणमनरूप अध्यवसाय कहिए परिणाम तिनका विशुद्धताके स्थानांतरकै असंख्यातका गुणाकार किया आधिकताकरिकै पूर्वले संचय किए कर्मनिकूं निर्जरा करता

सन्ता ऐसा, बहुरि सामायिकचारित्रकूं आदि लेय सूक्ष्मसांपरायपर्यंत कषायनिके विशुद्धिस्थाननिका उत्तरोत्तर उत्कृष्टपणाका अवलम्बनतैं, अर पुलाकादिक निर्ग्रन्थनिका संयमके अनुपालनके विशुद्धताके स्थानविशेषनिकी उत्तरोत्तर उत्कृष्टताकी प्राप्तिकरि रच्यो अर अत्यंत नष्ट हुवो है आर्त्त रौद्र ध्यान जामैं, अर धर्मध्यानके प्रभावतैं प्राप्त भया है समाधिबल जाकै, अर शुक्लध्यानके विकल्प जे पृथक्त्व-वितर्कविचार अर एकत्ववितर्कविचार इन दोउ ध्याननिके मध्य किसी एक ध्यानमैं वर्त्तता ऐसो, अर नानाप्रकारकी पूर्वोदित शुद्धिनिके विशेषकरि युक्त ऐसो, अर तिन शुद्धिनिमैं नहीं आसक्त है चित्त जाका ऐसा कोऊ महान् साधु है सो पूर्वैं कह्या क्रमकरि मोहादिक च्यार घातिया कर्मनिका नाशकरि सर्वज्ञपणाकी ज्ञानलक्ष्मीकूं अनुभवकरि अरहन्तपणा पाय पाछैं शेष अघातिकर्मनिका नाशतैं भवबन्ध-रहित हुवा जैसें उपादानकारण ईंधनका अभाव जाकै होयगा ऐसा अग्निकीज्यों पूर्वैं ग्रहणकीया भव ताका वियोगतैं अर कारणके अभावतैं नवीन शरीरका नहीं प्रगट होनेतैं संसारका दुःखको उल्लँघनतैं अंतररहित एकांतिक निरुपम निरतिशय ऐसा निर्वाणका सुखकूं प्राप्त होय हैं। इस प्रकार तत्त्वार्थभावनाको यो फल है सो तत्त्वार्थसूत्रके ज्ञाता वक्ता श्रोता भव्यजीवनिकूं प्राप्त होहू।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अर्थ—ऐसैं तत्त्वार्थका है अधिगम जातैं ऐसा जो दशअध्यायरूप मोक्षशास्त्र तिसविषै दशम अध्याय समाप्त भया।

दोहा।

है जातै तत्त्वार्थका, अधिगम सबसुखदाय।
मोक्षशास्त्र मंगलमयी, नमूं दशम अध्याय ॥ १० ॥



ऐसैं अर्थप्रकाशिकानाम देशभाषामय वचनिका श्रीराजवार्तिक नाम ग्रन्थका अल्पलेश लेय अपना उपयोगकी विशुद्धिताके अर्थि तथा संस्कृतके बोधरहित अल्पज्ञानिके तत्त्वार्थसूत्रनिके अर्थ समझनेके अर्थि अपनी बुद्धिकी अनुसार लिखी है परन्तु राजवार्तिकका अर्थ तथा कहूँकहूँ गोमटसार त्रिलोकसारका अर्थकूं लेय लिख्या है।

अपनी बुद्धिकी कल्पनातैं इस ग्रन्थमैं एक अक्षरहू नहीं लिख्या है। जाकै पापका भय होयगा अर जिनेन्द्रकी आज्ञाका धारणेवाला होयगा सो जिनेन्द्रके आगमकी आज्ञाविना एक अक्षर स्मरणगोचर नहीं करैगा, लिखना तो बणैं ही कैसैं? अर जे सूत्रकी आज्ञा छांडि अपने मनकी युक्तितैं ही अपने अभिमान पुष्ट करनेकूं योग्य अयोग्य कल्पनाकरि लिखैं हैं ते मिथ्यादृष्टी सूत्रद्रोही अनन्तसंसारपरिभ्रमण करेंगे।

इस तत्त्वार्थसूत्रके दश अध्याय ऊपरि समन्तभद्रस्वामी चौरासी हजार श्लोकनिमैं गन्धहस्तिनाम महाभाष्य रचा है, अर च्यार हजार श्लोकनिमैं सर्वार्थसिद्धिनाम टीका श्रीपूज्यपादस्वामी रची है। अर सोलह हजार श्लोकनिमैं राजवार्तिक नाम भाष्य श्रीअकलंकदेव रचा है।

अर वीस हजार श्लोकनिमैं श्लोकवार्तिक नाम भाष्य श्रीविद्यानन्दस्वामी रचा है। अर इस दशाध्यायसूत्रकी आदिका एक श्लोककी व्याख्या हो आठ हजार अष्ट सहस्री अर तीन हजार आप्तपरीक्षा ए दोऊ ग्रन्थ तथा अन्य भी बड़ेबड़े ग्रन्थ विद्यानन्दस्वामी रचे हैं। आप्तका सत्यार्थस्वरूपकी दृढ़ता कराई है। एकांत अभिप्रायकूं निकाशि दिया है। जिनके हृदयमैं ए ग्रन्थ प्रवेश कीए तिनके मिथ्याश्रद्धान जन्मांतरहूमैं प्रगट नहीं होय है। इसकी महिमा वचनद्वारा कहनेकूं कौन समर्थ है। इस कलिकालमैं ए ग्रन्थ ही साक्षात् केवलीतुल्य हैं। श्रीकुन्दकुन्दस्वामी करि विरचित समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय नाटकत्रय तिनऊपरि श्रीअमृतचन्द्रसूरि टीका रची है। सो ऐसे ग्रन्थ ऐसी टीकाकी रचना इस कालमैं और है नहीं श्रुतकेवलीतुल्य ज्यांकी व्याख्या है।

अर अष्टपाहुड, नियमसार इत्यादिक अनेक ग्रन्थनिकी रचनाकरि धर्मका स्तम्भ कीया है। बहुरि

श्रीनेमिचन्द्र सैद्धांतिक गोमटसार, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार, द्रव्यसंग्रहादिक अनेक रचना जिनसूत्रनितैं रची है जिन ऊपरि अभयनन्दीसिद्धांती तथा केशववर्णी टीका रची तथा त्रिलोकसारऊपरि माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव रचना रची है।

श्रीवट्टकेरस्वामी मूलाचार रच्या, श्रीवीरनन्दी आचारसार रच्या, श्रीपूज्यपादस्वामी जैनेन्द्रव्याकरण रच्या, श्रीजिनसेन गुणभद्रादि महापुराण रच्या, शिवाचार्य भगवतीआराधना रची, तथा श्रीप्रभाचन्द्रमुनि अकलंकदेवकृत लघुत्रयी वृहत्त्रयीचूलिका, इन सप्तग्रन्थनिका सारभूत लेय कुमुदचन्द्रोदय नाम महाप्रभाविक अनेकांतमय ग्रन्थ रच्या, तथा परीक्षामुख, प्रमेयकमलमार्तंड, प्रमेयचन्द्रिका, प्रमाणपरीक्षा, प्रमाणनिर्णय, प्रमाणमीमांसा, पत्रपरीक्षादि अनेक ग्रन्थ जीवनिका उपकारके निमित्त अनेक आचार्य रचना करि इस अनादिके धर्मकी इस कलिकालमैं रक्षा करी है।

जातैं इस कालमैं बुद्धि वीर्य आयु अत्यन्त घटता जाय है तातैं पूर्वाचार्यनिकरि प्ररूपे महान् ग्रन्थ तिनमैं प्रवेश अति दुर्धर जानि इन ग्रन्थनिमैं महान् ग्रन्थांमैं प्रवेश होना जानि वड़ा उपकार कीया है। अब इन ग्रन्थनिके समझनेवालेहू विरले रहिगये तातैं धर्मकी प्रवृत्तिके निमित्त भाषावचनिका रचना बनी है। अब स्याद्वादविद्याके पारगामी वीतरागी परमहितोपदेशके दयारूप अमृतरसकरि भीजे ऐसे निर्ग्रंथ गुरुनिकूं अर उनके प्ररूपे ग्रन्थनिकूं हमारा मन वचन कायकरि वारंवार सदाकाल आगामीकालमैं वर्त्तमानमैं बहुत विनयसंयुक्त नमस्कार होहु। इनके चरणारविंदके प्रसादतैं हमारे हृदयविषै निरन्तर पंच परमगुरुनिकी भक्ति होहू। हमारे समाधिमरण होहु। अपमृत्युका विनाश होऊ, जिनभक्तिविना पर्यायका एक क्षणहू मतिजाहु।

अथ ग्रन्थप्रशस्ति ।

दोहा ।

नाम जु अर्थप्रकाशिका, देशवचनिका रूप । पढो पढावो ज्ञान धरि, पावो सुख निजरूप ॥ १ ॥
संवत उगणीसै अधिक, द्वादश श्रावणमास । वदि नवमी शशिवार है, आरंभदिन उज्जास ॥ २ ॥
संवत् उगणीसै अधिक, चौदह आदितवार । सुदि दसमी वैशाखकी, पूरण किया विचार ॥ ३ ॥
उमास्वामि मुनि सूत्र धर, वंदौं शिवदातार । पूज्यपादगुरुकों नमों, शब्दब्रह्म आधार ॥ ४ ॥
अनेकान्तआकाशमैं, दिपै जु सूरसमान । समन्तभद्रस्वामी चरन, नमत नसत अज्ञान ॥ ५ ॥
श्रीअकलंक कलंकहर, विद्यानंदि महान् । वन्दौं मनवचकायतैं, द्यो मम सम्यग्ज्ञान ॥ ६ ॥
पंचमकालकरालमैं, मोहतिमिर नहिं थाह । गुरुदीपकविन को गहै, अनेकान्तपथराह ॥ ७ ॥

चौपाई ।

वन्दौं उमास्वामिमुनिराज, तत्त्वारथगर्भित वचकाज ।
सूत्र मोक्षमारगके रचे, द्वादशांग आगमतैं जचे ॥ ८ ॥
भाष्यरचित्ता श्रीअकलंक, राजवार्त्तिक नाम निशङ्क ।
मिथ्यातमखण्डनकूं शूर, अनेकांतमय गुणकरि पूर ॥ ९ ॥
ताकी महिमा को कहि सकै, कोटि जीभ बरनत बल थकै ।
जाकूं पढत जु सम्यक्ज्ञान, प्राप्त होय पावै शिवथान ॥ १० ॥

ताको किंचित् अर्थ जु लेय, अर्थप्रकाशिका नाम धरेय।
भाषा देशवचनिका करी, भूलि सोधि बुध करियो खरी॥ ११॥
मोक्षमार्ग प्रापक परिपूर, कर्म कठिन नगभेदन शूर।
सकलतत्त्वके जाननहार, तद्गुणहेतु नमूं हितकार॥ १२॥
पूरवमैं गंगातट धाम, अतिसुन्दर 'आरा' तिस नाम।
तामैं जिनचैत्यालय लसै, अग्रवाल जैनी बहु बसै॥ १३॥
बहुज्ञाता तिनमैं जु रहाय, नाम तास परमेष्ठिसहाय।
जैन ग्रन्थमैं रुचि बहु करै, मिथ्याधरम न चितमैं धरै॥ १४॥

दोहा।

सो तत्त्वार्थसूत्रकी, रची वचनिका सार।
नाम जु अर्थप्रकाशिका, गिणती पांच हजार॥ १५॥
सो भेजी जयपुरविषै, नाम सदासुख जास।
सो पूरण ग्यारह सहस, करि भेजी तिनपास। १६॥

छप्पै।

डेडराजके वंसमाहि इक किंचित् ज्ञाता।
दुलीचन्दका पुत्र कासलीवाल विख्याता॥
नाम सदासुख कहै आत्मसुखका बहु इच्छक।
सो जिनवानिप्रसाद विषयतैं भए निरिच्छिक॥

इम जानि वानि सेवन करो, जगउपकार जु करनकी ।

इस भव परभव होहु मुझ, सरन जु सम्यकज्ञानकी ॥ १७ ॥

सवैया ।

अगरवालकुल श्रावक कीरतिचन्द जु आरेमांहि सुवास ।
परमेष्ठीसहाय तिनके सुत पितानिकट करि शास्त्रअभ्यास ॥
कियो ग्रन्थनिजपरहित कारण लखि बहुरुचि जगमोहनदास ।
तत्त्वारथ अधिगम सु सदासुखरास चहूँ दिश अर्थप्रकाश ॥ १८ ॥

दोहा ।

वरतो भव्यनि उरविषै, स्याद्वाद उज्ञास ।
यातैं निजपरतत्व लखि, होय जु अर्थप्रकाश ॥ १९ ॥

इति श्रीतत्त्वार्थसूत्रकी अर्थप्रकाशिका नाम वचनिका समाप्ता ॥ १ ॥

